महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

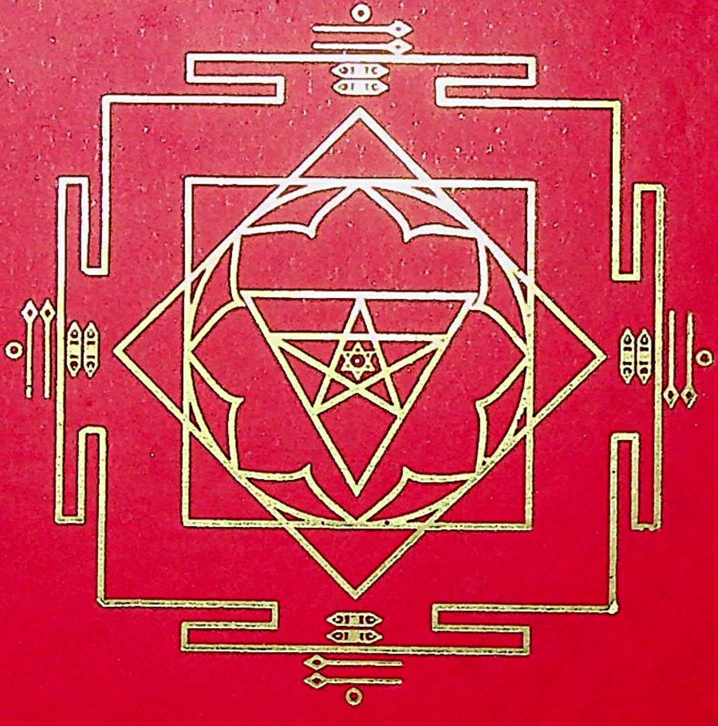

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

III

राधेश्याम चतुर्वेदी

महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

४०३

महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

[तृतीयो भागः * १०-११ पटलात्मकः]

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

व्याकरणाचार्यः एम.ए.(संस्कृत), पीएच.डी., लब्धस्वर्णपदकः
शास्त्रचूडामणिविद्वान्
इमेरिटस प्रोफेसर एवं अध्यक्षः, संस्कृत विभागः
देवसंस्कृतिविश्वविद्यालयः, गायत्रीकुञ्जशान्तिकुञ्जः, हरिद्वार
(पूर्वाचार्यः) संस्कृतविभागः, कलासंकायः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित । इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता हैं।

महाकालसंहिता – राधेश्याम चतुर्वेदी

ISBN : 978-93-80326-37-5 (Part-3)
978-93-80326-34-4 (Set)

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2016
₹ 700

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

The

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA

403

MAHĀKĀLASAṀHITĀ

(GUHYAKĀLĪKHAṆḌAḤ)

[Part Three * 10-11 Paṭalas]

With the **Jñānavatī** Hindi Commentary

Commented & Edited By

Prof. RADHESHYAM CHATURVEDI

Vyākaraṇācārya, M.A., Ph.D., Goldmedalist
Śāstracūḍāmaṇi Scholar

Emeritus Prof & Head, Department of Sanskrit
Dev Sanskriti University, Gayatrikunj Shantikunj, Haridwar

Ex. Professor, Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University, Varanasi

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI (INDIA)

Publishers:

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane
Post Box No.1129
VARANASI 221001
Telephone : (0542) 2335263
e mail : csp_naveen@yahoo.co.in

ISBN : 978-93-80326-37-5 (Part-3)
978-93-80326-34-4 (Set)

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002
Tel. # 011-23286537
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

•

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

•

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

पुरोवाक्

जगत्प्रसविनी वेदमाता गायत्री के कृपाप्रसाद के रूप में महाकालसंहिता गुह्यकाली खण्ड के तृतीय भाग का सटीक संस्करण विद्वन्मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्द का अनुभव हो रहा है । महाकालसंहिता भगवती काली की वाममार्गी साधना-आराधना-उपासना का महत्त्वपूर्ण अथवा यह कहिये कि सर्वोत्तम ग्रन्थ है । अनेक ऋषियों तपस्वियों यहाँ तक कि असुरों के भी द्वारा अनुष्ठित मन्त्र के स्वरूप, उनके सामान्य विशेष उद्धार तथा न्यास एवं उनके उभयविध उद्धार का इतना वैज्ञानिक निरूपण अन्यत्र नहीं मिलता । इसका एक मात्र उद्देश्य है मन्त्रों के स्वरूप-निर्धारण में एक मात्रा का भी स्खलन न हो । लघुषोढा आदि प्राय: अष्टादश न्यासों का बृहत् निर्वचन उनके अनुष्ठाता को सिद्धिप्रदान करने में रञ्चमात्र भी सन्देहास्पद स्थिति में नहीं रखता । गुह्यकाली खण्ड के पूर्व के दो भागों में उक्त समस्त विषयों का निरूपण हो चुका है ।

प्रस्तुत तृतीय भाग गुह्यकाली खण्ड के दशम एवं एकादश पटलों को अपनी परिधि में आत्मसात् किये हुए है । दशम पटल का अवतरण गुह्यकाली की पूजाविधि से होता है । यह पूजा वाममार्गी है । इसमें शङ्खस्थापन की साङ्गोपाङ्ग विधि, पञ्चपात्र-श्रीपात्र की स्थापना-पूजा, कुलकुम्भपूजा, शक्तिपात्र-स्थापनपूजन, यन्त्र-स्थापन-पूजन की चर्चा के मध्य शववस्त्र, अनङ्गगन्ध, स्वयम्भूपुष्प, रतिपुष्प आदि के दान इत्यादि का वामविधिसम्मत सविस्तार निरूपण किया गया है । काली की राजोपचार पूजा के सन्दर्भ में माला के प्रकार, नैवेद्य के भेद का वर्णन करने के बाद छत्र चामर शय्या शिविका वितान आदि के अर्पण की चर्चा की गयी है । दशवक्त्रा गुह्यकाली एवं नृसिंह की पूजा का अवतार-कथा के सहित विवरण प्रस्तुत है । काली यन्त्रस्थ आवरणपूजा, शक्ति प्रकार-पूजा के प्रक्रम में मतमतान्तरों का वर्णन ग्रन्थ की कल्पना में सुवर्ण सौरभ की भूमिका का निर्वहण करता है । अन्त में सहस्रनामस्तोत्र का वर्णन है ।

एकादश पटल का उपक्रम बलिद्रव्य के वर्णन से होता है । आत्माभिषेक, वीरपात्र, गुरुपंक्तिपूजा, शावरोत्सव, भोजननियम, सायंकृत्य, महानिशापूजा, योग तथा उनके प्रकार, सृष्टिप्रक्रिया, शरीरविज्ञान, प्राणायाम आदि अष्टाङ्गवर्णन, हठयोग इत्यादि का वर्णन कर अन्त में मृत्यु-विजय एवं काल का विवरण प्रस्तुत कर पटल का उपसंहार किया गया है ।

इस खण्ड के प्रकाशन में आद्याशक्ति 'माँ' गायत्री एवं प्रात:स्मरणीय श्री६शिवचैतन्य जी वर्णी का कृपापूर्ण आशीर्वाद सतत प्रेरक रहा है अत: मैं उनका आजीवन ऋणी हूँ। अपनी परोक्ष उपस्थिति से सदा सम्बल प्रदान एवं उत्साहवर्द्धन करनेवाले प्रखरप्रज्ञास्वरूप पं. श्रीरामशर्मा आचार्य एवं सजलश्रद्धा की प्रतिमूर्त्ति श्रीमती भगवतीदेवीशर्मा के प्रति श्रद्धावनत होकर कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या का भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने मेरी शास्त्र-साधना एवं मातृ-आराधना-उपासना की प्रक्रिया में सर्वविध सहयोग रूप स्नेहाशीष देते रहने की कृपा की है। विश्वविद्यालय के समस्त अधिकारी एवं कार्यकर्ता-बन्धुओं के सुमधुर व्यवहार के लिये मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अन्त में चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के अधिष्ठाता श्रीनवनीतदासगुप्त तथा उनके परिवार के लिये मङ्गल कामना करता हूँ।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से आस्तिक सुधीजन लाभान्वित एवं आनन्दित होंगे—ऐसा मुझे विश्वास है।

शारदीय नवरात्र
सं. २०६६
हरिद्वार

विद्वद्वशंवद
राधेश्यामचतुर्वेदी

* * *

गुह्यकालीखण्ड— ३

(१०-११ पटल)

संक्षिप्त परिचय

दशम पटल—इस पटल में सर्वप्रथम गुह्यकाली एवं उसके आवरण अङ्गों की पूजा का वर्णन किया गया है । उसके बाद शक्तिपूजा, माला का स्वरूप एवं प्रकार, जप और उसके प्रकार, स्तोत्र एवं कवच का विवरण है ।

नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य भेद से पूजा तीन प्रकार की होती है । इस क्रम में सर्वप्रथम करकच्छपिका, त्रिखण्डा, योनि एवं अञ्जलि मुद्रा दिखाकर उनमें भगवती के प्रत्येक अङ्ग की भावना करने के पश्चात् अपने को देवीरूप में भावना करते हुए देवी की मानसपूजा करनी चाहिये । बाह्यपूजा के क्रम में सबसे पहले शङ्ख-पात्र की स्थापना का विधान है । इसके लिये भूमि पर त्रिकोण बनाकर उस पर देवी की दाँयीं ओर शङ्ख को रखना चाहिये । मन्त्रपाठपूर्वक शङ्ख में जल डालकर उसके पश्चात् उसमें तीर्थों का आवाहन करना चाहिये । शङ्खस्थ जल का अमृतीकरण अवगुण्ठन सकलीकरण करने के बाद प्रोक्षणीपात्रस्थ जल से अपना और पूजा-सामग्री का अभिषेक करना चाहिये । शङ्खरूपी अर्घपात्र के उत्तर पाद्य एवं आचमनीय पात्रों को रखना चाहिये । पञ्चायतन पूजा के क्रम में गणेश विष्णु सूर्य शिव एवं दुर्गा (काली) की स्थापना करने का विधान वर्णित है ॥ १-३९ ॥

यज्ञस्थल में उत्तर दिशा में गुरु परमगुरु और परमेष्ठीगुरु की स्थापना करने के बाद श्रीपात्रस्थापना का वर्णन है । इस क्रम में त्रिपादिका का प्रक्षालन कर चारो दिशाओं में त्रिपादिका की पूजा कर श्रीपात्र को उस पर रखकर उसका बाह्य पूजन करना चाहिये । इसके पश्चात् कुलकुम्भ की पूजा कर उसमें स्थित मद्य से श्रीपात्र को पूरित करना चाहिये । कुलद्रव्य अर्थात् मद्य का पूजन करने के बाद श्रीपात्र स्थित द्रव्य का पूजन करना चाहिये । श्रीपात्र का दिग्बन्धन कर कुलद्रव्य के मध्य आनन्दभैरव का ध्यान करना चाहिये । सुधादेवी का ध्यान कर पञ्चरत्नों का पूजन कर श्रीपात्र का संस्कार कर शक्तिपात्र को देवी के बाँयें स्थापित करना चाहिये ॥ ४०-१२४ ॥

शङ्खपात्र के अतिरिक्त अन्य चार पात्रों की स्थापना करनी चाहिये । वे हैं— गुरुपात्र, भोगपात्र, वीरपात्र और कुलपात्र । इन पात्रों में तत्तद् व्यक्ति का आवाहन करना चाहिये । श्रीपात्रस्थ द्रव्य के प्रयोग के विषय में दो मतों का वर्णन किया गया है । चार शक्तिपात्र आदि के उत्सर्ग का वर्णन करने के बाद पूजा की विधि

बतलायी गयी है । इस क्रम में सबसे पहले प्राणायाम फिर षडङ्गन्यास, मुद्राबन्ध ध्यान के बाद यन्त्र की स्थापना का वर्णन है । इसके लिये यन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा, कुसुमाञ्जलि दान, आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, निरोधन आदि प्रायः तेरह क्रियाओं एवं उनके मन्त्रों का वर्णन है । इसके बाद उपकरणों का अभ्युक्षण तथा आसन पाद्य आदि के प्रदान द्वारा देवी गुह्यकाली की पूजा का वर्णन किया गया है । इस क्रम में शववस्त्र, अनङ्गगन्ध, स्वयम्भूपुष्प, रतिपुष्प आदि के भी द्वारा पूजा का वर्णन है । दीपित, फाणित, पारित, विश्र और मिश्र—पाँच प्रकार के नैवेद्य के पश्चात् छत्र चामर शिविका शय्या वितान आदि राजोपचारों के अर्पण एवं अर्पण के महत्त्व की चर्चा की गयी है । इस सन्दर्भ में उपस्करण के नाम गिनाये गये हैं । वे हैं—कंघी, वाद्ययन्त्र, गन्ध, कज्जल, सिन्दूर आदि के पात्र; देवालय, नगर, भूमि, हाथी, घोड़ा आदि, दास-दासी, स्वर्ण आदि के बृहत्पात्र; अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य शोभादायक वस्तुयें । इस क्रम में आरती की भी चर्चा है । एक पात्र में बहुत-सी दीपबत्तियाँ इस प्रकार रखी जाँय कि उससे वृक्ष, लता, गोल आदि आकार बनें तो उसे आरती कहते हैं ॥ १२५-६०५ ॥

इसके अनन्तर दशमुखी गुह्यकाली के वक्त्रों, अस्त्रों के मतभेद सहित उनकी पूजा को बतलाने के बाद गुह्यकाली के अङ्गप्रत्यङ्ग रूप आवरणों की अर्चना की चर्चा की गयी है । इस उपक्रम में नृसिंह की पूजा के सन्दर्भ में महेश्वर के नृसिंह रूप धारण, उनकी पूजा का मन्त्र, ध्यान, षडङ्गन्यास, बलिद्रव्य, अर्पण मन्त्र का वर्णन करने के बाद देवी के सौम्य उग्र तथा उग्रतर रूपों की चर्चा करने के बाद सृष्टि एवं संहार दोनों क्रमों से पूजन का कथन किया गया है । हृदय विद्या, समय विद्या के विषय में अपना मत प्रदर्शन के पश्चात् आवरण-पूजा के ऋषि आदि की चर्चा कर पीठ के मध्य में समस्त देवताओं की पूजा-सम्बन्धी मन्त्र का निर्देश किया गया है । महाघोर कालदण्ड आदि आठ श्मशानों के पूजामन्त्रों का वर्णन करने के पश्चात् उनका दिग्विभाग बतलाया गया है ॥ ६०६-८५८ ॥

अष्ट द्वारपालों के पूजा मन्त्रों के बाद उनकी तथा आठ त्रिशूलों की सामान्य एवं विशेष पूजा का वर्णन किया गया है । वज्र की पूजा के बाद चार वेताल की अभ्यर्चना का वर्णन कर सिंहासन और सिंहासनधारियों की पूजा बतलायी गयी है । दश दिक्पाल ही सिंहासनधारी हैं । इनकी पूजा के साथ-साथ इनके स्वरूप तथा वाहनों की भी चर्चा है । पञ्च महाप्रेतों के अर्चामन्त्र की चर्चा कर शिवासन के पूजा-मन्त्र का उल्लेख विहित है । इनका आसन चौबीस दलों वाला कमल है । इन दलों में चौबीस कालियों की पूजा की चर्चा की गयी है । इस क्रम में चौबीस कालियों के नाम भी गिनाये गये हैं । इनके पश्चात् षोडशदल कमल पर स्थित देवी की पूजा का विधान वर्णित है । इसके अनन्तर महिम्नी आवरणार्चा को उल्लिखित किया गया है । आगे चलकर कापालिक मत के अनुसार षोडशदल पर देवी की

पूजा का विधान बतलाया गया है । इसके पश्चात् द्वादशदल कमल पर देवीपूजा के विधान को बतलाकर यह कहा गया कि इसके अनेक भेद हैं । सब भेदों में उत्कृष्ट होने के कारण यहाँ त्रिपुरारिउक्त मत का वर्णन कर बाद में कापालिक एवं दिगम्बर मतों की भी चर्चा की गयी है । इसके पश्चात् अष्टपत्राम्बुज पर देवीपूजा के वर्णन-क्रम में श्रेष्ठतम होने के कारण पहले त्रिपुरघ्न का मत तीन भेदों में वर्णित किया गया है । इसी सन्दर्भ में कापालिक एवं दिगम्बर मतों की भी चर्चा की गयी है ॥ ८५९-१०२० ॥

अष्टदल कमलस्थ देवी के पूजन प्रकारों का वर्णन कर उस पर स्थित आठ रेखाओं, जिन्हें पंक्ति कहा जाता है, में अभ्यर्हणीय देवों की चर्चा है । एक-एक पंक्ति में बत्तीस-बत्तीस देवताओं की पूजा का विधान है । इस प्रकार आठ पंक्तियों में तत्तद् देवताओं की अर्चा का उल्लेख है । इन देवताओं में क्रमशः सिद्धा, भैरव, भैरवी, डाकिनी, शक्ति, योगिनी, चामुण्डा और महालक्ष्मी आदि देवियों की पूजा का वर्णन है । इस क्रम में उनके मन्त्र, नाम तथा ध्यान की पृथक्-पृथक् एवं विस्तृत चर्चा की गयी है । यह त्रिपुरघ्न का मत है । इससे भिन्न कापालिक एवं दिगम्बर मतों में नवीं पंक्ति का भी उल्लेख मिलता है; जिसमें गौरी, पद्मा आदि सोलह माताओं का पूजन करना बतलाया गया है ॥ १०२१-११७८ ॥

अष्टार के बाहर स्थित गोलमण्डल में काली की पूजा करनी चाहिए । यहाँ इसके मन्त्र को भी उल्लिखित किया गया है । इसके पश्चात् ओड्रियान आदि चार पीठों का वर्णन कर अष्टार के मध्य में स्थित वासुकि आदि आठ नागों की पूजा-विधि बतलायी गयी है । इस क्रम में उनके रङ्ग, आभूषण आदि का भी वर्णन है। कापालिकों एवं दिगम्बरों के मत में नाग शब्द के हाथी का वाचक होने से ऐरावत आदि आठ हाथियों की पूजा कही गयी है ॥ ११७९-१२०९ ॥

दूसरे आवरण में आठ मुद्राओं के अर्चन का अभिधान है । यहाँ उनके नाम भी बतलाये गये हैं । तदनन्तर तृतीय आवरण में क्षेत्रपालों की पूजा-विधि का उल्लेख है । इस क्रम में उनके नाम एवं विनियोज्य मन्त्रों को भी बतलाया गया है। तत्पश्चात् चतुर्थ आवरण में आठ गणेश्वरों के पूजन की चर्चा की गयी है । कापालिक यामलीय एवं डामरमत के अनुयायी दो अतिरिक्त आवरणों की चर्चा करते हैं । उनके अनुसार पञ्चम एवं षष्ठ आवरणों में क्रमशः सुमेरु आदि आठ पर्वतों एवं गङ्गा आदि आठ नदियों की पूजा करने का विधान है । इसके पश्चात् अष्टार के ऊपर स्थित गोल मण्डल में रहने वाले देवताओं की पूजा-विधि बतलायी गयी है । तदनन्तर नारद गौतम आदि आठ सिद्ध ऋषियों की पूजा करने को कहा गया है । देवता और ऋषि दोनों के अर्चन में विनियोज्य मन्त्रों का उद्धार भी बतलाया गया है ॥ १२०२-१२५० ॥

आगे चलकर देवी ने कापालिक आदि सम्प्रदायों का परिचय पूछा जिसके उत्तर में महाकाल ने कहा कि जो साधक कपालडामरोक्त नियमों का पालन करते हैं वे कापालिक तथा भैरवसंहिता के अनुसार जीवन-यापन करनेवाले दिगम्बर कहे जाते हैं । इसी प्रकार यामल के सिद्धान्तों का पालन करनेवाले मौलेय के नाम से प्रसिद्ध है । इनमें मौलेय और भाण्डिकेर ग्रहणीय हैं । नव कोणों में ब्रह्माणी आदि नव देवियों की प्रथमावृत्ति में तथा नवग्रहों की द्वितीयावृत्ति में पूजा किये जाने का विधान है । तदनन्तर देहस्थ नव चक्रों की पूजा के बाद पञ्चार पूजा का वर्णन किया गया है । यहाँ एक कोण में सत्ताईस पूजा के नियम से पाँच कोणों में एक सौ पैंतीस पूजा होती है । इस सन्दर्भ में उस पूजा के मन्त्रों के सामान्य एवं विशेष उद्धारों को दर्शाया गया है ॥ १२५१-१३६३ ॥

इसके अनन्तर तृतीयार एवं चतुर्थार पूजा का वर्णन है । तृतीयार में शवासिनी आदि कालियों की एवं चतुर्थ में दिव्यौघ गुरुओं की पूजा होती है । अनाख्यापूर्ण होम अर्थात् पूर्णाहुति का वर्णन करने के बाद भासा की पूर्णाहुति का वर्णन है । इसके अनन्तर पञ्चारपूजा के सन्दर्भ में कापालिक दिगम्बर मौलेय एवं भाण्डिकेर मतों के अनुसार पञ्चार पूजा की चर्चा की गयी है । त्र्यार पूजा के सन्दर्भ में गुण, देव, अग्नि आदि आठ वस्तुओं के तीन-तीन होने के कारण चौबीस प्रकार की पूजा में एक-एक अर की पूजा का मन्त्र के साथ वर्णन किया गया है । बिन्दुपूजा वर्णन के क्रम में कापालिक, दिगम्बर, मौलेय एवं भाण्डिकेर सम्प्रदायों के द्वारा अपनायी जानेवाली भिन्न-भिन्न विधियों का वर्णन किया गया है। इन सम्प्रदायों के मन्त्र एवं पद सब भिन्न-भिन्न होते हैं । महाकाल मत का वर्णन करते हुए बिन्दु पदार्थ का विश्लेषण, बिन्दु की पूजा का मन्त्र और अन्त में सर्वसम्मत बिन्दुपूजा का वर्णन किया गया है । इसमें ब्रह्मा से लेकर किन्नर तक प्रायः उन्नीस आराधकों के बिन्दुपूजा-क्रम की चर्चा की गयी है ॥ १३६४-१५६६ ॥

बिन्दुपूजा समाप्तिकारक मन्त्र का वर्णन करने के बाद देवी की आवरण-पूजा का परिचय बतलाते हुए कहा गया है कि बिन्दु से लेकर नृसिंह पूजा तक के बीच जो भी देवता आदि हैं उनकी पूजा देवी के आवरण की पूजा कही जाती है । पात्र-ग्रहण के विषय में मतभेदों को वतलाते हुए देवीपात्र के समर्पण का मन्त्र, शक्तिपात्र-गुरुपात्र-भोगपात्र-वीरपात्र एवं षष्ठपात्र के समर्पण के मन्त्रों की स्वरूप-चर्चा के बाद बलिदान-विधि का वर्णन किया गया है । गणपति, बटुक, क्षेत्रपाल, मातृगण, योगिनी, डाकिनी और स्थान देवता की बलि-वर्णन के क्रम में बलि के प्रोक्षण एवं उत्सर्ग के मन्त्रों का वर्णन कर गणेश आदि प्रत्येक देवता के पृथक्-पृथक् बलि उत्सर्ग मन्त्रों का उद्धार विस्तार के साथ बतलाया गया है । इसके अनन्तर शक्ति पूजा का विवरण प्रारम्भ होता है ॥ १५६७-१६५५ ॥

इस क्रम में यह बतलाया गया कि शैव स्मार्त्त और याज्ञिक लोग शक्तिपूजा नहीं करते । स्त्रियों के विषय में जिनकी अविचल देवीबुद्धि होती है वे ही कौल, कालीभक्त, तान्त्रिक लोग शक्तिपूजा के अधिकारी होते हैं । शक्ति को स्वकीया परकीया भेद से दो प्रकार का बतलाया गया है । स्वकीया की अपेक्षा परकीया अधिक उत्तम मानी जाती है । स्त्री साधिका के विषय में भी यही नियम ग्राह्य होता है । इसके अनन्तर स्मार्तों के लिए प्रशस्य और निन्द्य शक्ति की चर्चा की गयी है । निषिद्ध और उत्तम शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा गया कि अङ्गहीन, अधिकाङ्गी और पति से डरनेवाली इत्यादि शक्ति ग्राह्य नहीं होती । सुन्दर, सुरूप और सर्वाङ्गपूर्ण शक्ति ही ग्राह्य होती है । शक्तिपूजा के प्रसङ्ग में कापालिक आदि तान्त्रिक मत का परिचय देकर शक्तिपूजा का विधान बतलाया गया है । इस क्रम में शक्तिपूजा के ऋषि आदि का वर्णन कर शक्तिन्यास का उल्लेख विहित है । न्यास करने के बाद शक्ति का शोधन करने का विधान है ॥ १६५६-१७३८ ॥

शक्ति के अङ्गों में अञ्जलिमुद्रा के द्वारा मन्त्रोच्चारपूर्वक शक्ति का आवाहन करने के बाद शक्तिपूजा का विधान वर्णित है । इसमें मौलेय लोगों से अपना मतभेद वर्णित करने के बाद शक्ति गायत्री का वर्णन किया गया है—(क्लीं भगवत्यै विद्महे, योनिमालिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्) । जपमाला के प्रकार को बतलाते हुए तत्तद् उद्देश्य के लिये तथा तत्तद् देवता-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न माला का प्रकार बतलाकर स्फटिकमाला को सर्वोत्तम बतलाया गया । माला-शोधन की दो विधियों को बतलाकर उसका संस्कार, जप का प्रकार, जपसमर्पण का मन्त्र एवं सिद्धिस्तोत्र का वर्णन किया गया है । इस स्तोत्र की फलश्रुति के बाद एक सौ छत्तीस श्लोकों में गुह्यकाली सहस्रनाम का उल्लेख हुआ है ॥ १७३९-२०१६ ॥

सहस्रनामस्तोत्र की फलश्रुति का उल्लेख कर उक्त स्तोत्र की प्रयोगविधि का वर्णन करने के साथ यह भी बतलाया गया कि उक्त स्तोत्र को पढ़ने में असमर्थ पाठक 'चण्डयोगेश्वरी......यथेच्छसि तथा कुरु ॥' का पाठ करे । पद्यात्मक स्तोत्र के अनन्तर महाकाल ने देवी को गुह्यकाली का गद्यात्मक स्तोत्र भी सुनाया । यह गद्य-स्तोत्र पूर्वोक्त पद्यात्मक स्तोत्र का प्राण है । स्तोत्र-वर्णन के बाद विश्वमङ्गलकवच का महत्त्व बतलाने के बाद कवच का वर्णन कर यह बतलाया गया कि इस कवच को धारण करनेवाले साधक को किसी प्रकार का भय नहीं रहता । वह निर्भय होकर कहीं भी जा सकता है और अप्रत्याशित लाभ प्राप्त करता है ॥ २०१७-२१२७ ॥

एकादश पटल—इस पटल का विषय निम्नलिखित है—कवच, स्तोत्र के पाठ के बाद स्मृति-ग्रन्थों के अनुसार बलि एवं वैश्वदेव करना चाहिये । इसके बाद विभिन्न आश्रमवासियों के लिये भिन्न-भिन्न द्रव्यों की बलि का वर्णन किया गया है, जिसमें कौलमार्ग के अनुयायी मद्याक्त मांस एवं मधुलिप्त मत्स्य की बलि दें ।

इनके अभाव में गुड़ों की ढेली देने का विधान है । बलिमन्त्र का उद्धार बतलाने के बाद 'वैश्वदेव' शब्द की व्याख्या बतलायी है । आगे चलकर मण्डलों के प्रकार बतलाये गये हैं कि वे चक्राकार एवं गोल होते हैं । बलिदान की विधि के साथ उसके उत्सर्ग का मन्त्रोद्धार पैंतीस श्लोकों के माध्यम से बतलाकर फिर श्लोकबद्ध मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। इसके अनन्तर आत्माभिषेक, वैश्वदेव की आवश्यकता बतलायी गयी है ॥ १-८६ ॥

पात्रतर्पण के निर्वचन क्रम में तान्त्रिक मतभेद, पात्रतर्पण का आधार, इस आधार के विषय में अपना मत बतलाते हुए कहा गया कि त्रिपुरघ्न के द्वारा बताये गये इस आधार में कोई दोष नहीं है । आगे चलकर तार्पणीमुद्रा, तर्पण मन्त्र एवं कुलपात्र के तर्पण की विधि बतलायी गयी है । कुलपात्र से ही गुरुपंक्ति का अर्पण करने को कहा गया है । गुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, परापरगुरु परापरपरम गुरु का तर्पणकर शक्तिपात्र से शक्तियों का तर्पण करना चाहिये । इनके तर्पण का मन्त्रोद्धार भी निर्दिष्ट है । तर्पण के मन्त्रों की संख्या पन्द्रह बतलायी गयी है । मूलपात्र के तर्पण की समन्त्रक विधि बतलाकर अन्य मतों के उल्लेख के बाद अपने मत की चर्चा कर पात्र-संस्कार की समन्त्रक विधि बतलायी गयी है । कापालिक के द्वारा प्रयोज्य अन्य मन्त्र का निर्देश कर नैवेद्य के विषय में चर्चा की गयी है । इसके बाद अड़तीस श्लोकों में शान्तिपाठ बतलाया गया है ॥ ८७-२२२ ॥

शाबर उत्सव के विषय में कहा गया कि यह जगदम्बा के आनन्द को बढ़ाता है । इसी समय भाण्डिकेरों के द्वारा अनुष्ठीयमान कुम्भ सम्भार की भी चर्चा की गयी है । भोजनकालिक कर्त्तव्य के सन्दर्भ में कहा गया कि पूर्वाभिमुख होकर भोजन करनेवाला आयुष्ट्व को प्राप्त करता है । दक्षिण पश्चिम उत्तर दिशाओं की ओर मुंह कर भोजन करने वाला क्रमशः यश, लक्ष्मी एवं सिद्धि-मुक्ति लाभ करता है। भोजन के पूर्वकरणीय कृत्यों का वर्णन कर मन्त्र-उच्चारणपूर्वक भोजन करने का विधान है। इन उच्चारणीय मन्त्रों की संख्या बारह है । इनका उद्धार भी बतलाया गया है। भोजन के विषय में नियम है कि आधा पेट करना चाहिये । एक चौथाई जल तथा एक चौथाई वायु के लिये पेट में स्थान रिक्त रखना चाहिये । तत्पश्चात् भोजनोत्तर कृत्य का वर्णन किया गया है ॥ २२३-३४९ ॥

सायङ्कालीन कृत्य के सन्दर्भ में कहा गया कि साधक मध्याह्न काल के समान सायं सन्ध्या का वन्दन करे । इस क्रम में दो प्रार्थना श्लोकों का पाठ करने के बाद षोडशोपचार पूजन करना चाहिये । पीठपूजा में मन्त्रों का उद्धार बताते हुए योगिनी डाकिनी आदि की पूजा को पीठ के नीचे करने की चर्चा की गयी है । फिर पीठ के गणों की चौबीस, षोडश, अष्टदलों पर अर्चना करने का विधान है । साथ ही कराली आदि साठ देवियों की पूजा को भी करना चाहिये । इसी प्रकार षोडश,

द्वादश, अष्टदलों में महारात्रि, कालरात्रि आदि छत्तीस देवियों की पूजा करने को कहा गया है । इसी क्रम में वृत्त, नवकोण, पञ्चार, त्रिकोण में भी क्रमशः राज-राजेश्वरी आदि, सृष्टिकाली आदि, कपिवक्त्र आदि की अधिष्ठात्री का पूजनकर बिन्दु में चिदात्मिका कैवल्यात्मिका का पूजन करना चाहिये ॥ ३५०-४१४ ॥

कुछ तान्त्रिक लोग महानिशा पूजा भी करते हैं । उन पूज्य देव-देवियों के नामों का उल्लेख कर यह कहा गया कि उनकी पूजा कर बलि देने के बाद कपूर की आरती और सुगन्धित मद्य का अर्पण करना चाहिये । मूलमन्त्र का जप, प्रार्थना, गीत, वाद्य आदि करने के बाद शयन करना चाहिये । शयनावस्था में दिखायी देने वाले दुःस्वप्न के प्रभाव को दूर करने के लिये अठारह श्लोकों के पाठ की भी चर्चा हैं ॥ ४१५-४४६ ॥

देवी ने महाकाल से योगियों के द्वारा अर्धरात्रि में की जानेवाली योगविधि के विषय में प्रश्न किया । उत्तर में महाकाल ने कहा कि इसे मैंने गौतम ऋषि को बतलाया था । जो कैवल्य चाहनेवाले ब्रह्मर्षि तपोनिष्ठ ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं, वे भी योगसाधना करते हैं । महाकाल ने इस प्रसङ्ग में कहा कि सूक्ष्म अथवा लिङ्गशरीर की सृष्टि अविद्या के द्वारा रचित होती है । चार प्रकार के स्थूल शरीर की चर्चा करते हुए कहा गया कि मनुष्य देह ही योगोपयोगी होता है । इसके पश्चात् इस पटल में गर्भ-प्रक्रिया का वर्णन पैंतालिस श्लोकों में किया गया है । आगे चलकर शरीरविज्ञान के प्रक्रम में उसकी रचना, अङ्गावयव, गुण, प्राण आदि पञ्चवायु, नाग आदि वायु, सात सन्धिकाय, सात्त्विक राजस तामस देह, मूत्र आदि के सात आशय, जाग्रत् आदि अवस्थायें, मूलाधार आदि षट्चक्र, उनमें वर्त्तमान दलों के फल, ब्रह्मग्रन्थि, चौबीस हजार नाड़ियाँ, सुषुम्ना आदि मुख्य नाडियाँ, उनके स्थान-कार्य का विस्तृत विवेचन कर कहा गया कि ऐसे मलमूत्रसमन्वित देह में योगी योग-साधना करते हैं । कोलाहलपूर्ण संसार में योग-साधना कठिन है । इसलिये योगी आधी रात को साधना करते हैं ॥ ४४७-६९३ ॥

देवी के द्वारा यह पूछे जाने पर कि इस नश्वर शरीर से योगी अमृतत्व-साधना कैसे करते हैं? महाकाल ने कहा कि अमृतत्व-प्राप्ति के लिये हठयोग नहीं करना चाहिये । इससे मृत्यु हो जाया करती हैं । रोग भी सम्भावित होते हैं । इसलिये क्रामिक योग करना चाहिये । इस सन्दर्भ में गुरु के उपदेश के अनुसार अभ्यास, औषध का प्रयोग, मितभोजन और योगकार्योपयोगी क्रियायें क्रम कहलाती हैं । इसी क्रम में यह बतलाया गया कि देवयान के दो प्रकार हैं—प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग । निवृत्तिमार्ग भी दो प्रकार का होता है—१. बाह्य और २. आभ्यन्तर । इनमें से किसी भी एक के करने से इष्टसिद्धि होती है । आगे चलकर दश यम, दश नियम, दश आसन, तीन प्राणायाम, पाँच ध्यान, छः धारणाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसी बीच में दूसरी बार नाड़ी एवं उसकी शुद्धि की चर्चा की गयी

है । शरीरस्थ बहत्तर हजार नाडियों के मूल कन्द के आकार की चर्चा कर कुण्डलिनी शक्ति का उल्लेख किया गया है । पञ्च वायुओं में प्राणवायु मुख्य है और वह कन्द के नीचे, मुख और नासिका के मध्य, हृदय, नाभिमण्डल एवं पैर के अङ्गूठे में भी स्वयं रहता है । इसी प्रकार अपान आदि के भी स्थान बतलाये गये हैं ॥ ६९४-८०१ ॥

अपान आदि अन्य वायुओं के स्थानों एवं कर्म का वर्णन कर नाड़ी के शोधन की विधि बतलायी गयी है । नाड़ी-शुद्धि के लक्षण, शरीरलघुता आदि को बतला कर प्राणायाम, उसके भेद, प्रणव का अर्थ बतलाने के बाद प्राणायाम को बार-बार करने को कहा गया है । इसके साथ ही उसकी प्रक्रिया, उत्तम अधम आदि भेद का वर्णन करते हुए कहा गया कि पूरक रेचक रहित केवल कुम्भक के सिद्ध हो जाने पर शरीर में वीणादण्ड के समान उठते हुए नाद का अनुभव होता है । यही वायुजय का लक्षण है । यह प्राण जब नाभि के नीचे स्थित अग्नि के साथ संयुक्त होता है तो कुण्डली के पास जाकर उसमें उष्णता उत्पन्न करता है । फलत: वहाँ सर्पस्वरूपा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है और वह धीरे-धीरे उठकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाती है । अग्निसहित प्राण जब सारे शरीर को व्याप्त कर लेता है तब शरीर अत्यन्त हलका हो जाता है । जीव ब्रह्म हो जाता है । इस प्रकार चार योगाङ्गों—प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा की चर्चा की गयी है ॥ ८०२-८८५ ॥

आभ्यन्तर प्रत्याहार को बतलाते हुए कहा गया कि इन्द्रियों के विषयों के साथ स्वाभाविक विचरण को बलात् आहृत करने को आभ्यन्तर प्रत्याहार कहा जाता है । इसके अतिरिक्त पादाङ्गुष्ठ आदि अठारह स्थानों से वायु को खींचकर हृदय या उदर में ले आना और वहीं रोकना भी उच्च स्तर का प्रत्याहार है । इसके पश्चात् पञ्चधारणाओं के वर्णनक्रम में कहा गया कि हृदय एवं उदर में बाह्य आकाश का धारण धारणा है । शरीर में पैर से लेकर घुठनों तक पृथिवी स्थान, जानु से पायु तक जल का, पायु से हृदय तक अग्नि का, हृदय से भ्रू तक वायु का और भ्रूमध्य से मूर्द्धा तक आकाश का स्थान है । इन स्थानों में पृथिवी आदि के बीजों—लं वं रं यं हं की धारणा करनी चाहिये । इसी क्रम से पृथिवी में ब्रह्मा, जल में विष्णु, तेज में रुद्र, वायु में महत्तत्त्व और आकाश में अव्यक्त परमेश्वर की धारणा करनी चाहिये। पृथिवी आदि तत्तत् स्थानों में पाँचघटी धारणा से पृथिवी पर विजय, सर्वरोगमुक्ति, अग्नि का न होना, खेचरत्व तथा जीवन्मुक्ति मिलती है ॥ ८८६-९१६ ॥

ध्यान को बन्धमोक्ष का कारण बतलाया गया है । यह दो प्रकार का होता है—सगुण और निर्गुण । निर्गुण ध्यान के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया कि स्वयं का निर्गुण, निराकार, गन्ध-रस आदि से रहित, सर्वदृक्, सर्वमय ब्रह्म का समझना निर्गुण ध्यान है । इसी प्रकार गुह्यकाली का भी ज्योतिर्मयी, नित्य

सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निरञ्जना, सूर्यकोटिसमशुभ्रा ध्यान निर्गुण ध्यान है । काली का सगुण ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—कन्दमूल से उठे अष्टदल कमल पर दशवक्त्रा गुह्यकाली का ध्यान करने का विधान है । वह काली भयङ्कर, लपलपाती जीभवाली, भूत-प्रेत आदि से घिरी हुई, शवाकार शिव पर आरूढ़, खुले बालों वाली, उत्तुङ्गपीन वरवक्षोज वाली, परिवार के सहित, दिगम्बर इत्यादि हैं । साधक सूर्यमण्डल में स्वर्णमयी देहवाली काली का ध्यान कर कैवल्य प्राप्त करता है । इसके पश्चात् हठयोग का वर्णन किया गया है ॥ ९१७-९६५ ॥

हठयोग के उपक्रम में कहा गया कि इड़ा-पिङ्गला दोनों नाड़ियाँ कण्ठ का भेदन कर जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती हैं तो वहाँ से गिरने वाली अमृत की धारा सारे शरीर को आप्लावित कर देती है । इससे साधक अजर-अमर हो जाता है । जिह्वा को उल्टीकर उस अमृत का पान करना चाहिये । इसके लिये जिह्वा का दोहन कर उसे लम्बी बनाया जाता है । इससे शरीर के दोष हट जाते हैं और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । जिह्वा लम्बी होकर जब अन्दर-अन्दर आज्ञाचक्र का स्पर्श करती हैं, तब उच्चस्तरीय सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं । उसके ऊपर जब ललाटस्थ मनश्चक्र में जिह्वा का स्पर्श होता है तब शरीर वज्रवत् हो जाता है । उससे आगे बढ़ने पर जब जिह्वाग्र का प्रवेश सोम नामक षोडशदल कमल में होता है तब साधक देवता हो जाता है । उसकी छाया नहीं होती । निमेष नहीं होता । अणिमा आदि से समृद्ध होकर वह देवताओं के साथ रहता है । इस प्रकार सात वर्षों के सतत् अभ्यास से वह सहस्रदल सम्भेदी हो जाता है । ऐसा होने पर वह परार्धजीवी होता है । पाञ्चभौतिक शरीर से ही वह रुद्र हो जाता है । रुद्रत्व प्राप्त होने के बाद वह अद्भुत शक्ति-सम्पन्न हो जाता है । मृत्यु-अमरत्व-कैवल्य-पुनर्जन्म सब कुछ उसकी इच्छानुसार होता है । वह कल्पान्तजीवी होता है ॥ ९६६-१०२० ॥

इसके अनन्तर यह बतलाया गया कि सृष्टि के आदि में शून्य ही था । उससे चतुर्वर्णात्मक बीज उत्पन्न हुआ । वही ओम् ब्रह्म हुआ । उसी को प्रणव कहते हैं। यह वाचक है । रुद्र इसका वाच्य है । इसी का विस्तृतरूप नाद है । मरीचि, अत्रि आदि ऋषिगण, मुनिलोग इसी नाद के ऊपर महादेव रुद्र का साक्षात्कार करते हैं। साधक को चाहिये कि वह ॐकाररूपी रुद्र का ध्यान करता हुआ प्रणव का जप करे । ऐसा साधक कल्पान्त के बाद भी जीवित रहता है । इस रुद्र के ध्यान के सन्दर्भ में बतलाया गया कि हृदयकमल, जो कि अष्टदलों एवं द्वादशाङ्गुल नाल वाला है, के ऊपर शुद्ध स्फटिक के समान रुद्र का ध्यान करना चाहिये । उनके ऊपर षोडशदल कमल से अमृतधारा गिर रही है । उससे वे आप्लावित हो रहे हैं। गुह्यकाली एवं शिव के सामरस्य के प्राप्त होने पर साधक के लिये कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता ॥ १०२१-१०६५ ॥

देवी ने काल के विषय में प्रश्न किया। उत्तर देते हुए महाकाल ने कहा—सूर्य जितने समय में एक परमाणु पर पहुँचता है वह समय कर्परी कहलाता है। दश कर्परी का एक विप्रु होता है। सौ विप्रु की एक तुटि होती है। सौ तुटि का एक तत्पर, तीस तत्पर का एक निमेष, तीस निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला का एक क्षण होता है। छः क्षणों की एक नाड़ी, दो नाडी का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात होता है। इसी प्रकार क्रमशः वर्ष का मान बतलाकर कहा गया कि मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन-रात होता है। इस प्रकार के बारह वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। देवताओं के इस चार हजार वर्षों का सत्ययुग होता है। इसी क्रम में चार सौ वर्षों की एक सन्ध्या होती है। इस प्रकार दोनों सन्धिकाल मिलकर आठ सौ दिव्य वर्षों के होते हैं। सत्रह लाख अट्ठाईस हजार दिव्य वर्ष सत्ययुग का भोगकाल होता है। इसका तीन चौथाई त्रेता, सत्ययुग का आधा द्वापर एवं सत्ययुग का एक चौथाई कलियुग का भोगकाल होता हैं॥ १०६६-१०९० ॥

इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। तीस करोड़ सँड़सठ लाख बीस हजार दिव्यवर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस बीच चौदह मनु शासन करते हैं। ब्रह्मा अपने दिव्यवर्षों से एक सौ वर्ष जीवित होकर मर जाते हैं। पाँच ब्रह्मा के जन्म-मृत्यु का काल रुद्र का एक दिन होता है। उतनी ही बड़ी रुद्र की रात्रि भी होती है। रुद्र के एक दिन-रात में दश ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। रुद्र के एक सौ बीस दिन का शिव का एक मास होता है। अँड़तालिस मासों का शिव का एक वर्ष होता है। इस परिमाण से शिव का स्थिति काल बारह हजार वर्ष होता है। इसके अनन्तर वह अपनी शक्ति में लीन हो जाते हैं॥ १०९१-१११२ ॥

आगे चलकर काली के द्वारा धारण की गयी एक हजार अस्सी मुण्डों की माला का रहस्य बतलाया गया है। इसमें एक सौ अस्सी मुण्ड विष्णु के, तीन सौ साठ ब्रह्मा के, एक सौ बीस इन्द्र के, एक सौ तीस-एक सौ तीस काल और मृत्यु के, यम के बीस, अग्नि के दश, वायु के सत्तर, काम के बीस, निर्ऋति के आठ, चन्द्र-सूर्य के पाँच-पाँच, वासुकि और अनन्त के दो-दो, हयग्रीव के तीन, कूर्म, वामन, वराह, मत्स्य और नृसिंह के तीन-तीन मुण्ड हैं। इस प्रकार शिव के कालमान को बतलाकर कहा गया कि ज्ञानी भी इतने ही काल तक जीवित रहता है। भगवान् शिव ने योग और भोग नामक दो मार्गों का वर्णन किया। योग का अभ्यास करने वाला मनुष्य शरीरधारी रुद्र हो जाता है॥ १११३-११३४ ॥

* * *

विषयानुक्रमणिका

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

दशमः पटलः

गुह्यकालीपूजाविधेरवतरणिका ७१७
नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन पूजाया मूलतस्त्रैविध्याभिधानम् ७१८
पूजाक्रमविवरणम् ७१८
शङ्खस्थापनविधिः ७१९
शङ्खस्थजलेन तीर्थावाहनविधिः ७२०
शङ्खस्थजलस्यामृतीकरणमवगुण्ठनं च ७२०
धेनुमुद्रा ७२१
शङ्खस्थजलस्य सकलीकरणविधिः ७२१
पूजोपकरणस्यात्मनश्चाभिषेकः पञ्चपात्रस्थापनं च ७२२
गणपत्यादिदेवचतुष्टयपूजानिर्देशः ७२२
देवीपूजारम्भनिर्देशः ७२३
पूजायां गुरूणां स्थाननिर्देशः ७२३
श्रीपात्रस्थापनविधिः ७२३
यतिनः कृते श्रीपात्रस्थापननिषेधः ७२३
श्रीपात्रस्थापनविधौ मन्त्रनिर्देशः ७२४
श्रीपात्रसन्धूपनमनुः ७२६
श्रीपात्रपूजनमन्त्रः ७२६
श्रीपात्रस्य बहिरर्चाविधिः ७२७
कुलकुम्भपूजानिर्देशः ७२७
कुलकुम्भपूजनमन्त्रोद्धारः ७२७
कुलकुम्भस्थद्रव्येण श्रीपात्रपूरणस्य समन्त्रो विधिः ७२८
प्रसन्नायाः शापविमोचनमन्त्रः ७२८
कुलद्रव्यपूजनमन्त्रः ७३०
श्रीपात्रस्थितद्रव्यपूजाविधिः ७३१
पात्रदिग्बन्धनविधिः ७३१
आनन्दभैरवध्यानम् ७३२
सुधादेव्याः ध्यानम् ७३३
पञ्चरत्नपूजानिर्देशः ७३३
श्रीपात्रसंस्कारविधिः ७३३
अन्यपात्रचतुष्टयस्थापननिर्देशः ७३४
पात्रोपयोगनिर्णयार्थतत्तत्पात्रेषु तत्तद्व्यक्तेरावाहनम् ७३५
कुलसंव्यत्ययविधिः ७३५
श्रीपात्रस्थद्रव्योपयोगे तान्त्रिकमतभेदनिर्देशः ७३५
प्रथमप्रकारनिर्देशः ७३६
प्रासरिक(प्राशन)विषये कापालिकमतनिर्देशः ७३६
शक्तिविषये निर्णयाभिधानम् ७३७
अत्र स्वकीयासहमतिप्रकाशनम् ७३७
अपरप्रकारनिर्देशः ७३७
शक्तिपात्रादिचतुष्टयोत्सर्गमन्त्रः ७३८
पूजारीतिप्राणायामध्यानविधिः निर्देशः ७४१
यन्त्रप्रतिष्ठाविधिः ७४१
यन्त्रस्य प्राणप्रतिष्ठापनमन्त्रः ७४२
प्रात्यहिकयन्त्रप्राणप्रतिष्ठाविधिः ७४२

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कुसुमाञ्जलिदानविधिः	७४३
आवाहनी-स्थापनी-सन्निधापनी-सन्निरोधिनी मुद्राणां वर्णनम्	७४४
आवाहनादेः मन्त्रनिर्देशः	७४४
देव्याः स्थापनमन्त्रः	७४५
देव्याः सन्निधापनमन्त्रः	७४५
देव्याः सन्निरोधनमन्त्रः	७४५
विशेषमन्त्राभावे मन्त्रस्यास्य उपयोगिताया निर्देशः	७४६
उपकरणाभ्युक्षणविधिः	७४६
आसनदानविधिः	७४६
पाद्यदानविधिः	७४७
अर्घदानविधिः	७४७
आचमनीयदानविधिः	७४८
कस्यचिन्मते आचमनीयं शीतलजलमात्रम् न तु सुवासितं तदिति निर्देशः	७४८
मधुपर्कदानविधिः	७४८
पुनराचमनीयदानविधिः	७४९
स्नानीयजलदानविधिः	७४९
वस्त्रदानविधिः	७४९
वस्त्रार्पणमहत्त्वख्यापनम्	७४९
वस्त्रार्पणमन्त्रः	७५०
मृतचेलतन्तुदानविधानम्	७५०
मृतचेलतन्तोः महत्त्वख्यापनम्	७५०
मृतचेलतन्तुदानमन्त्रः	७५१
अलङ्कारदानविधिः	७५१
गन्धदानविधिः	७५२
अनङ्गगन्धस्य महत्त्वख्यापनम्	७५२
अनङ्गगन्धपरिचयः	७५३
अनङ्गगन्धदानमन्त्रः	७५४
स्वयम्भूपुष्पपरिचयः	७५४
स्वयम्भूपुष्पदानमन्त्रः	७५५
रतिपुष्पपरिचयः	७५५
रतिपुष्पोत्सर्गमन्त्रः	७५५
रतिपुष्पदानस्य फलश्रुतिः	७५६
पुष्पदानविधिः	७५६
पुष्पोत्सर्गमन्त्रः	७५७
मालादानविधौ अवसरविषयक-मतभेदनिर्देशः	७५७
एकपुष्परचितमालादानमन्त्रः	७५८
नानापुष्पनिर्मितमालादानमन्त्रः	७५८
स्रगर्पणस्य समयविषये मतभेद-निर्देशपूर्वकं स्वमताभिधानम्	७५८
सिन्दूरदानविधिः	७५९
सिन्दूरोत्सर्गमन्त्रः	७५९
अञ्जनदानविधिः	७५९
अञ्जनदानमन्त्रः	७६०
वस्त्वर्पणस्थानम्	७६०
समन्त्र अलक्तकदानविधिः	७६१
धूपदानविधिः	७६२
धूपदानमन्त्रः	७६२
धूपदीपयोर्दानावसरे घण्टावादन-स्यानिवार्यतानिर्देशः	७६३
धूपदीपदानप्रक्रिया	७६३
धूपदीपदानमाहात्म्यम्	७६३
दीपदानमन्त्रः	७६३
नैवेद्यस्य पञ्चप्रकारताभिधानम्	७६४
नैवेद्यविशेषाणामर्पणे मन्त्रविशेषस्य निर्देशः	७६५
दीपितनैवेद्यार्पणमन्त्रः	७६५
फाणितनैवेद्यार्पणमन्त्रः	७६६
पारितनैवेद्यार्पणमन्त्रः	७६६
विश्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः	७६७

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
मिश्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः	७६८
शीतलजलदानं तन्माहात्म्यम्	७६९
शीतलजलदानमन्त्रः	७७०
पुनराचमनीयदानविधिः	७७१
ताम्बूलदानमाहात्म्यम्	७७१
ताम्बूलार्पणमन्त्रः	७७१
अर्पणीयवस्त्वभावे कर्तव्यतानिर्देशः	७७३
राजोपचाराभिधानम्	७७३
पादुकादानविधिः	७७३
पादुकार्पणमन्त्रः	७७४
छत्रप्रकाराभिधानम्	७७५
छत्रदानमाहात्म्यम्	७७५
छत्रदानमन्त्रः	७७६
छत्रोत्सर्गावसरप्रतिपादनम्	७७७
चामरदानविधिः	७७७
चामरपरिचयः	७७७
चामरार्पणमन्त्रः	७७८
चामरदानफलकीर्तनम्	७७९
व्यजनार्पणविधिः	७७९
व्यजनप्रकाराभिधानम्	७७९
व्यजनार्पणमन्त्रः	७७९
दर्पणार्पणविधिः	७८०
दर्पणप्रकाराभिधानम्	७८०
दर्पणार्पणमन्त्रः	७८१
शिविकार्पणविधिः	७८२
शिविकाप्रकाराभिधानम्	७८२
शिविकादानमाहात्म्यम्	७८३
शिविकादानमन्त्रः	७८३
शय्यादानविधिः	७८४
शय्यापरिचयः	७८५
शय्यादानफलकीर्तनम्	७८६
शय्यादानमन्त्रः	७८६
वितानदानविधिः	७८७
वितानपरिचयः	७८७
वितानदानमन्त्रः	७८८
दानादिकार्ये स्वकीयसिद्धान्तप्रतिपादनम्	७८९
उपस्करणवस्तूनां नामानि	७८९
उपस्करणार्पणमन्त्रः	७९१
आरार्त्रिकविधिः	७९५
आरार्त्रिकपरिचयः	७९५
आरार्त्रिकार्पणमन्त्रः	७९५
आरार्त्रिकदानफलम्	७९६
दशमुख्याः गुह्यकाल्याः पूजोपक्रमः	७९७
वक्त्रपूजामन्त्रः	७९७
दशमुख्या गुह्यकाल्या वक्त्रपूजायां मन्त्रविशेषाभिधानम्	७९७
समन्त्रास्त्रपूजाविधिः	७९९
अस्त्रपूजायां कापालिकमौलेययोर्मतभेदकथनम्	८०३
अस्त्रपूजाविवादे स्वमताभिधानम्	८०३
वक्त्रबाह्वस्त्रबाहुल्यपूजायां सिद्धान्तकथनम्	८०४
देव्याः समन्त्र अङ्गप्रत्यङ्गपूजाविधिः	८०४
आवरणपूजोपक्रमः	८०६
अञ्जलित्रयदानविधिः	८०६
आवरणपूजायै देव्या अनुज्ञाप्रार्थनम्	८०७
प्राणायामाचरणनिर्देशः	८०७
मुख्यावरणपूजोपक्रमः	८०७
महेश्वरस्य नृसिंहाकारतयोग्रतमरूपता	८०७
नृसिंहार्चामन्त्रः	८०८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
नृसिंहार्चामन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः	८०९
नरसिंहध्यानम्	८०९
नृसिंहार्चामन्त्रस्य षडङ्गन्यासः	८११
नृसिंहगुह्यकाल्योः सामरस्यध्यानम्	८११
बलिद्रव्यप्रोक्षणविधिः	८१२
नृसिंहगुह्यकाल्योः एकस्यैव बलेरर्पणे कारणाभिधानम्	८१२
बल्यर्पणमन्त्रः	८१३
आवरणपूजां सनिर्णयं मतभेद प्रदर्शनम्	८१५
देव्याः सौम्यरूपाणामभिधानम्	८१५
देव्या उग्ररूपाणामभिधानम्	८१६
देव्या उग्रतररूपाणामभिधानम्	८१६
आवरणार्चारीतिवर्णनम्	८१६
सृष्टिक्रमगावरणपूजाविवरणम्	८१७
संहारक्रमगावरणपूजाविवरणम्	८१७
गुह्यकाल्याः संहारक्रमगार्चायां युक्तेरभिधानम्	८१७
आवरणपूजागतान्तरिकसमस्यायाः समाधानम्	८१८
आवरणपूजाविधिनिर्वचनम्	८१९
मन्त्रात्मिकायाः हृदयाख्यविद्यायाः स्वरूपम्	८२०
हृदयाख्यमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः	८२०
हृदयाख्यविद्यायाः जपनिर्देशः	८२०
मन्त्रात्मिकायाः समयाख्यविद्यायाः स्वरूपम्	८२१
समयाख्यविद्याया ऋष्यादिनिर्देशः	८२१
कापालिकादिसम्प्रदायान्तराणामिह हृदयाख्यसमयाख्य-विद्ययोरसहमतिः	८२१
स्वमतपोषणार्थं परमतनिरासे युक्तिः	८२२
आवरणपूजाया ऋष्यादिनिर्देशः	८२२
पीठमध्ये सकलदेवानामर्चायै मन्त्रनिर्देशः	८२३
अष्टश्मशानपूजामन्त्रः	८२६
अष्टश्मशाननामानि	८२६
श्मशानानां दिग्विभागः	८२७
द्वारपालपूजामन्त्रविधिः	८२८
द्वारपालानां विशेषपूजाविधिः	८२९
त्रिशूलसामान्यपूजा	८३०
विशेषेण त्रिशूलपूजा	८३०
अष्टौ त्रिशूलनामानि	८३१
वज्रस्य सामान्यपूजामन्त्रः	८३१
वज्रस्य विशेषपूजामन्त्रः	८३२
वेतालचतुष्टयपूजाविधिः	८३३
सिंहासनसामान्यपूजा	८३३
विशेषेण सिंहासनपूजनम्	८३३
सिंहासनधारिणः विशेषपूजाविधिः	८३४
प्रकारान्तरेण दिक्पालानां पूजा	८३६
प्रकारान्तरेण दिक्पालसामान्य-पूजाविधिः	८३८
सिंहासनधराणां विशेषपूजाविधिः	८३९
शिवासनार्चामन्त्रः	८४०
शिवासने चतुर्विंशदलाम्बुज-कल्पनाकथा	८४१
चतुर्विंशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः	८४२
षोडशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः	८४३
विशिष्टा माहिम्नी आवरणार्चा	८४३
कापालिकमतेन षोडशदलाम्बुजस्थ-देवीपूजाप्रकारकथनम्	८४६
द्वादशपत्राम्बुजे देवीपूजाविधिः	८४७

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
अभ्यर्हितत्वेन त्रिपुरघ्नमतस्याभिधानम् ८४८
अत्र कापालिकमताभिधानम् ८४९
अत्र दिगम्बरमताभिधानम् ८५१
अष्टपत्राम्बुजे देवीपूजाविधिः ८५२
अत्राभ्यर्हितत्वात् त्रिपुरघ्नमताभिधानम् ८५३
अष्टपत्राम्बुजे प्रकारान्तरेण देवीपूजाविधिः ८५४
पुनः प्रकारान्तरेण तद्विधेरभिधानम् ८५४
अत्र कापालिकमतम् ८५५
अथ दिगम्बरमतम् ८५६
पद्मोपरितनेऽवस्थितानां देवादीनां पूजायाः सप्रकारमभिधानम् ८५८
प्रथमपंक्तिस्थदेवतार्चाविधिः ८५९
द्वितीयपंक्तिस्थभैरवपूजाविधिः ८६१
भैरवपूजामन्त्रः ८६१
भैरवध्यानम् ८६२
पूज्यभैरवानामानि ८६३
तृतीयपंक्तिपूज्यानां भैरवीणां पूजाविधिः ८६५
भैरवीपूजामन्त्रः ८६५
पूज्यभैरवीनामानि ८६५
चतुर्थपंक्तिस्थडाकिनीपूजाविधिः ८६७
डाकिनीनां ध्यानम् ८६९
पञ्चम्यां पंक्तौ पूज्यानां शक्तीनां पूजाविधिः ८७०
शक्तिपूजामन्त्रः ८७०
शक्तिनामानि ८७१
शक्तिध्यानम् ८७२
षष्ठ्यां पंक्तौ योगिनीपूजायाः विधिः ८७३
योगिनीनामानि ८७३

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
सप्तम्यां पंक्तौ चामुण्डापूजायाः विधिः ८७५
चामुण्डानामानि ८७५
अष्टम्यां पंक्तौ देवीनां पूजाया विधिः ८७७
पूज्यदेवीनामानि ८७९
कापालिकदिगम्बरयोर्मते नवमीमिह पंक्तिं कृत्वा मातृणां पूजाया निर्देशः ८८०
मातृणां नामानि ८८०
अष्टारबहिर्भागस्थवर्तुले कालीपूजाविधिः ८८१
वर्तुलस्थकालीपूजामन्त्रः ८८१
पीठचतुष्टयाभिधानम् ८८१
अष्टारमध्यगतनागपूजाविधिः ८८२
कापालिकदिगम्बराभ्यां नागपदेन दिग्गजमादाय तेषां पूजा क्रियते ८८३
मुद्राणां पूजाविधिः ८८५
मुद्राष्टकनामानि ८८५
क्षेत्रपालानां पूजाविधिः ८८६
पूज्यक्षेत्रपालनामानि ८८६
गणाधिपतीनां पूजायाः विधिः ८८६
अष्टारोपरितनस्थितवर्तुलस्थदेवानां पूजाविधिः ८८९
लब्धसिद्धीनामृषीणां पूजाविधिः ८९१
कापालिकादिसम्प्रदायपरिचयः ८९२
स्वसंहितोक्तोपासनपद्धतिवैशिष्ट्याभिधानम् ८९४
मौलेयादिसम्प्रदायनिन्दा ८९४
सम्प्रदायान्तरेषु निर्दिष्टस्य पूजाधिक्यस्य कथनम् ८९५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
नवारपूजायाः सामान्यविधिः	८९६
नवारपूजाया विशेषेणाभिधानम्	८९७
तत्र नवग्रहपूजाविधिः	८९७
अत्र नवचक्रपूजाविधिः	८९८
सम्प्रदायान्तरविहितकर्तव्याधिक्याभिधानम्	८९९
पञ्चारपूजाविधिः	९००
द्वितीयारपूजाविधानम्	९०६
तृतीयार(पूजा)विधानम्	९१०
चतुर्थारपूजाविधानम्	९१३
दिव्यौघनामानि	९१४
अनाख्यापूर्णहोममन्त्रः	९१५
भासापूर्णाहुतिमन्त्रः	९१८
प्रकारान्तरेण प्रत्येकपञ्चारपूजाविधिः	९१९
अत्र कापालिकमतम्	९२०
अत्र दिगम्बरमतम्	९२१
अत्र मौलेयमतम्	९२१
अत्र भाण्डिकेरमतम्	९२२
त्र्यारपूजाविधिः	९२२
प्रत्येकत्र्यारपूजामन्त्रः	९२५
त्र्यारघटितप्रथमारपूजनमन्त्रः	९२६
त्र्यारघटकद्वितीयारपूजनमन्त्रः	९२६
त्र्यारघटकतृतीयारपूजामन्त्रः	९२७
बिन्दुपूजोपक्रमः	९२८
कापालिकरीत्या बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्	९२८
दिगम्बरपथा बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्	९३१
मौलेयमार्गतः बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्	९३४
भाण्डिकेरसम्प्रदायानुसारं बिन्दुपूजाप्रकारकथनम्	९३६
बिन्दुपूजायां स्वकीयरीतिकथनम्	९३८
बिन्दुपदार्थनिर्वचनम्	९३८
बिन्दुपूजामन्त्रः	९३९
सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्	९४०
सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकारान्तराभिधानम्	९४१
बिन्दुपूजासमाप्तिकारिमन्त्राभिधानम्	९४२
आवरणपूजापदार्थपरिचयः	९४३
पात्रग्रहणविषये मतभेदप्रदर्शनं स्वनिर्णयश्च	९४३
देवीपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४४
शक्तिपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४४
गुरुपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४५
भोगपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४५
वीरपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४६
षष्ठपात्रसमर्पणमन्त्रः	९४६
बलिदानविधिः	९४७
अष्टाभ्यो देवताभ्यो बलिदानविधिः	९४७
बल्यभ्युक्षणमन्त्रः	९४८
बल्युत्सर्गमन्त्रः	९४८
गणाधिपबल्युत्सर्गमन्त्रः	९४९
वटुकबल्युत्सर्गमन्त्रः	९५०
क्षेत्रपालबल्युत्सर्गमन्त्रः	९५१
मातृगणबल्युत्सर्गमन्त्रः	९५१
योगिनीबल्युत्सर्गविधिः	९५२
डाकिनीबल्युत्सर्गमन्त्रः	९५३
स्थानाधिपबल्युत्सर्गमन्त्रः	९५३
शक्तिपूजोपक्रमः	९५४
शक्तिपूजानधिकारिणः	९५४
शक्तिपूजाधिकारिणः	९५४
शक्तिपूजामाहात्म्यम्	९५५

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
शक्तिपरिचयः ९५५
स्वकीयायाः शक्तेरप्राशस्त्यम् ९५५
परकीयाशक्तिभेदः ९५५
साधिकायाः कृते पुरुषस्यात्र नियतापेक्षा ९५६
परस्त्रीसङ्गमादेरौचित्यप्रतिपादनम् ९५६
परस्त्रीसङ्गमादितान्त्रिकविधेर निन्द्यत्वसाधनम् ९५७
स्मार्त्तस्य कृते निन्द्याशक्तिविचारः ९५७
स्मार्तस्य कृते प्रशस्तशक्तिविचारः ९५८
शक्तिकोटावनागताङ्गनाविचारः ९५९
उत्तमशक्तिविचारः ९५९
शक्तिपूजाप्रसङ्गे कापालिकादितान्त्रिकमतम् ९६०
शक्तिपूजाविधानम् ९६१
शक्तिपूजायाः ऋष्यादिनिर्देशः ९६१
शक्तिन्यासस्य समन्त्रो विधिः ९६२
शक्तिशोधनमन्त्रः ९६४
शक्त्यङ्गे देव्या आवाहनम् ९६५
सर्वोपचारेण शक्तिपूजाभिधानम् ९६६
शक्तिपूजाविधौ मौलेयेन स्वस्य मतभेदप्रदर्शनम् ९६६
शक्तिगायत्रीकथनम् ९६८
जपसाधनत्रैविध्याभिधानम् ९६८
जपमालाप्रभेदकथनम् ९६८
कार्यविशेषे मालाविशेषोपयोगकथनम् ९६९
देवताभेदे मालाभेदकथनम् ९६९
मालाविशेषाणां फलश्रुतिः ९६९
जपसंख्याफलवर्णनम् ९७०
अङ्गुलीभिर्जपे नियमः ९७१
संख्याहीनजपस्याफलत्वप्रतिपादनम् ९७१

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**
मालाया ग्रथनभेदेन श्रेष्ठत्वकथनम् ९७१
मालानिर्माणविधिः ९७१
मालासंस्कारविधिः ९७२
तान्त्रिकवैदिकभेदेन मालाशोधनस्य विधिद्वयम् ९७२
मालासंस्कारविधिः ९७३
जपप्रकारः ९७४
मालाया अप्रदर्शनविधिः ९७५
जपप्रकाराकथनम् ९७५
जपसमर्पणमन्त्रः स्तोत्रञ्च ९७६
सिद्धितत्त्वस्तोत्रस्य फलश्रुतिः ९८२
गुह्यकाल्याः सहस्रनामस्तोत्रम् ९८३
सहस्रनाम्नः स्तोत्रस्य फलश्रुतिः ९९४
एतत्स्तोत्रस्य प्रयोगविधिवर्णनम् ९९६
सहस्रनाम्नः पाठाशक्तौ वक्ष्यमाणपाठस्य निदेशः ९९८
गद्यसञ्जीवनस्तोत्रम् ९९९
विश्वमङ्गलकवचम् १००४
कवचप्रयोगस्य फलम् १००८

एकादशतमः पटलः

बलिद्रव्यनिर्णयः १०११
बलेराहुतिमन्त्रः १०१२
बलिपात्रनिर्णयः १०१३
बलिवैश्वदेवघटकवैश्वदेवपदार्थनिर्वचनम् १०१३
मण्डलप्रकारपरिचयः १०१३
बल्युत्सर्गविधिः १०१४
बल्युत्सर्गमन्त्रः १०१५
सर्वमध्यगतबल्युत्सर्गमन्त्रः १०१९
आत्माभिषेकविधिः १०१९
आत्माभिषेकमन्त्रः १०२०
बलिवैश्वदेवविधेर्नित्यकृत्यता १०२०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
बलिवैश्वदेवस्यावश्यकता	१०२१
बलिवैश्वदेवस्य निदर्शनम्	१०२१
पात्रतर्पणक्रमविषये तान्त्रिकमतभेदनिरूपणम्	१०२१
पात्रतर्पणविषये स्वमतस्थापनम्	१०२२
पात्रतर्पणाधारनिर्णयः	१०२२
तर्पणीयाधारविषये स्वमतस्थापनम्	१०२४
तर्पणप्रकार एव तार्पणीमुद्रापरिचयः	१०२५
तर्पणस्य समन्त्रो विधिः	१०२५
वीरपात्रस्य मुद्राष्टकपरिंचयः	१०२६
वीरपात्रतर्पणमन्त्रः	१०२६
कुलपात्रतर्पणविधिः	१०२६
गुरुपंक्तिपूजाक्रमः	१०२७
शक्तिपूजाक्रमः	१०२८
कापालिकादितान्त्रिकमतेन प्रकारान्तरेण मूलपात्रतर्पणस्य समन्त्रो विधिः	१०२९
अत्रैव मतान्तरस्य प्रदर्शनम्	१०३०
अत्र स्वमतस्थापनम्	१०३१
पात्रसंस्कारस्य समन्त्रो विधिः	१०३१
अत्र कापालिकस्य मन्त्रान्तरनिवेशः	१०३३
देयपात्राधिकारिनिर्णयः	१०३४
नैवेद्योपयोगविषये निर्णयकथनम्	१०३५
अर्घ्यपात्रस्थ जलाभिषेकविधिस्तन्माहात्म्यं च	१०३५
शान्तिपाठः	१०३५
शाबरोत्सवपरिचयः	१०४०
कुम्भसम्भारक्रियाचर्चा	१०४०
भोजनकालिककर्त्तव्यनिर्देशः	१०४०
भोजनोत्सर्गस्य द्वादश मन्त्राभिधानम्	१०४४
सायन्तनकृत्यनिर्देशः	१०५६
सान्निध्यकरणाय श्लोकयुगपाठविधिः	१०५६
सायमपि षोडशोपचारविधानम्	१०५८
देव्या मन्त्रोद्धारः	१०६१
निशार्चायां तान्त्रिकान्तरकृत्यनिर्देशः	१०६६
दुःस्वप्ननाशाय मन्त्रपाठः	१०६९
योगविधिप्रक्रमः	१०७१
योगमाहात्म्यकथनम्	१०७२
योगप्रकाराणामभ्यासविधेश्च निर्देशः	१०७४
सृष्टिप्रक्रियाभिधानम्	१०७५
गर्भप्रक्रियावर्णनम्	१०७६
शरीरविज्ञानवर्णनम्	१०८२
देहस्थचक्रवर्णनम्	१०९१
योगाङ्गवर्णनम्	११०१
नाडीशुद्धिवर्णनम्	११०७
नाडीशुद्धिप्रक्रियावर्णनम्	११११
प्राणायामवर्णनम्	१११३
प्रत्याहारविधिवर्णनम्	११२०
पञ्चधारणावर्णनम्	११२२
ध्यानवर्णनम्	११२४
ध्यानस्य फलश्रुतिः	११२८
हठयोगप्रकारवर्णनम्	११२९
स्वेच्छाजन्मानन्तरङ्करणीययोगीकृत्यवर्णनम्	११३५
कालविवरणम्	११४०

॥ श्रीः ॥

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

दशमः पटलः

[गुह्यकालीपूजाविधेरवतरणिका]

देव्युवाच—

लघुषोढा महाषोढा महानिर्वाणषोढिका ।
पञ्चविंशतिसंख्याकाश्चान्ये न्यासा महोदयाः ॥ १ ॥
योगरत्नादयश्चान्ये श्रुतास्त्वत्तो मया प्रभो ।
अधुना पूजनविधिं शुश्रूषे सिद्धिदायिनम् ॥ २ ॥
तथावरणपूजां च बलिमन्त्रानपि प्रिये (य) ।
किन्तु न्यासवदर्चासु नित्यत्वं काम्यता तथा ॥ ३ ॥
नैमित्तिकत्वमथवा वर्तते प्राणवल्लभ ।
गृहस्थकौलयतिनामेकैवार्चाऽथवेतरा ॥ ४ ॥
यावदुक्तोऽथवा कार्यः स्वल्पः पूजाविधिक्रमः ।
सर्वं विशिष्य वद मे मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥ ५ ॥

गुह्यकाली पूजाविधि—देवी ने कहा—हे प्रभो! मैंने आपसे लघु षोढान्यास, महाषोढान्यास, महानिर्वाणषोढान्यास, अन्य महान् उदय वाले पचीस न्यास और अन्य योगरत्न आदि को सुना। हे प्रिय! अब सिद्धिप्रद पूजाविधि, आवरणपूजा तथा बलिमन्त्रों को सुनना चाहती हूँ। हे प्राणवल्लभ! क्या न्यास के समान इन पूजाओं में भी नित्यकरणीयता, काम्यता अथवा नैमित्तिकता है? गृहस्थों, कौलों और यतियों के लिये एक ही पूजाविधि है अथवा पृथक्-पृथक्? जितनी पूजाविधि कही गयी उतनी करनी पड़ती है अथवा कोई स्वल्प पूजाविधि क्रम भी है? यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है तो यह सब विशेष रूप से मुझको बतलाइये ॥ १-५ ॥

[नित्यनैमित्तिककाम्यभेदेन पूजाया मूलतस्त्रैविध्याभिधानम्]

महाकाल उवाच—

साधु धन्यासि देवि त्वं यस्मात् पूजाविधिक्रमम् ।
श्रोतुमिच्छसि गुह्यायाः बल्यङ्गावरणैर्युतम् ॥ ६ ॥
गृहिकौलमुमुक्षूणामेकैवार्चा वरानने ।
न भिन्ना यावती शक्या कर्तव्या तावती सदा ॥ ७ ॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वं पूजायां किन्तु वर्तते ।
सम्भाराधिकता चापि तथा बल्यतिरेकता ॥ ८ ॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेद से तीन प्रकार की पूजा का वर्णन— महाकाल ने कहा—हे देवि! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम गुह्यकाली की पूजाविधि को बलि अङ्ग और आवरण के साथ सुनना चाहती हो । हे वरानने! गृहस्थों, कौलों एवं संन्यासियों के लिये एक ही पूजा-पद्धति है, अनेक नहीं । (जहाँ तक पूजा करने का प्रश्न है तो) जितनी सम्भव हो सदा उतनी पूजा करनी चाहिये । किन्तु पूजा नैमित्तिक भी होती है और काम्य भी । पूजा सामग्री अधिक भी हो सकती हैं । बलि भी अधिक दी जा सकती है ॥ ६-८ ॥

[पूजाक्रमविवरणम्]

अतः परं त्वं कलय कालिकापचितिक्रमम् ।
एवं न्यस्ततनुर्मन्त्री ध्यानं पूर्वोदितं चरेत् ॥ ९ ॥
करकच्छपिकां बद्ध्वा त्रिखण्डां योनिमेव वा ।
अञ्जलिं चाथ तेष्वेव संस्थाप्य कुसुमाक्षते ॥ १० ॥
पूर्वोक्तवद् भगवतीं प्रत्यङ्गं परिचिन्तयेत् ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः सर्वरूपिभिः ॥ ११ ॥
पूजयेत् किन्तु चात्मानं देवीरूपं विभाव्य हि ।

पूजाक्रम का विवरण—इसके बाद तुम कालिका के पूजाक्रम को सुनो । पूर्वोक्त प्रकार का न्यास शरीर पर करने के पश्चात् मन्त्रसाधक को पूर्वोक्त ध्यान करना चाहिये । करकच्छपिका अथवा त्रिखण्डा[१] अथवा योनिमुद्रा[२] बाँधकर अञ्जलि में पुष्प

---

[१] परिवर्त्य करौ स्पृष्ट्वाङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ ।
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती ॥
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि ।
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराह्वानकर्मणि ॥

[२] मिथः कनिष्ठिके वद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद् योनिमुद्रेयमीरिता ॥

और अक्षत लेकर पूर्वोक्त की भाँति भगवती के प्रत्येक अङ्ग का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान कर सव प्रकार के मानसिक उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । साथ ही अपनी भी देवीरूप में भावना करनी चाहिये ॥ ९-११- ॥

[शङ्खस्थापनविधिः]

ततो बाह्यार्चनकृते शङ्खस्थापनमाचरेत् ॥ १२ ॥
त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा भूमौ मध्येन्दुसंयुतम् ।
अर्घपात्रासनाधाराय नमस्कारसंयुतः ॥ १३ ॥
मण्डलं पूजयित्वेत्थं पूजयीत त्रिपादिकाम् ।
तारो ङेऽन्तं चार्घपात्रासनं हृन्मनुरेव च ॥ १४ ॥
शङ्खं प्रक्षाल्य सलिलैर्ङेऽन्तादस्त्रपदादनु ।
अस्त्रबीजेन सम्पूज्य देव्या दक्षे स्ववामतः ॥ १५ ॥
त्रिकोणमण्डलस्योर्द्ध्वं शङ्खं संस्थाप्य साधकः ।
ताराद् रावाद् गुह्यकाली ङेऽन्ता हृन्मन्त्रसंयुता ॥ १६ ॥
गन्धपुष्पाक्षते शङ्खे प्रक्षिपेन् मनुनाऽमुना ।
क्षकारादीनकारान्तान् वर्णान् सर्वान् विलोमतः ॥ १७ ॥
बिन्दुयुक्तान् पठन् शङ्खं पूरयेद् विमलोदकैः ।
पालीबीजाद् वदेत् ङेऽन्तं वह्निमण्डलमेव च ॥ १८ ॥
धूम्रादिदशशब्दानु कलात्मा पूर्ववन्मतः ।
हृन्मन्त्रसंयुतस्तेन आधारं परिपूजयेत् ॥ १९ ॥
नादाच्च पूर्ववत् सूर्यमण्डलं समुदीरयेत् ।
तपिन्यादिद्वादशकलात्मने हृन्मन्त्र एव च ॥ २० ॥
अनेन पूजयेच्छङ्खं स्थाणुतः सोममण्डलम् ।
विभक्त्या तुर्यया चैनं वेष्टयेत् सुरवन्दिते ॥ २१ ॥
अमृतादिषोडशकलात्मने हृन्मन्त्र एव च ।

शङ्खस्थापना की विधि—इसके पश्चात् बाह्यपूजा के लिये शङ्ख की स्थापना करनी चाहिये । इसके लिये धरती पर त्रिकोण मण्डल बनाना चाहिये । मध्य में बिन्दु या ँ बनाना चाहिये । इसके पश्चात् 'अर्घपात्रासनाधाराय नमः' कहकर मण्डल की पूजा करने के बाद त्रिपादिका की पूजा करनी चाहिये । इसके मन्त्र का उद्धार है—तार ङेऽन्त अर्घपात्रासन हृदय (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप हुआ—ॐ अर्घपात्रासनाय नमः) । शङ्ख को जल से धोकर ङेऽन्त 'अस्त्र' पद के बाद अस्त्र बीज (अर्थात् अस्त्राय फट्) से उसकी पूजाकर साधक देवी के दाँयें और अपने बायें त्रिकोण मण्डल के ऊपर शङ्ख को रख दे । तार राव ङेऽन्त 'गुह्यकाली' हृदय (अर्थात् ॐ फ्रें गुह्यकाल्यै नमः) से शङ्ख में गन्ध पुष्प अक्षत डाल दे । ततः क्षकार से लेकर अकार समस्त वर्णों को बिन्दुयुक्त कर उल्टे क्रम से पढ़ते हुए शङ्ख को

स्वच्छ जल से पूरित करना चाहिये । पाली बीज (यं?) के बाद ङेऽन्त 'वह्निमण्डल' फिर 'धूम्रार्चिः' आदि दश कलात्म[1] को पूर्ववत् अर्थात् ङेऽन्त पुनः हृन्मन्त्र (अर्थात् यं धूम्राकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः) के समान अग्नि की अन्य नवकलाओं के साथ 'आत्मने' जोड़कर 'वह्निमण्डलाय नमः' कहते हुए आधार की पूजा करनी चाहिये । इसी प्रकार नाद (= अं) का पूर्व उच्चारण कर तपिनी आदि के द्वादश कलाओं[2] के साथ 'आत्मने' तथा हृन्मन्त्र को जोड़कर सूर्यमण्डल के साथ शङ्ख की पूजा करनी चाहिये । स्थाणु (हं?) के पश्चात् 'अमृता' आदि सोलह कलाओं[3] के पश्चात् 'आत्मने' तथा हृदय जोड़कर सोममण्डल के साथ शङ्ख की पूजा करनी चाहिये । (उदाहरण के लिये अं तपिनीकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः .... से तथा हं अमृताकलात्मने नमः .... से शङ्ख की पूजा करनी चाहिये) हे सुरवन्दिते! इसको चतुर्थी विभक्ति से वेष्टित करना चाहिये ॥ १२-२१-॥

[शङ्खस्थजलेन तीर्थावाहनविधिः]

जलमेतेन सम्पूज्य तीर्थमावाहयेत् ततः ॥ २२ ॥
मुद्रयाङ्कुशनाम्न्या वै सा भुग्ना तर्जनी मता ।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥ २३ ॥
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।
मन्त्रेणानेनार्कबिम्बान् मुद्रया पूर्वमुक्तया ॥ २४ ॥
तीर्थान्यावाह्य शङ्खस्थजलेषु विनिवेशयेत् ।

शङ्खस्थ जल से तीर्थ का आवाहन—इस जल से पूजा कर तीर्थ का आवाहन करना चाहिये । यह आवाहन अङ्कुश नामक मुद्रा के द्वारा होता है । यह मुद्रा तर्जनी को मोड़कर बनायी जाती है । फिर 'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।' इस मन्त्र से तथा पूर्वोक्त मुद्रा के द्वारा तीर्थों का आवाहन कर शङ्खस्थ जल में उनका प्रवेश कराना चाहिये ॥ २२-२४- ॥

[शङ्खस्थजलस्यामृतीकरणमवगुण्ठनं च]

वौषडुच्चार्य दृष्ट्वाप आच्छाद्य मत्स्यमुद्रया ॥ २५ ॥

---

१. अग्नि की दश कलायें—१-धूम्रार्चिः, २-नीलरक्ता, ३-कपिला, ४-विस्फुलिङ्गिनी, ५-ज्वालिनी, ६-अर्चिष्मती, ७-हव्यवाहिनी, ८-कव्यवाहिनी, ९-ह्रीकला, १०-संहारिणी ।

२. सूर्य की द्वादश कलायें—१-तपिनी, २-तापिनी, ३-भ्रामरी, ४-क्लेदिनी, ५-शोधिनी, ६-बोधिनी, ७-वारुणी, ८-आकर्षिणी, ९-सुषुम्णा, १०-वृष्टिवाहा, ११-ज्येष्ठा, १२-हिरण्यका ।

३. चन्द्रमा की सोलह कलायें—१-अमृता, २-मानसी, ३-तुष्टि, ४-पुष्टि, ५-प्रीति, ६-रेवती, ७-ह्रीं, ८-श्रीं, ९-काली, १०-सुधा, ११-ज्योत्स्ना, १२-हैमवती, १३-छाया, १४-पूर्णा, १५-वामा, १६-अमृता ।

दीर्घाङ्गुष्ठचपेटाख्य करउत्तान एव चेत् ।
तद्वद् वामेनोद्ध्र्वगेन चलाङ्गुष्ठेन जायते ॥ २६ ॥
ततोऽमृतीकृत्य धेनुमुद्रया शङ्खगं जलम् ।
बीजेन संभ्रमाख्येन पुनस्तदवगुण्ठयेत् ॥ २७ ॥

शङ्खस्थ जल का अमृतीकरण एवं अवगुण्ठन—वौषट् का उच्चारण कर जल को देखने के बाद मत्स्य मुद्रा के द्वारा उसका आच्छादन करना चाहिये । चाँटे की तरह हाथ को उत्तान फैलाकर अँगूठे को लम्बा कर उसी प्रकार चालित अँगूठे वाले ऊर्ध्वगामी बाँयें हाथ से (मत्स्य मुद्रा बनती है । मत्स्य मुद्रा से ढँकने के बाद) धेनुमुद्रा से अमृतीकरण कर शङ्खस्थ जल का सम्भ्रम नामक बीज मन्त्र से अवगुण्ठन करना चाहिये ॥ २५-२७ ॥

[धेनुमुद्रा]

वामया तु प्रदेशिन्या वामया च कनिष्ठया ।
दक्षमध्यानामिके द्वे पीडिते ते तथैतया ॥ २८ ॥
धेनुमुद्रा भवेदेषा धेनोः स्तनचतुष्कवत् ।
मूलानुच्चारयन् येन ता अपो ह्यभिमन्त्रयेत् ॥ २९ ॥
तारत्रपाच्छोटिकाभिर्दिग्बन्धनमथाचरेत् ।
आवाहयेत् तत्र जले तत्तन्मुद्राभिरीश्वरीम् ॥ ३० ॥

धेनुमुद्रा—बाँयीं प्रदेशिनी (= तर्जनी) तथा बाँयीं कनिष्ठा के द्वारा दाँयीं मध्यमा और अनामिका को दबाने से तथा उसी प्रकार इस (दाँयीं तर्जनी एवं दाँयीं कनिष्ठा से बाँयीं मध्यमा और अनामिका को दबाने) से धेनुमुद्रा बनती है । यह धेनु के चार स्तनों की भाँति होती है । तत्पश्चात् मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए उससे उस शङ्खस्थ जल का अभिमन्त्रण करना चाहिये । उसके बाद तार लज्जा (= ओं ह्रीं) का उच्चारण एवं चुटकी बजाते हुए दिग्बन्धन करना चाहिये । फिर तत्तत् मुद्राओं के द्वारा ईश्वरी (= गुह्यकाली) का आवाहन करना चाहिये ॥ २८-३० ॥

[शङ्खस्थजलस्य सकलीकरणविधि:]

मूलमन्त्रं षडङ्गेन षडङ्गं तज्जले चरेत् ।
इत्यङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य तत्सलिलं प्रिये ॥ ३१ ॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैर्देवीधिया चरेत् ।
एतेषामुपचाराणां दाने मूलमनुर्मतः ॥ ३२ ॥
मूलमन्त्रं तदुपरि दशकृत्वः समुच्चरेत् ।
तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिदेव विनिःक्षिपेत् ॥ ३३ ॥

शङ्खस्थ जल का सकलीकरण—षडङ्ग के साथ मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए जल में उस षडङ्ग न्यास को करना चाहिये । हे प्रिये! इस प्रकार उस जल का

अङ्गमन्त्रों के द्वारा सकलीकरण कर जल को देवी का स्वरूप मानते हुए उसकी गन्ध पुष्प अक्षत धूप और दीप से पूजा करनी चाहिये । इन उपचारों के अर्पण में मूलमन्त्र का प्रयोग विहित है । उस (= उपचार-दान) के बाद मूलमन्त्र का दश बार उच्चारण करना चाहिये । फिर उस जल का कुछ अंश प्रोक्षणीपात्र में डाल देना चाहिये ॥ ३१-३३ ॥

[पूजोपकरणस्यात्मनश्चाभिषेकः पञ्चपात्रस्थापनं च]

तेनाभिषिञ्चेदात्मानं पूजोपकरणं तथा ।
अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ३४ ॥
सामान्यार्घं च स्नानीयं मधुपर्कार्थमेव च ।
भिन्नभिन्नानि कार्याणि पञ्च पात्राणि पार्वति ॥ ३५ ॥
तानि गन्धाक्षतजलकुसुमैः परिपूरयेत् ।
पाद्ये पाद्योक्तवस्तूनि अर्घे अर्घोदितानि च ॥ ३६ ॥
स्नानीयाचमनादौ च द्रव्याण्युक्तानि वै पुरा ।
तैरन्वितानि कार्याणि पात्राणि सकलानि हि ॥ ३७ ॥
अभाव एकमेव स्याच्चतुर्णां पात्रमीश्वरि ।

पूजोपकरण तथा अपना अभिषेक एवं पञ्चपात्र-स्थापन—उस (= शङ्खस्थ जल) से अपना तथा पूजा के उपकरणों का अभिषेक करना चाहिये । अर्घ के उत्तर में पाद्य और आचमनीय (जल) की स्थापना करनी चाहिये । हे पार्वति! सामान्य अर्घ स्नानीय एवं मधुपर्क के लिये भिन्न-भिन्न पाँच पात्रों की स्थापना करनी चाहिये । उन पात्रों को गन्ध अक्षत जल और पुष्प से पूरित करना चाहिये । पाद्य वाले पात्र में पाद्य के लिये उक्त वस्तु, अर्घ्य के लिये अर्घोक्त, स्नान और आचमन वाले पात्रों में पूर्वोक्त तत्तत् द्रव्यों को डालकर सारे पात्रों को सिद्ध करना चाहिये । यदि चार (पात्रों का) अभाव हो तो हे ईश्वरि! एक ही पात्र बनाना चाहिये ॥ ३४-३७- ॥

[गणपत्यादिदेवचतुष्टयपूजानिर्देशः]

पञ्चायतनवानस्मिन्नेवावसर उत्सुकः ॥ ३८ ॥
गणेशविष्णुसूर्येशान् पूजयेदौपचारिकैः ।
आग्नेये स्थापयेच्छम्भुमीशाने गणनायकम् ॥ ३९ ॥
नैर्ऋत्ये भास्करं देवं वायुकोणे तथाऽच्युतम् ।

गगपति आदि चार देवों की पूजा—पञ्चायतनवाला उत्सुक यजमान इसी अवसर पर गणेश विष्णु सूर्य ईशान की तत्तत् उपचारों से पूजा करे । अग्निकोण में शिव, ईशान में गणेश, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य कोण में विष्णु की स्थापना करे ॥ ३८-३९- ॥

[देवीपूजारम्भनिर्देश:]

पञ्चोपचारैः सम्पूज्य मूलपूजामथाचरेत् ॥ ४० ॥
अपञ्चायतनीं त्वेकां देवीमेव प्रपूजयेत् ।
पूर्वं यदुदितो योगरत्नपीठाह्वयो मया ॥ ४१ ॥
न्यासः स्वतनुकर्तव्यताको यन्त्रे तमाचरेत् ।
महामण्डूकमारभ्य परमाख्यसदाशिवम् ॥ ४२ ॥
शेषे बीजान्वितैस्तत्तन्मन्त्रैर्यन्त्रे यजेच्छिवाम् ।
सामान्यपीठन्यासोक्तमन्त्रैरपि यजेत् प्रिये ॥ ४३ ॥
यन्त्रस्य दक्षिणे भागे गणेशं परिपूजयेत् ।

देवी पूजा का आरम्भ—पञ्चोपचारों से (उपर्युक्त देवताओं की) पूजा कर फिर मूल पूजा करनी चाहिये । विना पञ्चायतन के केवल देवी की ही पूजा करनी चाहिये । पहले मैंने जिस योगरत्न पीठ नामक न्यास का वर्णन किया है और जिसे अपने शरीर में किया जाता है उसे यन्त्र में करना चाहिये । महामण्डूक से लेकर परम सदाशिव तक की पूजा के बाद अन्त में बीजयुक्त तत्तत् मन्त्रों के द्वारा यन्त्र के ऊपर शिवा की पूजा करनी चाहिये । हे प्रिये! सामान्यपीठ न्यास में उक्त मन्त्रों के द्वारा भी (शिवा का) पूजन करना चाहिये । यन्त्र में दक्षिण भाग में गणेश की पूजा करनी चाहिये ॥ ४०-४३- ॥

[पूजायां गुरूणां स्थाननिर्देश:]

गुरूनुदीच्यां परमगुरूनपि ततः परम् ॥ ४४ ॥
परमेष्ठिगुरुं चापि परापरगुरूनपि ।
स्वगात्रवत् पीठगात्रं परिकल्प्य प्रपूजयेत् ॥ ४५ ॥

पूजा में गुरुओं का स्थान—उत्तर दिशा में गुरु, उसके बाद परमगुरु, उसके अनन्तर परमेष्ठी गुरु और अन्त में परापरगुरु की, अपने शरीर की भाँति पीठरूपी शरीर की कल्पना कर, पूजा करनी चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

[श्रीपात्रस्थापनविधि:]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे श्रीपात्रस्थापनं चरेत् ।
कौलः प्रसन्नया कुर्यात् क्षीरमध्वादिभिर्द्विजः ॥ ४६ ॥

श्रीपात्रस्थापना—इसी अवसर पर श्रीपात्र की स्थापना करनी चाहिये । कौलमार्गी प्रसन्ना अर्थात् सुरा से तथा ब्राह्मण दूध, मधु आदि के द्वारा स्थापना करे ॥ ४६ ॥

[यतिन: कृते श्रीपात्रस्थापननिषेध:]

यतिस्तु नोभयं कुर्यान् नेच्छंस्ताभ्यामपि द्विजः ।
अतः कौलिककार्यार्थं विशिष्य तदहं ब्रुवे ॥ ४७ ॥

संन्यासी के लिये श्रीपात्र का निषेध—संन्यासी को दोनों प्रकार के श्रीपात्रों की स्थापना नहीं करनी चाहिये । ब्राह्मण यदि (संन्यासी) होना चाहता है तो वह भी उन दोनों (पात्र) की स्थापना न करे । इसलिये कौलिक के कार्य के लिये मैं उसको विशेष रूप से बतला रहा हूँ ॥ ४७ ॥

[श्रीपात्रस्थापनविधौ मन्त्रनिर्देशः]

तारह्रीयोगिनीरावकूर्चा अस्त्राय फट् ततः ।
पठित्वा मण्डलं कुर्याद् वर्तुलं वारिणा प्रिये ॥ ४८ ॥
वनिताशाकिनीरोषा अस्त्राय फडतः परम् ।
मन्त्रमेनं समुच्चार्य क्षालयित्वा त्रिपादिकाम् ॥ ४९ ॥
स्थापयेन् मण्डलस्योर्द्ध्वं शनैर्न स्याद् यथा स्वनः ।
ततस्त्रिपादिकां वक्ष्यमाणेन मनुनाऽर्चयेत् ॥ ५० ॥
तारह्रीरावडाकिन्यः फेत्कारीयोगिनीस्त्रियः ।
रमाकामौ गुह्यकालीदेव्यर्घपदतः स्मरेत् ॥ ५१ ॥
पात्राधारं साधयामि रोषास्त्रे हृदयं शिरः ।
मैधामृतह्रीशाकिन्यः पद्मकूटस्ततः परम् ॥ ५२ ॥
ततो धूम्रादिदशकलात्मने परिकीर्तयेत् ।
वह्निमण्डलतो ङेऽन्तो हृन्मनुः सर्वशेषगः ॥ ५३ ॥
इति मध्ये पूजयित्वा प्रादक्षिण्यक्रमेण हि ।
कलाभिर्दशभिर्देवि पूजयेच्च त्रिपादिकाम् ॥ ५४ ॥

श्रीपात्रस्थापन के लिये मन्त्र—हे प्रिये! तार ह्रीं योगिनी राव कूर्च के बाद 'अस्त्राय फट्' (अर्थात् ॐ ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं अस्त्राय फट्) कहकर जल से गोलाकार मण्डल बनाना चाहिये । इसके बाद वनिता शाकिनी क्रोध अस्त्राय फट् (अर्थात् स्त्रीं फ्रें हुं अस्त्राय फट्) मन्त्र का उच्चारण कर त्रिपादिका का प्रक्षालन करने के बाद उसको धीरे से, ताकि शब्द न हो, मण्डल के ऊपर रखना चाहिये । इसके पश्चात् त्रिपादिका की वक्ष्यमाण मन्त्र से पूजा करनी चाहिये । वह मन्त्र है—तार ह्रीं राव डाकिनी फेत्कारी योगिनी स्त्री रमा काम 'गुह्यकाली देव्यर्घ' पद के बाद 'पात्राधारं साधयामि' कहकर रोष अस्त्र हृदय और शिर ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ ह्रीं स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें छ्रीं स्त्रीं श्रीं क्लीं गुह्यकालीदेव्यर्घपात्राधारं साधयामि हुं फट् नमः स्वाहा) ।

मेधा अमृत ह्रीं शाकिनी बीज उसके बाद पद्मकूट उसके पश्चात् 'धूम्रादिदशकलात्मने' कहना चाहिये । 'वह्निमण्डल' के अन्त में ङेविभक्ति और अन्त में हृदय यह सबके अन्त का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ग्लूं ह्लीं फ्रें म्लव्य्रवऊं धूम्रादिदशकलात्मने वह्निमण्डलाय नम:) ।

हे देवि! इस प्रकार मध्य में पूजा कर प्रदक्षिणा क्रम से दशकलाओं के द्वारा त्रिपादिका की पूजा करनी चाहिये ॥ ४८-५४ ॥

वेदादिमाये धूम्रार्चि:कलायै नम इत्यपि ।
तारलक्ष्म्यौ नीलरक्तकलायै नम ईरयेत् ॥ ५५ ॥
तारकामौ च कपिलाकलायै नम उल्लिखेत् ।
तारात् कूर्चाद् विस्फुलिङ्गिनीकलायै नमस्तत: ॥ ५६ ॥
तारयोगिन्यनु ज्वालिनीकलायै नमोऽपि च ।
अर्चिष्मतीकलायै हृत् ताराद् वध्वा अनुस्मरेत् ॥ ५७ ॥
ताराद् रावाद् हव्यवाहिनीकलायै नमस्तत: ।
ओं डाकिनी कव्यवाहिनीकलायै नमो वदेत् ॥ ५८ ॥
तारात् प्रलयतारौ ह्लीकलायै नम इत्यपि ।
तारफेत्कारिसंहारिणीकलायै नमस्तथा ॥ ५९ ॥
एभिर्मन्त्रै: पूजयीत चतुर्दिक्षु त्रिपादिकाम् ।
पात्रं प्रक्षाल्य च ततो वक्ष्यमाणमनुं गृणन् ॥ ६० ॥
घनसारेणागुरुणा कौशिकेनापि धूपयेत् ।
सन्धूप्य कथ्यमानेन मन्त्रेण त्र्यंघ्रिकोपरि ॥ ६१ ॥
श्रीपात्रं नि:स्वरं दद्यादतो मन्त्रद्वयं शृणु ।

वेदादि माया 'धूम्रार्चि:कलायै नम:'; तार लक्ष्मी 'नीलरक्तकलायै नम:'; तार काम 'कपिलाकलायै नम:'; तार कूर्च 'विस्फुलिङ्गिनीकलायै नम:'; तार योगिनी के बाद 'ज्वालिनीकलायै नम:'; तार वधू के बाद 'अर्चिष्मतीकलायै नम:'; तार राव 'हव्यवाहिनीकलायै नम:'; ओं डाकिनी कव्यवाहिनीकलायै नम:'; तार प्रलय तार 'ह्लीं कलायै नम:'; तार फेत्कारि 'संहारिणीकलायै नम:' से पूजन करना चाहिये ।

मन्त्रों का स्पष्ट स्वरूप निम्नलिखित है—

१. ॐ ह्लीं धूम्रार्चि:कलायै: नम: ।
२. ॐ श्रीं नीलरक्तकलायै नम: ।
३. ॐ क्लीं कपिलाकलायै नम: ।
४. ॐ हूं विस्फुलिङ्गिनीकलायै नम: ।
५. ॐ छ्रीं ज्वालिनीकलायै नम: ।
६. ॐ स्त्रीं अर्चिष्मतीकलायै नम: ।
७. ॐ फ्रें हव्यवाहिनीकलायै नम:।
८. ॐ ख्फ्रें कव्यवाहिनीकलायै नम: ।
९. ॐ ध्रुं ऊँ ह्लीङ्कलायै नम: ।
१०. ॐ ह्स्ख्फ्रें संहारिणीकलायै नम: ।

इन मन्त्रों से चारो दिशाओं में त्रिपादिका की पूजा करनी चाहिये । इसके बाद पात्र को धुलकर वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए कपूर अगर कौशिक (= गुग्गुलु) से धूप देनी चाहिये । धूप देने के पश्चात् कथ्यमान मन्त्र से श्रीपात्र को त्रिपादिका के ऊपर धीरे से रखना चाहिये ताकि शब्द न हो ॥ ५५-६१- ॥

[श्रीपात्रसन्धूपनमनुः]

तारलज्जारमाकाममुक्तानृहरयः क्रमात् ॥ ६२ ॥
अस्त्रं हृच्चापि विज्ञेयो देवि सन्धूपने मनुः ।
कुलस्त्रीकमलाकामा रुड् डाकिनी पिशाचिनी ॥ ६३ ॥
बलिश्च गुह्यकाल्यम्बार्घपात्रं स्थापयामि च ।
नम एष मनुः प्रोक्तस्त्रिपाद्यां पाद्यरक्षणे ॥ ६४ ॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण मध्ये श्रीपात्रमर्चयेत् ।

सन्धूपन मन्त्र—हे देवि! तार लज्जा रमा काम मुक्ता नरहरि के पश्चात् अस्त्र और हृदय सन्धूपन के विषय में यह मन्त्र जानना चाहिये । कुलस्त्री कमला काम क्रोध डाकिनी पिशाचिनी और बलि के बाद 'गुह्यकाल्यम्बाऽर्घपात्रं स्थापयामि नमः' यह मन्त्र त्रिपादिका में पाद्य रखने के लिये है ।

(मन्त्र का स्वरूप—

(१) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्रीं क्ष्रौं फट् नमः ।

(२) स्त्रीं श्रीं क्लीं हूं खफ्रें ह्सौः एं, ...गुह्यकाल्यम्बार्घपात्रं स्थापयामि नमः ।)

आगे कहे जाने वाले मन्त्र से श्रीपात्र की पूजा करनी चाहिये ॥ ६२-६४ ॥

[श्रीपात्रपूजनमन्त्रः]

मायारमारोषकामयोगिनीशाकिनीसुधाः ॥ ६५ ॥
क्षेत्राधीशखगाधीशौ सिद्धिप्रदपदं ततः ।
तपिन्यादिद्वादशकलात्मने तदनन्तरम् ॥ ६६ ॥
सूर्यमण्डलतो ङेऽन्तादर्घपात्राय सन्धिमत् ।
नम एतेन श्रीपात्रं मध्ये सम्पूजयेत् सुधीः ॥ ६७ ॥
प्रादक्षिण्यद्वादशभिः कलाभिस्तदनन्तरम् ।
अभिधास्यमानमनुभिः श्रीपात्रं बहिरर्चयेत् ॥ ६८ ॥

श्रीपात्रपूजामन्त्र—माया रमा क्रोध काम योगिनी शाकिनी सुधा क्षेत्रपाल गरुड के बाद 'सिद्धिप्रद' पद के पश्चात् 'तपिन्यादिद्वादशकलात्मने' तदनन्तर 'सूर्यमण्डल' के बाद ङेऽन्त को 'अर्घपात्राय' से संयुक्त कर 'नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं हूं क्लीं छ्रीं फ्रें ग्लूं क्षौं क्रौं सिद्धिप्रदतपिन्यादि द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलायार्घपात्राय नमः)

इस मन्त्र से विद्वान् मध्य में श्रीपात्र की पूजा करे । उसके बाद अभिधास्यमान बारह मन्त्रों के द्वारा प्रादक्षिण्य क्रम से बाहर-बाहर श्रीपात्र की पूजा करनी चाहिये ॥ ६२-६८ ॥

[श्रीपात्रस्य बहिरर्चाविधिः]

मायाकामामृतान्यादौ त्रीणि बीजानि पार्वति।
सर्वेषामेव मन्त्राणां स्थिराणि हि ततः कलाः ॥ ६९ ॥
केवलाः स्युः कलाशब्दैस्ततस्तासां च विग्रहः।
श्रीपादुकां पूजयामि नमः शेषे च सर्वगम् ॥ ७० ॥
तपिनी तापिनी चैव भ्रामरी क्लेदिनी तथा।
शोधिनी बोधिनी चापि वारुण्याकर्षणी तथा ॥ ७१ ॥
सुषुम्णा वृष्टिवाहार(?च) ज्येष्ठा चापि हिरण्यका।

श्रीपात्र की बाह्यपूजा—हे पार्वति! माया काम और अमृत ये तीन बीज सभी मन्त्रों में स्थायी रूप से पहले रहते हैं । इसके बाद कलाओं को रखा जाता है । उनका शरीर 'कला' शब्द के साथ रहता है । अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' यह सबके अन्त में रहता है । तपिनी तापिनी भ्रामरी क्लेदिनी शोधिनी बोधिनी वारुणी आकर्षिणी सुषुम्णा वृष्टिवाहा ज्येष्ठा और हिरण्यका (ये सूर्य की बारह कलायें हैं, इनका पूजन—ह्रीं क्लीं वं तपिनीकलाश्रीपादुकां पूजायामि नमः इत्यादि के रूप में करना चाहिये । इस प्रकार बारहों कलाओं का नाम लेकर बारह बार 'ह्रीं क्लीं वं... ....श्रीपादुकां पूजयामि नमः' कहकर पूजा की जाती है) ॥ ६९-७१- ॥

[कुलकुम्भपूजानिर्देशः]

कुलकुम्भं ततो देवि पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥ ७२ ॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण वामपार्श्वस्थितं सदा ।

कुलकुम्भपूजानिर्देश—हे देवि! उसके बाद सदा बाँयें पार्श्व में स्थित कुलकुम्भ की वक्ष्यमाण मन्त्र के द्वारा अक्षत पुष्प से पूजा करनी चाहिये ॥ ७२-७२- ॥

[कुलकुम्भपूजनमन्त्रोद्धारः]

तारमैधत्रपालक्ष्मीकालरावाश्च योगिनी ॥ ७३ ॥
त्रिशिखारोषफेत्कारीजम्भपंक्तय एव च ।
कुलकुम्भस्ततो ङेऽन्तो नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥ ७४ ॥
कुलकुम्भमनेनैव पूजयेत् सुसमाहितः ।
ततो दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा तं घटं प्रिये ॥ ७५ ॥
गृणन् मनुं वक्ष्यमाणं मूलं वारत्रयं तथा ।
कुलकुम्भस्थितद्रव्यैः श्रीपात्रं परिपूरयेत् ॥ ७६ ॥

कुलकुम्भपूजामन्त्र का उद्धार—तार मेधा त्रपा लक्ष्मी काल राव योगिनी त्रिशिखा रोष फेत्कारी जम्भ पङ्क्ति वीजों के बाद ङेऽन्त 'कुलकुम्भ' और अन्त में 'नमः स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जूं फ्रें छ्रीं क्रीं हूं ह्स्ख्क्रें रफ्रीं रघ्रीं कुलकुम्भाय नमः स्वाहा) ।

इसी मन्त्र के द्वारा सुसमाहित होकर कुलकुम्भ की पूजा करनी चाहिये । हे प्रिये! इसके बाद दायें हाथ से उस घट को पकड़कर वक्ष्यमाण मूलमन्त्र को तीन बार पढ़ते हुए कुलकुम्भ में स्थित द्रव्य के द्वारा श्रीपात्र को पूरित करना चाहिये ॥ ७३-७६ ॥

[कुलकुम्भस्थद्रव्येण श्रीपात्रपूरणस्य समन्त्रो विधिः]

तारराववत्रपा उक्त्वा योगिनीं वनितामपि ।
संहारकूटं हैरण्यगर्भकूटमनन्तरम् ॥ ७७ ॥
आनन्दभैरवो ङेऽन्तो वौषट् शेषे नियोजयेत् ।
ततो धेन्वाऽमृतीकृत्य मत्स्येनाच्छाद्य सत्वरम् ॥ ७८ ॥
कृताञ्जलिः पठेन्मन्त्रं श्लोकरूपं वरानने ।
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतपीयूषसमतावह ॥ ७९ ॥
आपूरितमहापात्रपीयूषं रसमावह ।

श्रीपात्रपूरण का मन्त्र एवं विधि—तार राव त्रपा कहकर योगिनी वनिता बीजों के बाद संहार कूट हिरण्यगर्भ कूट उसके बाद 'आनन्द भैरव' को चतुर्थ्यन्त कहकर अन्त में 'वौषट्' जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं (संहारकूट?) (हिरण्यगर्भ कूट?) आनन्द-भैरवाय वौषट्) ।

इसके पश्चात् धेनुमुद्रा से अमृतीकरण कर मत्स्य मुद्रा से शीघ्र आच्छादन करने के बाद हे वरानने! हाथ जोड़कर निम्नलिखित श्लोकरूपी मन्त्र को पढ़ना चाहिये—हे ब्रह्माण्डखण्ड से उत्पन्न अमृत की समता वाले आपूरित महापात्र! पीयूष रस को धारण कीजिये ॥ ७७-७९- ॥

[प्रसन्नायाः शापविमोचनमन्त्रः]

ततस्तु पञ्चभिर्मन्त्रैरस्याः शापं विमोचयेत् ॥ ८० ॥
तांच्छृणु क्रमतो देवि व्युत्क्रमाद् दोषभाग्भवेत्।
मैधयोरन्तरे मायाकमले चामृते ततः ॥ ८१ ॥
अमृतोद्भव उच्चार्य ततोऽप्यमृतवर्षिणि ।
कामार्णादमृतं वर्णं न तु बीजं वरानने ॥ ८२ ॥
श्रा(पा ?)वय द्वितयं प्रोच्य भैरवीबीजमुद्धरेत् ।
ततः सुधे शुक्रशापं मोचयेति प्रकीर्तयेत् ॥ ८३ ॥
चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दहयुग्मकम् ।
महार्णात् खेचरीमुद्रां ततः प्रकटयद्वयम् ॥ ८४ ॥
कूर्चशीर्षे सर्वशेषे प्रथमोऽयं मनुर्मतः ।

प्रसन्ना का शापविमोचन मन्त्र—इसके बाद पाँच मन्त्रों के द्वारा इस प्रसन्ना का शापविमोचन करना चाहिये। हे देवि! उन मन्त्रों को क्रम से सुनो। क्रम के उल्टा-पुल्टा होने पर प्रयोक्ता दोष का भागी होता है। दो मेधा के बीच में माया एवं कमला बीज फिर दो अमृत बीज तत्पश्चात् 'अमृतोद्भवे' का उच्चारण कर 'अमृतवर्षिणि' फिर 'काम' वर्ण के बाद 'अमृत' वर्ण न कि अमृत बीज कहना चाहिये। हे वरानने! उसके बाद 'श्रावय' को दो बार कहकर भैरवी बीज को उद्धृत करना चाहिये। इसके बाद 'सुधे शुक्रशापं मोचय' कहना चाहिये। 'चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं' फिर 'दह' को दो बार फिर 'महा' वर्ण के बाद 'खेचरीमुद्रां' फिर 'प्रकटय' को दो बार कहना चाहिये। सबके अन्त में कूर्च और शिर। यह प्रथम मन्त्र माना गया है।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ग्लूं ग्लूं अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि कामामृतं श्रावय श्रावय सौः सुधे शुक्रशापं मोचय चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दह दह महा- खेचरी मुद्रां प्रकटय प्रकटय हूं स्वाहा) ॥ ८०-८४- ॥

मैधत्रयं दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लाः समेषकाः ॥ ८५ ॥
ततः सुधे शुक्रशापं नाशयेति समुद्धरेत्।
अमृतं शब्दमुच्चार्य श्रा(पा ?)वय द्वितयं शिरः ॥ ८६ ॥

तीन मेधा दण्ड लज्जा गो अंशु शुक्ल मेष बीजों के बाद 'सुधे शुक्रशापं नाशय' कहना चाहिये। 'अमृतं' शब्द का उच्चारण कर 'श्रावय' को दो बार फिर शिर यह दूसरा मन्त्र है।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सुधे शुक्रशापं नाशय अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा) ॥ ८५-८६ ॥

द्वितीयोऽयं मनुः प्रोक्तस्तृतीयमवधारय।
सारस्वतत्रयं प्रोच्य उषस्तृष्णापराधकान् ॥ ८७ ॥
विकारशोधिनि ततः कुलद्रव्यस्य चेत्यपि।
विकारान् हरयुग्मं च तृतीयोऽयं मनुर्मतः ॥ ८८ ॥

अब तीसरा मन्त्र सुनो—तीन मेधा बीज उषस् तृष्णा अपराध बीजों के बाद 'विकारशोधिनी' उसके बाद कुलद्रव्यस्य विकारान्' कहकर 'हर' को दो बार कहना चाहिये। यह तीसरा मन्त्र कहा गया है।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं छां छीं छूं विकारशोधिनि कुलद्रव्यस्य विकारान् हर हर) ॥ ८७-८८ ॥

सारस्वतश्चतुष्कानु सुकृतव्ययकौशिकाः।
नान्दीबलिपृथुह्रस्वास्तदनूत्कोचिनी प्रिये ॥ ८९ ॥
बीजद्वादशकानु स्यादमृते चामृतोद्भवे।

ततोऽमृतस्वरूपे चामृतवर्षिणि चेत्यपि ॥ ९० ॥
महाप्रकाशयुक्ते च चतुर्थो मनुरीरितः ।

चार सारस्वत, सुकृत व्यय कौशिक नन्दि बलि पृथु ह्रस्व के बाद हे प्रिये! उत्कोचिनी 'इन बारह बीजों के पश्चात् 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतस्वरूपे अमृतवर्षिणी' और महाप्रकाशयुक्ते' कहना चाहिये । यह चौथा मन्त्र है ।

(मन्त्र का स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ऐं रह्र छ्र्र्क्षह्रां रह्रछ्रक्षह्रौं रसमयक्षक्लह्रीं (?) छ्रक्षह्रौं रछ्रीं रछ्रूं रछ्रें रजझक्ष्रौं अमृते अमृतोद्भवे अमृतस्वरूपे अमृतवर्षिणि महाप्रकाशयुक्ते) ॥ ८९-९०- ॥

पुनश्चत्वारि मैधानि ततो माह्रीरुषः स्मरः ॥ ९१ ॥
वधू रावः शाकिनी च चामरव्यजने तथा ।
सर्वागमश्च षट्चक्रं तुरीयारागसारसाः ॥ ९२ ॥
तिरस्करिणि सम्भाष्य सकलानुजन ईरयेत् ।
वाग्वादिनि समुद्धृत्य सकलानु पशूच्चरेत् ॥ ९३ ॥
जनवाक्चक्षुरुच्चार्य श्रोत्रघ्राणेति कीर्तयेत् ।
जिह्वा वचस्तिरस्कारं कुरुद्वन्द्वं ततोऽस्त्रके ॥ ९४ ॥
मन्त्रैरेतैः पञ्चभिस्तु द्रव्यशापं विमोचयेत् ।

पुनः चार मैध फिर लक्ष्मी ह्रीं क्रोध काम वधू राव शाकिनी चामर व्यजन सर्वागम षट्चक्र तुरीया राग सारस 'तिरस्करिणि' कहकर 'सकल' के बाद 'जन' कहना चाहिये । 'वाग्वादिनि' को उद्धृत कर 'सकल' के बाद 'पशु' का उच्चारण करना चाहिये । 'जनवाक्चक्षु' का उच्चारण कर 'श्रोत्रघ्राण' कहना चाहिये । 'जिह्वावचस्तिरस्कारं' के बाद 'कुरु' को दो बार इसके पश्चात् दो अस्त्र कहना चाहिए—यह पाँचवाँ मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ऐं श्रीं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्षें फ्रखझूं फ्रखभ्री फ्रम्रग्लूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं तिरस्करिणि सकलजनवाक्चक्षुश्रोत्रघ्राणजिह्वावचस्तिरस्कारं कुरु कुरु फट् फट्) ।

इन पाँच मन्त्रों के द्वारा द्रव्य का शापविमोचन करना चाहिये ॥ ९१-९४- ॥

[कुलद्रव्यपूजनमन्त्रः]

ततः कुलद्रव्यमर्घ्यं कीर्त्यमानं मनुं पठन् ॥ ९५ ॥
पूजयेत् तारमायाश्रीसुधाकामाश्च शाकिनी ।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ९६ ॥
कामप्रदामृताद्युक्त्वानु षोडशकलात्मने ।
सोममण्डलमुच्चार्य ङेऽन्तमर्घामृतं च हृत् ॥ ९७ ॥

पूर्वोदितेषु मन्त्रेषु सर्वेष्वेतदवध्यपि ।
सन्धिहीना वेदितव्या सन्धियोग्यस्थलादय: ॥ ९८ ॥

कुलद्रव्य की पूजा का मन्त्र—इसके बाद कीर्त्यमान मन्त्र का पाठ करते हुए अर्घ्य कुलद्रव्य की पूजा करनी चाहिये । तार माया श्री सुधा काम शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी के बाद 'कामप्रदामृतादि' कहकर 'षोडशकलात्मने' के पश्चात् ङेऽन्त 'सोममण्डलं' का उच्चारण कर 'अर्घामृतं' के अनन्तर हृदय कहना चाहिये ।

(मन्त्र का स्वरूप—ॐ ह्रीं श्रीं ग्लूं क्लीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्सखफ्रें कामप्रदामृतादिषोडशकलात्मने सोममण्डलाय नम:) ।

यहाँ तक पूर्वोक्त समस्त मन्त्रों में सन्धियोग्य स्थलों को भी सन्धिहीन समझना चाहिये ॥ ९५-९८ ॥

[श्रीपात्रस्थितद्रव्यपूजाविधि:]

वामावर्तक्रमेणैव कलाषोडशभिस्तत: ।
श्रीपात्रसंस्थितं द्रव्यं वक्ष्यमाणै: प्रपूजयेत् ॥ ९९ ॥
शाकिनीकामवनिताबीजत्रयमिदं पुर: ।
तत: (सा)सा कला ज्ञेया कलाशब्दोपबृंहिता ॥ १०० ॥
श्रीपादुकां पूजयामि नम: शेषे नियोजयेत् ।
अमृता मानसी तुष्टि: पुष्टि: प्रीतिश्च रेवती ॥ १०१ ॥
ह्रीश्रीकालीसुधाज्योत्स्नास्ततो हैमवती मता ।
छाया पूर्णा तथा वामा अमृताश्चेति षोडश ॥ १०२ ॥
एतै: षोडशभिर्मन्त्रै: प्रत्येकमुदितक्रमै: ।
पात्रस्थितं हि तद्द्रव्यं बहिरेव प्रपूजयेत् ॥ १०३ ॥

श्रीपात्रस्थितद्रव्यपूजाविधि—इसके बाद श्रीपात्रस्थित द्रव्य की वक्ष्यमाण षोडश कलाओं के द्वारा वामावर्त्तक्रम से पूजा करनी चाहिये । पहले शाकिनी काम और वनिता इन तीन बीजों को कहना चाहिये । इसके बाद तत्तत् कलाओं के नामों को 'कला' शब्द के साथ कहना चाहिये । अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि नम:' कहना चाहिये । (उदाहरणार्थ—फ्रें क्लीं स्त्रीं अमृताकलायै श्रीपादुकां पूजयामि नम: इत्यादि) कलाओं के नाम निम्नलिखित हैं—अमृता मानसी तुष्टि पुष्टि प्रीति रेवती ह्रीं श्रीं काली सुधा ज्योत्स्ना हैमवती छाया पूर्णा वामा और अमृता । पूर्वोक्त क्रम से इन सोलह मन्त्रों के द्वारा पात्र में स्थित उस द्रव्य की बाहर से पूजा करनी चहिये ॥ ९९-१०३ ॥

[पात्रदिग्बन्धनविधि:]

डाकिन्यर्णाच्च सकलशत्रुप्रशमनीति च ।
कूर्चद्वयमथास्त्राय फडित्येवं मनुं वदेत् ॥ १०४ ॥

पात्रदिग्बर्न्धनं कुर्याच्छोटिकाभिरितस्ततः ।
अस्मिन्नेव क्षणे देवि विशेषार्घ इवेश्वरि ॥ १०५ ॥
पुष्पैरावाहयेद् ध्यात्वा मध्य एवास्य वस्तुनः ।
तत्रोपचारान् पाद्यादीन् योग्यान् मध्ये बहिस्तथा ॥ १०६ ॥
पुनराचमनीयान्ताद् दद्यान् मूलमनुं पठन् ।

पात्रदिग्बन्धन-विधि—'डाकिनि सकलशत्रुप्रशमनि' कहकर दो कूर्च फिर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र को कहना चाहिये । (= डाकिनि सकलशत्रुप्रशमनि हूं हूं अस्त्राय फट्) । इधर उधर चुटकी बजाते हुए दिग्बन्धन करना चाहिये । हे ईश्वरि! इसी समय विशेषार्घ की भाँति पुष्पों से इसी वस्तु के मध्य आवाहन कर ध्यान कर मध्य में तथा बाहर पाद्य से लेकर पुनः आचमनीय तक योग्य उपचारों को मूलमन्त्र का पाठ करते हुए समर्पित करना चाहिये ॥ १०४-१०६- ॥

[आनन्दभैरवध्यानम्]

ततो द्रव्यस्य मध्ये तु ध्यायेदानन्दभैरवम् ॥ १०७ ॥
आनन्दभैरवीं चापि सामरस्यमुपागताम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ १०८ ॥
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
अमृतार्णवमध्यस्थश्वेतपद्मोपरि स्थितम् ॥ १०९ ॥
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ।
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ॥ ११० ॥
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ।
खड्गखेटकचक्रर्ष्टिपर्शुमुद्गरशूलिनम् ॥ १११ ॥
भुशुण्डीधारिणं घोरं वरदाभयपाणिनम् ।
धवलं देवदेवेशं भावयेद् भैरवीयुतम् ॥ ११२ ॥
एवं ध्यात्वा सुधाबीजैर्वषट् तं पूजयेत् त्रिधा ।

आनन्दभैरव का ध्यान—इसके बाद द्रव्य के मध्य में आनन्दभैरव तथा उनसे समरस हुई आनन्दभैरवी का ध्यान करना चाहिये । ध्यान—वे करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल, अठारह भुजाओं, पाँच मुखों, तीन नेत्रों वाले, अमृत समुद्र के मध्य में स्थित श्वेत कमल पर बैठे हुए, वृषारूढ, नीलकण्ठ, सर्वाभरणभूषित, कपाल खट्वाङ्ग धारण किये हुए, घण्टा डमरू बजाने वाले पाश अङ्कुश गदा मुशल खड्ग खेट चक्र ऋष्टि पर्शु मुद्गर शूल भुशुण्डी धारण किये हुए, भयङ्कर हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा लिये हुए, धवल भैरवीयुक्त देवदेवेश का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान कर सुधा बीज तथा वषट् का तीन बार उच्चारण कर उनकी तीन बार पूजा करनी चाहिये ॥ १०७-११२- ॥

[सुधादेव्याः ध्यानम्]

ततो ध्यायेत् सुधादेवीं चन्द्रकोट्यमृतप्रभाम् ॥ ११३ ॥
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ॥ ११४ ॥
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्निधौ ।
सुधाबीजैः सुधादेवीं वौषट् सम्पूज्य पार्वति ॥ ११५ ॥

सुधा देवी का ध्यान—इसके बाद सुधा देवी का ध्यान करना चाहिये । यह सुधा देवी करोड़ों चन्द्रमा में स्थित अमृत के समान, हिम कुन्द इन्दु के समान धवल, पाँच मुखों तीन नेत्रों वाली, अठारह भुजाओं से युक्त सबको आनन्द देने के लिये उद्यत, विशाल नेत्रों वाली, हँसती हुई हैं । हे पार्वति! देवाधिदेव के निकट इस सुधा देवी की सुधा बीजों तथा वौषट् से पूजा करनी चाहिये ॥ ११३-११५ ॥

[पञ्चरत्नपूजानिर्देशः]

पूजयेत् पञ्चरत्नानि वक्ष्यमाणमनुक्रमैः ।
त्रपारमावधूकामयोगिनीशाकिनीक्रमाः ॥ ११६ ॥
एतानि सप्त बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
तत्तल्लोकादिमावर्णो हरत्युपरि विष्टितः ॥ ११७ ॥
तत्तद्भुवनरत्नाय नम इत्यपि कीर्तयेत् ।
गगनं स्वर्गमर्त्ये च पातालं नाग एव च ॥ ११८ ॥
ततो मध्ये सुधादेवीं बालार्कसदृशीं स्मरेत् ।

पञ्चरत्नपूजा—उसके बाद वक्ष्यमाण मन्त्रों के क्रम से पञ्चरत्नों की पूजा करनी चाहिये । त्रपा रमा वधू काम योगिनी शाकिनी और क्रम ये सात बीज सर्वत्र स्थिर हैं ।

तत्तद् 'भुवनरत्नाय नमः' यहं भी कहना चाहिये । गगन स्वर्ग मर्त्य पाताल नाग ये लोक हैं । (पूजा का मन्त्र—ह्रीं श्रीं स्त्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें भ्रीं गगनलोकरत्नाय नमः । इसी प्रकार ह्रीं.....स्वर्गलोकरत्नाय नमः इत्यादि कहना चाहिये) इसके पश्चात् मध्य में बालसूर्य के समान सुधादेवी का स्मरण करना चाहिये ॥ ११६-११८- ॥

[श्रीपात्रसंस्कारविधिः]

हिरण्यगर्भकूटं हि वारत्रयमुदीरयेत् ॥ ११९ ॥
अकारादिक्षकारान्तान् मध्ये वर्णान् लिखेत्ततः ।
मन्त्रेणैवामृतेश्वर्या दशवारं विभावयेत् ॥ १२० ॥
लज्जारमे समुच्चार्य अमृते अमृतोद्भवे ।
अमृतवर्षिण्युच्चार्य अमृतं श्रा(पा ?)वयद्वयम् ॥ १२१ ॥
कामबीजं ततो जूं सोऽमृतेश्वर्यै नमो वदेत् ।

मन्त्राद्यबीजैः प्रोच्चार्य श्लोकं च समुदीरयेत् ॥ १२२ ॥
अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मके ।
अधिष्ठानं स्वके पात्रे निधेहि कुलरूपिणि ॥ १२३ ॥
एवं श्रीपात्रसंस्कारं देव्या दक्षे विधाय च ।
वामे संस्थापयेच्छक्तिपात्रं त्रिदशवन्दिते ॥ १२४ ॥

श्रीपात्र के संस्कार की विधि—हिरण्यगर्भकूट का तीन बार उच्चारण करना चाहिये । इसके अनन्तर मध्य में अकार से लेकर क्षकार तक के वर्णों को लिखना चाहिये । निम्नलिखित मन्त्र से अमृतेश्वरी की दश बार भावना करनी चाहिये । लज्जा रमा का उच्चारण कर 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि' कहकर 'अमृतं' के पश्चात् 'श्रावय' को दो बार कहना चाहिये । इसके बाद कामबीज फिर 'जूं सः अमृतेश्वर्यै नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय क्लीं जूं सः अमृतेश्वर्यै नमः) ।

मन्त्र के पूर्व में उक्त बीजों का उच्चारण कर निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिये—हे अखण्डैकरस का आनन्द देने वाली पर सुधा, हे कुलरूपिणि! अपने पात्र में निवास करो । हे त्रिदशवन्दिते! इस प्रकार देवी के दाहिने ओर श्रीपात्र का संस्कार कर देवी की बायीं ओर शक्तिपात्र की स्थापना करनी चाहिये ॥११९-१२४॥

[अन्यपात्रचतुष्टयस्थापननिर्देशः]

मध्ये चत्वारि पात्राणि पुनरन्यानि योजयेत् ।
गुरुर्भोगश्च वीरश्च कुलं चेति प्रकीर्तितम् ॥ १२५ ॥
यावान् श्रीपात्रसंस्कारे क्रम उक्तो मया तव ।
तावानेवैषु कर्तव्यस्तत्तन्मन्त्रप्रयोगतः ॥ १२६ ॥
नामसूहः प्रकर्तव्यो न मन्त्रे नापि वार्चने ।
श्रीपात्रस्य च ये मन्त्रास्ते मन्त्राः सर्वपात्रगाः ॥ १२७
श्रीपात्रस्य क्रिया या हि सा क्रिया सर्वपात्रगा ।
तादृक्पूजाद्यशक्तौ तु सामान्येनापि पूजयेत् ॥ १२८ ॥
पृथक्कला न चास्वर्च्या दशद्वादशषोडश ।

अन्य चार पात्रों की स्थापना का निर्देश—पुनः मध्य में दूसरे चार पात्रों को रखना चाहिये । इन पात्रों के नाम गुरु भोग कुल और वीर हैं । श्रीपात्र के संस्कार में जितने क्रम मैंने तुमको बतलाये उनको ही इनमें भी तत्तत् मन्त्रों का प्रयोग करते हुए करना चाहिये । ऊह केवल नाम के विषय में करना चाहिये मन्त्र और पूजन में नहीं । जो मन्त्र श्रीपात्र के हैं वे ही मन्त्र समस्त पात्रों में प्रयुक्त होते हैं । श्रीपात्र की जो क्रिया होती है वही क्रिया समस्त पात्रों में होती है । उस प्रकार की पूजा आदि के

लिये सामर्थ्य न होने पर सामान्य रीति से भी पूजा करनी चाहिये । इनमें दश बारह और सोलह कलाओं की पृथक् पूजा नहीं करनी चाहिये ॥ १२५-१२८- ॥

[पात्रोपयोगनिर्णयार्थतत्तत्पात्रेषु तत्तद्व्यक्तेरावाहनम्]

शक्तेरावाहनं शक्तौ गुरोरपि गुरौ तथा ॥ १२९ ॥
परिवारान् भोगपात्रे वीरे त्वावरणात्मिकाम् ।
कौलिकान् कुलपात्रेषु समावाह्य यजेच्छनैः ॥ १३० ॥
पुष्पेण चापि पत्रेण तत एकैकशः प्रिये ।

पात्र के उपयोग के निर्णय के लिये तत्तत् पात्रों में तत्तत् व्यक्ति का आवाहन—शक्ति का आवाहन शक्तिपात्र में, गुरु का गुरुपात्र में, भोगपात्र में परिवारों का, वीरपात्र में आवरण देवताओं का तथा कुलपात्र में कौलिकों का आवाहन करना चाहिये । आवाहन के बाद हे प्रिये! धीरे-धीरे एक-एक की पत्र पुष्प से पूजा करनी चाहिये ॥ १२९-१३०- ॥

[कुलसंव्यत्ययविधि:]

कुलसंव्यत्ययं कुर्याद् वक्ष्यमाणमनुं पठन् ॥ १३१ ॥
तारमैधामृतश्रीह्रीयोगिनीशाकिनीरुषः ।
एकीभावं जुषत्स्वानु भवेदस्त्रं नमः शिरः ॥ १३२ ॥
षण्णामपि च पात्राणां परस्परसमागमः ।
त्रिंशद्वारात्मको ज्ञेयो न न्यूनो नाधिकोऽपि च॥ १३३ ॥

कुलसंव्यत्यय विधि—इसके बाद वक्ष्यमाण मन्त्र का पाठ करते हुए कुल संव्यत्यय (= परस्पर सम्मेलन) करना चाहिये । तार मेधा अमृत श्रीं ह्रीं योगिनी शाकिनी क्रोध बीजों के बाद 'एकीभावं जुषत्स्व' के बाद अस्त्र 'नम:' और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ग्लूं श्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं एकीभावं जुषत्स्व फट् नम: स्वाहा) ।

छहों पात्रों का परस्पर समागम तीस बार ही होना चाहिये न कम न अधिक ॥ १३१-१३३ ॥

[श्रीपात्रस्थद्रव्योपयोगे तान्त्रिकमतभेदनिर्देश:]

अतः परं प्रकारौ द्वौ वर्तेते सुरवन्दिते ।
तौ शृणु ब्रुवतो मे त्वं श्रीपात्रादिक्रियात्मकम् ॥ १३४ ॥

श्रीपात्रस्थ द्रव्य के प्रयोग में तान्त्रिक मतभेद—हे सुरवन्दिते! इसके बाद (द्रव्य प्रयोग के) दो प्रकार होते हैं । श्रीपात्र आदि की क्रिया को बतलाने वाले मुझसे तुम उन दोनों को सुनो ॥ १३४ ॥

[प्रथमप्रकारनिर्देशः]

श्रीपात्रस्याधिकारी तु स्वयमेव न चेतरः ।
शक्तेस्तु शक्तिपात्रं स्यात् गुरुपात्रं गुरोरपि ॥ १३५ ॥
भोगपात्रं सुतादीनां शिष्याणां वीरपात्रकम् ।
कुलपात्रं कौलिकानां निर्णयः प्रोक्त ईदृशः ॥ १३६ ॥
सर्वेभ्यो विद्यमानेभ्यस्तत्तत्पात्रं समर्प्य हि ।
अर्हणामसमाप्यैव श्रीपात्रं स्वयमापिबेत् ॥ १३७ ॥
सुतान्तेवासिकौलानां सन्निधाने ह्यसत्यपि ।
शक्तिगुर्वोर्निवेद्यापि स्वयं भोक्तुमलंकृती ॥ १६८ ॥
अविद्यमानयोः किन्तु तयोर्नैवानिवेद्य हि ।
कदापि देवदेवेशि स्वयं भुञ्जीत साधकः ॥ १३९ ॥

प्रथम प्रकार का निर्देश—श्रीपात्र का अधिकारी स्वयं यजमान होता है दूसरा कोई नहीं । शक्तिपात्र शक्ति का, गुरुपात्र गुरु का होता है । भोगपात्र पुत्रादि का तथा वीरपात्र शिष्यों का होता है । कुलपात्र का अधिकार कौलिकों के पास होता है—इस प्रकार का निर्णय कहा गया है । विद्यमान सभी लोगों को उनके पात्र देने के बाद पूजा को समाप्त करने के पहले श्रीपात्र का पान साधक स्वयं करे । यदि पुत्र शिष्य और कौल लोग पास में न हों तो भी उनके पात्रों को शक्ति और गुरु को निवेदित कर साधक स्वयं पीने के लिये अधिकृत है । हे देवेशि! यदि वे दोनों (= शक्ति और गुरु) विद्यमान न हों तो विना उनको निवेदित किये साधक कभी भी उनका भोग न करे ॥ १३५-१३९ ॥

[प्रासरिक(प्राशन)विषये कापालिकमतनिर्देशः]

कापालिकमते गुर्वभावेऽपि घटते क्रिया ।
नासन्निधाने शक्तेस्तु सर्वेषां मतमीदृशम् ॥ १४० ॥
येऽसन्निधाने तस्यास्तु उपयोगं प्रकुर्वते ।
प्रथमं शक्तयेऽदत्त्वा ते पिबन्ति वृथा सुराम् ॥ १४१ ॥
निरयं यान्ति ते कौला अव्यवस्थाविधायिनः ।

प्राशन के विषय में कापालिक मत—कापालिक मत में गुरु के न रहने पर भी क्रिया होती है (अर्थात् सुरापान किया जा सकता है) लेकिन शक्ति (अर्थात् स्त्री) यदि पास में नहीं है तब सुरापान नहीं करना चाहिये ऐसा सब लोगों का मत है । जो लोग स्त्री के पास में न रहने पर भी उसका उपयोग करते हैं वे पहले शक्ति को सुरा न देकर उसक व्यर्थ पान करते हैं । अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले वे कौल नरक को जाते हैं ॥ १४०-१४१- ॥

[शक्तिविषये निर्णयाभिधानम्]

अभावे परकीयाया: स्वकीया शक्तिरिष्यते ॥ १४२ ॥
तस्या अप्यनिवेद्यैव नार्चाया: पुरतो धयेत् ।
चतुर्णामप्यभावे तु तत्तत्पात्रं स्वयं धयेत् ॥ १४३ ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण तर्पयित्वाऽखिलान् सुरान् ।

शक्ति के विषय में निर्णय—परकीया शक्ति के अभाव में अपनी पत्नी को भी गृहीत किया जा सकता है । पूजा के पहले उसको भी विना निवेदित किये सुरापान नहीं करना चाहिये । चारों के न रहने पर वक्ष्यमाण प्रकार से समस्त देवताओं को अर्पित कर तत्त्त पात्र को स्वयं पीना चाहिये ॥ १४२-१४३- ॥

[अत्र स्वकीयासहमतिप्रकाशनम्]

नैतन्मम मतं देवि पूजादौ यत्प्रगृह्यते ॥ १४४ ॥
मीनमांसोपयोगेन पुरो जाता भुजिक्रिया ।
पात्रादीनां च संस्कारो न मीनपललैर्विना ॥ १४५ ॥
न पात्रग्रहणं कुर्यादेतयोर्ग्रहणं हिरुक् ।
स्वीकारात् सर्वपात्राणां मीनमांसोपयोगत: ॥ १४६ ॥
सम्पूर्णं भोजनं जातमकृत्वा कालिकार्चनम् ।
अतो नेदं मम मतं मतमुक्तं परस्य तु ॥ १४७ ॥
पूजादीनसमाप्यैव मध्ये भोजनमागतम् ।

इस विषय में अपनी असहमति का प्रकाशन—हे देवि! पूजा के आदि में जो ग्रहण किया जाता है यह मेरा मत नहीं है । मत्स्य और मांस के उपयोग के द्वारा जो पहले भोजन क्रिया सम्पन्न होती है । पात्र आदि का संस्कार भी मत्स्य और मांस के विना नहीं होता । इन दोनों के विना पात्र का ग्रहण भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि समस्त पात्रों का स्वीकार मत्स्य मांस के उपयोग से ही होता है । चूँकि कालिका की पूजा किये विना सम्पूर्ण भोजन हो गया अत: यह मेरा मत नहीं है । यह किसी दूसरे का मत कहा गया है; क्योंकि पूजा आदि को विना समाप्त किये बीच में भोजन आ गया ॥ १४४-१४७- ॥

[अपरप्रकारनिर्देश:]

द्वितीयं पक्षमधुना समाकलय सुन्दरि ॥ १४८ ॥
अर्घपात्राणि षडपि क्रमेणैव तु साधक: ।
शनै: कराभ्यामुत्तोल्य श्रीपात्रं भुव्यनाक्षिपन् ॥ १४९ ॥
गृणन् मनुं वक्ष्यमाणं यन्त्रे संस्पर्शयेन् मृदु ।
भूमौ संस्थाप्य तत्पात्रं पश्चान्यानि क्रमेण हि ॥ १५० ॥

शक्त्याख्यादीनि पात्राणि निःस्वरं पीठ उन्नयेत्।
मन्त्रपाठं सकृद्वापि प्रत्येकं चापि वाचयेत् ॥ १५१ ॥

द्वितीय प्रकार का निर्देश—हे सुन्दरि! अब दूसरे पक्ष को सुनो । साधक छहों अर्घपात्रों को क्रम से दोनों हाथों से उठाकर (धीरे से भूमि पर रख दे । फिर) श्रीपात्र को भूमि पर न रखते हुए वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए धीरे से यन्त्र से स्पर्श कराये । फिर उस पात्र को पृथ्वी पर रखे । उसके बाद शक्ति आदि नाम वाले पाँच पात्रों को क्रम से पीठ के ऊपर रखे । मन्त्र का पाठ एक बार या प्रत्येक पात्र के रखते समय बार-बार करना चाहिये ॥ १४८-१५१ ॥

[शक्तिपात्रादिचतुष्टयोत्सर्गमन्त्रः]

ते मन्त्राः पञ्च चाख्याताः क्रमेणैवोद्धरामि तान्।
मैधत्रपारमासेतून् स्वरानप्यथ षोडश ॥ १५२ ॥
शिवशक्तिसमुच्चार्य सदाशिवेश्वरेति च ।
शुद्धविद्यातत्त्वमिति पराकूटं समैधकम् ॥ १५३ ॥
आत्मतत्त्वेन संलिख्य स्थूलदेहमितीरयेत् ।
प्रतिलोम्ना पुनस्ते च क्रमशः षोडश स्वराः ॥ १५४ ॥
रमां लज्जां पुनर्मैधं साधयाम्यग्निवल्लभा ।
अयमाद्यो महामन्त्रो द्वितीयं शृणु सादरा ॥ १५५ ॥

शक्ति आदि पात्रों को रखने का मन्त्र—वे मन्त्र पाँच कहे गये हैं । उनको क्रम से बतला रहा हूँ । १—मेधा लज्जा रमा सेतु सोलह स्वरों के बाद 'शिवशक्ति' का उच्चारण कर 'सदाशिवेश्वरशुद्धविद्यातत्त्वं' फिर मेधा के साथ पराकूट के पश्चात् 'आत्मतत्त्वेन' लिखकर 'स्थूलदेहं' कहना चाहिये । पुनः उल्टे क्रम से सोलह स्वरों को कहकर रमा लज्जा मेधा 'साधयामि' के बाद अग्निवल्लभा यह प्रथम मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं रठ्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यातत्त्वं ऐं सहक्लह्रीं आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं श्रीं ह्रीं ऐं साधयामि स्वाहा) ॥ १५२-१५५ ॥

बीजत्रयं तदेवोक्त्वा पञ्च वर्गान् सबिन्दुकान्।
माया कला इति प्रोच्य विद्याराज्ञीति कीर्तयेत्॥ १५६ ॥
कालाच्च नियतेश्चापि पुरुषात्तत्त्वमित्यपि।
मान्मथं च बृहत्कूटं विद्यातत्त्वे रेच (चेर ?) येत्॥ १५७ ॥
सूक्ष्मे देहं शोधयामि ततः परमुदीरयेत्।
प्रतिलोम्ना पञ्च वर्गान् सेन्दून् बीज(त्रयं) तथा॥ १५८ ॥

दूसरे मन्त्र को आदर से सुनो—उन्हीं तीन बीजों को कहकर बिन्दु सहित पाँच वर्गों को कहे । 'मायाकला' कहकर 'विद्याराज्ञी' कहना चाहिये । 'कालनियति पुरुष-

तत्त्वं' के बाद मन्मथ एवं बृहत्कूट के बाद 'विद्यातत्त्वेन' कहना चाहिये । उसके बाद 'सूक्ष्मे देहं शोधयामि' कहना चाहिये । फिर उल्टे क्रम से बिन्दु सहित पाँच वर्गों को तथा तीनों बीजों को कहने के बाद अन्त में 'स्वाहा' यह दूसरा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं, मायाकलाविद्याराज्ञीकालनियति पुरुषतत्त्वं क्लीं स्हकह्लह्रीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि मं भं बं फं पं, नं धं दं थं तं, णं ढं डं ठं टं, ञं झं जं छं चं, ङं घं गं खं कं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा) ॥ १५६-१५८ ॥

शेषे स्वाहा द्वितीयोऽयं तृतीयं शृणु पार्वति ।
तदेव बीजत्रितयं यकारादिक्षकारकम् ॥ १५९ ॥
प्रकृत्यहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्र इतीरयेत् ।
त्वक् चक्षुश्च तथा जिह्वा घ्राणं वाक् पाणिरेव च ॥ १६० ॥
पादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसानपि ।
गन्धाकाशौ वायुतेज:सलिलं भूमिरित्यपि ॥ १६१ ॥
तत्त्वं च भैरवीबीजं ज्येष्ठकूटं ततः परम् ।
शिवतत्त्वेन संलिख्य परदेहं ततो वदेत् ॥ १६२ ॥
शोधयामीति संभाष्य प्रातिलोम्येन तान्यपि ।
शेषे शिरो मनुर्ज्ञेयश्चतुर्थमवधारय ॥ १६३ ॥

हे पार्वति! अब तीसरे मन्त्र को सुनो—वे ही तीन बीज, फिर यकार से क्षकार तक के पश्चात् 'प्रकृत्यहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्र' कहना चाहिये । 'त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायुउपस्थशब्दस्पर्शरूपगन्धाकाशवायुतेज:सलिलभूमितत्त्वं' के बाद भैरवी बीज 'ज्येष्ठकूट' उसके बाद 'शिवतत्त्वेन' लिखकर 'परदेहं' कहना चाहिये । 'शोधयामि' कहकर उल्टे क्रम से उन्हीं (अक्षरों और बीजों) को कहकर अन्त में शिर कहना चाहिये यह तीसरा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं प्रकृत्यहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुतेज:सलिलभूमितत्त्वं सौं सक्लह्रीं शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि क्षं हं सं षं शं वं लं रं यं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा) ॥ १५९-१६३ ॥

तदेव बीजत्रितयमादिक्षान्तं च कीर्तयेत् ।
शिवशक्तिं समालिख्य सदाशिवेश्वरेति च ॥ १६४ ॥
शुद्धे विद्या कला माया अविद्या रागमेव च ।
कालश्च नियतिश्चापि पुरुषः प्रकृतिस्तथा ॥ १६५ ॥
अहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्रत्वक्चक्षुरेव च ।
जिह्वा घ्राणाच्च वाक्पाणिपादपायु ततः परम् ॥ १६६ ॥

उपस्थशब्दः स्पर्शश्च ततो रूपरसोच्चरेत् ।
गन्धाकाशौ वायुतेजः सलिलाद् भूमिरित्यपि ॥ १६७ ॥
तत्त्वं मैधं च कामं च परार्चिर्ज्येष्ठकूटकान् ।
सर्वतत्त्वाश्रयं जीवं शोधयामि ततो वदेत् ॥ १६८ ॥
प्रातिलोम्येन चोद्धृत्य क्षाद्यन्तं सर्वबीजकम् ।
स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयं समाकलय पञ्चमम् ॥ १६९ ॥

चौथे मन्त्र को सुनो—वे ही तीन बीज और अ से क्ष तक के वर्णों को कहना चाहिये । 'शिवशक्ति' को लिखकर 'सदाशिवेश्वरशुद्धविद्याकलामायाअविद्यारागकलानियतिपुरुषप्रकृतिअहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राण' के बाद 'वाक्पाणिपादपायु' उसके बाद 'उपस्थशब्दस्पर्श' के पश्चात् 'रूपरसगन्धाकाशवायुतेजःसलिलभूमितत्त्वं' के बाद मैध काम पराकूट अर्चिकूट ज्येष्ठकूट के बाद 'सर्वतत्त्वाश्रयं जीवं शोधयामि' कहना चाहिये । फिर सभी वर्णों को उल्टे उद्धृत कर अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः, कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं, यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्याकलामायाअविद्यारागकालनियतिपुरुषप्रकृतिअहङ्कारमनोबुद्धिश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुतेजःसलिलभूमितत्त्वं ऐं क्लीं सहक्लह्रीं.................. (अर्चिकूट?) सक्लह्रीं 'सर्वतत्त्वाश्रयं जीवं शोधयामि क्षं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं, नं धं दं थं तं, णं ढं डं ठं टं, ञं झं जं छं चं, ङं घं गं खं कं, अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं स्वाहा) ॥ १६४-१६९ ॥

वेदादिमैधमायाश्च त्रपाकामवधूरुषः ।
नृसिंहक्षेत्रपालौ च योगिनी शाकिनी सुधा ॥ १७० ॥
हैमनास्त्रं दानवास्त्रं वायव्यास्त्रं गणास्त्रकम् ।
कुण्डलिन्यादिषट्चक्रकूटादि तदनन्तरम् ॥ १७१ ॥
जीवात्मानमिति प्रोच्य ततश्च परमात्मना ।
शोधयामीति संलिख्य तारान्तो व्युत्क्रमोऽखिलः ॥ १७२ ॥
फट्त्रयान्ते हृच्छिरसी महामन्त्रोऽयमीरितः ।
अमीभिः पञ्चभिर्मन्त्रैर्बद्धाञ्जलिरुदारधीः ॥ १७३ ॥
दोषहानिफलाधिक्ये कुर्याद् भक्तिपरायणः ।
तर्पयेच्छक्तिपूजां च शान्तिकं पौष्टिकं तथा ॥ १७४ ॥
पूजा समाप्ता श्रीपात्रग्रहणे वक्ष्यते मनुः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तं श्रीपात्रस्थापनादिकम् ॥ १७५ ॥
विशेषस्तु प्रसन्नायाः विधाने ज्ञेय ईश्वरि ।

पाँचवें को सुनो—वेदादि मैध माया त्रपा काम वधू क्रोध नृसिंह क्षेत्रपाल योगिनी शाकिनी सुधा हैमनास्त्र दानवास्त्र वायव्यास्त्र गणास्त्र 'कुण्डलिन्यादिषट्चक्रकूटादि' के बाद 'जीवात्मानं' कहकर 'परमात्मना शोधयामि' लिखने के बाद तार पर्यन्त समस्त बीज को विपरीत क्रम से कहकर तीन 'फट्' अन्त में हृदय और शिर। यह महामन्त्र कहा गया।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हूं क्ष्रौं क्षौं छ्रीं फ्रें ग्लूं हैमनास्त्रं दानवास्त्रं वायव्यास्त्रं गणास्त्रं कुण्डलिन्यादिषट्चक्रकूटादिजीवात्मानं परमात्मना शोधयामि ग्लूं फ्रें छ्रीं क्षौं क्षैं हूं स्त्रीं क्लीं ह्रीं ऐं ओं फट् फट् फट् नमः स्वाहा)।

उदारचेता साधक हाथ जोड़कर इन पाँच मन्त्रों के द्वारा भक्तियुक्त होकर दोषहानि और फलाधिक्य के लिये तर्पण करे। शक्ति पूजा शान्ति पौष्टिक कर्म को भी करे। इस प्रकार पूजा समाप्त हो गयी। श्रीपात्र के ग्रहण के विषय में मन्त्र को बतलाया जायगा। इस प्रकार श्रीपात्र की सामान्य स्थापना कही गयी। हे ईश्वरि! विशेष का ज्ञान प्रसन्ना के विधान में जानना चाहिये ॥ १७०-१७५- ॥

[पूजारीतिप्राणायामध्यानविधिः निर्देशः]

अधुनार्चारीतिमहं कथयामि विशेषतः ॥ १७६ ॥
पात्रणामपि षण्णां वै परिष्कारं विधाय च।
प्राणायामं ततः कुर्यात् षडङ्गन्यासमेव च ॥ १७७ ॥
पुनः पूर्वोक्तविधिना पुष्पमादाय साधकः।
मुद्रां पूर्वोदितां बद्ध्वा ध्यानं कुर्वीत निश्चलः ॥ १७८ ॥
हृदो निःसारयेद् देवीं वहन्नासापुटानिलैः।
तत्पुष्पं कालिकारूपं पीठमूर्ध्नि विनिःक्षिपेत् ॥ १७९ ॥

पूजारीति, प्राणायाम एवं ध्यान का निर्देश—अब मैं विशेषरूप से पूजा की रीति को बतला रहा हूँ। छहों पात्रों का परिष्कार करने के बाद प्राणायाम तथा षडङ्ग न्यास करना चाहिये। पुनः साधक पूर्वोक्त विधि के अनुसार पुष्प लेकर पूर्व वर्णित मुद्रा को बाँधकर निश्चल होकर ध्यान करे। नासिका पुट से निकलने वाले वायु के साथ देवी को हृदय से निकाल कर उस पुष्प को काली का रूप समझते हुए पीठ के ऊपर फेंक दे ॥ १७६-१७९ ॥

[यन्त्रप्रतिष्ठाविधिः]

कराग्रेण स्पृशन् यन्त्रं वक्ष्यमाणान् मनून् पठन्।
भक्तिभावयुतः प्राणप्रतिष्ठां समुपाचरेत् ॥ १८० ॥

यन्त्र की प्रतिष्ठा—वक्ष्यमाण मन्त्रों को पढ़ते हुए कराग्र से यन्त्र का स्पर्श करता हुआ साधक भक्तिभावयुक्त होकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करे ॥ १८० ॥

[यन्त्रस्य प्राणप्रतिष्ठापनमन्त्रः]

तारपाशत्रपासृण्यः कुणी फल्यपि तर्जनी ।
धूमला च तथा वेधी दुरी दर्वी गुडोऽपि च ॥ १८१ ॥
ब्रह्मबीजं ङसन्ता श्रीगुह्यकाली ततः परम् ।
ततः प्राणा इह प्राणाः पुनस्तानि त्रयोदश ॥ १८२ ॥
तादृश्येव पुनर्ज्ञेया गुह्यकाली वरानने ।
ङसन्तोद्धरणीया तु ततो नीच(?जीव)इह स्थितः ॥ १८३ ॥
पुनर्बीजानि तावन्ति ङसन्ता सा तथाम्बिका ।
सर्वेन्द्रियाणि सङ्कीर्त्य पुनर्वर्णास्त्रियोदश ॥ १८४ ॥
ततः श्रीगुह्यकाल्यास्तु वाङ्मनश्चक्षुरुद्धरेत् ।
श्रोत्रघ्राणाऽनु प्राणाश्च इहागत्य सुखं चिरम् ॥ १८५ ॥
तिष्ठन्तु शिर इत्यन्तो मन्त्रः प्राणप्रतिष्ठया ।

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र—तार पाश त्रपा सृणि कुणी फली तर्जनी धूमला वेधी दुरी दर्वी गुड ब्रह्मबीज 'श्रीगुह्यकाली' को ङस् विभक्तियुक्त कहने के बाद हे वरानने! 'प्राणा इह प्राणाः' पुनः वे ही तेरह बीज तथा वैसी ही (= ङसन्त) 'गुह्यकाली' को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद 'जीवइहस्थितः' । पुनः उतने ही बीज तथा ङसन्त 'अम्बिका' के पश्चात् 'सर्वेन्द्रियाणि' कहकर पुनः वे ही तेरह वर्ण फिर 'श्रीगुह्यकाल्याः' वाङ्मनश्चक्षु' को उद्धृत करना चाहिये । 'श्रोत्रघ्राणाः' के बाद 'प्राणाश्च इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु' के बाद शिर । यह प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ठौं श्रीगुह्यकाल्याः प्राणा इह प्राणाः । ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ठौं गुह्यकाल्य जीवा इह स्थितः । ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ठौं सर्वेन्द्रियाणि । ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ठौं वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रघ्राणाः प्राणाश्च इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा) ।

यहाँ तक प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र है ॥ १८१-१८५- ॥

[प्रात्यहिकयन्त्रप्राणप्रतिष्ठाविधिः]

पुनः प्राणप्रतिष्ठाकृदन्यो मन्त्रो मयेर्यते ॥ १८६ ॥
तारमैधत्रपालक्ष्मीशाकिनीचण्डविद्युतः ।
कालीहयग्रीवधर्मोऽङ्कुशप्रासादगारुडाः ॥ १८७ ॥
अमुकाक्षरमन्त्रस्येत्यूहः स्यात्तदनन्तरम् ।
ततः शिरो मुख प्रोच्य पाणिपाद ततः परम् ॥ १८८ ॥
पृष्ठोदराणि च ततो यावन्त्यङ्गानि चेत्यपि ।
कल्पयाम्यह संलिख्य ततो मपनयामि च ॥ १८९ ॥
अस्यानु शेषवृजिनानि स्वाहा च तदनन्तरम् ।

आभ्यां मनुभ्यां च प्राणप्रतिष्ठां समुपाचरेत् ॥ १९० ॥
इयं प्रात्यहिकी प्राणप्रतिष्ठा परिकीर्तिता ।
पीठमूलप्रतिष्ठा तु पुरा ते प्रतिपादिता ॥ १९१ ॥
त्रिपुरायाः प्रसङ्गेन तत्रोहः स्वल्प इष्यते ।
अन्यैर्वैदिकमन्त्रैस्तु देव्याः प्राणाङ्गकल्पना ॥ १९२ ॥
क्रियते तेन तन्त्रोक्ता न मयापीरिता अतः ।
मूलमन्त्रं त्रिः पठित्वा तु अम्बाहृदयमेव च ॥ १९३ ॥
तारात् सजीवा भव च फट् स्वाहेत्युच्चरेत्ततः ।
ततो देवीशरीरेऽङ्गन्यासं मन्त्रैः पुरोदितैः ॥ १९४ ॥
विधाय मायामुच्चार्य सन्निरोध्य महेश्वरीम् ।
मूलमन्त्रेण कुसुमाञ्जलिं दद्यात् त्रिवारकम् ॥ १९५ ॥

प्रात्यहिकयन्त्रप्राणप्रतिष्ठाविधि—पुनः मेरे द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करनेवाला दूसरा मन्त्र कहा जा रहा है । तार मैध त्रपा लक्ष्मी शाकिनी चण्ड विद्युत् काली हयग्रीव धर्म अङ्कुश प्रासाद गारुड कहने के बाद अमुकाक्षर मन्त्रस्य ऐसा ऊह करना चाहिये । तदनन्तर 'शिरोमुख' कहकर 'पाणिपाद' उसके बाद 'पृष्ठोदराणि' फिर 'यावन्त्यङ्गानि च कल्पयामि' लिखकर 'अहमपनयामि' के बाद 'शेषवृजिनानि स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र का स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं फ्रें फ्रों ब्लौं क्रीं क्रूं क्रैं क्रों हौं क्रौं अमुकाक्षरमन्त्रस्य शिरोमुखपाणिपादपृष्ठोदराणि यावन्त्यङ्गानि च कल्पयाम्यहमपनयामि अस्याशेषवृजिनानि स्वाहा) ।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों के द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये । यह प्रात्यहिकी (= प्रतिदिन की जाने वाली) प्राणप्रतिष्ठा कही गयी है । पीठमूलप्रतिष्ठा तुमको पहले ही बतला दी गयी है । त्रिपुरा के प्रसङ्ग में वहाँ थोड़ा ऊह माना जाता है । देवी के प्राण एवं अङ्गों की कल्पना अन्य वैदिक मन्त्रों के द्वारा की जाती है, इस कारण मैंने तन्त्रोक्त प्राणप्रतिष्ठा नहीं बतलाया । इसके बाद मूलमन्त्र का तीन बार पाठ कर अम्बाहृदय पाठ के बाद तार कहकर 'सजीवा भव फट् स्वाहा' कहना चाहिये । इसके बाद पूर्वोक्त मन्त्रों के द्वारा देवी के शरीर में अङ्गन्यास करना चाहिये । पुनः माया बीज का उच्चारण कर (निरोधिनी मुद्रा से) महेश्वरी को निरुद्ध कर मूलमन्त्र का तीन बार पाठ करते हुए पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये ॥ १८६-१९५ ॥

[कुसुमाञ्जलिदानविधिः]

तारह्रीशाकिनीयुक्ता गुह्यकालि ततः परम् ।
इहेत्युक्त्वा गच्छयुग्मं सन्धियुक्तं वदेच्छनैः ॥ १९६ ॥
इह तिष्ठ युगं चापि इह सन्निहिता भव ।

युगं ततः सन्निरुद्धा भव युग्ममुदीरयेत् ॥ १९७ ॥
मम पूजां गृहाणेति वारैकं त्रिदशेश्वरि ।

पुष्पाञ्जलिदान विधि—तार ह्रीं शाकिनी के बाद 'गुह्यकालि' उसके बाद 'इह' कहकर 'आगच्छ' को दो बार सन्धियुक्त कर धीरे-धीरे कहना चाहिये । 'इह' के बाद 'तिष्ठ' को दो बार, फिर 'इह' के अनन्तर 'सन्निहिता भव' को दो बार फिर 'इह सन्निरुद्धा भव' को दो बार कहना चाहिये । हे त्रिदशेश्वरि! 'मम पूजां गृहाण' को एक बार कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं फ्रें गुह्यकालि इह आगच्छागच्छ, इह तिष्ठ तिष्ठ, इह सन्निहिता भव सन्निहिता भव, इह सन्निरुद्धा भव सन्निरुद्धा भव, मम पूजां गृहाण) ॥ १९६-१९७- ॥

[आवाहनी-स्थापनी-सन्निधापनी-सन्निरोधिनी मुद्राणां वर्णनम्]

एताः पूर्वोदिताश्चापि दर्शयेत् करयोः क्रिया ॥ १९८ ॥
तास्वादिमं करयुगं विशारि चलमन्वितम् ।
तदेवोत्तानितं मुद्रा स्थापनाख्याभिजायते ॥ १९९ ॥
निःसृताङ्गुष्ठकौ मुष्टी संहतौ सन्निधाय तम् ।
गूढाङ्गुष्ठैधितं तच्च सन्निरोधनमुच्यते ॥ २०० ॥
अमृतीकरणादीनि पूर्वमेवोदितानि ते ।
इति सामान्यतः प्रोक्ता आवाहनकरक्रिया ॥ २०१ ॥
विशेषमधुना वच्मि तत्तन्मन्त्रपुरःसराः ।

आवाहनी-स्थापनी-सन्निधापनी-सन्निरोधिनी मुद्राओं का वर्णन—हाथों में पूर्वोक्त एवं निम्नलिखित क्रियाओं का प्रदर्शन करना चाहिये । उनमें प्रथम मुद्रा है—आवाहनी । इसमें दोनों हाथों को सटाकर फैलाते हुए चलाना चाहिये । उसी को उत्तान कर स्थिर करने पर स्थापनी मुद्रा होती है । दोनों अँगूठों को बाहर निकाल कर दोनों मुट्ठियों को सटाना सन्निधापनी मुद्रा है । अँगूठों को अन्दर छिपाने के साथ मुट्ठी बाँधना सन्निरोधिनी मुद्रा होती है । अमृतीकरण आदि का वर्णन पहले किया जा चुका है । इस प्रकार सामान्य रूप से आवाहन कर क्रिया कही गयी । अब तत्तत् मन्त्रों के साथ विशेष क्रियाओं को कह रहा हूँ ॥ १९८-२०१- ॥

[आवाहनादेः मन्त्रनिर्देशः]

तारं मायां स्मरं पाशं समाभाष्य चतुष्टयम् ॥ २०२ ॥
श्रींकारादीनि पञ्चापि कालीनामाक्षराण्यतः ।
आगच्छ द्वितयं प्रोच्य दण्डादीन् पञ्च कीर्तयेत्॥ २०३ ॥
रावकूर्चौ शिरःशेषे मनुरावाहने मतः ।

आवाहन आदि के मन्त्र—तार माया स्मर पाश इन चार को कहकर श्रीकार आदि वाले कालीनाम के पाँच अक्षर कहने के बाद 'आगच्छ' को दो बार कहकर दण्ड आदि पाँचों को कहने चाहिये । राव कूर्च और अन्त में शिर—यह आवाहन के विषय में मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्लीं क्लीं आं श्रीगुह्यकालि आगच्छ आगच्छ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं फ्रें हूं स्वाहा) ॥ २०२-२०३- ॥

[देव्या: स्थापनमन्त्र:]

मैधं कामं च लक्ष्मीं च योगिनीं डाकिनीमपि ॥ २०४ ॥
तिष्ठ द्वन्द्वं सिद्धिकालीहयग्रीवान् सधर्मकान् ।
गरुडः शाकिनीरोषौ शिरोऽन्ते स्थापने मनुः ॥ २०५ ॥

देवी की स्थापना का मन्त्र—मैध काम लक्ष्मी योगिनी डाकिनी के बाद दो 'तिष्ठ' फिर सिद्धि काली हयग्रीव धर्म गरुड शाकिनी क्रोध और अन्त में शिर यह स्थापना के विषय में मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं श्रीं छ्रीं ख्फ्रें (श्रीगुह्यकालि) तिष्ठ तिष्ठ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं फ्रें हूं स्वाहा) ॥ २०४-२०५ ॥

[देव्या: सन्निधापनमन्त्र:]

तारमैधौ तथा पाशः क्षेत्रपालो वधूरपि ।
केशवः काकिनी नेमिश्छन्दो विद्यास्ततः परम् ॥ २०६ ॥
ततः सन्निहिताशब्दाद् भवान्तं युगलं वदेत् ।
रावकूर्चशिरांस्यन्ते सन्निधापनकृन्मनुः ॥ २०७ ॥

देवी का सन्निधापन मन्त्र—तार मैध पाश क्षेत्रपाल वधू केशव काकिनी नेमिछन्द विद्या के बाद 'सन्निहिता' शब्द के बाद 'भव' को दो बार कहना चाहिये । अन्त में राव कूर्च और शिर यह सन्निधापन करने का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं क्षौं स्त्रीं क्लीं फ्रीं फ्रूं क्रफ्रैं श्रः (श्रीगुह्यकालि) सन्निहिता भव सन्निहिता भव फ्रें हूं स्वाहा) ॥ २०६-२०७ ॥

[देव्या: सन्निरोधनमन्त्र:]

मैधपाशौ तारमाये फेत्कारी तदनन्तरम् ।
सन्निरुद्धा भवेत्यन्ते द्वितीयं तदनन्तरम् ॥ २०८ ॥
कल्पादिपञ्चकं पश्चात् रावः कूर्चं शिरस्तथा ।
सन्निरोधनकार्येषु मन्त्रस्तव मयोदितः ॥ २०९ ॥

देवी का सन्निरोधन मन्त्र—मैध पाश तार माया फेत्कारी उसके बाद 'सन्निरुद्धा' के अन्त में 'भव' को दो बार तदनन्तर कल्प आदि पाँच फिर राव कूर्च और शिर यह सन्निरोधन कार्य में तुमको मन्त्र बतलाया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं ओं ह्रीं ह्स्ख्फ्रें (श्रीगुह्यकालि) सन्निरुद्धा भव सन्निरुद्धा भव क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं फ्रें हूं स्वाहा) ॥ २०८-२०९ ॥

[विशेषमन्त्राभावे मन्त्रस्यास्य उपयोगिताया निर्देशः]

सर्वेषामन्ततो दद्यान् मूलमन्त्रं वरानने ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य रावबीजाद्यमेव हि ॥ २१० ॥
सर्वेष्वेवोपचारेषु मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।
विशेषमन्त्रो नो यत्र तत्रासौ मनुरिष्यते ॥ २११ ॥
यत्र यत्र विशेषोऽस्ति तं तं वक्ष्ये तवाधुना ।

विशेष मन्त्र के अभाव में उपयोज्य मन्त्र—हे वरानने! सबके अन्त में मूलमन्त्र कहना चाहिये । ङेऽन्त नाम का उच्चारण कर राव आदि बीज कहना चाहिये । (मन्त्र—मूल मन्त्र (= क्रीं?) श्रीगुह्यकाल्यै फ्रें हूं स्वाहा?) । यह मन्त्र सभी उपचारों में प्रयोज्य कहा गया है । जहाँ विशेष मन्त्र नहीं है, वहाँ इस मन्त्र का प्रयोग इष्ट होता है । जहाँ-तहाँ विशेष है उस-उस को अब मैं बतलाऊँगा ॥ २१०-२११ ॥

[उपकरणाभ्युक्षणविधिः]

पूर्वसंशोधितं द्रव्यं स्थापयित्वा शिवाग्रतः ॥ २१२ ॥
अभ्युक्ष्य सलिलेनैव धूमलाबीजमुच्चरन् ।
प्रवदेदमुकद्रव्याय नमस्तदनन्तरम् ॥ २१३ ॥
सम्पूज्य मूलमन्त्रं च पठित्वा तदनन्तरम् ।
ङेऽन्तां देवीं तथोल्लिख्य अमुकं द्रव्यमेव च ॥ २१४ ॥
निवेदयेन् मन्त्रपाठपूर्वकं सुरवन्दिते ।

उपकरणाभ्युक्षण विधि—पहले से संशोधित द्रव्य को शिवा के आगे रखकर जल से उसका अभ्युक्षण करने के बाद धूमला बीज का उच्चारण करते हुए 'अमुक द्रव्याय' कहे । उसके बाद 'नमः' कहना चाहिये । (उदाहरण के लिये 'वं आसनाय नमः' कहकर पूजा करनी चाहिये) इसके बाद पुनः मूलमन्त्र को पढ़कर ङेऽन्ता देवी (= श्रीगुह्यकाल्यै) अमुकं द्रव्यं (= आसनं निवेदयामि नमः) कहकर मन्त्रपाठपूर्वक द्रव्य का निवेदन करे) ॥ २१२-२१४- ॥

[आसनदानविधिः]

तत्रादावासनं दद्याद्दारवं काष्ठमेव च ॥ २१५ ॥
तस्य मन्त्रं शृणु शिवे वक्ष्यमाणं मया(ऽधुना) ।

तारो माया भूतिनी च लक्ष्मीः कामो वधूर्विधिः ॥ २१६ ॥
इदमासनमुच्चार्य गुह्यकाल्यै ततः परम्।
स्वाहान्तं समनूच्चार्य पादयोर्विनिवेदयेत्॥ २१७ ॥

आसनदान विधि—उपकरण निवेदन के सन्दर्भ में पहले देवदारु या किसी अन्य काष्ठ का आसन देना चाहिये । हे शिवे! अब उस विषय में मेरे द्वारा वक्ष्यमाण मन्त्र को सुनो—तार माया भूतिनी लक्ष्मी काम वधू विधि के बाद 'इदमासनम्' कहकर 'गुह्यकाल्यै स्वाहा' का उच्चारण कर पैरों में आसन देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं ख्फ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं रक्षछ्रीं इदमासनं गुह्यकाल्यै स्वाहा) ॥ २१५-२१७ ॥

[पाद्यदानविधि:]

ततः पूर्वोदितद्रव्यसहितं पाद्यमीश्वरि ।
गृहीत्वा वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण विनिवेदयेत् ॥ २१८ ॥
मैधमाये कामवधूशाकिन्यो डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी गुह्यकाल्यै ततः परम् ॥ २१९ ॥
इदं पाद्यमिति प्रोच्य नमः शेषे नियोजयेत् ।
इत्युच्चार्य शनैर्मूलमन्त्रान्ते पाद्यमुत्तमम् ॥ २२० ॥
दद्याच्चरणयोर्देव्या भक्तिभावेन साधकः ।

पाद्यदान विधि—हे ईश्वरि! इसके बाद पूर्वोक्त द्रव्यों से युक्त पाद्य को लेकर वक्ष्यमाण मन्त्र से (देवी के लिये उसे) अर्पण करना चाहिये । मैध माया काम वधू शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी के बाद 'गुह्यकाल्यै' उसके बाद 'इदं पाद्यं' कहकर अन्त में 'नम:' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लफ्रां ह्स्ख्फ्रें गुह्यकाल्यै इदं पाद्यं नम:) ।

इसका उच्चारण कर मूलमन्त्र के अन्त में साधक भक्तिभावपूर्वक देवी के चरणों में उत्तम पाद्य को अर्पित करे ॥ २१८-२२०- ॥

[अर्घदानविधि:]

पुनः पूर्वोदितैर्द्रव्यैरन्वितं शीतलं जलम्॥ २२१ ॥
शङ्खं (?ङ्खे) संस्थापितं कृत्वा मनुमेनमुदीरयेत्।
स्वाहापदेन वै दद्यादर्घं देव्यै वरानने॥ २२२ ॥
प्रणवं पाशरोषौ च मायां भौतं च बीजकम्।
श्मशानवासिनी ङेऽन्ता ङेऽन्तं नाम तथोच्चरेत्॥ २२३ ॥
एषोऽर्घः शिर इत्युक्त्वा दद्यादर्घं सुकल्पितम्।

अर्घ्यदान विधि—पुनः पूर्वोक्त द्रव्यों से युक्त शीतल जल को शङ्ख में रखकर इस (निम्नलिखित) मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । हे वरानने! 'स्वाहा' पद से देवी के लिये अर्घ्य देना चाहिये । प्रणव पाश रोष माया भौत बीजों के बाद ङेऽन्त 'श्मशानवासिनी' तथा ङेऽन्त नाम (= गुह्यकाली) का उच्चारण कर 'एषोऽर्घ' शिर कहकर सुकल्पित अर्घ देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं हूं ह्रीं स्फ्ह्ल्क्षैं श्मशानवासिन्यै गुह्यकाल्यै एषोऽर्घः स्वाहा) ॥ २२१-२२३- ॥

[आचमनीयदानविधिः]

जातीलवङ्गकक्लोलसहितं शीतलं जलम् ॥ २२४ ॥
गृहीत्वा मन्त्रमुच्चार्य सु(स्व ?)धाशब्दैर्मुखेऽर्पयेत् ।
मैधं कामो वधूप्रेतौ भैरवी हाकिनी तथा ॥ २२५ ॥
गुह्यकाली ततो ङेऽन्ता भगवत्यै पुरोऽन्विता ।
इदमाचमनीयं च शेषे दद्यात्सु(स्व ?)धापदम् ॥ २२६ ॥

आचमनीय दान विधि—जाती (= जायफल) लवङ्ग कङ्कोल सहित शीतल जल को लेकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण कर 'स्वधा' शब्द से मुख में आचमन देना चाहिये । मैध काम वधू प्रेत भैरवी हाकिनी उसके बाद ङेऽन्त 'गुह्यकाली' के पहले 'भगवत्यै' कह कर 'इदमाचमनीयम्' और अन्त में 'स्वधा' पद देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं स्त्रीं स्हौः सौः रक्षश्रीं भगवत्यै गुह्यकाल्यै स्वधा) ॥ २२४-२२६ ॥

[कस्यचिन्मते आचमनीयं शीतलजलमात्रम् न तु सुवासितं तदिति निर्देशः]

केवलं शीतलेनैव जलेनाचमनीयकम् ।
दद्याद्देव्यै स्वधाशब्दैर्मुखे वै कस्यचिन्मतम् ॥ २२७ ॥

कुछ लोगों के मत में शीतल जल ही आचमन है न कि सुवासित जल—किसी विद्वान् का यह मत है कि केवल शीतल जल से ही देवी के लिये 'स्वधा' कहते हुए आचमन देना चाहिये ॥ २२७ ॥

[मधुपर्कदानविधिः]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे मधुपर्कं निवेदयेत् ।
घृतं दधि मधु द्रव्यं समभागेन कल्पयेत् ॥ २२८ ॥
अधिकेनापि भवति तन्मुखे सु(स्व ?)धयाऽर्पयेत् ।
तारः पाशो वाग्भवश्च कूर्चः प्रासाद एव च ॥ २२९ ॥
चतुर्थ्यन्तां गुह्यकालीं ततः परमुदीरयेत् ।
एषो नु मधुपर्कश्च सु(स्व?)धां शेषे नियोजयेत् ॥ २३० ॥

मधुपर्कदान विधि—इसी अवसर पर (देवी के लिये) मधुपर्क भी देना चाहिये। घी दही और मधु को समभाग में लेना चाहिये। (कोई द्रव्य) अधिक भी हो सकता है। 'स्वधा' कहकर उसे मुख में अर्पित करना चाहिये। तार पाश वाग्भव कूर्च प्रासाद उसके बाद 'गुह्यकाली' पद को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं ऐं हूं हौं गुह्यकाल्यै एषो मधुपर्क: स्वधा) ॥ २२८-२३०॥

[पुनराचमनीयदानविधि:]

मधुपर्कानन्तरं च पुनराचमनीयकम्।
पुरोक्तेनैव मन्त्रेण दद्यात् साधकसत्तमः ॥ २३१ ॥

पुनः आचमनीय दान-विधि—मधुपर्क के बाद उत्तम साधक पूर्वोक्त आचमनीय मन्त्र से पुन: आचमनीय जल दे ॥ २३१ ॥

[स्नानीयजलदानविधि:]

स्नानीयार्थमथो पेयशीतलं स्वच्छमेव च।
निवेदयेच्छनैर्मूर्ध्नि कथ्यमानं मनुं पठन् ॥ २३२ ॥
तारह्रीकमलाकामवध्वो ङेऽन्ता तथेश्वरि।
इदं स्नानीयमुच्चार्य ब्रूयाच्छेषे नमः पदम् ॥ २३३ ॥
इति मूर्ध्नि प्रदातव्यं कुम्भस्थं शीतलं जलम्।

स्नानीय जलदान-विधि—(साधक) वक्ष्यमाण मन्त्र को पढ़ता हुआ स्वच्छ पेय शीतल जल से (देवी के) शिर पर स्नानीय जल धीरे से चढ़ाये। हे ईश्वरि! तार ह्रीं कमला काम तथा वधू के बाद ङेऽन्त (गुह्यकाली) के अनन्तर 'इदं स्नानीयं (जलं)' कहे और अन्त में 'नम:' पद कहे।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं गुह्यकाल्यै इदं स्नानीयं (जलं) नम:)।

यह कहकर कुम्भस्थ शीतल जल को शिर पर गिराना चाहिये ॥२३२-२३३- ॥

[वस्त्रदानविधि:]

ततः पूर्वोदितं वस्त्रं यथावैभवकल्पितम् ॥ २३४ ॥
दद्याद्देव्या अभावेऽपि केवलं कुसुमं तथा।

वस्त्रदान-विधि—इसके बाद पूर्वोक्त तथा अपनी सम्पत्ति के अनुसार बनाया गया वस्त्र देवी को देना चाहिये। (यदि वस्त्र का) अभाव हो तो केवल पुष्प देना चाहिये ॥ २३४-२३४- ॥

[वस्त्रार्पणमहत्त्वख्यापनम्]

वस्त्रार्पणेन तु विना पूजा भवति निष्फला ॥ २३५ ॥
अतो दद्यात् पुष्पमपि वस्त्राभावे सुरेश्वरि।

वस्त्रार्पण का महत्त्व—वस्त्रार्पण के विना पूजा व्यर्थ होती है । हे सुरेश्वरि! इसलिये वस्त्र के न मिलने पर पुष्प ही देना चाहिये ॥ २३५-२३५- ॥

[वस्त्रार्पणमन्त्रः]

तस्य मन्त्रं शृण्विदानीं कीर्त्यमानं मया शनैः ॥ २२६ ॥
मैधं पाशो भौवनेशी रोषो नृहरिरेव च ।
सम्बुद्धिर्भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततः परम् ॥ २३७ ॥
इदं वस्त्रमिति प्रोच्य तेऽर्पयामि ततः परम् ।
परिधत्स्व ततश्चापि विजयो मन्द एव च ॥ २३८ ॥
सम्मोहः पतनं चापि शेषे संहार उच्यते ।
कूर्चास्त्रहार्दशीर्षाणि मन्त्रो वस्त्रार्पणे मतः ॥ २३९ ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य मूलमन्त्रं ततो वदेत् ।
द्रव्यनाम ततः प्रोच्य देवीनाम तथा ततः ॥ २४० ॥
नमः पदेन चोत्सृज्य प्रदद्याद् भक्तिभावितः ।
एष एव हि विज्ञेयः सर्वत्रैव क्रमः प्रिये ॥ २४१ ॥
विशेषं कञ्चिदाचक्षे तन्निशामय पार्वति ।

वस्त्रार्पण-मन्त्र—अब मेरे द्वारा कहे जाने वाले मन्त्र को धीरे से सुनो । मैध पाश भौवनेशी रोष नृसिंह के बाद 'भगवती' का सम्बोधन, उसके बाद 'गुह्यकाली' का सम्बोधन फिर 'इदं वस्त्रं' कहकर फिर 'तेऽर्पयामि' कहना चाहिये । फिर 'परिधत्स्व' के पश्चात् विजय मन्द सम्मोह पतन अन्त में संहार कहा जाता है । फिर कूर्च अस्त्र हृदय और शिर यह मन्त्र वस्त्रार्पण के विषय में कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं ह्रीं हूं क्ष्रौं भगवति गुह्यकालि इदं वस्त्रं तेऽर्पयामि परिधत्स्व ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रं ह्स्फ्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर पुनः मूलमन्त्र कहना चाहिये । द्रव्य नाम कहकर देवीनाम फिर 'नमः' पद से उत्सृर्जन कर भक्तिपूर्वक वस्तु का अर्पण करना चाहिये । हे प्रिये! यही क्रम सर्वत्र जानना चाहिये । हे पार्वति! अब कुछ विशेष कह रहा हूँ, उसको सुनो ॥ २३६-२४१- ॥

[मृतचेलतन्तुदानविधानम्]

अस्मिन्नेव क्षणे देया मृतचेलस्य तन्तवः ॥ २४२ ॥

मृतवस्त्रतन्तु का दान—इसी क्षण मुर्दा के कफन के धागों को देना चाहिये ॥ २४२ ॥

[मृतचेलतन्तोः महत्त्वख्यापनम्]

नैतत्तुल्या भविष्यन्ति देविप्रीतिकराः पटाः ।
न क्षौमं राङ्कवं चापि नैवोर्णादिविनिर्मितम् ॥ २४३ ॥

न पट्टग्रथितं चापि न रागै रञ्जितं तथा ।
न पत्रोर्णं न शाटी च वस्त्राण्यन्यानि नापि च ॥ २४४ ॥
देवीप्रीतिकरास्ते स्युः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।
यथा मृतांशुतन्त्वंशो देव्याः सन्तोषकारकः ॥ २४५ ॥
न तत्र निन्दा कर्तव्या न घृणा नापि गर्हणा ।
मृतचेलाञ्चलं देयं देव्याः प्रीतिकरं सदा ॥ २४६ ॥

कफन के धागे का महत्त्व—इसके समान देवी को प्रसन्न करने वाले दूसरे वस्त्र नहीं हैं। न रेशमी, न राङ्कव (= रङ्कु नामक हरिण के बालों से बना हुआ), न ऊन आदि से रचित, न पाट से बना, न रङ्गों से रङ्गा हुआ, न ऊनी कपड़ा, न साड़ी, न अन्य वस्त्र देवी को प्रसन्न करने वाले होते हैं। हे सुरेश्वरि! यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ। चूँकि मृतव्यक्ति के कपड़ों का एक खण्ड भी देवी की प्रसन्नता को बढ़ाता है अत: उस विषय में निन्दा घृणा गर्हणा नहीं करनी चाहिये। मृतवस्त्र का आँचल देवी के लिये सदा आनन्ददायक होता है ॥ २४३-२४६ ॥

[मृतचेलतन्तुदानमन्त्र:]

तस्य मन्त्रं समाचक्षे निशामय सुरेश्वरि ।
तारो मैधश्च पाशश्च जम्भश्चापि प्रचण्डया ॥ २४७ ॥
कर्णिकापद्मकुटिला मणिमाला उदीरयेत् ।
इदं प्रेतांशुकं प्रोच्य ततस्तुभ्यमहं ददे ॥ २४८ ॥
अर्पयामि च गन्धाढ्यं परिधत्स्वेदमेव च ।
मम सिद्धिं दद युगं देहि युग्मं तथैव च ॥ २४९ ॥
श्मशानवासिनि प्रोच्य रोषत्रितयमीरयेत् ।
फट्त्रयान्ते हृच्छिरसी मृतचेलार्पणे मनुः ॥ २५० ॥

मृतवस्त्र के दान का मन्त्र—हे सुरेश्वरि! उसके मन्त्र को बतला रहा हूँ। सुनो—तार मैध पाश जम्भ प्रचण्डा कर्णिका पद्म कुटिला मणिमाला का कथन करना चाहिये। फिर 'इदं प्रेतांशुकं' कहकर 'तुभ्यमहं सम्प्रददे अर्पयामि च गन्धाढ्यं इदमेव परिधत्स्व मम सिद्धिं' के बाद दो 'दद' दो 'देहि' 'श्मशानवासिनि' कहकर तीन रोष तीन फट् के अन्त में हृदय और शिर—यह मृतवस्त्र के अर्पण का मन्त्र है।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं स्त्रखफ्रैं खफ्रूं क्ष्रर्ह्लीं रह्लछ्रक्षहूं रक्षफ्रछूं रजझक्ष्रूं इदं प्रेतांशुकं तुभ्यमहं सम्प्रददे अर्पयामि गन्धाढ्यं इदमेव परिधत्स्व मम सिद्धिं दद दद देहि देहि श्मशानवासिनि हूं हूं हूं फट् फट् फट् नम: स्वाहा) ॥ २४७-२५० ॥

[अलङ्कारदानविधि:]

ततः स्वर्णादिघटितोऽलङ्कारः खलु दीयते ।
देव्यै तस्य मनुं वक्ष्ये तेन मन्त्रेण दीयते ॥ २५१ ॥

चैतन्यं भौवनेशी च कामः प्रेतश्च भैरवी ।
गुह्यकाल्यै समुच्चार्य इदमाभरणं वदेत् ॥ २५२ ॥
नमः स्वाहा च चरमेऽलङ्काराद्यर्पणे मनुः ।
मूलमन्त्रस्तु सामान्यस्तेन नायं प्रसिद्ध्यति ॥ २५३ ॥
विशेषो यद्यपि शिवे तस्माद् युग्ममपेक्षते ।
एवं सर्वत्रैव बोध्यं पुनः पुनरिदं वदेत् ॥ २५४ ॥

अलङ्कारदान-विधि—इसके बाद स्वर्ण आदि से बना हुआ आभूषण देवी के लिये दिया जाता है । उसका मन्त्र बतलाऊँगा । उस मन्त्र से (अलङ्कार) दिया जाता है । चैतन्य भौवनेशी काम प्रेत भैरवी के बाद 'गुह्यकाल्यै' कहकर 'इदमाभरणं' कहना चाहिये । अन्त में 'नमः स्वाहा' । यह अलङ्कार आदि के अर्पण के विषय में मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं ह्रीं क्लीं स्हौः सौः गुह्यकाल्यै इदमाभरणं (क्रीं?) नमः स्वाहा) ।

मूलमन्त्र तो सामान्य अर्थात् सर्वत्र पढ़ा जानेवाला है, इस कारण इसकी सिद्धि नहीं बतलायी जाती । यद्यपि विशेष मन्त्र कहा जाता है तथापि दोनों (= सामान्य और विशेष) की अपेक्षा होती है । इस प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये । इस (मन्त्र द्वय) को बार-बार कहना चाहिये ॥ २५१-२५४ ॥

[गन्धदानविधिः]

अतः परं गन्धदानमन्त्रं समुपवर्णये ।
द्रव्याणि पूर्वमुक्तानि मन्त्रमाकर्णयाधुना ॥ २५५ ॥
तारो माया च रावश्च योगिनी कमला स्मरः ।
एष गन्धो भगवती ङेऽन्ता मूलाभिधानयुक् ॥ २५६ ॥
कूर्चास्त्रशीर्षाण्यन्ते च गन्धदानमनुः स्मृतः ।

गन्धदान-विधि—इसके पश्चात् गन्धदान के मन्त्र का वर्णन कर रहा हूँ । (गन्ध के) द्रव्य पहले बतला दिये गये, अब मन्त्र को सुनो । तार माया राव योगिनी कमला काम 'एष गन्धो' फिर 'भगवती' को ङेऽन्त कहकर मूलमन्त्र को भी कहना चाहिये । अन्त में कूर्च अस्त्र और शिर यह गन्धदान का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं फ्रें छ्रीं श्रीं क्लीं एष गन्धो भगवत्यै गुह्यकाल्यै (क्रीं ?) हुं फट् स्वाहा) ॥ २५५-२५६- ॥

[अनङ्गगन्धस्य महत्त्वख्यापनम्]

चन्दनादगुरुभ्योऽपि कुङ्कुमाद् घनसारतः ॥ २५७ ॥
मृगनाभेरपि तथा कक्कोलाच्च लवङ्गतः ।

जातीफलात्तथा काशाद् यक्षकर्दमतोऽपि च ॥ २५८ ॥
एकं वस्त्वस्ति गन्धार्थं देव्याः प्रीतिकरं परम् ।
तद्दानफलबाहुल्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ २५९ ॥
सा सन्तुष्टा यथैतेन न तथा प्रथमोदितैः ।
वस्तुभिर्जायते तुष्टाऽत एतत् साधकोऽर्पयेत् ॥ २६० ॥
न तत्र कुर्वीत घृणां न निन्दां नापि च त्रपाम् ।
सन्तोषस्तद्द्रवैर्देव्या अत एव समर्पयेत् ॥ २६१ ॥
सैव वेत्ति न जानेऽहं क आमोदोऽत्र वर्तते ।
तद्द्रव्यमधुना वक्ष्ये देवीप्रीतिप्रदं महत् ॥ २६२ ॥

अनङ्गगन्ध का महत्त्व—चन्दन, अगर, कुङ्कुम, कपूर, कस्तूरी, कङ्कोल, लवङ्ग, जायफल, काश (= एक प्रकार की सुगन्धयुक्त घास), यक्षकर्दम[1] (= एक प्रकार का लेप जिसमें कपूर अगर कस्तूरी और कङ्कोल समान मात्रा में डाले जाते हैं। अन्य मतानुसार इसमें चन्दन और केसर भी मिलाया जाता है) से भी बढ़कर एक वस्तु ऐसी है जो देवी के लिये परम प्रीतिकर है । उसके दान के फल की अधिकता का वर्णन नहीं किया जा सकता । वह देवी जितना इससे सन्तुष्ट होती है उतना पूर्वोक्त वस्तुओं से नहीं । इसलिये साधक को चाहिये कि इसका अर्पण करे। उसमें घृणा निन्दा और लज्जा नहीं करनी चाहिये । उसके द्रव से देवी को सन्तोष मिलता है इसलिये उसका समर्पण करना चाहिये । इसमें क्या आनन्द है इसको वही जानती है, मैं नहीं । अब देवी को प्रसन्न करने वाले उस द्रव्य को मैं कहूँगा ॥ २५७-२६२ ॥

[अनङ्गगन्धपरिचयः]

यदष्टादशवार्षिक्या न्यूनाया अपि वा भवेत् ।
आर्तवं मासिकं यत्स्यादाद्याहोजातशोणितम् ॥ २६३ ॥
अनङ्गगन्धस्तन्नाम नाधिकायाः कदाचन ।
न द्वितीयदिनोद्भासि न तृतीयदिनागतम् ॥ २६४ ॥
यथा यथाल्पवयसः प्रशस्तं हि तथा तथा ।
तद्दानफलबाहुल्यं वक्तुमेव न शक्यते ॥ २६५ ॥
स्वयमागत्य सा देवी गृह्णाति शिरसार्पितम् ।
तस्माद् घृणां न कुर्वीत तद्दाने प्रयतेत वै ॥ २६६ ॥

अनङ्गगन्ध का परिचय—अठारह वर्ष या उससे कम वय की लड़की के पहली बार के प्रथम दिन का जो रक्त अर्थात् मासिक धर्म उसको अनङ्गगन्ध कहा जाता है।

---

[1] कर्पूरागुरुकस्तूरीकङ्कोलैर्यक्षकर्दमः ।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरी कर्पूरं चन्दनं तथा ।
महासुगन्धमित्युक्तं नामतो यक्षकर्दमः ॥

अधिक अवस्था वाली का नहीं । (अठारह या उससे कम वय की लड़की के प्रथम बार का) दूसरे तीसरे दिन का भी मासिक (स्राव) अनङ्गगन्ध नहीं है । जितनी ही कम उम्र की बालिका होगी उसका अनङ्गगन्ध उतना ही उत्तम माना जाता है । उसके दान के फल का बाहुल्य कहा नहीं जा सकता । उस अर्पित अनङ्गगन्ध को देवी स्वयं आकर शिर झुकाकर लेती है । इसलिये घृणा नहीं करनी चाहिये वरन् उसके दान के लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥ २६३-२६६ ॥

[अनङ्गगन्धदानमन्त्रः]

अनङ्गगन्धदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ।
तारवाग्भवपाशाश्च प्रासादः कमला स्मरः ॥ २६७ ॥
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ।
क्रोधरावौ च भूतार्णं प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ॥ २६८ ॥
ङेऽन्तं रतिप्रियाशब्दं प्रोच्चरेन् मनुबीजतः ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्यमेष तन्नाम चोद्धरेत् ॥ २६९ ॥
ससन्धियुक्तः कर्तव्यः स्त्रीबीजं तदनन्तरम् ।
हार्दमन्त्रं समुच्चार्य सु(स्व?)धा देव्यै तमर्पयेत्॥ २७० ॥

अनङ्गगन्धदान का मन्त्र—हे प्रिये! अब अनङ्गगन्ध के दान का मन्त्र सुनो—तार वाग्भव पाश प्रासाद कमला स्मर डाकिनी प्रलय फेत्कारी उसके बाद क्रोध राव भूत प्रेत भैरवी के बाद ङेऽन्त 'रतिप्रिया' शब्द का उच्चारण करना चाहिये । मन्त्रबीज के बाद ङेऽन्त उस नाम का उच्चारण कर 'एषः' के बाद उसका नाम उद्धृत करना चाहिये । उसके सन्धियुक्त स्त्रीबीज कहना चाहिये । हृदय मन्त्र का उच्चारण कर 'देव्यै स्वधा' कहकर उस (= अनङ्गगन्ध) का अर्पण करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं ख्फ्रें क्लफ्रां हसखफ्रें हूं फ्रं स्फ्रों स्हौः सौः रतिप्रियायै क्रीं गुह्यकाल्यै एष अनङ्गगन्धः स्त्रीं नमः देव्यै स्वधा) ॥२६७-२७०॥

[स्वयम्भूपुष्पपरिचयः]

जाताद्यरजसो नार्या यदाद्यदिनसम्भवम् ।
पुष्पं स्वयम्भूपुष्पं तत्तदानन्त्याय कल्पयेत् ॥ २७१ ॥
न सौवर्णेन पुष्पेण न मुक्तामणिभिस्तथा ।
न धूपदीपैर्नैवद्यैर्नापि पूजादिभिः स्तवैः ॥ २७२ ॥
न होमैर्न जपैर्नापि तर्पणैः प्रीयते शिवा ।
यथा स्वयम्भूपुष्पेण प्रीयते जगदम्बिका ॥ २७३ ॥
तत्रापि परयोषाया इत्यागमसुगोपितम् ।

स्वयम्भू पुष्प परिचय—प्रथम रजस्वला नारी के प्रथम दिन का पुष्प (= रजस्) स्वयम्भूपुष्प कहा जाता है । उसकी महिमा अनन्त है । स्वर्णनिर्मित पुष्प मुक्तामणि

धूप दीप नैवेद्य पूजा स्तुति होम जप तर्पण से शिवा उतनी प्रसन्न नहीं होती जितनी कि स्वयम्भू पुष्प से यह जगदम्बा प्रसन्न होती है । उसमें भी यदि दूसरी (= पराये घर या कुल की) हो तो क्या कहना—यह आगमों में सुगोपित है ॥ २७१-२७३-॥

[स्वयम्भूपुष्पदानमन्त्र:]

अधुना कथ्यते तस्य दानमन्त्रो मया तव ॥ २७४ ॥
प्रणवादी त्रपारत्यौ ङेऽन्तं नाम ततो वदेत् ।
नादान्तकादींश्चतुरो वर्णांस्तदनु कीर्तयेत् ॥ २७५ ॥
क्रोधं पाशं समुद्धृत्य ङेऽन्ता च भगमालिनी ।
वाग्भवं च वधूबीजं ङेऽन्ता चापि भगप्रिया ॥ २७६ ॥
पिशाचिनी च कमला ङेऽन्ता च मदनातुरा ।
एतत्पुष्पस्य नामापि नम इत्यक्षरद्वयम् ॥ २७७ ॥
उच्चार्य दद्यात् तद्देव्यै सर्वकामार्थसिद्धये ।
मनसोऽभीष्टमाप्नोति दत्त्वैतत् पुष्पमुत्तमम् ॥ २७८ ॥

स्वयम्भू पुष्पदान का मन्त्र—अब उसके दान का मन्त्र मैं तुमको बतला रहा हूँ। प्रणव फिर त्रपा रति उसके बाद ङेऽन्त नाम कहना चाहिये । उसके बाद नादान्तक आदि चार वर्णो को कहना चाहिये । क्रोध पाश को उद्धृत कर ङेऽन्त 'भगमालिनी' कहना चाहिये । वाग्भव वधू बीज के बाद ङेऽन्त 'भगप्रिया' पिशाचिनी कमला के बाद ङेऽन्त 'मदनातुरा' फिर इस पुष्प का नाम और 'नम:' इस दो अक्षर का उच्चारण कर सर्वकामार्थसिद्धि के लिये देवी को उसे देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं क्लूं गुह्यकाल्यै खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्षौं हूं आं भगमालिन्यै, ऐं स्त्रीं भगप्रियायै, ठ: श्रीं मदनातुरायै स्वयम्भूपुष्पं नम:) ॥ २७४-२७८ ॥

[रतिपुष्पपरिचय:]

एवं परस्त्रीसङ्गेन यद्रेत: स्खलितं भवेत् ।
रतिपुष्पं तदाख्यातं न स्वीयाया: कदाचन ॥ २७९ ॥

रतिपुष्प का परिचय—इसी प्रकार परस्त्री के साथ समागम करने से जो वीर्य गिरता है वह रतिपुष्प कहा गया है किन्तु अपनी स्त्री के साथ का (समागम करने पर गिरनेवाला) नहीं ॥ २७९ ॥

[रतिपुष्पोत्सर्गमन्त्र:]

तत्प्रदानमनुं वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
तारं मैधं क्षेत्रपालं मारमायारुष: स्मर: ॥ २८० ॥
धन्यं घटी च ह्रां ह्रीं ह्रूं एतत्त्रितयमुद्धरेत् ।
भगप्रिये चेति पदं भगमालिनि चेत्यपि ॥ २८१ ॥

रतिपुष्पमिति स्मृत्वा गृह्ण गृह्णेति कीर्तयेत् ।
भक्षयेति द्विरुच्चार्य मम शत्रूंस्ततो वदेत् ॥ २८२ ॥
नाशयोच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पचापि च ।
मथ विध्वंसय तथा मारय द्रावयापि च ॥ २८३ ॥
युगं युगं दश भवेन्मायाग्निदयितायुतः ।
प्रदाने रतिपुष्पस्य महामन्त्रोऽयमीरितः ॥ २८४ ॥

रतिपुष्पदान-मन्त्र—अब उसके दान का मन्त्र बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो । तार मैध क्षेत्रपाल मार माया क्रोध स्मर धन्य घटी के बाद 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन तीन को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद 'भगप्रिये' भगमालिनि रतिपुष्पं' को कहकर 'गृह्ण गृह्ण' कहना चाहिये । 'भक्षय' का दो बार उच्चारण कर उसके बाद 'मम शत्रून्' कहना चाहिये । 'नाशय उच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पच मथ विध्वंसय मारय द्रावय इन दश को दो-दो बार फिर माया अग्निदयिता ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं क्षौं क्लीं ह्रीं ह्रूं क्लीं ह्ग्लीं रक्षफ्रछ्रौं ह्रां ह्रीं ह्रूं भगप्रिये भगमालिनि रतिपुष्पं गृह्ण गृह्ण भक्षय भक्षय मम शत्रून् नाशय नाशय उच्चाटय उच्चाटय हन हन त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय मारय मारय द्रावय द्रावय ह्रीं स्वाहा) ।

रतिपुष्पदान के विषय में यह महामन्त्र बतलाया गया ॥ २८०-२८४ ॥

[रतिपुष्पदानस्य फलश्रुतिः]

रतिपुष्पप्रदाता हि शिव एव न संशयः ।
सर्वविद्योपविद्यानां पारगः स हि जायते ॥ २८५ ॥
तस्यालोकनमात्रेण निःप्रभाः स्युर्हि वादिनः ।
गद्यानि पद्यानि तथा निःसरन्ति तदास्यतः ॥ २८६ ॥
अन्यजातिः स्वेष्टसिद्धिं प्राप्नोति विभवं तथा ।

रतिपुष्प दान का फल—रतिपुष्प को देनेवाला निःसन्देह शिव ही हो जाता है । वह समस्त विद्याओं का पारङ्गत होता है । उसके देखने मात्र से शत्रु निस्तेज हो जाते हैं । उसके मुख से (संस्कृत के) गद्य-पद्य (अपने आप) निकलने लगते हैं । (ब्राह्मण से) भिन्न जातिवाला हो तो अपने इष्ट की सिद्धि और वैभव प्राप्त करता है ॥ २८५-२८६- ॥

[पुष्पदानविधिः]

अतः परं पुष्पदानमाकर्णय शुचिस्मिते ॥ २८७ ॥
पुष्पाणि पूर्वमुक्तानि युक्तायुक्ततया प्रिये ।

पुष्पदान-विधि—हे शुचिस्मिते! इसके बाद पुष्प-दान को सुनो । हे प्रिये! युक्त और अयुक्त की दृष्टि से पुष्पों का वर्णन पहले किया जा चुका है ॥ २८७- ॥

[पुष्पोत्सर्गमन्त्र:]

तद्दानमन्त्रमधुना समाकलय भामिनि ॥ २८८ ॥
गायत्रीमुखचैतन्यकामस्त्रीकमलात्रपा: ।
चण्डाट्टहासिनि प्रोच्य महापिङ्गलतो जटे ॥ २८९ ॥
भगवत्या गुह्यकाल्या: सम्बोधनपदं तत: ।
एतानि पुष्पाण्युल्लिख्य गृह्णद्वन्द्वं ततो वदेत् ॥ २९० ॥
सौख्यं च देहि युगलं श्मशानानु विहारिणि ।
कूर्चमन्त्रं नम: स्वाहा सर्वशेषे नियोजयेत् ॥ २९१ ॥
सर्वत्र मूलमन्त्रान्ते तत्तद्द्रव्यं नमोऽपि च ।

पुष्पोत्सर्ग-मन्त्र—हे भामिनि! अब उसके दान का मन्त्र सुनो—गायत्रीमुख चैतन्य काम स्त्री कमला त्रपा के बाद 'चण्डाट्टहासिनि' कहकर 'महापिङ्गल' के बाद 'जटे' फिर 'भगवती गुह्यकाली' का सम्बोधन पद तत्पश्चात् 'एतानि पुष्पाणि' का उल्लेख कर 'गृह्ण' को दो बार कहना चाहिये । 'सौख्यं च' के बाद 'देहि' को दो बार 'श्मशान' के बाद 'विहारिणि' फिर कूर्चमन्त्र सबके अन्त में 'नम: स्वाहा' जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं क्लीं स्त्रीं श्रीं ह्रीं चण्डाट्टहासिनि महापिङ्गलजटे भगवति गुह्यकालि एतानि पुष्पाणि गृह्ण गृह्ण सौख्यं च देहि देहि, श्मशानविहारिणि हूं नम: स्वाहा) ।

इसी प्रकार सर्वत्र मूलमन्त्र के अन्त में तत्तद् द्रव्य का नाम एवं 'नम:' कहना चाहिये ॥ २८८-२९१- ॥

[मालादानविधौ अवसरविषयकमतभेदनिर्देश:]

अस्मिन्नेव क्षणे देव्यै केचिन्मालां ददत्यपि ॥ २९२ ॥
केचिदारार्त्रिकात् पूर्वं पुर एव प्रशस्यते ।
एकपुष्पादिरचिते भिन्नो मनुरुदीर्यते ।
नानाप्रसूनैर्घटिते भिन्नो मन्त्र: प्रकीर्तित: ॥ २९३ ॥

मालादान के अवसर विषयक मतभेद—कुछ लोग इसी अवसर पर देवी के लिये माला भी देते हैं । कुछ लोग आरती के पहले देते हैं । पहलेवाला मत प्रशस्त माना जाता है । एक प्रकार के पुष्पों से रचित माला के विषय में भिन्न मन्त्र कहा जाता है । अनेक प्रकार के फूलों से रचित माला अर्पण का मन्त्र भिन्न कहा गया है ॥ -२९२-२९३ ॥

[एकपुष्परचितमालादानमन्त्रः]

तारमैधे त्रपाकामौ योगिनी शाकिनी वधूः ।
मालाबीजं ततोऽप्येषा मालापदमुदीरयेत् ॥ २९४ ॥
भगवत्यै गुह्यकाल्यै व्युत्क्रमादष्ट तानि च ।
बीजानि समनूद्धृत्य कूर्चास्त्राग्न्यङ्गना च हृत् ॥ २९५ ॥
इत्येकजातिकुसुमरचितायां स्रजीरयेत् ।

एकपुष्परचित मालादान का मन्त्र—तार मैध त्रपा काम योगिनी शाकिनी वधू माला बीज के बाद 'एषा माला' पद कहना चाहिये । 'भगवत्यै गुह्यकाल्यै' के बाद उल्टे क्रम से उन पूर्वोक्त आठ बीजों को उद्धृत कर कूर्च अस्त्र अग्निस्त्री और हृदय कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्लीं क्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं ज्रैं एषा माला भगवत्यै गुह्यकाल्यै ज्रैं स्त्री फ्रें छ्रीं क्लीं ह्लीं ऐं ओं हूं फट् स्वाहा नमः) ।

एक जाति के फूलों से रचित माला के विषय में यह मन्त्र कहना चाहिये ॥ २९४-२९५- ॥

[नानापुष्पनिर्मितमालादानमन्त्रः]

अथापरं शृणु मनुं नानापुष्पस्रगर्पणे ॥ २९६ ॥
चैतन्यं कमला माया ततः पाशाङ्कुशावपि ।
प्रासादप्रेतभैरव्यो ङेऽन्ता सिद्धिकराल्यपि ॥ २९७ ॥
श्मशानवासिनी ङेऽन्ता व्युत्क्रमात् तानि चाष्ट वै।
कूर्चास्त्रे शिर उच्चार्य नमः शेषे नियोजयेत् ॥ २९८ ॥
इति नानापुष्पजातिविनिर्माणस्रगर्पणा ।

अनेक पुष्प निर्मित मालादान का मन्त्र—अब अनेक जाति के पुष्पों से रचित माला के अर्पण के विषय में मन्त्र को सुनो—चैतन्य कमला माया पाश अङ्कुश प्रासाद प्रेत भैरवी बीजों के बाद ङेऽन्त 'सिद्धिकराली' ङेऽन्त 'श्मशानवासिनी' फिर व्युत्क्रम से वे आठ बीज फिर कूर्च अस्त्र शिर और अन्त में 'नमः' जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं श्रीं ह्लीं आं क्रों हौं स्हौः सौः सिद्धिकराल्यै श्मशानवासिन्यै सौः स्हौः हौं क्रों आं ह्लीं श्रीं ऐं फट् स्वाहा नमः) ।

यह अनेक जाति के पुष्पों के अर्पण का मन्त्र है ॥ २९६-२९८- ॥

[स्रगर्पणस्य समयविषये मतभेदनिर्देशपूर्वकं स्वमताभिधानम्]

स्रगर्पणं तु केषाञ्चित् पुष्पदानादनु स्मृतम् ॥ २९९ ॥
केषामपि भवेदारार्त्रिकदानात् पुरः प्रिये ।
मन्मतं तु प्रसूनानां दानादनु विधीयते ॥ ३०० ॥

माला देने के समय के विषय में मतभेद एवं अपना मत—हे प्रिये! कुछ लोगों के मत में माला का अर्पण पुष्पदान के बाद होना चाहिये । अन्य लोगों के अनुसार आरती के पहले । मेरे मत में पुष्पों के दान के बाद माला देनी चाहिये ॥ २९९-३०० ॥

[सिन्दूरदानविधिः]

ततः सिन्दूरमानीय महारागि च नागजम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देव्याः सीमन्तसीमनि ॥ ३०१ ॥
प्रदद्यात् कुसुमे कृत्वा न तु हस्तेन पार्वति ।

सिन्दूरदान-विधि—हे पार्वति! इसके बाद पारा से बने हुए गाढ़े रङ्ग का सिन्दूर ले आकर वक्ष्यमाण मन्त्र से देवी की माँग में पुष्प के द्वारा देना चाहिये, हाथ से नहीं ॥ ३०१-३०१- ॥

[सिन्दूरोत्सर्गमन्त्रः]

मैधतारौ रमामाये मन्मथः कामिनी तथा ॥ ३०२ ॥
मेघनीला भगवती चण्डकापालिनी तथा ।
सम्बुद्ध्यन्तं त्रयं प्रोच्य वदेद् दण्डादिपञ्चकम् ॥ ३०३ ॥
इदं सिन्दूरमिति च ततो गृह्णद्वयं पठेत् ।
ज्वलयुग्मं समाभाष्य प्रज्वलद्वितयं ततः ॥ ३०४ ॥
स्फुरयुग्मं समाभाष्य प्रस्फुरद्वितयं वदेत् ।
महाङ्कुशो महानङ्गो महामारी तथैव च ॥ ३०५ ॥
महाद्रावो महामाया बीजानीमानि पञ्च च ।
हूं फट् स्वाहेति चरमे सिन्दूरस्यार्पणे मनुः ॥ ३०६ ॥

सिन्दूरदान-मन्त्र—मैध तार रमा माया काम कामिनी के बाद 'मेघनीला भगवती चण्डकापालिनी' इन तीनों का सम्बोधनान्त कहकर दण्ड आदि पाँच का कथन करना चाहिये । इसके बाद 'इदं सिन्दूरं' कहकर 'गृह्ण' को दो बार पढ़ना चाहिये । दो 'ज्वल' कहकर दो 'प्रज्वल' कहना चाहिये । फिर दो 'स्फुर' कहकर दो 'प्रस्फुर' बोलना चाहिये । तत्पश्चात् महाङ्कुश महाऽनङ्ग महामारी महाद्राव महामाया इन पाँच बीजों को कहकर अन्त में 'हूं फट् स्वाहा' ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लूं मेघनीले भगवति चण्डकापालिनि ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं सिन्दूरं गृह्ण गृह्ण ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर रक्लां रक्लीं रक्लूं रक्लैं रक्लौं हूं फट् स्वाहा) ।

यह सिन्दूर के अर्पण के मन्त्र है ॥ ३०२-३०६ ॥

[अञ्जनदानविधिः]

ततः पूर्वोदितं नेत्रशोभार्थमञ्जनाह्वयम् ।

प्रदातव्यं साधकेन नित्यपूजाविधावपि ॥ ३०७ ॥
नेत्राञ्जनं प्रसूनेन गृहीत्वा तदनन्तरम् ।
भक्त्या देव्यै प्रदातव्यं कथ्यमानं मनुं पठन् ॥ ३०८ ॥

अञ्जनदान-विधि—इसके बाद नेत्र की शोभा के लिये साधक नित्यपूजा में भी अञ्जन नामक नेत्राञ्जन पुष्प से लेकर, भक्तिपूर्वक वक्ष्यमाण मन्त्र को पढ़ता हुआ देवी के लिये अर्पण करे ॥ ३०७-३०८ ॥

[अञ्जनदानमन्त्रः]

पाशाङ्कुशौ तु मैधादिप्रासादप्रेतभैरवी ।
सौमतं च प्रतानं च महाचण्डपदादनु ॥ ३०९ ॥
योगेश्वरि समुद्धृत्य भोगवत्यथ कीर्तयेत् ।
महाभोगपदाद् ज्ञेयं लोलुपे पदमीश्वरि ॥ ३१० ॥
इदमञ्जनमाभाष्य ततो गृह्णयुगं वदेत् ।
उक्त्वा गृह्णापय युगं नेत्राञ्जनपदं सकृत् ॥ ३११ ॥
ततो मयि कृपादृष्टिं कुरुयुग्ममनन्तरम् ।
हारिंण्युत्कोचिनी तन्त्रा कुटिला रञ्जनी घटी ॥ ३१२ ॥
कूर्चमस्त्रं हृच्छिरसी मन्त्रो नेत्राञ्जनार्पणे ।
स्थानं यद्यत् परिख्यातं यस्य यस्य हि वस्तुनः ॥ ३१३ ॥
तत्तत्स्थानं धिया ध्यात्वा दद्यात् तद्वस्तु साधकः ।

अञ्जनदान का मन्त्र—पाश अङ्कुश मैध प्रासाद प्रेत भैरवी सौमत प्रतान बीजों के बाद 'महाचण्ड' पद के पश्चात् 'योगेश्वरि' कहकर 'भोगवति' कहना चाहिये । हे ईश्वरि! 'महाभोग' पद के बाद 'लोलुपे' पद जानना चाहिये । 'इदं अञ्जनं' कहकर 'गृह्ण' को दो बार कहने के बाद दो 'गृह्णापय' 'नेत्राञ्जनं' पद को एक बार फिर 'मयि कृपादृष्टिं' 'कुरु' को दो बार बाद में हारिणी उत्कोचिनी तन्त्रा कुटिला रञ्जनी घटी कूर्च अस्त्र हृदय और शिर—इस प्रकार यह नेत्राञ्जन के अर्पण का मन्त्र बतलाया गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं क्रों ऐं हौं स्हौः सौः खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं महाचण्डयोगेश्वरि भोगवति महाभोगलोलुपे इदमञ्जनं गृह्ण गृह्ण नेत्राञ्जनं गृह्णापय गृह्णापय मयि कृपादृष्टिं कुरु कुरु रजझक्ष्रैं रजझक्षौं रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं हूं फट् स्वाहा) ।

जिस-जिस वस्तु का जो-जो स्थान कहा गया है, साधक उस स्थान का ध्यान कर उस वस्तु को (उस स्थान पर) दे ॥ ३०९-३१३- ॥

[वस्त्वर्पणस्थानम्]

सिन्दूरमलिके दद्यादथ सीमन्तसीमनि ॥ ३१४ ॥
अञ्जनं नेत्रयोरेव पादुकां पादयोस्तथा ।

तथा ताम्बूलनैवेद्ये दीयेते मुख एव हि ॥ ३१५ ॥
उपानहौ चरणयोः व्यजनं दर्पणं करे ।
छत्रं वितानं शिरसि चामरं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ३१६ ॥
पृष्ठे च शिविकाशय्ये दातव्ये सुरवन्दिते ।
पाद्यादीनां विभागस्तु पुरैव प्रतिपादितः ॥ ३१७ ॥

वस्तु के अर्पण का स्थान—सिन्दूर को बालों में माँग के अन्त में देना चाहिये । अञ्जन को आँखों में, पादुकाओं को पैरों में तथा ताम्बूल और नैवेद्य को मुख में दिया जाता है । जूतों को पैरों में, व्यजन और दर्पण हाथ में, छत्र और वितान को शिर पर, चामरों को दोनों पार्श्वों में तथा शिविका और शय्या को, हे सुरवन्दिते ! पीठ की ओर देने चाहिये । पाद्य आदि का विभाग पहले ही बतला दिया गया ॥ ३१४-३१७ ॥

[समन्त्र अलक्तकदानविधिः]

अलक्तकप्रदानस्य मन्त्रं त्वं कलयाधुना ।
त्रितारांश्च त्रिमैधांश्च समुच्चार्याग्रतः प्रिये ॥ ३१८ ॥
क्षेत्रपालो नरहरिः शाकिनी डाकिनी तथा ।
भासुरे शब्दतः पूर्वं महाभोगपदं वदेत् ॥ ३१९ ॥
ततः सिद्धिकराल्युक्त्वा कुण्डले नरमुण्डतः ।
ततो भगवतीदं च तथालक्तकमेव च ॥ ३२० ॥
आद्यं सन्धिविहीनं स्यादितरत् संहितं तथा ।
तव पादयोरर्पयामि गृह्ण गृह्णेत्यनन्तरम् ॥ ३२१ ॥
हाकिनीसंहिताचञ्चुबीजानि स्युरतः परम् ।
रोषास्त्रहृदयं शीर्षं सर्वशेषे निगद्यते ॥ ३२२ ॥
पुष्पेणालक्तकं रक्तं गृहीत्वा पीठपादयोः ।
दातव्यं यत्नतो नैव यन्त्रोपरि लगेद् यथा ॥ ३२३ ॥

मन्त्रसहित अलक्तकदान की विधि—अब तुम अलक्तक देने का मन्त्र सुनो । हे प्रिये! पहले तीन तार तीन मैध को कहकर क्षेत्रपाल नृसिंह शाकिनी डाकिनी के बाद 'भासुरे' शब्द के पहले 'महाभोग' पद कहना चाहिये । उसके बाद 'सिद्धिकरालि' कहकर 'नरमुण्ड' के बाद 'कुण्डले' फिर 'भगवति इदं' और 'अलक्तकं' में पहले को सन्धिरहित तथा दूसरे को ससन्धि कहना चाहिये । 'तवपादयोरर्पयामि गृह्ण गृह्ण' के अनन्तर हाकिनी संहिता चञ्चु बीजों को कहने चाहिये । इसके बाद सबके अन्त में रोष अस्त्र हृदय और शिर कहा जाता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं क्षौं क्ष्रौं फ्रें ख्फ्रें महाभोगभासुरे सिद्धिकरालि नरमुण्डकुण्डले भगवति इदमलक्तकं तव पादयोरर्पयामि गृह्ण गृह्ण रक्षश्रीं भमरयऊं रस्फ्रों हूं फट् नमः स्वाहा) ।

पुष्प से रक्त अलक्तक को लेकर पीठ पर स्थित पैरों में प्रयत्नपूर्वक इस प्रकार देना चाहिये कि वह यन्त्र के ऊपर न लगे ॥ ३१८-३२३ ॥

[धूपदानविधिः]

अतः परं तु धूपस्य विधानं वर्णयामि ते ।
यद् यद्द्रव्या यादृशा हि ते पुरैव प्रकीर्तिताः ॥ ३२४ ॥
ते ते प्रज्वालिता कार्या नैव देवि कदाचन ।
धूपो यथा निःसरति महासौरभशोभितः ॥ ३२५ ॥
तथा प्रयत्नः कर्तव्यो देव्यङ्गे च यथा लगेत् ।
अधुना तत्प्रदानस्य मन्त्रमाकलय प्रिये ॥ ३२६ ॥

धूपदान-विधि—इसके बाद मैं तुमको धूप देने का विधान बतला रहा हूँ । पहले मैंने जिस प्रकार के जिन द्रव्यों का वर्णन किया है, हे देवि! उनको कभी भी प्रज्वलित नहीं करना चाहिये । ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे महासौरभ से शोभायमान धूप (= धूम) निकले और देवी के अङ्गों में जाकर लगे । हे प्रिये! अब उसको देने का मन्त्र जानो ॥ ३२४-३२६ ॥

[धूपदानमन्त्रः]

त्रपारमाकामवध्वः शाकिनी योगिनी तथा ।
धन्यमुल्लोप्यशिल्पे च कौलसर्वागमावपि ॥ ३२७ ॥
सृष्टिस्थित्याह्वयौ कूटौ तदनन्तरमीरितौ ।
ततो नु पिङ्गलजटे वज्रकापालिनी ततः ॥ ३२८ ॥
सम्बोधनान्ता तदनु गलद्रुधिरचर्चिते ।
इमं धूपं समुद्धृत्य संदध्यादर्पयामि च ॥ ३२९ ॥
सुरभीकुरु गात्राणि ततः परमुदीरयेत् ।
निद्रा च योगिनी पूर्णा धूमो ललितया सह ॥ ३३० ॥
शेषे कूर्चास्त्रहृच्छीर्षं मनवः परिनिष्ठिताः ।

धूपदान का मन्त्र—त्रपा रमा काम वधू शाकिनी योगिनी धन्य उल्लोप्य शिल्प कौल सर्वागम सृष्टि कूट स्थिति कूट, उसके बाद 'पिङ्गलजटे' फिर सम्बोधनान्त 'वज्रकापालिनी' इसके पश्चात् 'गलद्रुधिरचर्चिते इमं धूपं' कहकर सन्धिरहित 'अर्पयामि सुरभीकुरु गात्राणि' कहना चाहिये । फिर निद्रा योगिनी पूर्णा धूम ललित और अन्त में कूर्च अस्त्र हृदय और शिर यह मन्त्र बनता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें छ्रीं ह्ग्लीं ह्ग्लूं क्षखफ्रैंरीं फ्रखभ्रूं रक्षखरऊं रक्षक्रूं पिङ्गलजटे वज्रकापालिनि गलद्रुधिरचर्चिते इमं धूपमर्पयामि सुरभीकुरु गात्राणि छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं हूं फट् हृदय स्वाहा) ॥ ३२७-३३०- ॥

[धूपदीपयोर्दानावसरे घण्टावादनस्यानिवार्यतानिर्देश:]

धूपदाने दीपदाने घण्टावादनमिष्यते ॥ ३३१ ॥
वामेन वादयन् घण्टां करेण वरवर्णिनि ।

[धूपदीपदानप्रक्रिया]

गृहीत्वा दक्षहस्तेन धूपदीपस्य भाजनम् ॥ ३३२ ॥
पारावतभ्रमाकारं चालयेदम्बिकापुरः ।
यथा पीठेषु लगति सौरभो ज्योतिषच्छटा ॥ ३३३ ॥
ऊर्ध्वाध एवं कुर्वीत प्रदानं धूपदीपयोः ।

धूपदीप-दान के अवसर पर घण्टावादन की अनिवार्यता—धूपदान और दीपदान के समय घण्टावादन होना चाहिये । हे वरवर्णिनि! बाँयें हाथ से घण्टा बजाते हुए दाँयें हाथ से धूपदीप का पात्र लेकर देवी के सामने कबूतर की भ्रमि के आकार में इस तरह घुमाना चाहिये जिससे धूप एवं दीपज्योति पीठ में लगे । इस प्रकार धूप और दीप को ऊपर नीचे करना चाहिये ॥ ३३१-३३३- ॥

[धूपदीपदानमाहात्म्यम्]

यत्फलं धूपदानस्य दीपदानस्य यत्फलम् ॥ ३३४ ॥
वक्तुं तच्छक्यते नैव कल्पकोटिशतैरपि ।
आमोदितनुतां धूपदाता प्राप्नोति पार्वति ॥ ३३५ ॥
अग्निसालोक्यतां दीपदाता वा चक्षुरुत्तमम् ।
फलातिरेकतामेवं विदित्वा धूपदीपयोः ॥ ३३६ ॥
साधकः प्रत्यहं दाने प्रयतेत तयोः प्रिये ।

धूपदीपदान का माहात्म्य—धूपदान और दीपदान का जो फल है उसे सौ कोटि कल्प में भी नहीं कहा जा सकता । हे पार्वति! धूप देनेवाला सुगन्धित शरीर प्राप्त करता है । दीपदाता या तो अग्निसालोक्य नामक मोक्ष अथवा उत्तम नेत्र प्राप्त करता है । धूप दीप के इस प्रकार के फलाधिक्य को जानकर हे प्रिये! साधक को प्रतिदिन उन दोनों के दान में प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥ ३३४-३३६- ॥

[दीपदानमन्त्र:]

दीपदानमनुं वक्ष्येऽतः परं शृणु सादरा ॥ ३३७ ॥
रावश्च डाकिनी दीप एकावल्यथ मुन्तला(?) ।
सौरङ्गः(?)शक्तिलिङ्गं च तत्त्वार्णव इतः परम् ॥ ३३८ ॥
मुण्डमालिनि सङ्कीर्त्य घोररावे ततः परम् ।
दंष्ट्राकरालिनि ततो भगवत्यपि तत्परम् ॥ ३३९ ॥
गुह्यकालि समाभाष्य वदेत्तत इमं पदम् ।
दीपं गृह्ण द्वयं प्रोच्य गृह्णापय युगं तथा ॥ ३४० ॥

विभा वधू विराट् चैव फैरवश्च कुमारिका ।
धूपप्रदानमन्त्रस्य या शेषस्था षडक्षरी ॥ ३४१ ॥
सा शेषेऽत्रापि संयोज्या ततः पूर्णो मनुर्भवेत् ।
धूपवद्दीपदानस्य विधिः पूर्वोक्तवन्मतः ॥ ३४२ ॥
पारावतभ्रमाकारः स ह्यत्रापि प्रशस्यते ।
अतः परं तु नैवेद्यमन्त्रांस्ते कथयाम्यहम् ॥ ३४३ ॥

दीपदान का मन्त्र—इसके बाद दीपदान का मन्त्र बतलाऊँगा । आदर के साथ सुनो । राव डाकिनी दीप एकावली मुन्तला (= मूर्वला) सौरङ्ग (= मौलिञ्ज) शक्तिलिङ्ग तत्त्वार्णव उसके बाद 'मुण्डमालिनि' कहकर 'घोररावे' के पश्चात् 'दंष्ट्राकरालिनि' इसके बाद 'भगवति' तत्परे 'गुह्यकालि' कहकर 'इमं' पद कहना चाहिये । 'दीपं' के बाद 'गृह्ण' को दो बार कहकर 'गृह्णापय' को भी दो बार कहना चाहिये । फिर विभा वधू विराट् फैरव कुमारिका फिर धूपदान मन्त्र का अन्तिम षड्क्षर है उसको अन्त में यहाँ भी जोड़ना चाहिये । तब मन्त्र पूर्ण हो जाता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—फ्रें ख्फ्रें रक्ष्रों (एकावली) (मुन्तला) (लक्षीं) (सौरङ्ग) खफ्रक्लां (शक्तिलिङ्ग) खफ्रम्रौं मुण्डमालिनि घोररावे दंष्ट्राकरालिनि भगवति गुह्यकालि इमं दीपं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं स्त्रौं हूँ फट् नमः स्वाहा) ।

धूप की भाँति दीपदान की विधि पूर्वोक्त के समान मानी गयी है । कबूतर के भ्रम के आकार को यहाँ भी प्रशस्त माना गया है । इसके बाद मैं नैवेद्य के मन्त्रों को तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३३७-३४३ ॥

[नैवेद्यस्य पञ्चप्रकारताभिधानम्]

नैवेद्यं पञ्चधा प्रोक्तं भिन्नभिन्नाभिधानयुक् ।
अग्निसम्पर्कसंसिद्धमेकं तद्दीपिताह्वयम् ॥ ३४४ ॥
द्वितीयमुद्भिजाज्जातं फाणितं तत्प्रचक्षते ।
तृतीयं पारितं ज्ञेयं प्राणिदेहसमुद्भवम् ॥ ३४५ ॥
चतुर्थं विश्रमुदितं पञ्चमं मिश्रमेव च ।
दीपितं पृथुलाजादि फलमूलादि फाणितम् ॥ ३४६ ॥
पारितं दधिदुग्धादि विस्रं मांसझषादिकम् ।
मिश्रं तु शर्करादीनि सिद्धमांसादिकं च यत् ॥ ३४७ ॥
एतेष्वन्तर्भविष्यन्ति सर्वा नैवेद्यजातयः ।
तत्तन्नैवेद्यवित्तानि तेषां तत्तन्मनूनपि ॥ ३४८ ॥
बुद्ध्या नियोजयेत् प्राज्ञो ये ये यत्रोचिताः प्रिये ।

नैवेद्य के पाँच प्रकार—भिन्न-भिन्न नामोंवाला नैवेद्य पाँच प्रकार का कहा गया है । पहला अग्नि के सम्पर्क से बनाया गया होता है (जैसे लावा पूड़ी हलवा इत्यादि)

उसका नाम दीपित है । दूसरा उद्भिद् से उत्पन्न होता है । (जैसे केला आम कन्द आदि) विद्वान् उसे फाणित कहते हैं । तीसरा प्राणी के देह से उत्पन्न (दूध दही मांस आदि) होता है उसे पारित कहते हैं । चौथा विश्र और पाँचवाँ मिश्र होता है । चिउड़ा लावा आदि दीपित, फलमूल आदि फाणित, दही दूध आदि पारित, मांस झष (= मछली) आदि विश्र तथा शर्करा आदि तथा पकाया गया मांस आदि मिश्र होता है । इन्हीं में सारे नैवेद्य अन्तर्हित हो जाते हैं । बुद्धिमान् को चाहिये कि तत्तत् नैवेद्य और उनके तत्तत् मन्त्रों को, जो जहाँ उचित हों, वहाँ नियोजित करे ॥ ३४४-३४८- ॥

[नैवेद्यविशेषाणामर्पणे मन्त्रविशेषस्य निर्देश:]

इदानीं क्रमशस्तत्तन्नैवेद्यार्पणहेतुकान् ॥ ३४९ ॥
मनूनाकर्णय शिवे तैस्तदानीं प्रशस्यते ।

विशिष्ट नैवेद्य के अर्पण में विशिष्ट मन्त्र का निर्देश—हे शिवे ! अब तत्तत् नैवेद्य के अर्पण के लिए तत्तत् मन्त्रों को सुनो । उन मन्त्रों से उस समय वह नैवेद्य प्रशस्त हो जाता है ॥ ३४९- ॥

[दीपितनैवेद्यार्पणमन्त्र:]

रमाकामवधूमायाशक्तिनक्षत्रविद्युत: ॥ ३५० ॥
योगिनीकुलिकप्रेतबलय: पृथुरेव च ।
महेन्द्र ईश्वरश्चापि मेखला कुण्डमेव च ॥ ३५१ ॥
रागश्च सारस: सिद्धिविकरालि तत: परम् ।
महाट्टहासिन्युल्लिख्य कुलमार्गप्रवर्तिनि ॥ ३५२ ॥
इदं दीपितमाभाष्य तुभ्यं तदनु कीर्तयेत् ।
निवेदयामि तदनु गृह्ण खाद युगं युगम् ॥ ३५३ ॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य मर्दय द्वितयं लिखेत् ।
लाङ्गूलं मोचिनी पूर्वं वर्द्धमानं तत: परम् ॥ ३५४ ॥
चित्राषाढौ च तदनु शेषं धूपवदीरितम् ।
अयं दीपितनैवेद्यदाने मनुरुदाहृत: ॥ ३५५ ॥

दीपित नैवेद्य के अर्पण का मन्त्र—रमा काम वधू माया शक्ति नक्षत्र विद्युत् योगिनी कुलिक प्रेत वलय पृथु महेन्द्र ईश्वर मेखला कुण्ड राग सारस उसके बाद 'सिद्धिविकरालि' तत्पश्चात् 'महाट्टहासिनि' का उल्लेख कर 'कुलमार्गप्रवर्त्तिनि इदं दीपितं' कहकर उसके बाद 'तुभ्यं' कहना चाहिये । 'निवेदयामि' के पश्चात् 'गृह्ण' तथा 'खाद' को दो-दो बार 'मम शत्रून्' कहकर 'मर्दय' को दो बार लिखना चाहिये । लाङ्गूल मोदिनी पूर्व वर्द्धमान के बाद चित्र आषाढ़ उसके बाद शेष धूप के समान कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—श्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं छ्रीं स्हौः स्हौः (वलय) रछ्रूं प्रैं रस्रौं रक्ष्रीं रक्ष्रूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं सिद्धिविकरालि महाट्टहासिनि कुलमार्गप्रवर्तिनि इदं दीपितं तुभ्यं निवेदयामि गृह्ण गृह्ण खाद खाद मम शत्रून् मर्दय मर्दय श्रौं ह्फ्रां ख्रां ह्फ्रूं ज्लौं हफ्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

यह मन्त्र दीपित के दान में कहा गया ॥ ३५०-३५५ ॥

[फाणितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

श्रृणु मन्त्रमिदानीं त्वं फाणितार्पणकारिणम् ।
मैधं पाशस्त्रपा रावः कापालं काकिनी तथा ॥ ३५६ ॥
सत्त्वकूटश्च हैरण्यगर्भकूटं ततः परम् ।
मारण्डादिचतुष्कं च तदनु कीर्तयेच्छिवे ॥ ३५७ ॥
ततोऽन्विदमहं प्रोच्य फाणितं परिकीर्तयेत् ।
समर्पयामि तदनु गृह्ण खाद युगं युगम् ॥ ३५८ ॥
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिस्त्रेता तथैव च ।
कृत्या शेषे धूपवत् स्यात्
श्रृणु फाणितदं (पारितदं) मनुम् ॥ ३५९ ॥

फाणित नैवेद्यार्पण मन्त्र—अब तुम फाणित का अर्पण करने वाले मन्त्र को सुनो । मैध पाश त्रपा राव कापाल काकिनी बीज फिर सत्त्वकूट हिरण्यगर्भ कूट उसके बाद हे शिवे! मारण्ड आदि चार का कथन करना चाहिये । इसके बाद 'इदमहं' कहकर 'फाणितं' कहना चाहिये । 'समर्पयामि' के बाद 'गृह्ण खाद' को दो-दो बार फिर अनाहत भोग सृष्टि त्रेता कृत्या और अन्त में धूप के समान पढ़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं ह्रीं फ्रें श्रीं फ्रीं क्षह्म्लव्र्यईं क्षस्ह्म्लव्र्यईं खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं इदमहं फाणितं समर्पयामि गृह्ण गृह्ण खाद खाद हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रें हसखफ्रों हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ३५६-३५९ ॥

[पारितनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

प्रणवः क्षेत्रपालश्च चण्डविश्वौ ततः परम् ।
अमादस्त्रादिचत्वारि बीजानि तदनन्तरम् ॥ ३६० ॥
ततो नु खेचरीकूटं कूटं चाचलमेव च ।
प्रासादकूटं तस्यानु दिगम्बरि महापदात् ॥ ३६१ ॥
लोलजिह्वे महाघोररूपधारिणि चेत्यपि ।
ततश्च वरशब्दानु जटामुकुटमण्डिते ॥ ३६२ ॥
इदं पारितमुल्लिख्य ततस्तुभ्यमहं वदेत् ।

गिरयुग्मं ग्रसयुग्मं खाद खाहि युगं युगम् ॥ ३६३ ॥
मम सिद्धिमिति प्रोच्य दद देहि च पूर्ववत् ।
दापयद्वयमाभाष्य हिलियुग्मं किलिद्वयम् ॥ ३६४ ॥
मामुच्चार्य युगं रक्ष पालयद्वितयं ततः ।
राकात्रयं समुद्धृत्य भगमालिन्यथोद्धरेत् ॥ ३६५ ॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
शेषं पूर्ववदुन्नेयं धूपमन्त्रानुगामिनी (नम् ?) ॥ ३६६ ॥

पारितनैवेद्यार्पण मन्त्र—प्रणव क्षेत्रपाल चण्ड विश्व इसके बाद अमा दस्र आदि चार बीज तदनन्तर खेचरीकूट अचलकूट प्रासादकूट उसके पश्चात् 'महादिगम्बरि लोलजिह्वे महाघोररूपधारिणि' उसके अनन्तर 'इदं पारितं' का उल्लेख कर 'तुभ्यमहं' कहना चाहिये । 'गिर ग्रस खाद खाहि' को दो-दो बार 'मम सिद्धिं' कहकर 'दद दहि दापय' को दो-दो बार कहने के बाद 'हिलि किलि' को दो-दो बार कहना चाहिये । 'माम्' कहकर 'रक्ष' को दो बार, दो 'पालय' फिर तीर राका को उद्धृत कर 'भगमालिनि' को उद्धृत करना चाहिये । सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक व्यय के बाद शेष का पूर्वोक्त धूपमन्त्र के अनुगामी की भाँति उन्नयन कर लेना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं क्षौं फ्रों फ्रौं ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं सखक्लक्ष्मग्रयब्लीं ग्रमहलक्षखफ्रग्लैं सहक्षरक्ष्लमव्य्रऊं महादिगम्बरि लोलजिह्वे महाघोररूपधारिणि इदं पारितं तुभ्यमहं (ददे), गिर गिर ग्रस ग्रस खाद खाद खाहि खहि ममसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय हिलि हिलि किलि किलि माम् रक्ष रक्ष पालय पालय ह्लीः ह्लीः ह्लीः भगमालिनि रह्लछ्रक्षह्लां रह्लछ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लूं रह्लछ्रक्षह्लैं रह्लछ्रक्षह्लौं हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ३६०-३६६ ॥

[विश्रनैवेद्यार्पणमन्त्र:]

अधुना देवदेवेशि विश्रमन्त्रं निशामय ।
मैधतारौ रमामाये कलादित्यौ च काकिनी ॥ ३६७ ॥
ज्ञानमिच्छा ततः कूटा
(टो) वर्णमेव महोदया (यः)(?) ।
ततो ब्रह्मकपालानु मालाभरणमीरयेत् ॥ ३६८ ॥
अत्राक्षराणि नो बीजं भैरवासन इत्यतः ।
जगज्जननि तत्पश्चाद् दावानलनिवासिनि ॥ ३६९ ॥
इदं विश्रं तुभ्यमहं दद इत्यपि कीर्तयेत् ।
भक्ष युग्मं गिलयुग्मं जय जीव तथैव च ॥ ३७० ॥
ध्वा(ध्या)नो विवत्सः सम्भावः
संयोगोऽपि वियोगयुक् ।
हारिण्युत्कोचिनी चापि शेषमत्रापि पूर्ववत् ॥ ३७१ ॥

विश्रनैवेद्यार्पणमन्त्र—हे देवदेवेशि! अब विश्र मन्त्र को सुनो । मैध तार रमा माया काल आदित्य काकिनी बीजों के बाद ज्ञानकूट इच्छाकूट अवर्णकूट महोदय कूट के बाद 'ब्रह्मकपाल' के पश्चात् 'मालाभरणे' कहना चाहिये । यहाँ मालाभरण अक्षरों का ग्रहण करना चाहिये न कि माला और आभरण बीजों का । 'भैरवासने' के बाद 'जगज्जननि' तत्पश्चात् 'दावानलनिवासिनि इदं विश्रं तुभ्यमहं ददे' कहना चाहिये। दो 'भक्ष' दो 'गिल' तथा 'जय' 'जीव' को उसी प्रकार दो-दो कहना चाहिये। ध्वान विवत्स सम्भाव संयोग वियोग हारिणी उत्कोचिनी के बाद शेष पूर्व की भाँति कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ओं श्रीं ह्रीं जूं सः फ्रीं फ्रखरक्षक्लह्रीं कह्लक्लक्षखफ्रीं खफछरएव्रह्लक्ष्मत्रहरयी ह्लखफ्रूं रच्रांव्ग्रक्रीं ब्रह्मकपालमालाभरणे भैरवासने जगज्जननि दावानलनिवासिनि इदं विश्रं तुभ्यमहं ददे । भक्ष भक्ष गिल गिल जय जय जीव जीव रस्क्रों ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं रजझक्ष्रैं रजझक्ष्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ३६७-३७१ ॥

[मिश्रनैवेद्यार्पणमन्त्रः]

इदानीं मिश्रदानस्य मन्त्रं समुपवर्णये ।
वेदादिमैधपाशाख्यास्त्रयो वर्णाः पुरः स्मृताः ॥ ३७२ ॥
सुरसः समरश्चापि षडङ्गं जम्भपूर्वकम् ।
ककुच्छैशुकनामानौ तदनु प्रथिताविह ॥ ३७३ ॥
ताटङ्कलीले धेनुश्च मारिषस्तदनन्तरम् ।
उदयास्ताह्वयौ कूटौ मणिरत्नाह्वयावपि ॥ ३७४ ॥
अपराजितनामापि कूटस्तदनु भामिनि ।
एवमष्टादशभ्यस्तु बीजकूटेभ्य ईश्वरि ॥ ३७५ ॥
वदेदिदं मिश्रमिति रूपं चापि कृताकृतात् ।
तुभ्यं समर्पयाम्युक्त्वा गृह्णद्वन्द्वं समुद्धरेत् ॥ ३७६ ॥
पुनर्गृह्णापययुगं युग्मं युग्मं हस ग्रस ।
खाद युग्मं किलि किलि ततो भगवतीति च ॥ ३७७ ॥
गुह्यकालि समाभाष्य मम शत्रूनितीरयेत् ।
युगलं मर्दय प्रोच्य पातय द्वितयं तथा ॥ ३७८ ॥
शोषयोच्छादय हन मथ छिन्धि पच त्रुट ।
युग्मं युग्मं सप्तकस्य सर्वसिद्धिं ततो वदेत् ॥ ३७९ ॥
दद देहि युगं युग्मं दापय द्वितयं तथा ।
कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ॥ ३८० ॥
सन्तारवैकक्षमपि सर्वशेषे षडक्षरी ।
धूपादारभ्य या प्रोक्ता सर्वमन्त्रान्तगामिनी ॥ ३८१ ॥

नैवेद्यभेदा इति ते मया समुपवर्णिताः ।
पृथक् पृथक् च मनवस्तेषां वै प्रतिपादिताः ॥ ३८२ ॥
भिन्नं भिन्नं हि नैवेद्यं प्रदद्याद् विभवे सति ।
यावच्छक्यमभावेऽपि किन्त्वावश्यकमेव तत् ॥ ३८३ ॥

मिश्रनैवेद्यार्पण मन्त्र—अब मिश्रदान का मन्त्र बतला रहा हूँ । वेदादि मैंध पाश नामक तीन वर्ण पहले होते हैं । सुरस समर जम्भ षडङ्ग ककुत् शैशुक उसके बाद यहाँ ताटङ्क नील धेनु मारिष उसके बाद उदयकूट अस्तकूट मणिकूट रत्नकूट इसके बाद हे भामिनि! अपराजित नामक कूट । हे ईश्वरि! इस प्रकार अठारह बीजों एवं कूटों के बाद 'इदं मिश्रं', 'कृताकृत' के बाद 'रूपम्' कहना चाहिये । 'तुभ्यं समर्पयामि' कहकर दो 'गृह्ण' को उद्धृत करना चाहिये । पुनः दो 'गृह्णापय' और 'हस-ग्रस' को दो-दो बार, दो 'खाद' 'किलि किलि' फिर 'भगवति गुह्यकालि' कहकर 'मम शत्रून्' कहना चाहिये । 'मर्दय' को दो बार कहकर दो 'पातय' फिर 'शोषय उच्छादय हन मथ छिन्धि पच त्रुट' इन सात को दो-दो बार इसके पश्चात् 'सर्वसिद्धिं', 'दद देहि' को दो-दो और फिर दापय को दो बार कहना चाहिये । कलावती सर्वस्व विप्रिय उसके पश्चात् सन्तार वैकक्ष और सबके अन्त में धूप से लेकर समस्त मन्त्रों के अन्त में रहने वाली षडक्षरी कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं स्त्रखफ्रैं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं लगमक्षखफ्रसह्लूं फग्लसहमक्षब्लूं भक्ष्लरमहसखफ्रूं क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं इदं मिश्रं कृताकृतरूपं तुभ्यं समर्पयामि गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय हस हस ग्रस ग्रस खाद खाद किलि किलि भगवति गुह्यकालि मम शत्रून् मर्दय मर्दय पातय पातय शोषय शोषय उच्छादय उच्छादय हन हन मथ मथ छिन्धि छिन्धि पच पच त्रुट त्रुट सर्वसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय ह्छ्रां ह्छ्रीं ह्छ्रूं क्षख्रीं ह्ग्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार मैंने तुमको नैवेद्य का भेद बतलाया । उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रों को भी बतलाया । सम्पन्नता रहने पर भिन्न-भिन्न नैवेद्य देना चाहिये । यदि सम्पत्ति का अभाव हो तो जितना सम्भव हो उतना देना चाहिये, किन्तु देना चाहिये अवश्य ॥ ३७२-३८३ ॥

[शीतलजलदानं तन्माहात्म्यम्]

नैवेद्यं विनिवेद्याथ शीतं तोयं निवेदयेत् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रं यथा त्वाऽऽमोदि तद्भवेत् ॥ ३८४ ॥
नैवेद्यानन्तरं शीतजलदानस्य यत्फलम् ।
तन्मया कथितुं नैव शक्यते त्रिदशेश्वरि ॥ ३८५ ॥
यथात्मनस्तृषा ज्ञेया तथा देव्या अपि प्रिये ।
अन्नदानादपि ह्येतद्दानं देवैः प्रशंसितम् ॥ ३८६ ॥

द्वापरादौ युगे भूपाः केवलं जलदानतः ।
श्रूयन्ते स्वर्गता दत्त्वा तृषिताय(यै) हिमं जलम् ॥ ३८७ ॥
अदत्त्वा केचन पुनर्गता निरयमेव च ।
अतो दद्यात् प्रयत्नेन भवगत्यै सुरार्चिते ॥ ३८८ ॥
निर्मलं हिममामोदि जलं तृष्णापनुत्तये ।
तत्तैजसेन पात्रेण न तु वै मार्तिकादिना ॥ ३८९ ॥

शीतल जलदान और उसका माहात्म्य—नैवेद्य देकर शीतल जल देना चाहिये। इस जल में कपूर का टुकड़ा मिला होना चाहिये या (अन्य कोई सुगन्धित द्रव्य जिससे कि) वह सुगन्धि हो जाय । नैवेद्य के बाद शीतल जल दान का जो महत्त्व है, हे त्रिदशेश्वरि! मैं उसको नहीं कह सकता । हे प्रिये! जैसी अपनी प्यास होती है वैसी ही देवी की प्यास जाननी चाहिये । देवताओं ने इस जलदान को अन्नदान से भी अधिक प्रशस्य माना है । द्वापर आदि युगों में राजा लोग पिपासाकुल देवी को शीतल जल देने मात्र से स्वर्ग में गये । कुछ (राजा देवी को शीतल जल) न देकर नरक को प्राप्त हुए । अतः हे सुरार्चिते! भगवती के लिये निर्मल सुगन्धित शीतल जल प्यास बुझाने के लिये प्रयत्नपूर्वक देना चाहिये । वह जल तैजस (= धातु के) पात्र से देना चाहिये न कि मिट्टी (काष्ठ) आदि के पात्र से ॥ ३८५-३८९ ॥

[शीतलजलदानमन्त्रः]

तद्दानमन्त्रमधुना कथयामि वरानने ।
तारप्रासादनृहरिगोंऽशुशुक्लाश्च दक्षिणा ॥ ३९० ॥
कर्णिकाशृङ्खलाद्वारा बीजानि पुरतो दश ।
महामाये समाभाष्य प्रपञ्चातीत उद्धरेत् ॥ ३९१ ॥
नव पञ्च पदाच्चक्रनिलये तदनूच्चरेत् ।
इदं शीतलमुल्लिख्य जलं तदनु कीर्तयेत् ॥ ३९२ ॥
पिबद्वन्द्वं समुद्धृत्य प्रपिबद्वितयं तथा ।
महाप्यायनकारिण्यनु ब्रूयाद् बीजपञ्चकम् ॥ ३९३ ॥
परेष्टिव्रतनिर्मोकवेतण्डाभिधमीश्वरि ।
(परेष्टिव्रतपूर्त्तकाः निर्मोकं वेतण्डकम्) ।
पूर्ववत् सर्वशेषस्थं कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ॥ ३९४ ॥

शीतल जलदान का मन्त्र—हे वरानने! अब उसके दान का मन्त्र कह रहा हूँ । पहले तार प्रासाद नृसिंह गो अंशु शुक्ल दक्षिण कर्णिका शृङ्खला द्वार ये दश बीज कहे जाने चाहिये । इसके बाद 'महामाये' कहकर 'प्रपञ्चातीत' कहना चाहिये । उसके बाद 'नवपञ्च' पद के पश्चात् 'चक्रनिलये' का उच्चारण करना चाहिये । 'इदं शीतलं' का उल्लेख कर तत्पश्चात् 'जलं' को कहना चाहिये । 'पिब' को दो बार उद्धृत कर

दो 'प्रपिब' कहना चाहिये । 'महाऽऽप्यायनकारिणि' के अनन्तर परेष्टि व्रत (पूर्तक) निर्मोक वेतण्ड नामक पाँच बीजों को बोलना चाहिये । सबके अन्त में पूर्व की भाँति कूर्च अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं क्ष्रौं हूं हैं ह्रौं ख्रों क्षरह्रीं क्षरह्रूं महामाये प्रपञ्चातीते नवपञ्चचक्रनिलये इदं शीतलं जलं पिब पिब प्रपिब प्रपिब महाऽऽप्यायनकारिणि रश्रां रश्रीं रश्रूं रश्रें रश्रों हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ३९०-३९४ ॥

[पुनराचमनीयदानविधि:]

ततः पुनः प्रदातव्यं पुनराचमनीयकम् ।
तस्य मन्त्रः पुरा प्रोक्तो यथाचमन ईरितः ॥ ३९५ ॥

पुनराचमनीयदान—इसके बाद पुनः आचमनीय देना चाहिये । उसका मन्त्र जैसा कि आचमन में कहा गया, पहले बतला दिया गया ॥ ३९५ ॥

[ताम्बूलदानमाहात्म्यम्]

इदानीं शृणु ताम्बूलदानमन्त्रं शुचिस्मिते ।
यद्द्रव्यं यादृशो भागः स पुरैव प्रकीर्तितः ॥ ३९६ ॥
ताम्बूलतुल्यं नो किञ्चिन्मुखसौरभ्यकारकम् ।
मदहेतुकमानन्ददायि वक्त्रप्रभाकरम् ॥ ३९७ ॥
जिह्वाजाड्यहरं श्रेष्ठं सौभाग्यकरणं परम् ।
सद्यस्तुष्टा जायते हि जगदम्बा तदर्पणात् ॥ ३९८ ॥
अतः प्रयत्नतो देयं ताम्बूलं विभवे सति ।
ताम्बूलान्नापरं किञ्चिदेवमाह पुरद्विषः ॥ ३९९ ॥

ताम्बूलदान का माहात्म्य—हे शुचिस्मिते! अब ताम्बूलदान का मन्त्र सुनो । जो द्रव्य और जिस प्रकार का भाग रहता है वह पहले ही कहा जा चुका है । ताम्बूल के समान मुख को सुगन्धित करनेवाला कुछ नहीं है । यह मद का कारण, आनन्ददायी, मुख की कान्ति को बढ़ानेवाला, जिह्वा की जडता का श्रेष्ठ अपहारक तथा परम सौभाग्यकर है । उसके अर्पण से जगदम्बा तत्काल सन्तुष्ट हो जाती है । अतः सम्पन्नता रहने पर प्रयत्नपूर्वक ताम्बूल देना चाहिये । ताम्बूल से बढ़कर कुछ भी नहीं है—ऐसा त्रिपुरारि ने कहा है ॥ ३९५-३९९ ॥

[ताम्बूलार्पणमन्त्र:]

इदानीं केवलं मन्त्रं प्रवदामि तदर्पणे ।
वेदादिरथ चैतन्यं रमाकामौ वधूस्त्रपा ॥ ४०० ॥
प्रासादः क्षेत्रपालश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानि द्वादशैव तु ॥ ४०१ ॥

ततः परं तु ज्ञेयानि कूटानीह षडेव तु ।
सत्त्वहैरण्यगर्भाख्यपुष्कराणि वरानने ॥ ४०२ ॥
किञ्जल्कः केसरश्चापि दृ(तु?)ष्टिदे तदनन्तरम् ।
एवमष्टादश प्रोच्य बीजकूटानि साधकः ॥ ४०३ ॥
वदेत् सकलमन्त्रानु तन्त्राध्यनु च दैवते ।
गुह्यातिगुह्यपदतः परापरपदं वदेत् ॥ ४०४ ॥
शक्तितत्त्वावतारे च नरमुण्डपदात्ततः ।
नक्षत्रमालालंकृते च इदं ताम्बूलमित्यपि ॥ ४०५ ॥
पुनस्तुभ्यमहं प्रोच्यमर्पयामि समालिखेत् ।
वदेत्ततोऽनु बह्वास्यवि(गि)रामय(?) सुरेश्वरि ॥ ४०६ ॥
मम सिद्धिं देहि युगं दापय द्वितयं ततः ।
चराचरं जगत् प्रोच्य मोहय द्वितयं लिखेत् ॥ ४०७ ॥
कृपादृष्ट्या ततः सन्धिवियुगानन्दयद्वयम् ।
ततो विनिमयं ब्रूयादिन्दिरादिमयीश्वरि ॥ ४०८ ॥
सञ्जीवनीं विपक्षं(विपन्नं) च विरागं तदनूद्धरेत् ।
पूर्ववत् सर्वशेषस्था परिज्ञेया षडक्षरी ॥ ४०९ ॥
इत्येवं सर्वसामान्या उपचारा य ईरिताः ।
तेषां पृथक् पृथङ्मन्त्रा विविच्य प्रतिपादिताः ॥ ४१० ॥

ताम्बूलार्पण मन्त्र—अब उसके अर्पण के विषय में केवल मन्त्र बतलाऊँगा । वेदादि चैतन्य रमा काम वधू त्रपा प्रासाद क्षेत्रपाल शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी ये बारह बीज कहने के बाद छह कूटों को जानना चाहिये । हे वरानने! सत्त्व हिरण्यगर्भ पुष्कर किञ्जल्क और केसर के बाद हे तुष्टिदे! साधक को अठारह बीज कूटों का निर्वचन कर 'सकलमन्त्र' के बाद 'तन्त्राधि' के पश्चात् 'दैवते गुह्यातिगुह्य' पद के अनन्तर 'परापर' पद कहना चाहिये । 'शक्तितत्त्वावतारे नरमुण्ड' पद उसके बाद 'नक्षत्रमालालंकृते इदं ताम्बूलं तुभ्यमहं' कहकर 'अर्पयामि' कहना चाहिये । हे सुरेश्वरि! उसके बाद 'बह्वास्यगिरामये मम सिद्धिं' दो 'देहि' दो 'दापय' 'चराचर जगत्' कहकर 'मोहय' को दो बार लिखना चाहिये । 'कृपादृष्ट्या' के बाद सन्धिरहित दो 'आनन्दय' इसके पश्चात् हे ईश्वरि! 'इन्दिरादिमयि' कहना चाहिये । उसके अनन्तर सञ्जीवनी विपक्ष विराग को उद्धृत कर सबके अन्त में पूर्ववत् षडक्षरी लिखना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं हौं क्षौं फ्रें खफ्रें हस्फ्रें क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं सहक्षम्लव्य्रईं रसमस्त्रह्लव्य्रऊं रलव्य्रनमक्षहछ्रीं सकलमन्त्रतन्त्राधिदैवते गुह्यातिगुह्यपरापरशक्तितत्त्वावतारे नरमुण्डनक्षत्रमालालंकृते इदं ताम्बूलं तुभ्यमहमर्पयामि। बह्वास्यगिरामये मम सिद्धिं देहि देहि दापय दापय चराचरं जगत् मोहय मोहय,

कृपादृष्ट्या आनन्दय आनन्दय इन्दिरादिमयि श्रखफ्रूं श्रखफ्रैं श्रखफ्रौं हूं फट् नम: स्वाहा) ।

इस प्रकार जो सर्वसामान्य उपचार कहे गये उनके मन्त्र पृथक् विवेचन कर बतलाये गये ॥ ४००-४१० ॥

[अर्पणीयवस्त्वभावे कर्तव्यतानिर्देश:]

वस्तुनो यस्य यस्य स्यादभावः परमेश्वरि ।
स स मन्त्रो निवर्तेत सह संशोधनार्पणैः ॥ ४११ ॥

अर्पणीय वस्तु के अभाव में कर्त्तव्य—हे परमेश्वरि! जिस-जिस वस्तु का अभाव हो उस-उस वस्तु के संशोधन अर्पण के साथ उस-उस मन्त्र को छोड़ देना चाहिये ॥ ४११ ॥

[राजोपचाराभिधानम्]

अथ राजोपचाराणामर्पणे मनवो हि ये ।
ते कथ्यन्ते मयेदानीं सावधाना निशामय ॥ ४१२ ॥
न दुर्गतैस्ते शक्यन्ते दातुं देव्यै कथञ्चन ।
भूमिपालैरेव ते तेऽन्वहं दीयन्त इत्यपि ॥ ४१३ ॥
तेषां मन्त्रास्तदर्थं हि कथ्यन्ते दानहेतवे ।

राजोपचार[1]—अब राजोपचारों के अर्पण में जो मन्त्र (प्रयोज्य होते) हैं मैं उनको कह रहा हूँ । सावधान होकर सुनो । दरिद्र लोगों के द्वारा वे कभी भी देवी के लिये नहीं दिये जा सकते । वे प्रतिदिन राजाओं के ही द्वारा दिये जाते हैं । इसलिये उनके दान के लिये वे मन्त्र कहे जा रहे हैं ॥ ४१२-४१३ ॥

[पादुकादानविधि:]

तत्रादौ पादुकादानं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४१४ ॥
ददतः पादुकादानं देव्यै त्रिदशवन्दिते ।
पादुके प्रतिगृह्णन्ति शिरसा वसुधाधिपाः ॥ ४१५ ॥
सामुद्गरचिता श्रेष्ठा मध्यमा वास्त्रतैजसी ।
अधमा तु परिज्ञेया पादुका चार्मदारवी ॥ ४१६ ॥
नानारागसमायुक्ता दृढबन्धनसंयुता ।

पादुकादान—उन राजोपचारों में सर्वप्रथम पादुकादान है जो कि समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है । हे त्रिदशवन्दिते! देवी के लिये पादुकादान देनेवालों की

---

[1] यह राजोपचार और उनके मन्त्र पूर्वोक्त उपचारों के अतिरिक्त प्रयोज्य है । ऐसा नहीं है कि राजा लोग पूर्वोक्त उपचारों का प्रयोग नहीं करें केवल राजोपचार का प्रयोग करें ।

पादुकायें राजा लोग शिर से ग्रहण करते हैं। सामुद्ग (= ? समुद्री जीव) से बनी पादुका श्रेष्ठ होती है, वस्त्र और धातु की पादुका मध्यम कोटि की होती है। चमड़े और लकड़ी की पादुका निकृष्ट कोटि की होती है। यह अनेक रङ्गों वाली तथा दृढ़बन्धन वाली होनी चाहिये ॥ ४१४-४१६- ॥

[पादुकार्पणमन्त्रः]

अथैतस्या मनुं वक्ष्ये यदुच्चार्य वितीर्यते ॥ ४१७ ॥
पञ्च मैधानि सम्भाष्य पञ्च दण्डादिकानपि।
तुङ्गं च पारिजातं च कर्णिकां हारमेव च ॥ ४१८ ॥
गोस(श)वादिद्वयं कूटं निजकूटं ततः परम्।
बीजकूटानि जायन्ते एवं सप्तदश प्रिये ॥ ४१९ ॥
ततः प्रोच्य हूं हूंकारनादिनि त्रासदायिनि।
शिवाघातपदादूर्ध्वाल्लालनि क्षोभकारिणि ॥ ४२० ॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा गुह्यकालीति कीर्तयेत्।
इमे पादुक आभाष्य ततो नु तव पादयोः ॥ ४२१ ॥
अर्पयामि च सन्धी द्वे ततश्चरणयोरिति।
आमुञ्च पूर्ववत् सन्धियुक्तं कार्यं वरानने ॥ ४२२ ॥
हसद्वयं गाययुगं नृत्ययुग्मं तथैव च।
रयिमुद्भिन्नापतीर्थवाटीस्तदनु कीर्तयेत् ॥ ४२३ ॥
कल्पादीनि तु बीजानि पञ्चापि तदनन्तरम्।
हूं फट् ततो नमः स्वाहा सर्वशेषे नियोजयेत् ॥ ४२४ ॥
इत्युक्तः पादुकादानमन्त्रःपरमशोध(भ ?) नः।
अनेन पादुकादानं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ ४२५ ॥

पादुकार्पणमन्त्र—अब इसका मन्त्र कहूँगा जिसका उच्चारण कर (पादुका) दी जाती है। पाँच मैध को कहकर पाँच दण्ड आदि फिर तुङ्ग पारिजात कर्णिका हार बीजों के बाद गोशव आदि दो कूट उसके बाद निजकूट। हे प्रिये! इस प्रकार बीजों और कूटों की संख्या सत्रह हो जाती है। इसके बाद 'हूं हूंकारनादिनि त्रासदायिनि शिवाघात' पद के बाद 'लालनि क्षोभकारिणि' फिर 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' कहना चाहिये। 'इमे पादुके' कहकर फिर 'तव पादयोः अर्पयामि' में दो सन्धियाँ होनी चाहिये। हे वरानने! इसके बाद 'चरणयोः' 'आमुञ्च' को पूर्ववत् सन्धियुक्त करना चाहिये। 'हस, गाय, नृत्य' को दो-दो बार कहे। रयि उद्भिन्न (उद्भिद्) आप तीर्थ वाटी को कहना चाहिये। तदनन्तर कल्प आदि पाँच बीज, उसके बाद सबके अन्त में (हूं फट् नमः स्वाहा) कहना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं रज्रौं.....(पारिजात) क्षरह्रीं ह्लक्षम्लैं स्हक्ष्मह्लक्षग्लूं म्लह्लक्षस्त्रू (?) (निजकूट) हूं हूंकारनादिनि त्रासदायिनि शिवाघातलालनि क्षोभकारिणि भगवति गुह्यकालि इमे पादुके तव पादयोरर्पयामि, चरणयोरामुञ्च हस हस गाय गाय नृत्य नृत्य फ्रथ्रां फ्रथ्रीं फ्रथ्रूं फ्रथ्रैं फ्रथ्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार परमशोभन पादुकामन्त्र कहा गया । इस (मन्त्र) से पादुका का दान सब सिद्धि को देनेवाला होता है ॥ ४१७-४२५ ॥

[छत्रप्रकाराभिधानम्]

अतः परं छत्रदानमवधेहि वरानने ।
द्रव्यं तु मुख्यं प्रथमं मुक्तारत्नविनिर्मितम् ॥ ४२६ ॥
महार्हवस्तूपचितं घर्मवर्षनिवारकम् ।
जातरूपशलाकादिघटितं पट्टवेष्टितम् ॥ ४२७ ॥
स्वर्णदण्डविनिर्माणमूर्द्ध्वं हेमघटान्वितम् ।
मध्यमं पट्टवस्त्रेण रचितं तादृशेव हि ॥ ४२८ ॥
नानावर्णपरिष्कारं दण्डकुम्भविराजितम् ।
कार्पासवस्त्ररचितमधमं परिचक्षते ॥ ४२९ ॥
पर्णवंशशलाकादिरचितं सर्वतोऽधमम् ।
एवं चतुर्धा कथितं छत्रं तव सुरेश्वरि ॥ ४३० ॥
एतेषु यद्यच्छक्यं स्यात् तत्तद् देव्यै निवेदयेत् ।

छत्र के प्रकार—हे वरानने! इसके बाद छत्रदान को समझो । वह प्रथम मुख्य द्रव्य है जिसे मोती और अन्य रत्नों से रचित होना चाहिये । इसमें बहुमूल्य वस्तुयें संलग्न रहनी चाहिये । धूप और वर्षा को रोकनेवाला होना चाहिये । सोने की तीर से बना और रेशमी वस्त्र से वेष्टित रहना चाहिये । इसमें सोने का दण्ड लगा रहे । ऊपर सोने की घटा रहनी चाहिये । छत्र का मध्य भाग उसी प्रकार रेशमी वस्त्र से बना हुआ होना चाहिये । अनेक प्रकार के परिष्कार (= अलङ्कार) वाला तथा दण्डकुम्भ (= मुठिया) लगी होनी चाहिये । कपास के वस्त्र से बना छत्र अधम कहा जाता है । पत्ता बाँस की शलाका आदि से रचित छत्र सबसे निकृष्ट होता है । हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुमको चार प्रकार का (रेशम, कपास, पत्ता एवं बाँस की शलाका से रचित) छत्र बतलाया गया । इनमें से जो सम्भव हो, वह देवी को देना चाहिये ॥ ४२६-४३० ॥

[छत्रदानमाहात्म्यम्]

छत्रदानस्य माहात्म्यं वर्णितुं केन शक्यते ॥ ४३१ ॥
यद्यपि स्वयमायाति विधाता चतुराननः ।
सहस्रशीर्षो देवो वा शेषनागो धराधरः ॥ ४३२ ॥

इदमेकमहं जाने नान्यज्ञाने(?न्यं जाने)सुरेश्वरि ।
देवीमूर्ध्नि ददेच्छत्रं स्वमूर्ध्नि स्थापयत्यसौ ॥ ४३३ ॥
अच्छत्रधारी तद्वंशे कदापि च न जायते ।
तं सेवन्ते सदा भूपा अन्येऽपि च्छत्रधारिणः ॥ ४३४ ॥

[छत्रदानमन्त्रः]

साम्प्रतं तत्प्रदानस्य मन्त्रं शृणु समाहिता ।
तारो रमा च कामश्च माया रावश्च योगिनी ॥ ४३५ ॥
प्रासादनारसिंहौ च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ।
छन्दविश्वौ तु बीजानि पुरतो द्वादश स्मरेत् ॥ ४३६ ॥
ऐन्द्रं चैन्तामणेयं च कूटं तदनु कथ्यते ।
गन्धर्वरत्नप्रासादनीलकूटास्ततः परम् ॥ ४३७ ॥
एह्येहि गुह्यकालीति ततः परमुदीरयेत् ।
भगवत्यथ सङ्कीर्त्य महारुद्रपदादनु ॥ ४३८ ॥
कुणपारूढ आभाष्य ततश्चतुरशीत्यपि ।
कोटिमूर्ते समुद्धृत्य विश्वरूपे समीरयेत् ॥ ४३९ ॥
इदं छत्रं तुभ्यमहं ददे तदनु चोद्धरेत् ।
शिरसा धारय युगं प्रसीद द्वितयं तथा ॥ ४४० ॥
दारिद्र्यमिति सङ्कीर्त्य दह युग्ममनन्तरम् ।
भञ्ज भञ्ज समालिख्य मर्दय द्वितीयं ततः ॥ ४४१ ॥
राज्यं मे देहि युगलं युगलं दापयेत्यपि ।
मम शत्रूनथोद्धृत्य हन छिन्धि युगं युगम् ॥ ४४२ ॥
कूर्चमस्त्रं नमः शीर्षं चरमे परिविन्यसेत् ।
एवं छत्रप्रदानस्य मया मन्त्रः प्रकाशितः ॥ ४४३ ॥

छत्रदान-मन्त्र—अब समाहित होकर उसके दान का मन्त्र सुनो—पहले तार रमा काम माया राव योगिनी प्रासाद नृसिंह प्रेत भैरवी छन्द विश्व इन बारह बीजों को स्मरण करना चाहिये । इसके बाद इन्द्रिय एवं चिन्तामणि कूट कहा जाता है । उसके बाद गन्धर्व रत्न प्रासाद और नीलकूटों को कहने के बाद 'एह्येहि गुह्यकालि' कहना चाहिये । 'भगवति' कहकर 'महारुद्र' पद के बाद 'कुणपारूढे' कहकर फिर 'चतुरशीतिकोटिमूर्ते' को उद्धृत कर 'विश्वरूपे' कहना चाहिये । उसके बाद 'इदं छत्रं तुभ्यमहं ददे' को उद्धृत करना चाहिये । 'शिरसा' के बाद 'धारय' और 'प्रसीद' को दो-दो बार फिर 'दारिद्र्यं' कहकर 'दह' को दो बार कहना चाहिये । 'भञ्ज भञ्ज' लिखकर दो 'मर्दय' 'राज्यं मे' के बाद 'देहि' और 'दापय' को दो-दो बार कहे । फिर 'मम शत्रून्' को कहकर 'हन छिन्धि' को दो-दो बार, अन्त में कूर्च अस्त्र नमः और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं श्रीं क्लीं ह्लीं फ्रें छ्रीं हौं क्ष्रौं स्हौ: सौ: क्रफ्रैं फ्रौं झमस्त्रयग्लहीं लक्षह्लमकसहव्य्रऊं च्लक्ष्मस्ह्वव्य्रखीं क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं सहछरक्स्लमरव्य्रऊं फलंयक्षकयब्लूं एह्येहि गुह्यकालि भगवति महारुद्रकुणपारूढे चतुरशीतिकोटिमूर्त्ते विश्वरूपे इदं तुभ्यमहं ददे । शिरसा धारय धारय प्रसीद प्रसीद दारिद्र्यं दह दह भञ्ज भञ्ज मर्दय मर्दय, राज्यं मे देहि देहि दापय दापय, मम शत्रून् हन हन छिन्धि छिन्धि हूं फट् नम: स्वाहा) ।

मैंने तुमको यह छत्रदान का मन्त्र प्रकाशित किया ॥ ४३१-४४३ ॥

[छत्रोत्सर्गावसरप्रतिपादनम्]

छत्रमेतेन दातव्यं यदा दित्सा भवेत् प्रिये ।
नित्यपूजाविधौ वापि पर्वसु ग्रह एव वा ॥ ४४४ ॥
देव्यालयप्रतिष्ठासु यदा वा मनसो रुचि: ।
विशेषतस्तु भूपानामावश्यकतया स्थितम् ॥ ४४५ ॥
छत्रदानं जगद्धात्र्यै शिरसि च्छत्रधारिणाम् ।

छत्रदान का अवसर—हे प्रिये! इस मन्त्र से छत्र को तब देना चाहिये जब देने की इच्छा हो । नित्य पूजा के समय, पर्वों पर, सूर्यचन्द्रग्रहण, देवी मन्दिर के निर्माण के समय अथवा जब मन में इच्छा हो तब देना चाहिये । शिर पर छत्र धारण करने वाले राजाओं के लिये यह विशेष रूप से आवश्यक है ॥ ४४४-४४५- ॥

[चामरदानविधि:]

अधुना देवदेवेशि प्रवक्ष्ये चामरार्पणम् ॥ ४४६ ॥
यथा राजोपकरणे छत्रं श्रेष्ठमुदाहृतम् ।
तद्वदेव श्रेष्ठमिदं चामरं परिकीर्तितम् ॥ ४४७ ॥

चामरदान की विधि—हे देवदेवेशि! अब चामर का अर्पण बतलाऊँगा । जिस प्रकार राजोपचार में छत्र को श्रेष्ठ कहा गया है, उसी प्रकार यह चामर भी कहा गया है ॥ ४४६-४४७ ॥

[चामरपरिचय:]

चमरीणां गवां पुच्छबालभारो हि चामरम् ।
तद्दानमन्तरा छत्रदानं निष्फलमेव हि ॥ ४४८ ॥
अङ्गिनो नृपचिह्नस्य छत्रस्याङ्गं हि चामरम् ।
अत एव हि तद्दानं विहितं तदनु प्रिये ॥ ४४९ ॥
द्रव्यमुक्तमिदानीं तद्दानमन्त्रं निशामय ।

चामर का परिचय—चमरी गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा चामर होता है । उसके दान के बिना छत्रदान निष्फल होता है । छत्र राजा का अङ्गी (= प्रधान) चिह्न है और चामर उसका अङ्ग है । हे प्रिये! इसीलिये उस (= छत्र) के बाद इसका

दान कहा गया है । (चामर का) द्रव्य कह दिया गया । अब उसके दान का मन्त्र सुनो ॥ ४४८-४४९- ॥

[चामरार्पणमन्त्रः]

पञ्च सारस्वतान्यादौ विधिः कुलिक एव च ॥ ४५० ॥
शिखा च प्राग्भवश्चापि कल्याणं साधकोऽपि च ।
मन्दारसिन्धू तदनु चण्डवृद्ध्यपराजिताः ॥ ४५१ ॥
त्रयः कूटाः समाख्याता इति त्वेवं हि षोडश ।
नवकोटिपदं गुह्यानन्ततत्त्वपदं प्रिये ॥ ४५२ ॥
धारिण्यनु महाभीमरसनांपदमप्युत ।
विकराले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले ततः परम् ॥ ४५३ ॥
जगज्जननि सम्भाष्य जगदाश्रय ईरयेत् ।
इदं चानरमुद्धृत्य तुभ्यं पदमतः परम् ॥ ४५४ ॥
समर्पयामि च तत उपजीवय युग्मकम् ।
ततो मयि कृपादृष्टिं वितरं द्वितयं पुनः ॥ ४५५ ॥
सम्पदं देहि युगलं युगलं दापयापि च ।
मनोरथान् पूरय च युगलं परिकीर्तितम् ॥ ४५६ ॥
शरणं खण्डकेतू च श्रुतिमन्दे तथैव च ।
शेषे सैवेह विज्ञेया या शेषस्था षडक्षरी ॥ ४५७ ॥
इति चामरदानस्य मन्त्रः समुपवर्णितः ।

चामरार्पण मन्त्र—पहले पाँच सारस्वत फिर विधि कुलिक शिखा प्राग्भव कल्याण साधक मन्दार सिन्धु उसके बाद चण्ड वृद्धि अपराजित ये तीन कूट कहे गये । इस प्रकार इनकी संख्या सोलह होती है । हे प्रिये! 'नवकोटि' पद उसके बाद 'गुह्यनन्ततत्त्वधारिणि' के पश्चात् 'महाभीमरसना' पद फिर 'विकरालेचन्द्रखण्डाङ्कित-भाले' उसके बाद 'जगज्जननि' कहकर 'जगदाश्रये' कहना चाहिये । 'इदं चामरे' को उद्धृत कर इसके बाद 'तुभ्यं' पद फिर 'समर्पयामि' उसके बाद 'उपबीजय' को दो बार । तत्पश्चात् 'मयि कृपादृष्टिं' फिर 'वितर' को दो बार । 'सम्पदं' के बाद 'देहि' और 'दापय' को दो-दो बार । 'मनोरथान्' के बाद 'पूरय' को दो बार कहना चाहिये। शरण खण्ड केतु श्रुति मन्द और सबके अन्त में वही षडक्षरी जाननी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्षछ्रीं स्हौः रथ्रीं रथ्रूं रथ्रैं रथ्रौं रप्रीं रप्रूं खफ्रघ्रव्म्रओं छ्रघ्रीं स्हक्लव्म्रक्ष्रीं ब्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं नवकोटिगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि महाभीमरसनाविकराले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले जगज्जननि जगदाश्रये इदं चामरे तुभ्यं समर्पयामि उपबीजय उपबीजय मयि कृपादृष्टिं वितर वितर सम्पदं देहि देहि दापय दापय मनोरथान् पूरय पूरय फ्रस्त्रां फ्रस्त्रीं फ्रस्त्रूं फ्रस्त्रैं फ्रस्त्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

यह चामरदान का मन्त्र बतलाया गया ॥ ४५०-४५७ ॥

[चामरदानफलकीर्तनम्]

फलं त(?य)च्छत्रदानस्य य(?त)त्फलं परिकीर्तितम् ॥ ४५८ ॥

चामरदान का फल—जो छत्रदान का फल है वही इसका भी कहा गया ॥ ४५८ ॥

[व्यजनार्पणविधि:]

व्यजनार्पणमीशानि शृण्वतः परमुत्तमम् ।

व्यजनार्पण—हे ईशानि! इसके बाद व्यजन के उत्तम अर्पण को सुनो ॥ ४५८- ॥

[व्यजनप्रकाराभिधानम्]

व्यजनं तु दुकूलादिरचितं पट्टवाससा ॥ ४५९ ॥
अथवा कल्पितं श्रेष्ठं चन्दनाम्भः समुक्षितम् ।
बर्हिबर्हादिभिः क्लृप्तं मध्यमं परिचक्षते ॥ ४६० ॥
वंशकाष्ठादिघटितमधमं परिकथ्यते ।
ग्रीष्मर्तौ विह्वलीभूते शरीरस्वेदवारिभिः ॥ ४६१ ॥
व्यजनैर्वीजिते देवि सद्य आत्मा प्रसीदति ।
अत एवामुष्य दानं छत्रचामरदानवत् ॥ ४६२ ॥

व्यजन के प्रकार—व्यजन (= पंखा) महीन कपड़े या रङ्गीन रेशमी कपड़े का बना हुआ श्रेष्ठ होता है । उसे चन्दन मिश्रित जल से सिञ्चित होना चाहिये । मयूर के पङ्ख से बना व्यजन मध्यम कहा जाता है । बाँस काष्ठ आदि से रचित व्यजन अधम होता है । हे देवि! ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य जब पसीने से विह्वल हो जाता है तो पङ्खे से हवा करने पर आत्मा प्रसन्न हो जाती है इसलिये इसका दान छत्र चामर दान की भाँति (महत्त्वपूर्ण) है ॥ ४५९-४६२ ॥

[व्यजनार्पणमन्त्र:]

अतः परं मन्त्रमस्य कथ्यमानं मया शृणु ।
प्रणवः शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥ ४६३ ॥
फेत्कारी कमलाकामौ भौवनेशी वधूरपि ।
संहिता हाकिनी चैव रम्भावट्यौ ततः परम् ॥ ४६४ ॥
सूक्ष्ममाथर्वणं पश्चात् सरस्वत्यपि निम्नगा ।
ततो नाडी हस्तिजिह्वा धूमो वर्णस्ततः परम् ॥ ४६५ ॥
खेचरीनामकं कूटं ततः परमुदीर्यते ।
पुनर्विश्वजनन्युक्त्वा विश्वेश्वरि समीरयेत् ॥ ४६६ ॥
विश्वाधारे विश्वसंहारिणि पश्चात् प्रकीर्तयेत् ।

इदं व्यजनमुच्चार्य गृहाणेति सकृद्वदेत् ॥ ४६७ ॥
शरीरं तदनु प्रोच्य संवीजययुगं ततः ।
ततो ममाभीष्टसिद्धिं निष्पादय युगं ततः ॥ ४६८ ॥
आनन्दय युगस्यान्ते द्विवारमनुकम्पय ।
ततश्च खेचरीमुद्रां सकृत् प्रकटयोच्चरेत् ॥ ४६९ ॥
ततो रचय युग्मं च तथा विरचय द्वयम् ।
वरणो कूटशापौ च विच्छन्नः प्रमितिस्तथा ॥ ४७० ॥
कूर्चबीजास्त्रबीजे च मन्त्रो हृच्छिरसोरपि ।
इत्येवं व्यजनोत्सर्गमन्त्रस्ते कथितो मया ॥ ४७१ ॥

व्यजनार्पण मन्त्र—इसके बाद इस (= व्यजनार्पण) के कथ्यमान मन्त्र को सुनो—प्रणव शकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी कमला काम भौवनेशी वधू संहिता हाकिनी रम्भावटी उसके बाद आथर्वण सूक्त पश्चात् सरस्वती नदी हस्तिजिह्वा नाडी धूमवर्ण फिर खेचरी कूट कहा जाता है । पुनः 'विश्वजननि' कहकर 'विश्वेश्वरि' कहना चाहिये । बाद में 'विश्वाधारे विश्वसंहारिणि' कहना चाहिये । 'इदं व्यजनं' कहकर 'गृहाण' को एक बार कहे । उसके बाद 'शरीरं' कहकर 'संवीजय' को दो बार कहे । फिर 'ममाभीष्ट सिद्धि' के बाद दो 'निष्पादय'। फिर से 'आनन्दय' के अन्त में दो बार 'अनुकम्पय' फिर 'खेचरीमुद्रां' ततः 'प्रकटय' को एक बार कहना चाहिये । इसके अनन्तर 'रचय विरचय' को दो-दो बार । वरणकूट शाप विच्छन्न प्रमिति कूर्चबीज अस्त्रबीज हृन्मन्त्र शिरो मन्त्र (कहने चाहिए)।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें ख्फ्रें क्लफ्रां हस्ख्फ्रें श्रीं क्लीं ह्रीं स्त्रीं झमरयऊं रक्षश्रीं क्लीं (वटी) क्षलव्लदलखफ्रें क्ष्मक्ल रक्ष्ल्हक्षव्म्रऊं सफक्ष्लमहप्रक्लीं कहव्लज्रूं सखक्लक्ष्मघ्रयव्लीं विश्वजननि विश्वेश्वरि विश्वाधारे विश्वसंहारिणि इदं व्यजनं गृहाण शरीरं संवीजय संवीजय ममाभीष्टसिद्धिं निष्पादय निष्पादय आनन्दय आनन्दय अनुकम्पय अनुकम्पय खेचरीमुद्रां प्रकटय रचय रचय विरचय विरचय (वरण) प्राम्लैं क्रफ्रूं (विच्छन्न) क्रफ्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार मैंने तुमको व्यजन के उत्सर्ग का मन्त्र बतलाया ॥ ४६३-४७१ ॥

[दर्पणार्पणविधिः]

निबोध साम्प्रतं मन्त्रं दर्पणार्पणकारिणम् ।

दर्पण का अर्पण—अब दर्पण का अर्पण करने वाले मन्त्र को जानो ॥ ४७१- ॥

[दर्पणप्रकाराभिधानम्]

कालायसीयकांसीयौ मुकुरावुत्तमौ स्मृतौ ॥ ४७२ ॥
काचीयगावलीयौ द्वौ मध्यमौ परिकीर्तितौ ।

मन्दानीयस्फाटिकौ द्वावधमौ समुदीरितौ ॥ ४७३ ॥
द्रव्यमुक्तं मन्त्रमतः सावधाना निशामय ।

दर्पण के प्रकार—कालायस (= काला लोहा) और कांसे का दर्पण उत्तम माना गया है । कांच और गावलीय (?) ये दोनों मध्यम कोटि के हैं । मन्दानीय (?) और स्फटिक का दर्पण अधम कहा गया है । इस प्रकार दर्पण का द्रव्य कहा गया । अब सावधान होकर मन्त्र को सुनो ॥ ४७२-४७३- ॥

[दर्पणार्पणमन्त्रः]

प्रणवांस्त्रीन् पुरः प्रोच्य भ्रामरीं सप्रचण्डिकाम्॥ ४७४ ॥
केकराक्षीं कालरात्रिं वीरवेतालमेव च ।
ततो नु भैरव(?भौव)पुटकौ
हारिण्युत्कोचिनी तथा॥ ४७५ ॥
कूटं वैहायसं प्रोच्य शक्तिकूटं ततः परम् ।
अनाख्याकूटमस्यानु भासाकूटमितोऽप्यनु ॥ ४७६ ॥
नमः (दः) कूटं सर्वशेषे एवमष्टादश प्रिये ।
सकृज्जयानु प्रवदेद् गुह्यकालीति पार्वति ॥ ४७७ ॥
भगवत्यपि सम्बोध्य शोणितार्णवशब्दतः ।
मज्जनोन्मज्जनार्णाच्च प्रिय इत्यपि कीर्तयेत् ॥ ४७८ ॥
प्रिये इत्येष मन्त्रार्णो न तु सम्बोधनं तव ।
ततो वदेन् मन्त्रमयशरीरे जगदम्ब च ॥ ४७९ ॥
इममादर्शमुल्लिख्य ततस्तुभ्यमहेति च ।
मर्पयामि च तस्यानु त्रिकरालानि तत्परम् ॥ ४८० ॥
मुखानि पश्य युगलं मम दुःखानि चेत्यतः ।
उदीर्य युग्मं दलय पुनः प्रशमय द्वयम् ॥ ४८१ ॥
दुरितेभ्य इति प्रोच्य सन्धियुक् मोचय द्वयम् ।
तथैव तारय युगं युगलं पावयापि च ॥ ४८२ ॥
वितन्त्रा(न्द्रा)कैतवाट
(?त)ङ्कसंहारिण्यो विघट्यपि ।
हूं फट् नमश्च स्वाहा च ततोऽनन्तरमुच्यते ॥ ४८३ ॥
इत्यादर्शप्रदानस्य मनुरुक्तः सविस्तरः ।

दर्पणार्पण का मन्त्र—पहले तीन प्रणव कहकर भ्रामरी प्रचण्डिका केकराक्षी कालरात्रि वीर वेताल भैरव पुटक हारिणी उत्कोचिनी बीज वैहायसकूट को कहकर उसके बाद शक्तिकूट अनाख्याकूट उसके पश्चात् भासाकूट और सबके अन्त में नद कूट हे प्रिये! इस प्रकार ये अठारह होते हैं । हे पार्वति! एक बार 'जय' के पश्चात् 'गुह्यकालि' कहना चाहिये । 'भगवति' ऐसा सम्बोधन कर 'शोणितार्णव' शब्द के

बाद 'मज्जनोन्मज्जन' वर्ण के पश्चात् 'प्रिये' कहना चाहिये । 'प्रिये' यह मन्त्र का अंश है न कि तुम्हारा सम्बोधन उसके बाद 'मन्त्रमयशरीरे जगदम्ब इदमादर्शं' का उल्लेख कर फिर 'तुभ्यमहमर्पयामि' । उसके बाद 'विकरालानि मुखानि' 'पश्य' को दो बार फिर 'मम दु:खानि च' कहकर दो 'दलय' दो 'प्रशमय' फिर 'दुरितेभ्य:' कहकर सन्धिसहित दो 'मोचय' कहना चाहिये । उसी प्रकार 'तारय' 'पावय' को भी दो-दो बार कहना चाहिये । वितन्त्रा कैतव आतङ्क संहारिणी विघटी के अनन्तर 'हूं फट् नम: स्वाहा' कहा जाता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं ओं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं स्फह्लक्ष्रीं सफलक्ष्रूं सफलक्ष्रैं सफहलक्ष्रौं रजझक्ष्रैं रजझक्ष्रौं हलक्षकमह्लसव्य्रऊं झसखग्रमऊं क्षस्हम्ल्व्य्रऊं क्षह्लम्ल्व्य्रऊं रक्षक्लमहसह्लीं जय गुह्यकालि भगवति शोणितार्णवमज्जनोन्मज्जनप्रिये मन्त्रमयशरीरे जगदम्ब इदमादर्शं तुभ्यमहमर्पयामि विकरालानि मुखानि पश्य पश्य मम दु:खानि च दलय दलय प्रशमय प्रशमय दुरितेभ्यो मोचय मोचय तारय तारय पावय पावय श्रखफ्रौं क्लख्फ्रां क्लखफ्रीं क्लखफ्रूं क्लखफ्रैं हूं फट् नम: स्वाहा) ।

इस प्रकार दर्पण प्रदान का मन्त्र विस्तार के साथ कहा गया ॥ ४७४-४८३- ॥

[शिविकार्पणविधि:]

अधुना शिविकादानं वर्ण्यते वरवर्णिनि ॥ ४८४ ॥

शिविकार्पण—हे वरवर्णिनि! अब शिविकादान कहा जा रहा है ॥ ४८४ ॥

[शिविकाप्रकाराभिधानम्]

छत्रवद् द्रव्यमेतस्या अपि स्यात्त्रिप्रकारकम् ।
उपरि स्वर्णकुम्भेन शोभितं रत्नशोभिना ॥ ४८५ ॥
मुक्ताजालपरिच्छिन्नं पट्टतुल्यास्तृतं महत् ।
पट्टवस्त्रातपत्राढ्यं स्वर्णकुम्भादध: प्रिये ॥ ४८६ ॥
उपधानान्वितं पृष्ठे हेमदण्डावलम्बिना ।
दुकूलेनावृतं मध्ये बहुचित्रविचित्रितम् ॥ ४८७ ॥
नरवाह्यं हि यद् यानं सा दोला परिकथ्यते ।
उत्तमेयं समाख्याता मध्यमा काष्ठदण्डिनी ॥ ४८८ ॥
कार्पासवस्त्रघटिता रीतिकांस्योपशोभिनी ।
कुम्भयुक्ताप्ययुक्ता वा लम्बमाना चलन्त्यपि ॥ ४८९ ॥
अधमा रचिता काष्ठै रज्जुभिश्च परिस्तृता ।
इति ते कथितं वित्तमितो दानफलं शृणु ॥ ४९० ॥

शिविका के प्रकार—इसका भी द्रव्य छत्र की भाँति तीन प्रकार का होता है । यह शिविका ऊपर से रत्नजटित स्वर्णकुम्भ से शोभित मोतियों से जटित विशाल

पट्ट वस्त्र से आच्छादित होती है । हे प्रिये! स्वर्णकुम्भ से नीचे पट्टवस्त्र के छत्र सुशोभित होने चाहिये । पीछे तकिया लगी होती है । सोने के दण्ड लटकने वाले दुपट्टा से ढँकी होती है । यह अनेक प्रकार के चित्रों से विचित्रित होती है । जिस शिविका यान को मनुष्य लोग ढोते हैं वह दोला कही जाती है । यह उत्तम शिविका कही गयी है । मध्यम श्रेणी की शिविका से काष्ठ के दण्ड लटकते रहते हैं । यह कपास के वस्त्र से रचित होती है । इसमें कांसे के रीति (= पालिस) लगी रहती है । यह कुम्भ युक्त भी होती है और विना कुम्भ की । यह चलती हुई भी लटकती रहती है । अधम कोटि की शिविका लकड़ी की बनी होती है और रस्सियों से आवृत होती है । इस प्रकार तुमको शिविका का द्रव्य बतलाया गया । अब उसके दान का फल सुनो ॥ ४८५-४९० ॥

[शिविकादानमाहात्म्यम्]

यावन्ति पट्टसूत्राणि भवन्त्यस्यां वरानने ।
तावत् वर्षसहस्राणि दानात् स्वर्गे महीयते ॥ ४९१ ॥
देव्या गणत्वं सम्प्राप्य तल्लोके निवसत्यसौ ।
अथ चेज्जन्मभाग्भूयात् सम्राट्(ड्) भवति भूतले ॥ ४९२ ॥
अप्सरोगणसङ्कीर्णं विमानं चाधिगच्छति ।
वदामि साम्प्रतं मन्त्रं येन दानं प्रशस्यते ॥ ४९३ ॥

शिविकादान की महिमा—हे वरानने! इसमें जितने पट्ट सूत्र होते हैं । शिविका दान से दाता उतने वर्षों तक स्वर्ग में पूजित होता है । वह उस लोक में देवी का गण बनकर निवास करता है और यदि उसे जन्म लेना पड़ा तो वह पृथ्वी पर सम्राट् होता है तथा अप्सराओं से युक्त विमान प्राप्त करता है । अब मैं शिविकादान का मन्त्र बतला रहा हूँ जिससे दान प्रशस्य होता है ॥ ४९१-४९३ ॥

[शिविकादानमन्त्र:]

माद्यालक्ष्मीकामरावा अमानक्षत्रविद्यूतः ।
भारुण्डायोगिनीनागाः क्रमो नृहरिरेव च ॥ ४९४ ॥
चन्द्रकूटं हंसकूटं कूटं पौष्करमेव च ।
बृहद्रथन्तरे कूटे ततः कूटमनाख्यकम् ॥ ४९५ ॥
बीजानि द्वादशोक्तानि तदर्द्धं कूटमेव च ।
एवमष्टादशभ्यस्तु बीजकूटेभ्य ईश्वरि ॥ ४९६ ॥
जययुग्मानन्तरं हि वदेत् सिद्धिकरालि च ।
भगमालिनि सङ्कीर्त्य भगप्रिय इतीरयेत् ॥ ४९७ ॥
अथो भगवतीत्युक्त्वा सौभाग्यप्रद एव च ।
इमां दोलां तुभ्यमहं ततः परमुदीरयेत् ॥ ४९८ ॥

निवेदयामि च पुनः सर्वदुष्टानितःपरम् ।
सन्धानहीनं तदनु चूर्णय द्वितयं लिखेत् ॥ ४९९ ॥
चूर्णापय हस छिन्धि दह बन्ध द्वयं द्वयम् ।
विकरालि समाभाष्य मम सर्वमनोरथान् ॥ ५०० ॥
पूरय द्वितयस्यान्ते निष्पादय युगं वदेत् ।
सन्धानरहितं पश्चादष्टैश्वर्यं समुद्धरेत् ॥ ५०१ ॥
ददयुग्मं देहि युगं दापय द्वितयं तथा ।
चूलिकश्चानुवृत्ति(कृति)श्च
गुप्ताका (चा ?)रस्तथैव च ॥ ५०२ ॥
गुह्यखेचर्यनु पुनः पाषाणः परिकीर्तितः ।
सर्वशेषे परिज्ञेया सर्वान्तस्था षडक्षरी ॥ ५०३ ॥
इति दोलाप्रदानस्य मन्त्रो निर्वर्णितो मया ।

शिविकादान मन्त्र—माया लक्ष्मी काम राव अमा नक्षत्र विद्युत् भारुण्डा योगिनी नाग क्रम नृसिंह के बाद चन्द्रकूट हंसकूट पौष्करकूट बृहत्कूट रथन्तरकूट फिर अनाख्याकूट । बारह बीज कहे गये और उसके आधे कूट । हे ईश्वरि! इस प्रकार अठारह बीजकूटों के बाद दो 'जय' कहना चाहिये । 'सिद्धिकरालि' और 'भगमालिनि' कहकर 'भगप्रिये' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'भगवति' और 'सौभाग्यप्रदे' कहकर 'इमां दोलां तुभ्यमहं' के बाद 'निवेदयामि' कहना चाहिये । पुनः 'सर्वदुष्टान्' के बाद सन्धिरहित दो 'चूर्णय' लिखना चाहिये । चूर्णापय हस छिन्धि दह बन्ध को दो-दो बार कहकर 'विकारालि' लिखकर 'मम सर्वमनोरथान्' कहकर दो 'पूरय' के अन्त में दो 'निष्पादय' कहना चाहिये । उसके बाद सन्धिरहित 'अष्टैश्वर्यं' को उद्धृत करना चाहिये । 'दद देहि' और 'दापय' को दो-दो बार कहकर चूलिक अनुवृत्ति गुप्ताचार गुह्यखेचरी के पश्चात् पुनः पाषाण कहा गया होता है । सबके अन्त में सर्वान्तशेषस्था षडक्षरी कही जाती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें (?ब्लूं) ब्लैं ब्लौं प्रीं छ्रीं ब्रीं भ्रीं क्ष्रौं सकह्ललमक्षखव्रूं ब्लहतह्लसचै (अमा) सहक्षम्लव्य्रईं स्हकह्लह्लीं सक्लह्लकह्लीं क्षस्हम्लव्य्रईऊं जय जय सिद्धिकरालि भगमालिनि भगप्रिये भगवति सौभाग्यप्रदे इमां दोलां तुभ्यमहं निवेदयामि सर्वदुष्टान् चूर्णय चूर्णय चूर्णापय चूर्णापय हस हस छिन्धि छिन्धि दह दह बन्ध बन्ध विकरालि मम सर्वमनोरथान् पूरय पूरय निष्पादय निष्पादय अष्टैश्वर्यं दद दद देहि देहि दापय दापय ह्ल्श्रां ह्ल्श्रीं ह्ल्श्रूं ह्ल्श्रौं ह्ल्श्रैं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार मैंने तुमको दोलाप्रदान का मन्त्र बतलाया ॥ ४९४-५०३- ॥

[शय्यादानविधिः]

शय्यादानविधेर्मन्त्रं कथयाम्यधुना तव ॥ ५०४ ॥

शय्यादान—अब तुमको शय्यादानविधि का मन्त्र बतला रहा हूँ ॥ ५०४ ॥

[शय्यापरिचय:]

शय्या पर्यङ्कसहिता शिवायै परिदीयते ।
पर्यङ्केन विना शय्या ह्यङ्गहीना प्रकीर्त्यते ॥ ५०५ ॥
न केवलेन तल्पेन शय्या परिनिगद्यते ।
स पर्यङ्को दारुणा हि रच्यते त्रिदशेश्वरि ॥ ५०६ ॥
चन्दनागुरुकाष्ठेन मुख्यः पर्यङ्क उच्यते ।
मध्यमश्चम्पकाशोकबिल्वशालकदम्बकैः ॥ ५०७ ॥
अधमो येन केनापि काष्ठेन रचितो भवेत् ।
स कर्तव्यो विशेषेण बहुधातुविचित्रितः ॥ ५०८ ॥
स पट्टसूत्रावर्तेन नानारागेण संवृतः ।
शय्या प्रोक्ता तूलगर्भा पट्टवासोभिरावृता ॥ ५०९ ॥
पार्श्वयोः शीर्षपदयोरुपधानाचिता सदा ।
संच्छन्ना प्रच्छदपटैराभूमिस्पर्शनं प्रिये ॥ ५१० ॥
मध्यमा वादरचिता श्वेता वा लोहिताथवा ।
यादृच्छिकैः प्रच्छदपटैरुपधानैः समावृता ॥ ५११ ॥
यथा कथञ्चिद्घटिता छिन्ना भिन्नाथ संहताः ।
केवलं नामरक्षार्थमधमा परिगीयते ॥ ५१२ ॥
इदं द्रव्यं फलमतः समाकलय पार्वति ।

शय्या का परिचय—शय्या पलंग के साथ शिवा को दी जाती है । विना पलंग के शय्या अङ्गहीन कही जाती है । केवल बिछौने से शय्या नहीं कही जाती । हे त्रिदशेश्वरि! वह पलंग लकड़ी का बनाया जाता है । चन्दन और अगर की लकड़ी से बना पलंग मुख्य कहा जाता है । चम्पा अशोक बेल सागौन कदम्ब से बना पलंग मध्य श्रेणी का होता है । जिस किसी लकड़ी का बना पलंग अधम होता है उसे अनेक धातुओं से विचित्र कर देना चाहिये । उसे अनेक रंगों वाले रेशमी पाट से युक्त बनाना चाहिये । शय्या बीच में रुई डाली गयी तथा रेशम के वस्त्र से आवृत कही गयी होती है । दोनों बगलों और दोनों शिरों पर तकिया रखी रहनी चाहिये । हे प्रिये! भूमि तक लटकने वाली चादर से वह ढँकी रहनी चाहिये । बाद (= सन की रस्सी) से बनी लाल अथवा सफेद शय्या मध्यम श्रेणी की होती है । उसे अपनी इच्छानुसार चादर एवं तकिया से ढँकना चाहिये । जिस किसी प्रकार बनायी गयी कटी फटी जुड़ी जो केवल नाम की रक्षा के लिये बनायी जाती है वह अधमा कही जाती है । इस प्रकार यह द्रव्य बतलाया गया । हे भामिनि! अब शय्यादान का फल सुनो ॥ ५०५-५१२- ॥

[शय्यादानफलकीर्तनम्]

मुख्यपर्यङ्कसहितां यः शय्यां सम्प्रयच्छति ॥ ५१३ ॥
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
यद्यागच्छति संसारे कदाचित् कालपर्ययात् ॥ ५१४ ॥
सप्तद्वीपपतिर्भूत्वा राज्यं कृत्वायुतत्रयम् ।
शक्रस्यार्द्धासनं प्राप्य तेनैव सह मोदते ॥ ५१५ ॥
चन्द्रहंसप्रतीकाशे देवि शय्यातले स्थितः ।
अप्सरोगणसङ्कीर्णो देववद्दिवि मोदते ॥ ५१६ ॥
अथैतदर्पणमनुं प्रवदामि समासतः ।

शय्यादान का फल—जो व्यक्ति मुख्य पलंग के साथ शय्यादान करता है, उसका करोड़ों कल्पों में भी पुनर्जन्म नहीं होता । यदि कदाचित् कालक्रम के कारण वह संसार में आता भी है तो सातों द्वीपों का राजा बनकर तीस हजार वर्षों तक राज्य करता है बाद में इन्द्र का आधा आसन प्राप्त कर उन्हीं के साथ आनन्द उठाता है । हे देवि! चन्द्रमा अथवा हंस के समान धवल शय्या तल पर रहता हुआ अप्सराओं से आवृत वह देवता की भाँति स्वर्ग में रमण करता है । अब संक्षेप में इसके अर्पण का मन्त्र बतला रहा हूँ ॥ ५१३-५१६- ॥

[शय्यादानमन्त्रः]

वेदादिमथ चैतन्यं मायां लक्ष्मीं स्मरं स्त्रियम् ॥ ५१७ ॥
नृसिंहं कुलिकं चापि शाकिनीं डाकिनीमपि ।
प्रलयं चापि फेत्कारीं कूटषट्कमतः परम् ॥ ५१८ ॥
मन्दारमुदयं नीलं चिदानन्दौ सकेसरौ ।
जयद्वयं समाभाष्य महापिङ्गलशब्दतः ॥ ५१९ ॥
पुनर्जटाभारपदाद् भासुरे परिकीर्तयेत् ।
भगवत्यास्तथा कात्यायन्याः सम्बोधनद्वयम् ॥ ५२० ॥
काली तथा च कापाली गुह्यकाली च पूर्ववत् ।
एतस्यानन्तरमिदं शयनीयं मयेरयेत् ॥ ५२१ ॥
तुभ्यं निवेदितं प्रोच्य ततोऽत्रेति च सन्धिमत् ।
युगं स्वपिहि सम्भाष्य जीवयुग्मं स्फुरद्वयम् ॥ ५२२ ॥
ममाभीष्टपदात् सिद्धिं कुरुयुग्ममतः परम् ।
विपत्तिं हर युग्मं च नाशय द्वितयं तथा ॥ ५२३ ॥
ततः सम्पत्तिमुच्चार्य दद देहि युगं युगम् ।
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिस्त्रेता च कृत्यया ॥ ५२४ ॥
ततः कूर्चं सहास्त्रेण नमः स्वाहान्वितं ततः ।
एवं शय्याप्रदानस्य विधिमन्त्रो मयोदितः ॥ ५२५ ॥

शय्यादान का मन्त्र—वेदादि चैतन्य माया लक्ष्मी काम स्त्री नृसिंह कुलिक शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी बीजों के बाद मन्दार उदय नील चित् आनन्द केसर इन छह कूटों को कहने के बाद दो 'जय' कहना चाहिये । फिर 'महापिङ्गल' शब्द के पश्चात् 'जटाभार' पद के अनन्तर 'भासुरे' का कीर्त्तन करना चाहिये । फिर 'भगवती' और 'कात्यायनी' का सम्बोधन, पुनः 'काली कापाली गुह्यकाली' को पूर्ववत् कहकर इसके बाद 'इदं शयनीयं मया' कहना चाहिये । 'तुभ्यं निवेदितं' कहकर उसके बाद सन्धियुक्त 'अत्र' फिर दो 'स्वपिहि' कहकर 'जीव स्फुर' को दो-दो बार पुनः 'ममाभीष्ट' पद के बाद 'सिद्धिं' फिर दो 'कुरु' तत्पश्चात् 'विपत्ति' दो 'हर' दो 'नाशय' उसके बाद 'सम्पत्ति' कहकर 'दद देहि' को दो-दो बार, उसके अनन्तर अनाहत भोग सृष्टि त्रेता कृत्या अन्त में कूर्च अस्त्र 'नमः' और 'स्वाहा' ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं क्ष्रौं स्हौः फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्खफ्रें रक्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं लगमक्षखफ्रसहूं फलंयक्षकयब्लूं पलडलहक्षमव्रयीं स्हलकह्लक्ष्रूं टलव्य्रनमक्षहछ्रीं जय जय महापिङ्गलजटाभारभासुरे भगवति कात्यायनि कालि कापालि गुह्यकालि इदं शयनीयं मया तुभ्यं निवेदितं अत्र स्वपिहि जीव जीव स्फुर स्फुर मयाभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु विपत्तिं हर हर नाशय नाशय सम्पत्तिं दद दद देहि देहि हसख्फ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रें हसखफ्रैं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

मैंने यह शय्याप्रदान मन्त्र तुमको बतलाया ॥ ५१७-५२५ ॥

[वितानदानविधिः]

वितानदानस्य विधिं द्रव्यं मन्त्रं तथा ब्रुवे ।

वितानदान की विधि—अब मैं वितानदान की विधि द्रव्य एवं मन्त्र बतलाऊँगा ॥ ५२५- ॥

[वितानपरिचयः]

शय्योपरि रजःकीटतृणपातादि हानयेत् ॥ ५२६ ॥
चन्द्रातपत्रवत् स्थायि वितानं तदिहोच्यते ।
उत्तमं तत् परिज्ञेयं यत् पट्टाम्बरनिर्मितम् ॥ ५२७ ॥
मध्यमं वस्त्रनिर्मितमधमं शाणमुच्यते ।
आख्यास्ये सम्प्रति मनुं वितानोत्सर्गकारिणम् ॥ ५२८ ॥

वितान का परिचय—शय्या के ऊपर स्थित धूल कीड़ा तृण पत्ता आदि को हटा देना चाहिये । गोल छत्र के समान यह स्थायी वितान कहा जाता है । जो रेशमी वस्त्र से बना होता है उसे उत्तम जानना चाहिये । सूती या ऊनी कपड़े का बना वितान मध्यम श्रेणी का होता है । सुतली से निर्मित यह अधम कहा जाता है । अब वितान के दान का मन्त्र बतलाऊँगा ॥ ५२६-५२८ ॥

[वितानदानमन्त्रः]

चैतन्यं पाशमाये च सृणिः प्रेतश्च भैरवी ।
चण्डविश्वौ योगिनी च मेखलाकुण्डसेतवः ॥ ५२९ ॥
ततो बर्हिरथं कूटं कूटमश्वप्रतिग्रहम् ।
सावित्री चार्धसावित्री सौत्रामण्यप्यनन्तरम् ॥ ५३० ॥
पुण्डरीकं सर्वशेषे एवमष्टादश प्रिये ।
भीमरावे समुल्लिख्य भगवत्यथ तत्परम् ॥ ५३१ ॥
भयानके पुनः सिद्धिविकरालि प्रकीर्तयेत् ।
इदं वितानमहमावेदयामि ततो वदेत् ॥ ५३२ ॥
प्रसीद युगलं गृह्णयुगलादनु पठ्यते ।
विश्वरूपपदस्यान्ते वैभवे परिकीर्तयेत् ॥ ५३३ ॥
भवबन्धप्रमोचिन्यनु ब्रूयाज्जगदम्ब च ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥ ५३४ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेया क्रमायाता षडक्षरी ।
इति वैतानिको मन्त्रो विशिष्य प्रतिपादितः ॥ ५३५ ॥
राजोपचारा एते हि दीयन्ते यैर्धनाधिपैः ।
न दुर्गतेन शक्यन्ते दातुमेते कथञ्चन ॥ ५३६ ॥

वितानदान का मन्त्र—चैतन्य पाश माया सृणि प्रेत भैरवी चण्ड विश्व योगिनी मेखला कुण्ड सेतु बीज उसके बाद बर्हिरथकूट अश्व प्रतिग्रहकूट सावित्री अर्धसावित्री सौत्रामणी और सबके अन्त में पुण्डरीक, हे प्रिये! इस प्रकार ये अठारह होते हैं । इनके बाद 'भीमरावे' का उल्लेख कर 'भगवति' उसके बाद 'भयानके' पुनः 'सिद्धिविकरालि' कहना चाहिये । इसके बाद 'इदं वितानं अहमावेदयामि' । फिर दो 'प्रसीद' दो 'गृह्ण' पढ़ा जाता है । 'विश्वरूप' पद के अन्त में 'वैभवे' कहना चाहिये । 'भवबन्धप्रमोचिनि' के पश्चात् 'जगदम्ब' कहना चाहिये । सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक व्यय के बाद सबके अन्त में क्रम से आयी हुई षडक्षरी कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं ह्रीं (सृणि) स्हौः सौः फ्रों फ्रौं छ्रीं रक्ष्रीं कहकश्रीं ठ्रीं क्षलहक्षम्लक्लीं रलहक्षहलक्लीं (सावित्रीकूट) रलहक्ष कहलह्स्त्रेछसीं ग्लरक्षफ्रथरक्लीं फ्लक्षह्स्ह्व्य्रऊं भीमरावे भगवति भयानके सिद्धिविकरालि इदं वितानं अहमावेदयामि प्रसीद प्रसीद गृह्ण गृह्ण विश्वरूपवैभवे भवबन्धप्रमोचिनि जगदम्ब रह्छ्रक्षह्रां रह्छ्रक्षह्रीं रह्छ्रक्ष्रह्रूं रह्छ्रक्षह्रैं रह्छ्रह्रौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार वेतानिक मन्त्र विशेषरूप से कहा गया । ये राजोपचार राजाओं या धनी लोगों के द्वारा दिये जाते हैं । जो दरिद्र हैं उनके द्वारा ये कभी नहीं दिये जा सकते ॥ ५२८-५३६ ॥

[दानादिकार्ये स्वकीयसिद्धान्तप्रतिपादनम्]

विशेषं कञ्चिदधुना बुद्ध्यस्व सुरवन्दिते ।
कियन्तो न पदार्था हि विद्यन्ते धरणीतले ॥ ५३७ ॥
हृदयाह्लाददा नित्यं देवीसन्तोषकारका: ।
तेषामुत्सर्गकार्ये तु नैव मन्त्रा: पृथक् पृथक् ॥ ५३८ ॥
नान्तोऽस्ति भुवि वस्तूनां देवीप्रीतिप्रदायिनाम् ।
नैवैतत् तत्प्रदानस्य मन्त्रा भिन्ना मयोदिता: ॥ ५३९ ॥
ये यामलादावुक्तास्ते न कपालाख्यडामरे ।
अत एव ब्रुवे मन्त्रमेकं हि सर्ववस्तुन: ॥ ५४० ॥
सर्वाणि वस्तूनि पुनरुपस्करणमुच्यते ।
उपस्करणमध्ये तु यान्युच्यन्ते सुरेश्वरि ॥ ५४१ ॥
तानि ते पुरतो वच्मि वक्ष्ये मन्त्रं तत: परम् ।

दान आदि कार्य में अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन—हे सुरवन्दिते! अब कुछ विशेष बातें जानो । इस धरती पर कितने पदार्थ देवी को सन्तुष्ट करने वाले तथा नित्य आनन्दकर कितने पदार्थ नहीं हैं (अर्थात् सभी पदार्थ हैं क्योंकि सबकी सृष्टि के मूल में वहीं है), उनके उत्सर्ग के लिये पृथक्-पृथक् मन्त्र नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी पर देवी को प्रसन्न करने वाली वस्तुओं का अन्त नहीं है और न इनके प्रदान के भिन्न-भिन्न मन्त्रों को मैंने तुमको बतलाया । जो (मन्त्र) यामल आदि में उक्त हैं वे कपाल डामर में नहीं । इसलिये समस्त वस्तुओं के अर्पण के लिये एक मन्त्र बतला रहा हूँ । सभी वस्तुएँ उपस्करण कही जाती हैं । हे सुरेश्वरि! उपस्करण के मध्य में जो वस्तुएँ कही जाती हैं पहले मैं उनको बतला रहा हूँ, उसके बाद मन्त्रों को बतलाऊँगा ॥ ५३७-५४१- ॥

[उपस्करणवस्तूनां नामानि]

उद्वर्तनं कङ्कतिका केशबन्धनमेव च ॥ ५४२ ॥
वीणातालमृदङ्गाश्च वादनीयभिदा अपि ।
गन्धस्थापनपात्राणि कज्जलालक्तयोरपि ॥ ५४३ ॥
सिन्दूरस्यापि पात्राणि ताम्बूलामत्रमेव च ।
धूपस्य दीपस्य तथा स्नानभोजनभाजनम् ॥ ५४४ ॥
पुन: पाकोपयोगीनि यावन्ति भुवि सन्ति हि ।
वेशविन्यासोपयोगि स्त्रीणां यद्यत् प्रकीर्त्यते ॥ ५४५ ॥

उपस्करण वस्तुओं के नाम—उद्वर्त्तन (= उबटन), कंघी, केशबन्धन, वीणा, करताल, मृदङ्ग, अन्य प्रकार के वाद्य, गन्ध रखने के पात्र, काजल और अलक्तक रखने के पात्र, सिन्दूर रखने के पात्र, ताम्बूलकरङ्क, धूप दीप स्नान भोजन के पात्र,

पुनः पृथ्वी पर भोजन पकाने के जितने वर्त्तन हैं तथा स्त्रियों को विभूषित करने के जितने पात्र हैं (ये सब उपस्कर के मध्यवर्त्ती हैं) ॥ ५४२-५४५ ॥

देवालयो गृहारामा नगरं भूमिरेव च ।
नागा रथा हयाश्चैव गोमहिष्योऽप्यजाविकम् ॥ ५४६ ॥
वनोद्भवानि सत्त्वानि कलङ्गाश्च विहङ्गकाः ।
दासी दासो मणिर्मुक्ता स्वर्णरूप्यादिभाजनम् ॥ ५४७ ॥
शाटीभिन्नानि यावन्ति परिधेयानि योषिताम् ।
पट्टोर्णस्तरणीयानि बहुमूल्यानि यानि च ॥ ५४८ ॥
वर्षवातातपहिमनिवारणकराणि हि ।
भूरुहत्वक्फलोत्थानि प्राणिरोमोद्भवानि हि ॥ ५४९ ॥
चर्माणि वन्यजन्तूनां कीटकोषोद्भवानि च ।
नानारागादिनिर्माणाः किलिञ्जादेश्च देशजाः ॥ ५५० ॥
भृङ्गारा भद्रकुम्भाश्च राजोपकरणाह्वयाः ।
मूसलोलूखलघनहसन्त्यो याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५५१ ॥
स्वर्णरत्नादिवस्तूनि मीयन्ते यैश्च मानकैः ।
तथा पुस्तकसामग्री यावती भुवि विद्यते ॥ ५५२ ॥
अस्त्रशस्त्राणि यावन्ति सम्भवन्ति महीतले ।
यावदामोदिहेतूनि वस्तूनि क्षितिमण्डले ॥ ५५३ ॥
शोभाकराणि द्रव्याणि यावन्ति प्रभवन्ति हि ।
यावन्तः खलु संसारे पदार्थाः परिकीर्त्तिताः ॥ ५५४ ॥

देवालय घर बगीचा नगर भूमि हाथी रथ घोड़े गाय भैंस बकरी भेंड़, जङ्गली जानवर, कलङ्ग (= ? पक्षी का नाम) विहङ्ग (= आकाश में उड़ने वाले पक्षी), दासी दास मणि मोती, सोने चाँदी के वर्त्तन स्त्रियों के पहनने के लिये जितनी भिन्न-भिन्न साड़ियाँ हैं वे, बहुमूल्य रेशमी ऊनी वस्त्र, वर्षा धूप बर्फ को रोकने वाली वस्तुएँ जो कि वृक्ष की छाल फल एवं प्राणियों के रोयें से बनी होती हैं वे, जङ्गली जानवरों के चमड़े, कीट के कोश से बने कपड़े आदि, अनेक प्रकार के रङ्ग आदि के बनाने के प्रयोज्य किलिञ्ज (= कालिञ्जर) आदिदेश में बने हुए बड़े बर्तन, राजोपकरण नामक भद्रकुम्भ, मूसल ओखली घना हसन्ती (= हँसिया) इत्यादि, स्वर्ण रत्न आदि जिनसे तौले जाते हैं वे तराजू तथा पृथ्वी पर जितनी पुस्तक सामग्री है, जितने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर सम्भव हैं, तथा क्षितिमण्डल पर जितनी सुगन्धित वस्तुएँ हैं, जितने शोभाकार पदार्थ पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं अर्थात् संसार में जितने पदार्थ कहे गये हैं (वे सब उपस्कर के मध्यवर्त्ती हैं) ॥ ५४६-५५४ ॥

संहितासंहितं चापि कुप्याकुप्यं कृताकृतम् ।
सिद्धासिद्धं स्थले जातं वारिजं वृक्षजं तथा ॥ ५५५ ॥

समुद्रजं पर्वतजं नानाद्वीपजमेव वा ।
अप्राणिजातं च तथा प्राणिजातं तथैव च ॥ ५५६ ॥
मया यदुक्तं यन्नोक्तं तत् सर्वं त्रिदशेश्वरि ।
उपस्करणमध्ये तु प्रविष्टं परिकीर्त्यते ॥ ५५७ ॥
कपालडामरे त्वस्य नामोक्तिरचनेति च ।
एषां देवेशि सर्वेषां प्रदाने पुरवैरिणा ॥ ५५८ ॥
एक एव हि निर्दिष्टो मन्त्रो नान्यो हि कुत्रचित् ।
मनुराजं प्रवक्ष्ये तं समाकलय सादरा ॥ ५५९ ॥

संहित अर्थात् जोड़वाला, असंहित (= विना जोड़ का), कुप्य (= सोना चाँदी से अतिरिक्त धातु), अकुप्य (= सोना-चाँदी), कृत (= बनाया गया), अकृत (= स्वयम्भू), सिद्ध-असिद्ध स्थल से उत्पन्न, जल में उत्पन्न, वृक्ष में उत्पन्न, समुद्र पर्वत में उत्पन्न, नाना द्वीपों में उत्पन्न, प्राणिजात-अप्राणिजात, मैंने जिनको बतलाया तथा जिनको नहीं बतलाया । हे त्रिदशेश्वरि! वे सब उपस्कर के मध्य में प्रविष्ट कहे जाते हैं । कपालडामरतन्त्र में इसका नाम और रचना कही गयी है । हे देवेशि! इस सब के अर्पण का त्रिपुरारि ने एक ही मन्त्र बतलाया है । दूसरा मन्त्र कहीं नहीं है । उस मन्त्रराज को मैं कहूँगा, आदर के साथ सुनो ॥ ५५५-५५९ ॥

[उपस्करणार्पणमन्त्र:]

प्रणवो वाग्भव: पाशलक्ष्मीकामत्रपास्तथा ।
प्रासादनरसिंहौ च योगिनीवनिते ह्यपि ॥ ५६० ॥
विद्युत् कापालकाकिन्यौ मेखलाकुण्डसेतव: ।
डाकिनी शाकिनी चैव प्रलयो हार एव च ॥ ५६१ ॥
जम्भक्रोधमहाक्रोधचूडामणय एव च ।
चतुर्विंशतिबीजानि मन्त्रस्यादिगतानि हि ॥ ५६२ ॥
एतदर्द्धप्रमाणानि वक्ष्ये कूटानि साम्प्रतम् ।
वारुणं कूटमादौ स्याद् भोगकूटमत: परम् ॥ ५६३ ॥
गौह्यकं कूटमस्यानु सत्त्वकूटं ततोऽप्यनु ।
हैरण्यगर्भकूटं च पौष्करं कूटमेव च ॥ ५६४ ॥
भासाकूटं ततोऽनाख्याकूटं संहारकूटकम् ।
अनाहतमत: कूटं मणिपूरकमेव च ॥ ५६५ ॥
स्वाधिष्ठानं सर्वशेषे द्वादशेमानि निर्दिशेत् ।

उपस्करणार्पण मन्त्र—प्रणव वाग्भव पाश लक्ष्मी काम लज्जा प्रसाद नरसिंह योगिनी स्त्री विद्युत् कपाल काकिनी मेखला कुण्ड सेतु डाकिनी शाकिनी प्रलय हार जम्भ क्रोध महाक्रोध चूडामणि ये चौबीस बीज मन्त्र के पहले हाते हैं । अब इसकी आधी संख्या में कूटों को बतलाऊँगा । पहले वारुणकूट, फिर भोगकूट, गौह्यककूट,

उसके बाद सत्त्वकूट फिर हिरण्यगर्भकूट पौस्करकूट, भासाकूट, अनाख्याकूट, संहारकूट, अनाहतकूट, उसके बाद मणिपूरकूट और सबके अन्त में स्वाधिष्ठानकूट—इन बारह कूटों का निर्देश करना चाहिये ॥ ५६०-५६५- ॥

ततो जययुगं ब्रूयात् जीवयुग्मं ततः परम् ॥ ५६६ ॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि प्रकीर्तयेत् ।
महाकङ्कालिनि ततः कङ्कालपदमुच्चरेत् ॥ ५६७ ॥
करङ्कफिङ्किणीनादभूषितार्णाच्च विग्रहे ।
महार्णवाच्छायिनि च महोरगविभूषिते ॥ ५६८ ॥
भीमाकाराद्धारिणि च प्रहारिणि महापदात् ।
श्मशानचारिणि प्रोच्य वदेदिदमतः परम् ॥ ५६९ ॥
ततस्तत्तन्नामधेयमुपस्करणवस्तुनः ।
विधेयस्तत्र तत्रोहः यत्रोपस्करवस्तुनः ॥ ५७० ॥
प्रतिष्ठितं नाम भवेदथाग्रे कलयोद्धृतिम् ।
तुभ्यं निवेदयाम्युक्त्वा गृह्णयुग्मं समुच्चरेत् ॥ ५७१ ॥
प्रणतं जनमाभाष्य आनन्दय युगं लिखेत् ।
उभयत्रापि देवेशि ससन्धानमुदीरयेत् ॥ ५७२ ॥
पालय द्वितयं प्रोच्य पावय द्वितयं तथा ।
सर्वदुष्टान् समाभाष्य द्वितयं चूर्णयोच्चरेत् ॥ ५७३ ॥
मार भिन्धि छिन्धि दह युगं युग्मं युगं युगम् ।
ततश्चिन्तितमर्थं च युगलं वर्ष कीर्तयेत् ॥ ५७४ ॥

इसके बाद दो 'जय' दो 'जीव' फिर 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' कहना चाहिये । 'महाकङ्कालिनि' उसके बाद 'कङ्काल' पद का उच्चारण करना चाहिये । 'करङ्कफिङ्किणीनादभूषित' वर्णों के बाद 'विग्रहे' 'महार्णव' पद के बाद 'शायिनि' 'महोरगविभूषिते' 'भीमाकार' पद के बाद 'धारिणि' 'महा' के बाद 'प्रहारिणि श्मशानचारिणि' का उच्चारण कर 'इदम्' कहना चाहिये । फिर तत्तत् उपस्करण वस्तु का नाम लेना चाहिये । जहाँ जो उपस्कर है वहाँ (उसी लिङ्ग एवं वचन का) ऊह करना चाहिये । पहले प्रतिष्ठित नाम होना चाहिये । 'तुभ्यं निवेदयामि' कहकर दो 'गृह्ण' का उच्चारण करना चाहिये । 'प्रणतं जनं' कहकर दो 'आनन्दय' का उल्लेख करना चाहिये । हे देवेशि! दोनों जगह सन्धि करनी चाहिये । दो 'पालय' दो 'पावय' कहकर 'सर्वदुष्टान्' के बाद दो 'चूर्णय' कहना चाहिये । 'मार भिन्धि छिन्धि दह' को दो-दो बार कहना चाहिये । इसके बाद चिन्तित अर्थ को दो बार तथा दो वर्ष कहना चाहिये ॥ ५६६-५७४ ॥

उक्त्वा वर्षापय युगं निधिं युग्मं च पालय ।
देहि युग्मं दद युगं सर्वान् कामानतः परम् ॥ ५७५ ॥

पूरय द्वन्द्वमाभाष्य ततोऽप्याज्ञापय द्वयम् ।
आदेशय द्विवारं च तावद् वारं प्रसीद च ॥ ५७६ ॥
विसन्ध्यनन्तरूपार्णाद् धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
ततः सर्वोपद्रवेभ्यो मां रक्ष युगलं लिखेत् ॥ ५७७ ॥
चतुर्विंशतिबीजानि पुनरन्यानि कीर्तयेत् ।
नादान्तकं विनादं च विरूपं दाक्षिकं तथा ॥ ५७८ ॥
सन्दर्शनं विप्रियाद्यं (ज्यं ?)
मायां हारं च विक्रियम् ।
संवर्तकं सन्तानं च संव्यानं पिप्पलं तथा ॥ ५७९ ॥
विवर्तकं विवत्सं च गुप्ताचारं च कैतवम् ।
तुरीयामथ षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वमेव च ॥ ५८० ॥
परापरं शाम्भवं च चिच्छक्तिं तदनन्तरम् ।
महाकल्पस्थायिनं च ततो ब्रह्मकपालकम् ॥ ५८१ ॥

'वर्षापय' को दो बार फिर 'निधि' कहकर 'पालय' को दो बार कहना चाहिये । 'देहि' 'दद' को दो-दो वार 'सर्वान् कामान्' इसके बाद दो 'पूरय' कहकर फिर दो 'आज्ञापय' कहना चाहिये । 'आदेशय' को दो बार और उतनी ही बार 'प्रसीद' कहे । फिर सन्धिरहित 'अनन्तरूप केवल 'धारिणि' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'सर्वोपद्रवेभ्यो मां' फिर 'रक्ष' को दो बार कहे । इसके पश्चात् अन्य चौबीस बीजों को कहना चाहिये । नादान्तक विनाद विरूप दाक्षिक सदर्शन विप्रियाद्य माया हार विक्रिय संवर्त्तक सन्तान संव्यान पिप्पल विवर्त्तक विवत्स गुप्ताचार कैतव तुरीया षट्चक्र शक्तिसर्वस्व परापर शाम्भव, चिच्छक्ति तदनन्तर महाकल्प स्थायी, ब्रह्मकपाल कहना चाहिये ॥ ५७५-५८१ ॥

अथैतदर्धसंख्याकाः कूटास्त्रिदशवन्दिते ।
मालाकूटं चण्डकूटं वैदिकं हि न चेतरत् ॥ ५८२ ॥
उच्चखण्डाह्वयं कूटं कूटं सामयिकं तथा ।
त्रिकूटकूटं कूटं च मेरुसंज्ञमतः परम् ॥ ५८३ ॥
ऐश्वर्यकूटं च महोदयसंज्ञं तथैव च ।
इच्छाकूटमहङ्कारकूटं तदनु भामिनि ॥ ५८४ ॥
खेचरीकूटमस्यानु कूटमौदयिकं तथा ।
दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लांस्ततः परमुदीरयेत् ॥ ५८५ ॥
हूं फट् नमः शिरो युक्तो भाषितो मनुरेष ते ।
मन्त्रेणानेन देवेशि देव्यै सर्वाणि सर्वदा ॥ ५८६ ॥
उपस्करणवस्तूनि शक्यन्ते दातुमञ्जसा ।
येऽत्रोक्ता ये च नात्रोक्ताः पदार्था जगदुद्भवाः ॥ ५८७ ॥

तेषामेष हि सर्वेषां दाने मनुरुदीरितः ।
द्वात्रिंशदुपचाराणां मन्त्रा उक्ताः पृथक् पृथक् ॥ ५८८ ॥
एतेनैवापि ते शक्या उत्स्रष्टुं कमलानने ।
तथापि किन्तु सामान्यो विशेषभाव आगते ॥ ५८९ ॥
विशेषो बाधते देवि सामान्यं नैव तं पुनः ।

हे त्रिदशवन्दिते! अब इसके बाद इसके आधे कूट कहने चाहिये । वे हैं—मालाकूट चण्डकूट—यह वैदिक होना चाहिये अन्य नहीं । उच्चखण्डानामक कूट सामयिककूट त्रिकूटकूट मेरुकूट ऐश्वर्यकूट महोदयकूट इच्छाकूट अहङ्कारकूट उसके पश्चात् हेमामिनि खेचरीकूट इसके बाद औदयिक कूट । इसके पश्चात् दण्ड लज्जा गो अंशु शुक्ल बीजों को कहने चाहिये । 'हूं फट् नमः शिर'—यह मन्त्र तुमको बतलाया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं श्रीं क्लीं ह्लीं हौं क्ष्रौं छ्रीं स्त्री ब्लौं थ्रीं फ्रीं रक्ष्रीं कहलश्रीं रठ्रीं खफ्रें फ्रें क्लफ्रां हक्षम्लैं स्त्रखफ्रैं हूं क्षूं रझ्रीं ह्लहलव्य्रकऊं चरक्ष्ल हमह्लूं खफसहक्ष्लबूंक्रौं सहकक्षक्षह्लमव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊंस्हक्षम्लव्य्रईं सहक्षम्लव्य्रईं क्षह्रम्त्व्रऊं क्ष्ज्ञस्हम्लव्य्रऊं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्ष्ज्ञरहम्लव्य्रईऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं स्हक्षम्लव्य्रईऊं जय जय जीव जीव भगवति गुह्यकालि महाकङ्कालिनि कङ्कालकरङ्ककिङ्किणीनादभूषितविग्रहे महार्णवशायिनि महोरगविभूषिते भीमाकारधारिणि महाप्रहारिणि श्मशानचारिणि इदं अमुकद्रव्यं तुभ्यं निवेदयामि गृह्ण गृह्ण प्रणतं जनमानन्दयानन्दय पालय पालय पावय पावय सर्वदुष्टान् चूर्णय चूर्णय मार (य) मार (य) भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि दह दह अमुकद्रव्यं वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय निधिं पालय पालय देहि देहि दद दद सर्वान् कामान् पूरय पूरय आज्ञापय आज्ञापय आदेशय आदेशय प्रसीद प्रसीद अनन्तरूपधारिणि सर्वोपद्रवेभ्यो मां रक्ष रक्ष खफ्रक्ष्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रक्लीं खफ्रह्लीं छरह्लूं ह्लछ्रूं ढौं ह्लीं ह्लक्षम्लैं क्लह्लूं क्लफ्रीं म्लूं ह्लफ्रूं स्त्रखफ्रीं क्लरह्लीं ह्लखफ्रीं ह्लथ्रूं क्लखफ्रां फ्रम्लग्लूं फ्रखभ्रीं हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं क्षरस्त्राङ्कफ्रीं (चिच्छक्ति) (महाकल्पस्थायीकूट) हसखफ्रक्ष्रौं प्रस्हम्लक्षक्लीं खफ्रध्रव्य्रओछ्रध्रीं (उच्चखण्डकूट) ब्लकक्षहमस्त्रह्लूं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं रहक्षम्लव्य्रअखफछरस्त्रह्लीं टफ्रकमक्षजस्त्रीं ह्लखफ्रूंरघ्रांव्य्रक्रीं कह्लक्लक्षखफ्रीं व्रमक्लयसक्षक्लीं सखक्लक्ष्मघ्रयब्लीं लगमक्षखफ्रसह्लूं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं फट् नमः स्वाहा) ।

यह मन्त्र तुमको बतलाया गया । हे देवेशि! इस मन्त्र से देवी के लिये समस्त उपस्कर वस्तुयें अञ्जसा (= उचित रूप से) दी जा सकती हैं । संसार में उत्पन्न होने वाले सारे पदार्थ जो यहाँ कहे गये और जो नहीं कहे गये उन सबके दान में यह मन्त्र कहा गया । बत्तीस उपचारों के (अर्पण के विषय में) पृथक्-पृथक् मन्त्र कहे गये । हे कमलानने! इस मन्त्र से भी उनका दान किया जा सकता है । तो भी यह

सामान्य मन्त्र है जो कि विशेष के न होने पर प्रयोज्य होता है । हे देवि! विशेष सामान्य का बाध करता है न कि सामान्य विशेष का ॥ ५८२-५८९- ॥

[आरार्त्रिकविधिः]

अत आरार्त्रिकविधिं जानीहि गदतो मम ॥ ५९० ॥

आरती विधि—इसके बाद अब मुझसे कही जाने वाले आरती की विधि को जानो ॥ ५९० ॥

[आरार्त्रिकपरिचयः]

एकस्मिन् भाजने यत्र भूयस्यो दीपवर्तयः ।
तिष्ठन्ति ज्वलिताः सर्वास्तदारार्त्रिकमुच्यते ॥ ५९१ ॥
वृक्षाकारा लताकारा वर्तुलाकारधारिणः ।
नानाप्रकाराः दीपौघाः स्नेहपूर्णा ज्वलच्छिखाः ॥ ५९२ ॥
आमोदिवस्तुसम्पृक्ता मण्डलीकृतविग्रहाः ।
ऊर्ध्वाधोभागसहिता दीर्घाकारास्तथैव च ॥ ५९३ ॥
दीपवद् विधिरस्यापि नैव मन्त्रो वरानने ।
तन्मन्त्रमभिधास्यामि सावधाना निशामय ॥ ५९४ ॥

आरती का परिचय—एक ही पात्र में जहाँ अनेक दीपों की बत्तियाँ हो और सब जलती हुई हों तो उसे आरती कहते हैं । ये दीपसमूह वृक्ष के आकर, लता के आकार और गोल आकारवाले अर्थात् अनेक प्रकार के होते हैं । इनमें घी या तेल डाला गया होता है । इनकी शिखा जलती रहती है । ये सुगन्धयुक्त वस्तु से युक्त तथा गोल शरीर वाले होते हैं । ये ऊपर नीचे अथवा लम्बाई में रखे होते हैं । हे वरानने! इसकी भी विधि दीप के समान है (किन्तु मन्त्र दीप के समान) नहीं है । उसके मन्त्र को बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो ॥ ५९१-५९४ ॥

[आरार्त्रिकार्पणमन्त्रः]

तारो रावो डाकिनी च प्रलयस्तदनन्तरम् ।
फेत्कारी चामरं चैव विनादमपरान्तकम् ॥ ५९५ ॥
ततः सौमतमुल्लोप्यं ज्ञानमिच्छा तथैव च ।
कूटौ च सिद्धपैशाचौ सत्त्वं कूटमतः परम् ॥ ५९६ ॥
हिरण्यगर्भसंहारानाख्याकूटास्ततः परम् ।
लेलिहानपदाच्चापि रसनातो भयानके ॥ ५९७ ॥
ततो विकटदंष्ट्रा नु कराले परिकीर्तयेत् ।
कुलाकुलाच्चक्रतत्त्वावतारे तदनन्तरम् ॥ ५९८ ॥
पुनः सिद्धकराल्युक्त्वा इदमारार्त्रिकं वदेत् ।

सकृदुक्त्वा गृहाणेति कृपादृष्टिमितीरयेत् ॥ ५९९ ॥
वितर द्वयमाभाष्य सर्वं जनमथो वदेत् ।
ततो नु रञ्जय पदं सन्धियुक्तं समुच्चरेत् ॥ ६०० ॥
ततो राजानमुद्धृत्य वशीकुरु समादिशेत् ।
महैश्वर्यं दद युगं देहि द्वितयमेव च ॥ ६०१ ॥
सर्वमन्त्रान्तगा योक्ता ततः सैव षडक्षरी ।
इत्यारार्त्रिकदो मन्त्रो मया ते परिवर्णितः ॥ ६०२ ॥

आरती के अर्पण का मन्त्र—तार राव डाकिनी प्रलय उसके बाद फेत्कारी चामर विनाद अपरान्तक, उसके अनन्तर सौमत उल्लोप्य, उसी प्रकार ज्ञान और इच्छा सिद्धकूट पैशाचकूट सत्त्वकूट, उसके बाद हिरण्यगर्भ संहार और अनाख्याकूट तत्पश्चात् 'लेलिहान' पद फिर 'रसना' के बाद 'भयानके' फिर 'विकटदंष्ट्रा' के अनन्तर 'कराले' कहना चाहिये । 'कुलाकुल' के बाद 'चक्रावतारे' तदनन्तर 'सिद्धिकरालि' कहकर 'इदमारार्त्तिकं' कहना चाहिये । 'गृहाण' को एक बार कहकर 'कृपादृष्टिं' कहना चाहिये । दो 'वितार' कहकर फिर 'सर्वंजनं' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'रञ्जय' पद को सन्धि के साथ कहना चाहिये । ततः 'राजानं' को उद्धृत कर 'वशीकुरु' को उद्दिष्ट करना चाहिये । 'महैश्वर्यभू' के बाद दो 'दद' दो 'देहि' और फिर सभी मन्त्रों के अन्त में जो षडक्षरी कही गयी उसे कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसख्फ्रें खफ्रक्षूं खफ्रछूं खफ्रक्लूं ह्ग्लूं खफ्रह्रूं फिं फां खलह्वनगक्षरछ्रीं कमहलचहलक्षरज्रीं क्षह्म्ल्व्य्रईं क्षस्ह्ग्ल्व्य्रईं स्हक्षम्ल्व्य्रऊं क्षस्हम्ल्व्य्रऊं लेलिहानरसनाभयानके विकटदंष्ट्राकराले कुलाकुलचक्रावतारे सिद्धिकरालि इदमारार्त्तिकं गृहाण, कृपादृष्टिं वितर वितर सर्वं जनं रञ्जय रञ्जय राजानं वशीकुरु, महैश्वर्यं दद दद देहि देहि हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार मैंने तुमको आरती का मन्त्र बतलाया ॥ ५९५-६०२ ॥

[आरार्त्रिकदानफलम्]

अनेनारार्त्रिकं दत्त्वा देव्यै यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं केन वक्तव्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥ ६०३ ॥
सूर्यलोके वह्निलोके देवीलोके तथैव च ।
समानां कोटिमेकैकां क्रमेग वसति ध्रुवम् ॥ ६०४ ॥
इत्येवं केवला पूजा देव्य.स्ते प्रतिपादिता ।
द्वात्रिंशदुपचाराणां भिन्नो भिन्नो मनुः क्रमात् ॥ ६०५ ॥
विशिष्य कीर्तितस्तुभ्यं त्रिपुरघ्नमुखोद्गतः ।

आरती दान का फल—इस मन्त्र से देवी के लिये आरती देकर (साधक) जो फल प्राप्त करता है उस फल को सौ करोड़ वर्ष में भी कौन कह सकता है । (वह

साधक) क्रम से सूर्यलोक अग्निलोक और देवीलोक में समान रूप से एक-एक करोड़ वर्षों तक रहता है । इस प्रकार तुमको देवी की केवल पूजा बतलायी गयीं । साथ ही त्रिपुरारि के मुख से निकले हुए बत्तीस उपचारों के भिन्न-भिन्न मन्त्र बतलाये गये ॥ ६०३-६०५- ॥

[दशमुख्या: गुह्यकाल्या: पूजोपक्रम:]

अधुना दशवक्त्राणां पूजनं प्रवदामि ते ॥ ६०६ ॥
एकैकवक्त्रेणैकैकं देवीरूपं प्रधार्यते ।
तत्तद्रूपेण देव्यास्तु तत्तद्वक्त्रं प्रपूजयेत् ॥ ६०७ ॥
मन्त्रोद्धारमथो वच्मि चेत: प्रणिहितं कुरु ।

दशमुखी गुह्यकाली की पूजा—अब मैं तुमको गुह्यकाली के दशमुखों की पूजा बतला रहा हूँ । एक-एक मुख से एक-एक देवी की अवधारणा की जाती है । देवी के तत्तद् रूप से तत्तद् वक्त्र की पूजा करनी चाहिये । अब मैं मन्त्रोद्धार कह रहा हूँ, चित्त को सावधान करो ॥ ६०६-६०७- ॥

[वक्त्रपूजामन्त्र:]

आदौ बीजत्रयं भिन्नं भिन्नं सर्वत्र तिष्ठति ॥ ६०८ ॥
ततो नामान्यपि पुनर्देव्या देवि पृथक् पृथक् ।
तै: स्वरूपपदस्यापि विग्रहो ङेऽन्तवानपि ॥ ६०९ ॥
भिन्नभिन्नपदै: साकं वक्त्रशब्दोऽपि विग्रही ।
पूर्ववत् सोऽपि ङेऽन्त: स्याद्
द्वयोरपि यथाक्रमम् ॥ ६१० ॥
आद्यो विशेषणीभूतो विशेष्यश्चापरो मत: ।
हार्दमन्त्रेण सहित: सर्वशेषे प्रकीर्तित: ॥ ६११ ॥
इत्येष वक्त्रपूजाया विधि: सामान्य ईरित: ।

वक्त्रपूजा मन्त्र की सामान्य विधि—पहले तीन भिन्न-भिन्न बीज सर्वत्र (= सभी दश मन्त्रों में) रहते हैं । हे देवि! इसके बाद देवी के नाम भी पृथक्-पृथक् रहते हैं । उनके साथ समान ङेऽन्त 'स्वरूप' पद रहता है । भिन्न-भिन्न पदों के साथ 'वक्त्र' शब्द भी समासयुक्त रहता है । पूर्व की भाँति वह भी ङेऽन्त होता है । उक्त दोनों में क्रम से पहला विशेषण और दूसरा विशेष्य के रूप में प्रयुक्त होता है। सबके अन्त में हृदय मन्त्र कहा गया होता है । इस प्रकार तुमको वक्त्रपूजा की सामान्य विधि बतलायी गयी ॥ ६०८-६११- ॥

[दशमुख्या गुह्यकाल्या वक्त्रपूजायां मन्त्रविशेषाभिधानम्]

विशेषमधुना वक्ष्ये मनव: स्यु: स्फुटास्तत: ॥ ६१२ ॥
वेदादिरावदीपाश्च मैधकामसटास्तत: ।

मायारमाभैरवाणि चण्डाङ्कुशरुषोऽपि च ॥ ६१३ ॥
योगिनीशक्तिखेचर्यः कालीरावमहाक्रुधः ।
क्षेत्रपालवधूताक्ष्या नृहरिः प्रेतभैरवी ॥ ६१४ ॥
हाकिनीकाकिनीनागा गर्भनागान्तकास्त्रयः ।
सर्वादिमा महाचण्डयोगेश्वर्युच्यते प्रिये ॥ ६१५ ॥
वज्रकापालिनी चापि महाडामर्यनन्तरम् ।
करालीसिद्धितः सिद्धिविकराली ततः परम् ॥ ६१६ ॥
गुह्यकाली चण्डकापालिनी तदनु कथ्यते ।
अट्टहासिन्यथो मुण्डमालिनी सुरवन्दिते ॥ ६१७ ॥
कालचक्रेश्वरी सर्वशेषे परिनिगद्यते ।
द्वीपः(पी ?) सिंहश्च फेरुश्च कपि ऋक्षस्तथैव च ॥ ६१८ ॥
नरश्च गरुडश्चापि मकरो गज एव च ।
दशमस्तु परिज्ञेयः सर्वपाश्चात्त्यगो हयः ॥ ६१९ ॥
इत्येतैरीदृशैश्चापि मन्त्रैः परमशोभनैः ।
दशानामपि वक्त्राणां क्रमात् पूजा विधीयते ॥ ६२० ॥
ऊर्ध्वाधोभावसहिता गन्धोक्तकुसुमाक्षतैः ।

वक्त्रपूजा मन्त्र की विशेष विधि—अब मैं विशेष विधि को बतलाऊँगा। इसके पश्चात् मन्त्रों (के स्वरूप) स्पष्ट हो जायेंगे । वेदादि राव दीप मैध काम सटा उसके बाद माया रमा भैरव, चण्ड अङ्कुश क्रोध, योगिनी शक्ति खेचरी, काली राव महाक्रोध, क्षेत्रपाल वधू गरुड, नृसिंह प्रेत भैरवी, हाकिनी काकिनी नाग, गर्भ नाग और अन्तक ये तीन, हे प्रिये! इन सबके बाद 'चण्डयोगेश्वरि' कहा जाता है । 'वज्रकापालिनि महाडामरी' के बाद 'सिद्धिकराली' उसके बाद 'सिद्धिविकरालि' फिर 'गुह्यकाली चण्डकापालिनी' कहा जाता है । 'अट्टहासिनी' फिर 'मुण्डमालिनी' हे सुरवन्दिते! और सबके अन्त में 'कालचक्रेश्वरी' कहा जाता है । द्वीपी सिंह फेरु कपि ऋक्ष नर गरुड मकर गज और सबके अन्त में आनेवाला हय दशम जानना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें रक्ष्रों महाचण्डयोगेश्वरीस्वरूपाय द्वीपीवक्त्राय नमः ।
२. ऐं क्लीं हें वज्रकापालिनीस्वरूपाय सिंहवक्त्राय नमः ।
३. ह्रीं श्रीं सौः महाडामरीस्वरूपाय फेरुवक्त्राय नमः ।
४. फ्रों क्रों हुं सिद्धिकरालीस्वरूपाय कपिवक्त्राय नमः ।
५. छ्रीं व्लूं ख्रौं सिद्धिविकरालीस्वरूपाय ऋक्षवक्त्राय नमः ।
६. क्रीं फ्रें क्षूं गुह्यकालीस्वरूपाय नरवक्त्राय नमः ।
७. क्षौं स्त्रीं क्रौं चण्डकापालिनीस्वरूपाय गरुडवक्त्राय नमः ।
८. क्ष्रौं स्हौः सौः अट्टहासिनीस्वरूपाय मकरवक्त्राय नमः ।

९. रक्षक्ष्रीं फ्रीं ब्रीं मुण्डमालिनीस्वरूपाय गजवक्त्राय नम: ।

१०. रक्ष्रैं ब्रीं क्ष्लौ: कालचक्रेश्वरीस्वरूपाय हयवक्त्राय नम: ।)

इस प्रकार के परमशोभन मन्त्रों के द्वारा गन्ध पुष्प अक्षतों से क्रम से (देवी के) दश वक्त्रों की ऊर्ध्वभाव अधोभाव के सहित पूजा की जाती है ॥ ६१२-६२० ॥

[समन्त्रास्त्रपूजाविधि:]

एवं वक्त्राणि सम्पूज्य ततोऽस्त्राणि प्रपूजयेत् ॥ ६२१ ॥
तत्र कश्चिद्विशेषोऽस्ति स दुरूहो वरानने ।
गम्य: सूक्ष्मधियामेव नान्यस्य मनसापि हि ॥ ६२२ ॥
तमिदानीमहं वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
विभाग: प्रथमो वामस्ततो दक्षिण उच्यते ॥ ६२३ ॥
एकं बीजं भिन्नभिन्नं पुरत: परिकीर्तयेत् ।
तत्तत्करस्थितं वस्तु ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिशेत् ॥ ६२४ ॥
तत्तच्छब्दस्य यल्लिङ्गं तल्लिङ्गत्वेन तन्मतम् ।
ततो हार्दमनुर्ज्ञेय इत्यस्त्रार्चा मयोदिता ॥ ६२५ ॥
बीजं पुनरथैकैकं भिन्नं भिन्नं सुरेश्वरि ।
ङेऽन्तत्वेन पुरा प्रोक्ता ये शब्दा अस्त्रनामका: ॥ ६२६ ॥
करस्थास्ते क्रमेणैवास्त्रान्ता: कार्या यथास्थिता: ।
(अ?)स्त्रान्ता ङेऽन्ता पुनश्चैव तत: पञ्चाक्षरी प्रिये ॥ ६२७ ॥
शेषसंस्था स्थिरा ज्ञेया सर्वत्रैव समा तथा ।
सा रावहृच्छिरांसीत्थमिति व्यक्ततयोदिता ॥ ६२८ ॥

समन्त्र अस्त्रपूजा विधि—इस प्रकार (साधक) वक्त्रों की पूजा करने के बाद अस्त्रों की पूजा करे । हे वरानने! उसमें कुछ विशेष है जो कि दुरूह है । इसे सूक्ष्म बुद्धि वाले ही समझ सकते हैं, अन्य लोग मन से भी इसको नहीं जान सकते (करने की बात तो दूर है) । उसको अब मैं बतलाऊँगा, सावधान होकर सुनो । पहले वाम विभाग, फिर दक्षिण विभाग कहा जाता है । पहले दोनों का एक किन्तु भिन्न-भिन्न बीज कहना चाहिये । हाथ में स्थित तत्तत् वस्तु को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । तत्तत् शब्द का जो लिङ्ग होता है वही लिङ्ग उसका (= चतुर्थ्यन्त का) भी माना जाता है । इसके बाद हार्द मन्त्र समझना चाहिये । इस प्रकार मैंने अस्त्र पूजा बतलायी । हे सुरेश्वरि! इसके बाद एक-एक भिन्न बीज होते हैं । जो अस्त्रनाम वाले शब्द पहले ङेऽन्त कहे गये थे वे उसी रूप में करस्थ कर अस्त्रान्त कहे जाने चाहिये । पुन: वे अस्त्राय और ङेऽन्त होने चाहिये । हे प्रिये! उसके बाद पञ्चाक्षरी होनी चाहिये । यह पञ्चाक्षरी अन्त में स्थित जाननी चाहिये तथा यह सर्वत्र समान रहती है । उस पञ्चाक्षरी को स्पष्ट रूप से राव हृदय और शिर (= फ्रें नम: स्वाहा) समझना चाहिये ॥ ६२१-६२८ ॥

उभयोर्मन्त्रयोर्ज्ञेयस्तारस्तु प्रथमः स्थिरः ।
बीजात् प्रागिति निर्दिष्टं त्रिपुरघ्नेन माम् प्रति ॥ ६२९ ॥
एवमष्टाधिकशते मन्त्रे तारोऽग्रतः प्रिये ।
विशेषः सुमहानन्यो वर्तते तं निशामय ॥ ६३० ॥
वामभागे सप्तदशतमस्थाने शुचिस्मिते ।
विहायागममूर्धानं द्वे बीजे भवतो ध्रुवम् ॥ ६३१ ॥
एवं दक्षेऽपि नवमस्थाने तारं विनाऽपि हि ।
भवन्ति पञ्चबीजानि सावधाना ततो भवेत्(:) ॥ ६३२ ॥
पुरोक्तवत् सर्वमन्यन्न क्वापि व्यत्ययः कृतः ।
इदानीं क्रमतो बीजनामानि शृणु पार्वति ॥ ६३३ ॥
मणिमालां कपालं च चर्म पाशस्तथैव च ।
शक्ति(:)खट्वाङ्गमथ च मुण्डं पश्चाद् भुशुण्ड्यपि ॥ ६३४ ॥
पिनाकश्च क्रमस्यानु घण्टा प्रेतश्च सानु च ।
कङ्कालो नाकुलश्चापि निर्मोकस्तदनन्तरम् ॥ ६३५ ॥
उन्मादवेण्वेतस्यानु मुद्गरः कुण्डमेव च ।
डमरुः परिघश्चापि भिन्दिपालोऽप्यनन्तरम् ॥ ६३६ ॥
मुसलः पट्टिशः पाशः शतघ्नी फैरवं तथा ।
इति वामकरास्त्राणां प्राग् बीजान्युदितानि ते ॥ ६३७ ॥

(सामान्य और विशेष) दोनों मन्त्रों में तार सबसे पहला बीज है और वह स्थिर रहता है । यह तार अन्य बीज से पहले रहता है । इसको त्रिपुरारि ने मुझे बतलाया । हे प्रिये! इस प्रकार एक-सौ आठ मन्त्रों के पहले तार रहता है । इसके अतिरिक्त अन्य महान् विशेष है उसको सुनो । हे शुचिस्मिते! बायीं ओर सत्रहवें स्थान में आगम मूर्धा (= ओं) को छोड़कर दो बीज स्थायी रहते हैं । इसी प्रकार दायीं ओर भी तार को छोड़कर नवम स्थान में पाँच बीज होते हैं । इसके बाद सावधान हो जाओ । शेष सब पूर्वोक्त की भाँति होता है । कहीं भी उलटफेर नहीं किया गया होता । हे पार्वति! अब क्रम से बीजों को सुनो—मणिमाला कपाल चर्म पाश शक्ति खट्वाङ्ग मुण्डा भुशुण्डी पिनाक क्रम के बाद घण्टा प्रेत सानु कङ्काल नाकुल निर्मोक उसके बाद उन्माद वेणु इसके बाद मुद्गर कुण्ड डमरू पारिध भिन्दिपाल के अनन्तर मुशल पट्टिश पाश शतघ्नी फैरव[1]—ये वामकर में वर्त्तमान अस्त्रों के बीज तुमको बतलाये गये ॥ ६२९-६३७ ॥

अथ दक्षकरस्यापि सावधाना निशामय ।
माला कर्त्री च खड्गश्च तर्जनं चाप्यथाङ्कुशः ॥ ६३८ ॥

---

[1] सबसे पूर्ववर्ती ओं को लेकर यहाँ २९ बीज होते हैं इनमें से सत्ताईस में वर्त्तमान अस्त्रों के पहले २७ बीज एवं सप्तदश के स्थान में दो बीज होते हैं ।

दण्डश्च रत्नकुम्भश्च शूलं तदनु कथ्यते ।
नालीको वत्सदन्तक्षुरप्रभल्लार्धचन्द्रका: ॥ ६३९ ॥
कुन्तश्च पारिजातश्च छुरिका तोमरोऽपि च ।
पुष्पमाला डिण्डिमश्च तथोलूकं कमण्डलु: ॥ ६४० ॥
फलं श्रुक्फलमस्यानु कीलपर्शुगदास्तथा ।
यष्टिर्मुष्टिश्च कुणप: शैशुकस्तदनन्तरम् ॥ ६४१ ॥
इति दक्षभुजास्त्राणां बीजानि कथितानि ते ।

अब दाँयें हाथ में स्थित (अस्त्रों के बीज) को सावधान होकर सुनो—माला कर्त्री खड्ग तर्जन अङ्कुश दण्ड रत्न कुम्भ शूल उसके बाद नालीक वत्सदन्त क्षुरप्र भल्ल अर्धचन्द्र कुन्त पारिजात (= कल्प) छुरिका तोमर पुष्पमाला डिण्डिम उलूक कमण्डलु फल श्रुक् फल कील पर्शु गदा यष्टि मुष्टि कुणप शैशुक[1]—ये दाँयीं भुजा के अस्त्र तुमको बतलाये गये ॥ ६३८-६४१- ॥

अथास्त्राणि समाख्यास्ये ङेऽन्तान्युक्तानि यानि हि ॥ ६४२ ॥
तेनैव चरितार्थत्वमिति चेदुत्तरं शृणु ।
नामभेदेन बीजानां तथास्त्राणां विपर्यय: ॥ ६४३ ॥
कदाचित् स्यादतो वक्ष्ये विशदीकरणाय हि ।
पुनरुक्तादिदोषेण तस्माद् दूष्यं वचो न मे ॥ ६४४ ॥
ब्रवीमि तस्य दृष्टान्तं शृणु पार्वति सादरा ।
बीजपूरं गुह्यकाल्या वर्तते दक्षिणे करे ॥ ६४५ ॥
बीजपूराह्वयं बीजं नहि बीजेषु वर्तते ।
एतदर्थं प्रब्रवीमि नामास्त्राणां पृथक् पृथक् ॥ ६४६ ॥
रत्नमाला कपालश्च चर्मपाशस्तथैव च ।
शक्ति: खट्वाङ्गमुण्डे च भुशुण्डी च पिनाकयुक् ॥ ६४७ ॥
चक्रं घण्टा तथा बालप्रेतशैलोऽप्यनन्तरम् ।
नरकङ्कालनकुलौ सर्प उन्मादवंश्यपि ॥ ६४८ ॥
मुद्गरो वह्निकुण्डश्च डमरु: परिघस्तथा ।
भिन्दिपालश्च मुसल: पट्टिश: प्रास एव च ॥ ६४९ ॥
शतघ्नी च शिवापोत: सव्यहस्तस्थितानि हि ।

अब जो अस्त्र ङेऽन्त कहे गये उनको बतलाऊँगा । यदि प्रश्न किया जाय कि ये अस्त्र पूर्वोक्त अस्त्र बीजों से ही गतार्थ हो जायेंगे तो इसका उत्तर सुनो । बीजों तथा अस्त्रों में नामभेद के कारण उलटफेर हो सकता है । इसलिये स्पष्ट करने के

---

[1] सबसे पूर्ववर्त्ती ओं को लेकर यहाँ ३३ बीज होते हैं । इनमें से सत्ताईस हाथों में वर्त्तमान २७ अस्त्रों के पहले २७ बीज तथा नवम स्थान में पाँच बीज इस प्रकार बत्तीस बीज होते हैं ।

लिये मैं बतलाऊँगा । इसका फल यह होगा कि मेरा वचन पुनरुक्त आदि दोष से दूषित नहीं होगा । हे पार्वति! उसका दृष्टान्त दे रहा हूँ । आदर के साथ सुनो । बीजपूर (= जंभीरी नीबू) गुह्यकाली के दायें हाथ में रहता है । लेकिन बीजों की गणना में बीजपूर नामक बीज का नाम नहीं है । इसलिये मैं अस्त्रों का नाम बीजों से पृथक् कर कह रहा हूँ । रत्नमाला कपाल चर्मपाश शक्ति खट्वाङ्ग मुण्ड भुशुण्डी पिनाक चक्र घण्टा बाल प्रेत शैल उसके बाद नरकङ्काल नकुल सर्प उन्मादवंशी मुद्गर वह्निकुण्ड डमरु परिघ भिन्दिपाल मुसल पट्टिश प्रास शतघ्नी शिवापोत—ये सव्य (अर्थात् बायें) हाथ में स्थित अस्त्र कहे गये ॥ ६४२-६४९- ॥

अस्त्राण्युदीरितानीत्थमथ दक्षस्य वै शृणु ॥ ६५० ॥
रत्नमाला च कर्त्री च खड्गस्तर्जन्यपि प्रिये ।
ततोऽङ्कुशश्च दण्डश्च रत्नकुम्भस्तथैव च ॥ ६५१ ॥
शूलं वाणाश्च कुन्तश्च पारिजातस्तथैव च ।
छुरिका तोमरः पुष्पमाला डिण्डिम एव च ॥ ६५२ ॥
गृध्रः कमण्डलुर्मांसखण्डः स्रग् बीजपूरकः ।
सूचीपर्शुर्गदायष्टिर्मुष्टिः कुणपलालनम् ॥ ६५३ ॥

अब दायें हाथ के अस्त्रों को सुनो—हे प्रिये! रत्नमाला कर्त्री खड्ग तर्जनी अङ्कुश दण्ड रत्नकुम्भ शूल वाण कुन्त पारिजात छुरिका तोमर पुष्पमाला डिण्डिम गृध्र कमण्डलु मांसखण्ड स्रक् बीजपुर सूची पर्शु गदा यष्टि मुष्टि कुणप लालन—हे पार्वति! ये दायें हाथ के अस्त्र कहे गये ॥ ६५०-६५३ ॥

इति दक्षिणहस्तस्य प्रोक्तान्यस्त्राणि पार्वति ।
अथेन्नन्तप्रत्ययान्तङेऽन्तस्त्रीलिङ्गशब्दतः ॥ ६५४ ॥
प्राग्बीजानि प्रवक्ष्यामि तानि त्वं क्रमतः शृणु ।
त्रपाकामवधूलक्ष्मीडाकिन्यो योगिनी तथा ॥ ६५५ ॥
अंशुर्मुक्ता च फेत्कारी ततः शुक्लो महा तथा ।
ताटङ्को भ्रामरी लीला मन्दः सम्मोह एव च ॥ ६५६ ॥
केकराक्षी कालरात्रिः पतनं संहृतिस्तथा ।
कर्णिका शृङ्खला चापि दुष्कृतं पद्ममेव च ॥ ६५७ ॥
सुरसः सुरसस्तन्त्रा कुटिला तदनन्तरम् ।
सम्भूतिश्चतुरस्त्रं च नादान्तक इतोऽप्यनु ॥ ६५८ ॥
चामरश्चैव मारण्डो विनादोऽप्यथ कथ्यते ।
विरूपश्चापरान्तश्च दाक्षिकः सौमतोऽपि च ॥ ६५९ ॥
धन्यमुल्लोप्यसर्वस्वं विप्रियं तदनूद्यते ।
ततो विवत्ससम्भावौ पुनर्विनिमयोऽपि च ॥ ६६० ॥
सञ्जीवनी च संवर्तकविवर्तकनामकौ ।

विराधश्च तुरीया च षट्चक्रमथ कथ्यते ॥ ६६१ ॥
सर्वागमः स्यात्तदनु शक्तिसर्वस्वमेव च ।
सर्वशेषे परिज्ञेया चिच्छक्तिर्वरवर्णिनि ॥ ६६२ ॥
इति तत्तच्छस्त्रवत्या बीजाली पूर्वगामिनी ।
क्रमेण पूर्वभागात्तु मया ते कथिताऽखिला ॥ ६६३ ॥
अस्त्रपूजैवमाख्याता अस्त्रवत्यास्ततोऽप्यनु ।

अब इन् प्रत्ययान्त वाले ङेऽन्त स्त्री लिङ्ग शब्द से पहले जाने वाले बीजों को बतलाऊँगा । उनको तुम क्रम से सुनो । त्रपा काम वधू लक्ष्मी डाकिनी योगिनी अंशु मुक्ता फेत्कारी शुक्ल महा ताटङ्क भ्रामरी लीला मन्द सम्मोह केकराक्षी कालरात्रि पतन संहति कर्णिका शृङ्खला दुष्कृत पद्म सुरस सुरस के बाद तन्त्रा कुटिला सम्भूति चतुरस्त्र नादान्तक इसके बाद चामर मारण्ड विनाद कहा जाता है । विरूप अपरान्तक दाक्षिक सौमत धन्य उल्लोप्य सर्वस्व उसके बाद विप्रिच इसके पश्चात् विवत्स सम्भाव विनिमय सञ्जीवनी संवर्त्तक विवर्त्तक विराध तुरीया इसके अनन्तर षट्चक्र कहा जाता है । सर्वागम उसके बाद शक्ति सर्वस्व और हे वरवर्णिनि! सबके अन्त में चित् और शक्ति जाननी चाहिये । इस प्रकार तत्तत् शस्त्र वाली की पूर्ववर्त्ती सम्पूर्ण बीजपंक्ति जो कि क्रमशः पूर्वभाग से होता है, मैंने तुमको बतलायी । इस प्रकार मैंने पहले अस्त्र पूजा फिर अस्त्रवती की पूजा बतलायी[1] ॥ ६५४-६६३- ॥

[अस्त्रपूजायां कापालिकमौलेययोर्मतभेदकथनम्]

केचित् पूर्वां प्रकुर्वन्ति नोत्तरां यामलादयः ॥ ६६४ ॥
विपरीतं तथा चान्यत् सर्वं कापालिकादयः ।

अस्त्रपूजा के विषय में कापालिक मौलेय मतों में भेद—कुछ यामल आदि मत-वाले पूर्व पूजा को करते हैं किन्तु उत्तर पूजा को नहीं । कापालिक लोग इसके विपरीत उत्तर पूजा करते हैं, पूर्व पूजा नहीं । इसके अतिरिक्त वे अन्य पूजा भी करते हैं ॥ ६६४-६६४- ॥

[अस्त्रपूजाविवादे स्वमताभिधानम्]

मन्मतं तूभयं कुर्यात् त्रिपुरघ्नवचो यथा ॥ ६६५ ॥

अस्त्रपूजा विवाद में ग्रन्थकार का मत—(हे देवि!) मेरा तो मत है कि (पूर्व और उत्तर) दोनों पूजायें करनी चाहिये । त्रिपुरारि का वचन भी ऐसा ही है ॥ ६६५ ॥

---

[1] देवी के बायें-दायें सत्ताईस-सत्ताईस हाथों को मिलाकर चौवन हाथ होते हैं । उन हाथों में एक-एक अस्त्र की दृष्टि से अस्त्रों की संख्या भी चौवन होती है । इन चौवन अस्त्रों और अस्त्रवती में एक-एक शस्त्र आदि के लिये दो-दो मन्त्र होते हैं । इस प्रकार मन्त्रों की संख्या १०८ होती है । उदाहरण के लिये—१. ओं रजझक्षूं रत्नमालायै नमः, ओं रजझजूं रत्नमालिन्यै फ्रें नमः स्वाहा । २. ओं थ्रीं कपालाय नमः, ओं थ्रीं कपालिन्यै फ्रें नमः स्वाहा । इत्यादि (?) ।

[वक्त्रबाह्वस्त्रबाहुल्यपूजायां सिद्धान्तकथनम्]

इदानीं वक्त्रबाह्वस्त्रबाहुल्यसमयं ब्रुवे ।
तारह्लीयोगिनीरावडाकिनीकामिनीरुषः ॥ ६६६ ॥
सप्तबीजानि सर्वत्र स्थिराणीमानि कीर्तयेत् ।
घोररावस्वरूपायेत्येते वर्णास्ततः स्थिराः ॥ ६६७ ॥
ततस्तु तत्तद्वक्त्राणां नामसूहो विधीयते ।
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिश्य नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥ ६६८ ॥
एवं प्रणवरावाभ्यां तत्तदस्त्राय नामतः ।
सङ्कीर्त्य हार्दमन्त्रेण संयोज्य परिपूजयेत् ॥ ६६९ ॥
पुनश्च मैधयोगिन्योरनु पूर्वोक्तवत् प्रिये ।
नामानि तत्तदस्त्राणामुक्त्वा विग्रहवन्ति हि ॥ ६७० ॥
इन्नन्तस्त्रीङेन्तरूपविभक्तिवचनेरणात् ।
हृच्छिरोमन्त्रकथनान् नानाभेदा भवन्ति हि ॥ ६७१ ॥

वक्त्र बाहुअस्त्र की बहुलता में सिद्धान्त का कथन—अब वक्त्र बाहु अस्त्र की अधिकता के सिद्धान्त को बतला रहा हूँ । तार ह्लीं योगिनी राव डाकिनी कामिनी और क्रोध इन सात बीजों को स्थायी रूप से सर्वत्र कहना चाहिये । इसके बाद 'घोररावस्वरूपाय' ये वर्ण सर्वत्र स्थायी होते हैं । इसके पश्चात् तत्तद् वक्त्रों के नामों में ऊह करना पड़ता है । उस नाम को ङेऽन्त कहकर 'नम: स्वाहा' कहना चाहिये । इस प्रकार प्रणव और राव के बाद तत्तत् अस्त्र का चतुर्थ्यन्त नाम लेकर उसे हार्द मन्त्र से संयुक्त करने के बाद पूजा करनी चाहिये । पुन: मैध योगिनी के बाद हे प्रिये! पूर्वोक्तवत् तत्तत् अस्त्रों के समासयुक्त नामों को कहकर इनि प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग के ङेऽन्त रूप को कहने से तथा हृदय और शिर के कहने से अनेक प्रकार के भेद होते हैं । (उदाहरण के लिये—ॐ ह्लीं छ्रीं फ्रें खफ्रें स्त्रीं हूं घोररावस्वरूपाय (यहाँ द्वीपी आदि नामों का उच्चारण करना चाहिए) वक्त्राय नम: स्वाहा । ओं फ्रें रत्नमालायै नम: । ऐं छ्रीं रत्नमालिन्यै नम: स्वाहा) ॥ ६६६-६७१ ॥

[देव्या: समन्त्र अङ्गप्रत्यङ्गपूजाविधि:]

अस्मिन्नेव क्षणे केचिदङ्गप्रत्यङ्गपूजनम् ।
प्रकुर्वते तद्विधानं कथ्यमानं मया शृणु ॥ ६७२ ॥
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।
एतानि पञ्च बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ॥ ६७३ ॥
हार्दमन्त्रः सर्वशेषे कूटत्वेन व्यवस्थितः ।
मध्येषूहाः प्रकर्तव्यास्तान् ब्रवीमि क्रमेण ते ॥ ६७४ ॥
सप्तविंशतिशब्दानु लोचनेभ्यः प्रकीर्तयेत् ।

आभाष्य विंशतिपदं ततश्चेमान् प्रकीर्तयेत् ॥ ६७५ ॥
कर्णेभ्यस्तत्परं नासापुटेभ्यो भ्रूभ्य एव च ।
कपोलेभ्योऽथ गण्डेभ्यो हनुभ्यस्तदनन्तरम् ॥ ६७६ ॥
असृग्भ्यो दन्तपंक्तिभ्योऽधरौष्ठेभ्यस्ततः परम् ।
ततः पुनर्दश प्रोच्य नासाभ्यः परिकीर्तयेत् ॥ ६७७ ॥
जिह्वाभ्योऽथ गलेभ्यश्च पार्श्वाभ्यां वक्षसे तथा ।
पृष्ठाय जठरायापि नाभये वस्तयेऽपि च ॥ ६७८ ॥
ऊरूभ्यामथ जानुभ्यां जङ्घाभ्यां तदनन्तरम् ।
गुल्फाभ्यां चरणाभ्यां च चतुर्विंशतिरित्यमी ॥ ६७९ ॥
तेष्वप्यूहः प्रकर्तव्यो वक्त्राधिक्येषु पार्वति ।
अत एव गुरुप्रज्ञातार्च्यो मन्त्रमहार्णवः ॥ ६८० ॥
यदत्रोक्तं च यन्त्रोक्तं नररीतिक्रमेण वै ।
तत्सर्वं योजयेद् देव्या अङ्गे साधकसत्तमः ॥ ६८१ ॥
तेषां मन्त्रास्तु मन्त्रार्णे भारत्याष्टममीश्वरि ।
यावद्द्वादशवर्णाः स्युरेते ज्ञेयाः पुरःसरा ॥ ६८२ ॥
मध्ये सोऽहं विधिं कृत्वा हृच्छीर्षे चरमे वदेत् ।
एतेन मनुना देवि सर्वं कर्तुं हि शक्यते ॥ ६८३ ॥
पूजाविधानं देव्यास्तु उदितानुदितक्रमे ।
अमुं तु सर्वगां विद्यां मन्त्रराजं प्रचक्षते ॥ ६८४ ॥
येऽन्यान् मन्त्रान्न जानन्ति तेषां मन्त्रोऽयमीरितः ।
विद्यया सर्वगतया पूजा बहुफला भवेत् ॥ ६८५ ॥
इमां तु सर्वगां विद्यां यत्नतो नृषु गोपयेत् ।
अथाऽन्ये देवि विद्येते विद्ये परमगोपिते ॥ ६८६ ॥
समयाख्या च हृदयनामिका तदनन्तरम् ।
नैताभ्यामन्तरा देव्या भवेदावरणार्चनम् ॥ ६८७ ॥
तत्प्रसङ्गेन ते विद्ये कथयिष्यामि ते प्रिये ।

देवी के अङ्गप्रत्यङ्ग की मन्त्रसहित पूजा—कुछ लोग इसी अवसर पर अङ्गप्रत्यङ्ग की पूजा करते हैं । मेरे द्वारा कथ्यमान उस निधान को सुनो । भौवनेशी योगिनी कूर्च स्त्री तथा शाकिनी ये पाँच बीज सर्वत्र स्थिर होते हैं । सबके अन्त में हार्द मन्त्र स्थायी रूप से रहता है । मध्य में ऊह करने होते हैं । उनको क्रम से कह रहा हूँ । 'सप्तविंशति' शब्द के बाद 'लोचने' कहना चाहिये फिर 'विंशति' पद कहकर उसके बाद निम्नलिखित शब्दों को कहना चाहिये—'कर्णेभ्यः, नासापुटेभ्यः, भ्रूम्यः, कपोलेभ्य गण्डेभ्यः, हनुभ्यः, असृम्भ्यः, दन्तपंक्तिभ्यः, अधरोष्ठेभ्यः, इसके

बाद पुनः 'दश' कहकर 'नासाभ्यः' कहना चाहिये । 'जिह्वाभ्यः गलेभ्यः पार्श्वाभ्यां, वक्षसे, पृष्ठाय, जठराय, नाभये, वस्तये, ऊरुभ्यां, जानुभ्यां, जङ्घाभ्यां' उसके बाद 'गुल्फाभ्यां, चरणाभ्यां' ये चौबीस हैं ।[१] हे पार्वति! वक्त्राधिक्य होने पर उनमें भी ऊह करना चाहिये । इसीलिये मन्त्रमहार्णव गुरु से ज्ञात अर्चावाला होता है । जो यहाँ मनुष्य की रीति के क्रम से कहा गया और जो नहीं कहा गया उस सबको देवी के अङ्ग में जोड़कर उत्तम साधक पूजन करे । हे ईश्वरि! उन (= अङ्गों) के मध्य में 'सोऽहं विधि' करके अन्त में हृदय और शिर कहना चाहिये । हे देवि! इस मन्त्र से उक्त और अनुक्त क्रमवाला देवी का समस्त पूजा विधान किया जा सकता है । विद्वान् लोग इस सर्वगामिनी विद्या को मन्त्रराज कहते हैं। जो लोग अन्य मन्त्रों को नहीं जानते उनके लिये यह मन्त्र कहा गया । इस सर्वगामिनी विद्या से की गयी पूजा बहुत अधिक फल देने वाली होती है । इस सर्वगा विद्या को मनुष्यों में प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये । हे देवि! इसके अतिरिक्त अन्य दो विद्यायें परमगोपनीय हैं । उनके नाम समय और हृदया है । इन दोनों के विना देवी की आवरण पूजा नहीं होती । हे प्रिये! उस प्रसङ्ग से उन विद्याओं को बतलाऊँगा ॥ ६७२-६८७- ॥

[आवरणपूजोपक्रमः]

अधुना प्रस्तुतं वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥ ६८८ ॥
पूजामित्थं विनिर्वर्त्त्य संविधाय षडङ्गकम् ।

आवरणपूजा का उपक्रम—अब मैं प्रस्तुत को कह रहा हूँ । उसमें मन लगाओ । इस प्रकार पूजा सम्पन्न कर षडङ्गन्यास करने के बाद- ॥ ६८८-६८८- ॥

[अञ्जलित्रयदानविधिः]

मूलमन्त्रेण पुष्पाणामञ्जलित्रितयं ततः ॥ ६८९ ॥
दत्त्वा देव्यै ततो बध्वाञ्जलिं नेत्रे निमील्य च ।
क्षणं ध्यात्वा तदाकारामनुज्ञां प्रार्थयेत वै ॥ ६९० ॥
परिवारगणार्चायैः साङ्गावरणकक्रमैः ।
कृताञ्जलिः श्लोकयुगं वक्ष्यमाणमुदीरयेत् ॥ ६९१ ॥

अञ्जलित्रय का दान—मूलमन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । उसके बाद हाथ जोड़ कर आँखें वन्द कर देवी के स्वरूप का ध्यान कर अङ्गावरण क्रम से परिवारगण की पूजा के आज्ञा के लिये प्रार्थना करनी चाहिये । इस क्रम में हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण दो श्लोक पढ़ना चाहिये ॥ ६८९-६९१ ॥

---

[१] यहाँ पूजा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं फ्रें सप्तविंशतिलोचने विंशतिकर्णेभ्यो नमः । इसी प्रकार 'विंशतिनासापुटेभ्यो नमः'—इत्यादि कहकर पूजा करें ।

[आवरणपूजायै देव्या अनुज्ञाप्रार्थनम्]

यथाज्ञानं यथाशक्ति तव पूजा मया कृता ।
तया तुष्टा भवेशानि मयि दास्यमुपेयुषि ॥ ६९२ ॥
कुलाकुलसमुद्भूतसम्प्रदायप्रबोधिनि ।
अनुज्ञां देहि मे देवि परिवारार्चनाय ते ॥ ६९३ ॥

हे ईशानि! मैंने यथाज्ञान और यथाशक्ति आपकी पूजा की । उस पूजा से दास्यभाव रखने की इच्छा वाले मुझ पर आप सन्तुष्ट हो जाइये । हे कुलाकुल! हे समुद्भूत सम्प्रदाय को प्रबुद्ध करने वाली देवि! अपने परिवार की पूजा करने के लिये मुझे अनुज्ञा दीजिये ॥ ६९२-६९३ ॥

[प्राणायामाचरणनिर्देशः]

आज्ञां देव्याः प्रगृह्येत्थं प्राणायामं विधाय च ।
तदावरणपूजां तामारभेत विचक्षणः ॥ ६९४ ॥

प्राणायाम का आचरण—इस प्रकार देवी की आज्ञा लेकर प्राणायाम करने के वाद विद्वान् उसके आवरण की पूजा का प्रारम्भ करे ॥ ६९४ ॥

[मुख्यावरणपूजोपक्रमः]

तत्रापि मुख्यावरणपूजा काचन विद्यते ।
तां पुरः कथयिष्यामि ततोऽन्या सुरवन्दिते ॥ ६९५ ॥
याऽगुणाऽद्वितयाऽतीता निराकारा चिदुज्ज्वला ।
रूपाकारादिना तस्या न ध्यानं चैव नार्चनम् ॥ ६९६ ॥
गतायां द्विगुणीभावं बिभ्रत्यां रूपविग्रहौ ।
चैतन्यमय्यामपि च प्राणिवत्सर्वकल्पना ॥ ६९७ ॥
एवं स्थिते महेशानामवश्यं पतिकल्पना ।

मुख्य आवरण की पूजा—इसमें भी कोई मुख्य आवरण की पूजा होती है । हे सुरवन्दिते! पहले उसको बतलाऊँगा, इसके बाद अन्य की बात करूँगा । जो निर्गुण अद्वितीय अतीत निराकार और चित्प्रकाश स्वरूप है, रूप आकार आदि की दृष्टि से न तो उसका ध्यान होता है न अर्चन । जब वह द्विगुण अर्थात् द्वित्व को प्राप्त होती है तथा रूप और शरीर धारण करती है तब उस शुद्ध चैतन्यमयी में भी प्राणि के समान सब कुछ की कल्पना होती है । ऐसा होने पर महेश्वरों की पति के रूप में कल्पना अवश्य की जाती है ॥ ६९५-६९७- ॥

[महेश्वरस्य नृसिंहाकारतयोग्रतमरूपता]

कालाग्निरुद्रो भगवान् स्वयमेव महेश्वरः ॥ ६९८ ॥
निरीक्ष्याकारमेतस्या विकरालं महोत्कटम् ।

सौम्यरूपैः सन्निधातुमशक्तः साध्वसाकुलः ॥ ६९९ ॥
कृत्वा घोरतरं रूपं सिंहाकारं विभीषणम् ।
उपासांचक्र ईशानीं दुर्निरीक्ष्यतराकृतिम् ॥ ७०० ॥
प्रतिरूपेण देवेशि कामभोगरसाकुला ।
तादृगुग्रो नृसिंहोऽपि यादृगुग्रा महेश्वरी ॥ ७०१ ॥
तयोर्योगो योग्यरूपोऽत एव परिकीर्तितः ।
पुर आवरणार्चाया अतस्तं परिपूजयेत् ॥ ७०२ ॥
कालाग्निरुद्ररूपस्य भीषणस्य महेशितुः ।
आकारो नरसिंहस्य यथा तस्य तथैव च ॥ ७०३ ॥
ज्वालामालीनृसिंहेति तस्य नाम निगद्यते ।
स एव भगवान् रुद्रः सिंहरूपेण संस्थितः ॥ ७०४ ॥
सिंहरूपमतस्तस्याः पतिं रुद्रं प्रपूजयेत् ।
देव्या दक्षिणभागे तु सर्वदा स्थितमीश्वरम् ॥ ७०५ ॥
चिन्तयित्वार्चयेत् सर्वोपचारैरम्बिकां यथा ।

महेश्वर की नरसिंह के आकार में उग्रतम रूप की कल्पना—स्वयं कालाग्नि-रुद्र भगवान् महेश्वर जब इस पार्वती के विकराल एवं महा उत्कट रूप को देखकर सौम्यरूप से उसके पास जाने में असमर्थ हो गये और भय से व्याकुल हो गये तव महाभयङ्कर घोरतररूपी सिंह का आकार धारण कर दुर्निरीक्ष्यतर आकृति वाली ईशानी की उपासना की । हे देवेशि! कामभोगरसाकुला महेश्वरी जैसी उग्र हुई उसी रूप में नृसिंह भी वैसे ही उग्र हो गये । इसीलिये उन दोनों का योग योग्यरूप-वाला कहा गया है । इसलिये आवरण पूजा के पहले उस नृसिंह की पूजा करनी चाहिये । कालाग्नि रुद्ररूप भयङ्कर महेश्वर का जैसा नरसिंह का आकार है, उसी प्रकार उनका नाम भी ज्वालामालीनृसिंह कहा जाता है । वे भगवान् रुद्र ही नृसिंह रूप से स्थित हैं। इसलिये उस माहेश्वरी के पति रुद्र के सिंहरूप की पूजा करनी चाहिये । सर्वदा देवी के बाँयीं ओर स्थित ईश्वर का ध्यान कर सर्वोपचार से अम्बिका का पूजन करना चाहिये ॥ ६९८-७०५- ॥

[नृसिंहार्चामन्त्रः]

तत्रादौ तन्मनुं वक्ष्ये ध्यानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ७०६ ॥
वेदादिः कमला कामः प्रासादो भुवनेश्वरी ।
योगिनी वनिता हारो बीजं तस्य ततः परम् ॥ ७०७ ॥
नरसिंहपदं ङेऽन्तं ततः परमुदीरयेत् ।
कूर्चमन्त्रं शिरश्चापि मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥ ७०८ ॥
महामन्त्रः समाख्यातो ज्वालामाल्यर्चनाविधौ ।

नृसिंहपूजा का मन्त्र—इस क्रम में पहले मन्त्र बतलाऊँगा उसके बाद ध्यान । वेदादि कमला काम प्रसाद भुवनेश्वरी योगिनी वनिता हार तथा उस (= नृसिंह) का बीज उसके बाद ङेऽन्त 'नरसिंह' पद का उच्चारण करना चाहिये । फिर कूर्च अस्त्र और शिर इस प्रकार यह मन्त्र अठारह अक्षरोंवाला है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं श्रीं क्लीं हौं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं ह्क्षम्लै क्ष्रौं नरसिंहाय हूं फट् स्वाहा) ।

ज्वालामाली की पूजा विधि में यह महामन्त्र कहा गया है ॥ ७०६-७०८- ॥

[नृसिंहार्चामन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

अथैतस्य प्रवक्ष्यामि ऋष्यादिकमनुत्तमम् ॥ ७०९ ॥
अष्टादशाक्षरमनोर्हयग्रीव ऋृषिर्मत: ।
प्रतिष्ठाच्छन्द उदितं स्वक्षरेण विभूषितम् ॥ ७१० ॥
श्रीज्वालामाल्युपपदान्नरसिंहोऽस्य देवता ।
लक्ष्मीबीजं समाख्यातं शक्ति: काम उदाहृत: ॥ ७११ ॥
प्रणव: कीलकं प्रोक्तमेतस्य सुरवन्दिते ।
आवाहनादिमारभ्य यावदेव विसर्जनम् ॥ ७१२ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण तावत् कार्यं विपश्चिता ।

नृसिंहपूजा मन्त्र के ऋषि आदि—अब इस मन्त्र के उत्तम ऋषि आदि को बतलाऊँगा । अठारह अक्षर वाले इस मन्त्र के ऋषि हयग्रीव कहे गये हैं । सुन्दर अक्षरों से विभूषित प्रतिष्ठा इसका छन्द कहा गया है । श्रीं ज्वालामाली नरसिंह देवता हैं । लक्ष्मी बीज और काम शक्ति है । हे सुरवन्दिते! प्रणव इसका कीलक है । आवाहन से लेकर विसर्जन तक के समस्त उपचार विद्वान् इसी मन्त्र से करे । हे देवि! अब संक्षेप में इनका ध्यान बतला रहा हूँ ॥ ७०९-७१३ ॥

[नरसिंहध्यानम्]

अथ संक्षेपतो देवि ध्यानमस्योपवर्णये ॥ ७१३ ॥
उद्यन्मार्तण्डकोट्यंशुसमारुणतनुप्रभम् ।
वर्तुलोल्मुकसङ्काशनेत्रत्रितयभूषितम् ॥ ७१४ ॥
विदारिसृक्कनिर्गच्छद्दंष्ट्रामन्त्रकलान्वितम् ।
विदीर्णविकरालास्यं ललज्जिह्वाविभीषणम् ॥ ७१५ ॥
विमुक्तचामराकारसटाकेसरमण्डितम् ।
आबद्धयोगपट्टान्तं जानुन्यस्तकराम्बुजम् ॥ ७१६ ॥
कोटिकल्पान्तार्कसमं भीमदंष्ट्राट्टहासिनम् ।
कौस्तुभोद्भासिहृदयं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ॥ ७१७ ॥
किरीटहारकेयूरकिङ्किण्युद्गतशोभितम् ।

मुखैः कल्पान्तकालाग्निं वमन्तं सर्वतोमुखम् ॥ ७१८ ॥
करालभ्रुकुटीदृष्टिसन्त्रासितजगत्त्रयम् ।
नखनिर्भिन्नदैत्येन्द्ररुधिरोक्षितदोर्युगम् ॥ ७१९ ॥
विपाटितान्त्रनिर्गच्छद्वसालिप्ताङ्गकुक्षिकम् ।
अस्त्रैर्विभूषितान् दीर्घान्भुजान् षोडश बिभ्रतम् ॥ ७२० ॥
शरं चक्रं गदां खड्गं पाशमङ्कुशमेव च ।
वज्रं विदारणं चापि दक्षिणेन क्रमादपि ॥ ७२१ ॥
धनुः शङ्खं च पद्मं च खेटकं मुसलं तथा ।
परशुं पट्टिशं चापि विदारणमतः परम् ॥ ७२२ ॥
वामैर्भुजैर्द्धारयन्तं रत्नाकल्पविराजितम् ।
योगपट्टान्तरस्थायिसर्वबाहुकफोणिकम् ॥ ७२३ ॥
स्थितं देव्या दक्षभागे रुद्रं सिंहतनूधरम् ।
अत्युग्रमपि रुद्राण्या आज्ञाकारिणमाश्रितम् ॥ ७२४ ॥
कामलालसया देव्यालिङ्गितं दक्षिणैः करैः ।
ध्यायेन्नृसिंहमीदृक्षघोराकृतिधरं प्रभुम् ॥ ७२५ ॥
इति ध्यानं समाख्यातं पुरैव मनुरीरितः ।

नरसिंह ध्यान—यह भगवान् नृसिंह करोड़ों उगते हुए सूर्य के समान लाल शरीर की कान्तिवाले हैं । इनकी तीन आँखें जलते हुए गोल उल्मुक के समान हैं । फटी हुई गलफड़ों से निकलने वाले दाँत मन्त्र और कला से ये विभूषित हैं । इनका मुख फैला हुआ तथा विकराल है । वे लपलपाती हुई जिह्वा से अत्यन्त भयङ्कर हैं । खुली हुई तथा चामर के आकारवाली जटा से मण्डित ये योगपट्ट पहने हुए हैं । हाथों को घुटनों पर रखे हुए ये करोड़ों कल्पान्त सूर्य के समान भयङ्कर हैं । भयङ्कर दाँतों एवं अट्टहास वाले इनके हृदय पर कौस्तुभ मणि चमक रही है । ये सफेद कमल पर विराजमान हैं । किरीट हार केयूर किंकिणी से शोभित ये अपने मुखों से कल्पान्त कालाग्नि को उगल रहे हैं । इनके मुख सब दिशाओं में हैं । ये अपने विकराल भृकुटि वाले नेत्र से जगत् को सन्त्रस्त कर रहे हैं । इनकी दोनों भुजायें नख से विदीर्ण हिरण्यकशिपु के रक्त से उपलिप्त हैं । उसकी फाड़ी गयी आँतों से निकली वसा से इनके अङ्ग और कुक्षि उपलिप्त हैं । ये अस्त्रों से अलंकृत लम्बी सोलह भुजाओं को धारण किये हुए हैं । बाण चक्र गदा खड्ग पाश अङ्कुश वज्र विदारण को दायें हाथों में तथा धनुष शङ्ख पद्म खेटक मुसल परशु पट्टिश तथा विदारण को बायें हाथों में लिये हुए हैं । रत्नों के पहनने से शोभायमान इनकी समस्त भुजायें तथा कोहनियाँ योगपट्ट के भीतर स्थित हैं । सिंह का शरीर धारण किये हुए ये भयानक भगवान् देवी के दाँयें भाग में स्थित हैं । अत्यन्त उग्र होते हुए भी रुद्राणी के आज्ञाकारी तथा उन पर आश्रित हैं । काम की इच्छा वाली देवी के

द्वारा ये दायें हाथ से आलिङ्गित हैं । इस प्रकार की घोर आकृति धारण करने वाले भगवान् नृसिंह का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान बतलाया गया । मन्त्र पहले ही कह दिया गया है ॥ ७१३-७२५- ॥

[नृसिंहार्चामन्त्रस्य षडङ्गन्यासः]

षडङ्गन्यासमधुना मन्त्रस्य त्वं निशामय ॥ ७२६ ॥
कल्पबीजेन चाङ्गुष्ठहृदयाभ्यां नमो वदेत् ।
तर्जनीभ्यां च शिरसे मुक्तया च शिरो वदेत् ॥ ७२७ ॥
मध्यमाभ्यां शिखायै च महार्णेन वषड् वदेत् ।
अनामिकाभ्यां कवचाय क्रमेण च संभ्रमम् ॥ ७२८ ॥
कनिष्ठाभ्यां तथा नेत्रत्रयाय नरसिंहतः ।
वौषडुच्चारयेद् देवि करपृष्ठतलद्वये ॥ ७२९ ॥
अस्त्राय चास्त्रमनुना न्यसेत् साधकसत्तमः ।
एवं षडङ्गं निर्वर्त्य ध्यानं पूर्वोदितं तथा ॥ ७३० ॥
मूलमन्त्रेण वै दद्यादुपचारान् दशापि हि ।

नृसिंहपूजा मन्त्र का षडङ्गन्यास—अब तुम इस मन्त्र का षडङ्गन्यास सुनो । उत्तम साधक को कल्प बीज से 'अङ्गुष्ठहृदयाभ्यां नमः' कहना चाहिये । मुक्ता बीज से 'तर्जनीभ्यां शिरसे स्वाहा' महा से 'मध्यमाभ्यां शिखायै वषट्' क्रम से 'अनामिकाभ्यां कवचाय हुम्' नरसिंह से 'कनिष्ठिकाभ्यां नेत्रत्रयाय वौषट्' और अस्त्र मन्त्र से 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्राय फट्' का न्यास करे ।

(न्यास का स्वरूप निम्नलिखित होगा—
क्ष्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय नमः ।
क्ष्रीं तर्जनीभ्यां नमः शिरसे स्वाहा ।
क्ष्रूं मध्यमाभ्यां नमः शिखायै वषट् ।
भ्रीं (?क्ष्रैं) अनामिकाभ्यां नमः कवचाय हुम् ।
क्ष्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः नेत्रत्रयाय वौषट् ।
फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्राय फट् ।)

इस प्रकार षडङ्गन्यास एवं पूर्वोक्त ध्यान को सम्पन्न कर मूलमन्त्र से (देवी के लिये) दश उपचार देना चाहिये ॥ ७२६-७३०- ॥

[नृसिंहगुह्यकाल्योः सामरस्यध्यानम्]

सह देव्योपेयिवांसं सामरस्य नृसिंहकम् ॥ ७३१ ॥
नृसिंहेन समं देवीं सामरस्यमुपेयुषीम् ।
ध्यात्वा क्षणं कामभोगैरेकीभावं गतावुभौः ॥ ७३२ ॥
पुटितौ द्वावपि मनू दशकृत्वो जपेच्छनैः ।

नृसिंह एवं गुह्यकाली के सामरस्य का ध्यान—देवी के साथ सामरस्य को चाहने वाले नृसिंह तथा नृसिंह के साथ सामरस्य चाहने वाली देवी दोनों को काम भोगों के द्वारा एकीभाव (= मिथुनी भाव) को प्राप्त कर एक क्षण के लिये ध्यान कर दोनों मन्त्रों को मम्पुटित कर दश बार धीरे-धीरे जप करना चाहिये ॥ ७३१-७३८- ॥

[बलिद्रव्यप्रोक्षणविधि:]

अथ पूर्वोदितबलिद्रव्यं देव्याः पुरो गतम् ॥ ७३३ ॥
कृत्वा सम्पूज्य कुसुमाक्षतगन्धजलादिभिः ।
रक्तचन्दनतोयेन प्रोक्षितं तद् विधाय च ॥ ७३४ ॥
समांसखण्डमदिराबिन्द्वक्तं धूपधूपितम् ।
ज्वलत्प्रदीपवर्त्याढ्यं ताम्बूलशकलान्वितम् ॥ ७३५ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बल्युत्सर्गविधायिना ।
एकीभावं गताभ्यां तु ताभ्यां सर्वं निवेदयेत् ॥ ७३६ ॥

बलिद्रव्य के प्रोक्षण की विधि—इसके बाद पूर्वोक्त बलि-द्रव्य को देवी के सामने रखकर पुष्प गन्ध जल अक्षत आदि से उसकी पूजा करने के बाद रक्त चन्दन मिश्रित जल से उसका प्रोक्षण करे । मांस के टुकड़े के साथ मदिरा की कुछ बूंदों वाले, धूप से धूपित जलती हुई बत्ती वाले दीपक से युक्त तथा पान से संयुक्त बलिद्रव्य को बलिदान देने वाले वक्ष्यमाण मन्त्र से एकीभाव को प्राप्त उन दोनों के लिये सब दे देना चाहिये ॥ ७३३-७३६ ॥

[नृसिंहगुह्यकाल्योः एकस्यैव बलेरर्पणे कारणाभिधानम्]

एकमेव बलिद्रव्यमुभयोः सम्प्रदीयते ।
भिन्नं भिन्नं न दातव्यमेवमाहुः पुरद्विषः ॥ ७३७ ॥
एतस्य कारणं वच्मि सावधाना निशामय ।
सामरस्यं गतावेतौ न पृथक् तनुधारिणौ ॥ ७३८ ॥
एकरूपत्वमापन्नौ विलीनाविव तत्तनौ ।
अतो न भिन्नभिन्नं स्यादेकस्य बलिवस्तु तत् ॥ ७३९ ॥

नृसिंह एवं गुह्यकाली को एक ही बलि देने का कारण—दोनों के लिये एक ही बलि दी जाती है । उन दोनों के लिये अलग-अलग बलि नहीं देनी चाहिये—ऐसा पुरद्विष ने कहा है । इसका कारण बतला रहा हूँ । सावधान होकर सुनो । चूँकि वे दोनों सामरस्य को प्राप्त हो गये होते हैं, अत: पृथक् शरीरधारी नहीं रहते । वे एकरूपता को प्राप्त हो गये होते हैं अर्थात् वे एक-दूसरे के शरीर में विलीन हो गये होते हैं । इसलिये भिन्न-भिन्न नहीं बल्कि वह बलिवस्तु एक के लिये होती है ॥ ७३७-७३९ ॥

[बल्यर्पणमन्त्रः]

इदानीं दानमन्त्रं त्वं निशामय सुरेश्वरि ।
तारमैधे त्रपालक्ष्म्यौ मन्मथो योगिनी च रुट् ॥ ७४० ॥
वधूरावौ डाकिनी च फेत्कारी तदनन्तरम् ।
अनाहतं ततः कूटं खेटमुक्ते ततः परम् ॥ ७४१ ॥
हारसानू तथा प्रेतः शक्तिरङ्कुशमानसम् ।
वज्रं कापालमिति च द्वाविंशतिरितीरितः ॥ ७४२ ॥
अस्त्रत्रितयमुच्चार्य विसन्ध्येह्येहि कीर्तयेत् ।
पुनर्भगवतीत्युक्त्वा गुह्यकालि समुद्धरेत् ॥ ७४३ ॥
शिवशक्ति समाभाष्य सामरस्येति कीर्तयेत् ।
पदप्रकाशिनी प्रोच्य सकलाच्च परापर ॥ ७४४ ॥
कुलचक्रेति च ततो मन्त्रयन्त्रमयेत्यपि ।
देहि समांसमदिरं बलिमित्यपि कीर्तयेत् ॥ ७४५ ॥
गृह्ण गृह्णापय तथा भक्ष भक्षय खाद च ।
खाहि षण्णां प्रविलिखेत् युगलं युगलं प्रिये ॥ ७४६ ॥
प्रत्यक्षार्णात् परोक्षार्णात्द्वेषिणो मम कीर्तयेत् ।
शत्रून् दह युगं प्रोच्य मर्दय द्वितयं ततः ॥ ७४७ ॥
द्विरुक्त्वा पातय ततो द्विः शोषय च मूर्च्छय ।
द्विरुक्त्वा त्रासय ततो वदेद् देवि स्वखर्परे ॥ ७४८ ॥
स्थापय द्वन्द्वमाभाष्य प्रवदेद् दीर्घदंष्ट्रया ।
भिन्धि छिन्धि युगं युग्मं ब्रूयादस्त्रत्रयं ततः ॥ ७४९ ॥

बलिदान का मन्त्र—हे सुरेश्वरि! अब तुम बलिदान का मन्त्र सुनो । तार मैध त्रपा लक्ष्मी काम योगिनी क्रोध वधू राव डाकिनी फेत्कारी उसके बाद अनाहत इसके बाद कूट खेट मुक्ता तत्पश्चात् हार सानु प्रेत शक्ति अङ्कुश मानस वज्र कापाल ये बाईस[1] कहे गये होते हैं । इसके बाद तीन अस्त्र का उच्चारण कर सन्धिरहित 'एहि एहि' कहना चाहिये । पुन: 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' को उद्धृत करना चाहिये । 'शिवशक्ति' कहकर 'सामरस्य' का कथन करना चाहिये । 'पदप्रकाशिनी' कहकर 'सकल' के बाद 'परापरकुलचक्र' उसके बाद 'मन्त्रयन्त्रमय' के बाद 'देहि समांसमदिरं बलिं' कहना चाहिये । हे प्रिये! इसके बाद 'गृह्ण गृह्णापय भक्ष भक्षय खाद खाहि' इन छह को दो-दो बार लिखना चाहिये । 'प्रत्यक्ष' वर्ण तथा 'परोक्ष' वर्ण के बाद 'द्वेषिणो मम' का कीर्त्तन करना चाहिये । 'शत्रून्' के बाद दो 'दह' कहकर दो 'मर्दय' कहना

---

[1] यहाँ तार से लेकर कापाल तक के बीजों की संख्या तेईस हो रही है । ग्रन्थकार ने 'द्वाविंशतिः' कहा है । इस वचनवैषम्य का क्या समाधान है—इस पर विद्वान् विचार करें ।

चाहिये । उसके बाद 'पातय' को दो बार कहकर 'शोषय मूर्च्छय' को दो-दो बार कहकर उसके बाद 'त्रासय' को दो बार कहना चाहिए, हे देवि ! 'स्वखर्परि' के बाद 'स्थापय' को दो बार कहकर 'दीर्घदंष्ट्रया' कहना चाहिये । 'भिन्धि छिन्धि' को दो-दो बार कहकर तीन अस्त्र का कथन करना चाहिये ॥ ७४०-७४९ ॥

पाशः कला च श(स)र्वश्च वाग्भवोऽश्वत्थ एव च।
मम राज्यं ततो देहि युगलं दापय द्वयम् ॥ ७५० ॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुः स्त्रीवाजिगजेरयेत् ।
ततश्च रत्नसौभाग्यारोग्यशब्दं समुच्चरेत् ॥ ७५१ ॥
समृद्ध्या मामथोच्चार्य पूरय द्वितयं वदेत् ।
वर्ष युग्मं ततो वर्षापय द्वन्द्वं समुद्धरेत् ॥ ७५२ ॥
तारो माया योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा।
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ७५३ ॥
अस्त्रत्रितयमाभाष्य हृद्द्वयं सन्धिपूर्वकम् ।
सर्वशेषे शिरो मन्त्रो बलिदाने महामनुः ॥ ७५४ ॥
सामरस्यबलेर्दाने नैतुत्तुल्यो मनुः प्रिये ।
पूर्वोदितं बलिद्रव्यमर्चितं कुसुमादिभिः ॥ ७५५ ॥
उत्सृज्य मन्त्रेणानेन प्रदद्यादुभयोरपि ।

पाश कला शर्व वाग्भव अश्वत्थ के बाद 'मम राज्यं' उसके बाद दो 'देहि' दो 'दापय' कहना चाहिये । 'पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायु:स्त्रीवाजिगज' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'रत्नसौभाग्यारोग्य' शब्द का उच्चारण करना चाहिये । उसके अनन्तर 'समृद्ध्या माम्' का उच्चारण कर 'पूरय' को दो बार कहना चाहिये । दो 'वर्ष' उसके बाद दो 'वर्षापय' को उद्धृत करना चाहिये । तार माया योगिनी कूर्च स्त्री शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी उसके बाद तीन अस्त्र कहकर सन्धि सहित दो हृदय और सबके अन्त मे शिरो मन्त्र कहना चाहिये । बलिदान के विषय में यह महामन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं हूं स्त्री फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रां ण्म्लैं ल्यूं क्ष्रीं ह्लक्षम्लैं रह्रीं स्हौः ब्लूं क्रों ठ्रीं ध्रीं घ्रीं फट् फट् फट् एहि एहि भगवति गुह्यकालि शिवशक्तिसामरस्यपदप्रकाशिनि सकलपरापरकुलचक्रमन्त्रयन्त्रमयदेहि (नि?) समांसमदिरं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गह्णापय भक्ष भक्ष भक्षय भक्षय खाद खाद खाहि खाहि प्रत्यक्ष परोक्ष द्वेषिणो मम शत्रून् दह दह मर्दय मर्दय पातय पातय शोषय शोषय मूर्च्छय मूर्च्छय त्रासय त्रासय स्वखर्परि स्थापय स्थापय दीर्घदंष्ट्रया भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि फट् फट् फट् । आं ईं ऊं ऐं औं मम राज्यं देहि देहि दापय दापय पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायु:स्त्रीवाजिगजरत्नसौभाग्यारोग्यसमृद्ध्या मां पूरय पूरय वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय ओं ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हस्फ्रें हसखफ्रें फट् फट् फट् नमः नमः स्वाहा)।

हे प्रिये! सामरस्य बलि के दान में इसके समान कोई मन्त्र नहीं हैं, पूर्वोक्त बलिद्रव्य की पुष्प आदि से पूजा कर इस मन्त्र से उत्सृजन कर दोनों के लिये देना चाहिये ॥ ७५०-७५६ ॥

[आवरणपूजां सनिर्णयं मतभेदप्रदर्शनम्]

नरसिंहार्हणामित्थं समाप्य त्रिदशेश्वरि ॥ ७५६ ॥
पूजामावरणाख्यां तां कुर्वीत तदनन्तरम् ।
अस्मिन्नर्थे मतं भिन्नं भिन्नतन्त्रानुसारतः ॥ ७५७ ॥
दिव्यौघानां तथा सिद्धौघानां मानवसंज्ञिनाम् ।
परस्परं विवादाः स्युस्तत्र निर्णय उच्यते ॥ ७५८ ॥
केचिदावरणार्चां तु सृष्टि(क्रमत)ऊचिरे ।
संहार(क्र)मतः केचिदत्र सिद्धान्त उच्यते ॥ ७५९ ॥
विद्यन्ते परमेश्वर्याः सौम्याः काश्चनमूर्तयः ।
काश्चिदुग्रास्तथा काश्चिदुग्रादुग्रतराः स्मृताः ॥ ७६० ॥
तासां सौम्याः सत्त्वरूपाः पालनाय व्यवस्थिताः ।
उग्रास्तथा रजोरूपाः सृष्टिकर्मण्यवस्थिताः ॥ ७६१ ॥
उग्रोग्रास्तु तमोरूपाः संहाराय व्यवस्थिताः ।

आवरणपूजा में मतभेद एवं निर्णय—हे त्रिदशेश्वरि! इस प्रकार नृसिंह पूजा समाप्त कर उसके बाद आवरण नामक पूजा करनी चाहिये । इस विषय में भिन्न तन्त्रों के अनुसार भिन्न मत है । दिव्यौघ सिद्धौघ और मानवौघ नामक तान्त्रिकों में परस्पर विवाद है । उस विषय में निर्णय बतलाया जा रहा है । कुछ लोग आवरण पूजा को सृष्टिक्रम से कहते हैं, कुछ लोगों का मत है कि यह पूजा संहार क्रम से की जानी चाहिये । इस विषय में सिद्धान्त बतलाया जा रहा है । परमेश्वरी शक्ति की कुछ मूर्त्तियाँ सौम्य हैं, कुछ उग्र और कुछ उग्र से भी उग्रतर मानी गयी हैं । उनमें से सौम्य मूर्त्तियाँ सत्त्वरूपा हैं, जो कि विश्व के पालन के लिये व्यवस्थित हैं। उग्र मूर्त्तियाँ रजोरूपा हैं, जो कि सृष्टि के लिये बनायी गयी हैं । उग्रतर मूर्त्तियाँ संहार के लिये व्यवस्थित हैं ॥ ७५७-७६१- ॥

[देव्याः सौम्यरूपाणामभिधानम्]

अन्नपूर्णा महालक्ष्मी बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥ ७६२ ॥
सरस्वती च मातङ्गी बगला भुवनेश्वरी ।
एताः सौम्याः सत्त्वगुणाः सत्त्वचिच्छक्तिजृम्भिताः ॥ ७६३ ॥

देवी के सौम्य रूपों का निर्वचन—अन्नपूर्णा महालक्ष्मी बाला त्रिपुरसुन्दरी सरस्वती मातङ्गी बगला भुवनेश्वरी ये सौम्यमूर्त्तियाँ सत्त्वगुण वाली हैं तथा चैतन्य के सत्त्वांश से उद्भूत हैं ॥ ७६२-७६३- ॥

[देव्या उग्ररूपाणामभिधानम्]

उग्रतारा शूलिनी च पद्मावत्यथ कुब्जिका ।
त्वरिता जयदुर्गा च त्रिपुटा धनदा तथा ॥ ७६४ ॥
एता रजोगुणा उग्रा रजोंशाधिक्यसम्भवा: ।

देवी के उग्ररूपों का कथन—उग्रतारा शूलिनी पद्मावती कुब्जिका त्वरिता जयदुर्गा त्रिपुटा तथा धनदा ये उग्र मूर्त्तियाँ रजोगुण वाली हैं तथा चित् शक्ति के रजो अंश से प्रकट हुई हैं ॥ ७६४-७६४- ॥

[देव्या उग्रतररूपाणामभिधानम्]

भैरव्यश्छिन्नमस्ता च यावत्य: सन्ति कालिका:॥ ७६५ ॥
चण्डेश्वरी च चामुण्डा फेत्कारिण्यर्धमस्तका ।
उग्रचण्डा सिद्धिलक्ष्मी कालरात्रिर्दिगम्बरा ॥ ७६६ ॥
शिवदूती बाभ्रवी च कालसङ्कर्षिणी तथा ।
भीमादेवी च कोरङ्गी डामरी चर्चिकापि च ॥ ७६७ ॥
घोणकी तामसी चण्डखेचरी रक्तदन्तिका ।
मायूरी शक्तिसौपर्णी महामारी तथैव च ॥ ७६८ ॥
एता देव्यस्तु विज्ञेया उग्रोग्रा: सुरवन्दिते ।
राजसा: सृष्टिकारिण्य: सात्त्विका: पालनप्रिया:॥ ७६९ ॥
ज्ञेया: संहारकारिण्यस्तामस्यो जगदम्बिका: ।

देवी के उग्रतर रूपों का कथन—भैरवी छिन्नमस्ता समस्त कालिकायें चण्डेश्वरी चामुण्डा फेत्कारिणी अर्धमस्तका उग्रचण्डा सिद्धिलक्ष्मी कालरात्रि दिगम्बरा शिवदूती बाभ्रवी कालसङ्कर्षिणी भीमादेवी कोरङ्गी डामरी चर्चिका घोणकी तामसी चण्डखेचरी रक्तदन्तिका मायूरी शक्तिसौपर्णी तथा महामारी, हे सुरवन्दिते! उग्रतरा जाननी चाहिये । इस प्रकार राजसी देवियाँ सृष्टिकारिणी, सात्त्विक पालन करने वाली तथा तामसी जगदम्बिकाओं को संहारकर्त्री समझनी चाहिये ॥ ७६५-७६९- ॥

[आवरणार्चारीतिवर्णनम्]

देवीनां सत्त्वरूपाणां देवि सृष्टिक्रमेण हि ॥ ७७० ॥
भवेदावरणी पूजा नैव संहाररीतित: ।
रजोगुणानामुभयप्रकारेणैव जायते ॥ ७७१ ॥
संहारक्रमतो ज्ञेया तामस्यावरणार्हणा ।
अन्तर्भावात् कालिकानामेतस्या अपि पार्वति ॥ ७७२ ॥
संहाराख्यक्रमेणैव पूजावरणनामिका ।

आवरणार्चा की रीति का वर्णन—हे देवि! सत्त्वरूपा देवियों की सृष्टिक्रम से आवरण पूजा होती है । संहार रीति से नहीं । रजोगुण वाली देवियों की पूजा दोनों

रीतियों से की जाती है । तामसी की आवरणार्चा संहारक्रम से जाननी चाहिये । हे पार्वति! कालिकाओं का (गुह्यकाली में) अन्तर्भाव होने से इस (= गुह्यकाली) की भी आवरणपूजा संहार क्रम से होती है ॥ ७७०-७७२- ॥

[सृष्टिक्रमगावरणपूजाविवरणम्]

मध्यादारभ्य बाह्वन्तं केशादारभ्य पादवत् ॥ ७७३ ॥
या पूजा सा सृष्टिरीतिरित्थं निर्णय ईरितः ।

सृष्टिक्रम वाली आवरणपूजा—मध्य अर्थात् कटिप्रदेश से आरम्भ कर बाहु पर्यन्त तथा केश से लेकर पैर तक की जो पूजा होती है वह सृष्टिक्रम है—यह निर्णय किया गया है ॥ ७७३-७७३- ॥

[संहारक्रमगावरणपूजाविवरणम्]

बाह्वादारभ्य मध्यान्तं पादादारभ्य केशवत् ॥ ७७४ ॥
सा पूजा जगदम्बायाः संहारक्रमगोदिता ।

संहारक्रम वाली आवरणपूजा—बाहु से लेकर मध्य तक तथा पैर से लेकर केश तक की जो जगदम्बा की पूजा होती है उसे संहारक्रमगामिनी कहा गया है ॥ ७७४-७७४- ॥

[गुह्यकाल्याः संहारक्रमगार्चायां युक्तेरभिधानम्]

श्रीगुह्यकाल्यावरणपूजा संहाररीतितः ॥ ७७५ ॥
कर्तव्या नात्र सन्देहो विधेयो येन केनचित् ।
अन्या च युक्तिरुदिता त्रिपुरघ्नेन वै पुरा ॥ ७७६ ॥
ज्ञेयः प्रथम आरम्भः सामान्येनापि कर्मणा ।
मध्ये तु मध्यमेनैव समाप्तौ महता भवेत् ॥ ७७७ ॥
सामान्या आहुतीर्हुत्वा पूर्णायां महती क्रिया ।
पूर्णां समाप्य न ह्यादावन्या आहुतयो मताः ॥ ७७८ ॥
न च प्रागशने मिष्टं समाप्तौ तिक्तमिष्यते ।
मूलपूजां विधायादौ पश्चात् भूतापसारणम् ॥ ७७९ ॥
यथा न कुत्रापि भवेदेवमत्रापि बुध्यताम् ।
पूजामधस्तादारभ्य बिन्दावेव समाप्यते ॥ ७८० ॥
न बिन्दुपूजामारभ्य सिंहासनधरेऽधरे ।
इत्याद्या बहुला युक्तिरेतस्यैव प्रसङ्गतः ॥ ७८१ ॥
कपालडामरे शम्भुरुक्तवान् करुणानिधिः ।
कालिकावरणार्चायां तस्मात् संहारगः क्रमः ॥ ७८२ ॥
स चाधस्तादुपक्रम्य बिन्दौ परिसमाप्यते ।

गुह्यकाली की संहारक्रम वाली पूजा में युक्ति—गुह्यकाली की आवरण पूजा संहाररीति से करनी चाहिये। इस विषय में जिस किसी के भी द्वारा सन्देह नहीं किया जाना चाहिये। एक अन्य युक्ति भी पहले त्रिपुरारि ने दी है। पहले पहला आरम्भ सामान्य कर्म से होता है, मध्य में मध्यम कर्म होता है किन्तु समाप्ति महान् कर्म से होती है (ऐसा लोक व्यवहार है)। सामान्य आहुतियों को देकर पूर्ण आहुति में महती क्रिया (अर्थात् महान् सम्भार के साथ कार्य किया) जाता है। पूर्णाहुति को समाप्त कर फिर पहले अन्य आहुतियों का विधान नहीं है। लोक व्यवहार में भी भोजन के कार्य में पहले मीठी और बाद में तिक्त वस्तुयें नहीं दी जातीं। जिस प्रकार पहले मूल पूजा कर बाद में भूतापसार कहीं नहीं होता उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। पूजा नीचे से प्रारम्भ कर बिन्दु अर्थात् शिर पर समाप्त होती है (अथवा मूलाधार से प्रारम्भ होकर विन्दु अर्थात् सहस्रार में समाप्त होती है) न कि विन्दु की पूजा से प्रारम्भ होती है और समाप्ति सिहांसनधारी अधर में होती है—इत्यादि बहुत सारी युक्तियाँ इस प्रसङ्ग में करुणानिधि भगवान् शिव ने कपाल डामर तन्त्र में कही हैं। इस कारण काली की आवरणार्चा में संहारक्रम ही गृहीत होता है और वह नीचे से प्रारब्ध होकर बिन्दु में समाप्त होता है॥ ७७५-७८२- ॥

[आवरणपूजागतान्तरिकसमस्यायाः समाधानम्]

अथान्यदवधेहि त्वं न च किञ्चिन् मम प्रिये ॥ ७८३ ॥
एतदावरणार्चायां बह्व्यो देव्यो वसन्ति हि।
देवाश्च बहवः सन्ति मिश्रीभावं गता मिथः ॥ ७८४ ॥
बहुत्वाद्देवदेवीनामल्पस्थानतया तथा।
पीठस्य परमेशान्याः पूजाधिकतया तथा ॥ ७८५ ॥
कर्तव्या भक्तिभावेन मनसा स्थानकल्पना।
तस्योदाहरणं वक्ष्ये समासादवधारय ॥ ७८६ ॥
षोडशद्वादशाष्टाख्यच्छदं यन्त्रे सरोरुहम्।
विद्यते परमेश्वर्या न चतुर्विंशतिच्छदम् ॥ ७८७ ॥
तथापि तत्तत्पूजार्थं कल्प्यं तत्त्वच्छदाम्बुजम्।
भूपुरे भैरवार्चार्थं चतुष्कोणप्रकल्पना ॥ ७८८ ॥
वर्तुले मण्डले चापि दिगष्टकविभावना।
दलयोरन्तरे चापि केसरे च स्थलाङ्कनम् ॥ ७८९ ॥
इत्यादिकल्पना ज्ञेयावरणार्चनहेतवे।
पीठे यदस्ति यन्नास्ति यदुक्तं यच्च नोदितम् ॥ ७९० ॥
निर्माय मनसा तत्तत् सर्वं पूजादिकं चरेत्।

आवरणपूजागत आन्तरिक समस्या का समाधान—हे प्रिये! अब तुम एक दूसरा तथ्य जानो। उसमें कुछ भी मेरा नहीं है, इस आवरणार्चा में बहुत-सी देवियाँ

रहती हैं । देव भी बहुत से रहते हैं और वे परस्पर मिश्रित होकर स्थित रहते हैं । देवों और देवियों के बहुत अधिक तथा स्थान के बहुत सङ्कीर्ण होने तथा परमेश्वरी के पीठ की पूजा के अधिक होने के कारण भक्तिभावपूर्वक मन से स्थान की कल्पना करनी चाहिये । उसका उदाहरण संक्षेप में बतलाऊँगा, सुनो । परमेश्वरी के यन्त्र के ऊपर द्वादशदल षोडशदल तथा अष्टादशदल कमल है । चौबीस दलोंवाला कमल नहीं है । तो भी तत्तत् पूजा के लिये तत्त्वच्छद (= २४ दलों वाले) कमल की कल्पना करनी चाहिये । भूपुर में भैरव की पूजा के लिये चतुष्कोण की कल्पना करनी चाहिये । गोलाकार मण्डल में भी आठ दिशाओं की कल्पना की जाती है । दो-दो दलों के बीच तथा केसर में स्थल को चिह्नित करना—इत्यादि कल्पना आवरणार्चन के लिये जाननी चाहिये । पीठ में जो है और जो नहीं है, जो कहा गया और जो नहीं कहा गया, उन सबकी मन से रचना कर पूजा आदि करनी चाहिये ॥ ७८३-७९०- ॥

[आवरणपूजाविधिनिर्वचनम्]

इदानीं क्रमतो वक्ष्ये देव्यावरणपूजनम् ॥ ७९१ ॥
गुह्यकालीनरहरी सामरस्यमुपागतौ ।
पूजयित्वा बलिं दत्त्वा प्राणायामं ततश्चरेत् ॥ ७९२ ॥
ततः षडङ्गं विन्यस्य विकीर्य कुसुमाञ्जलिम् ।
स्पृशन् देव्यास्तु हृदयं वक्ष्यमाणं मनुं जपेत् ॥ ७९३ ॥
देव्या हृदा निजहृदः कुर्वन्नेकत्वमादरात् ।
विद्यामेतामूचुरतो हृदयाख्यां वरानने ॥ ७९४ ॥
विद्यां पूर्वप्रतिज्ञातां वक्ष्यमाणतया तव ।
कथयामि शृणु यतः सद्यः सिद्धिप्रदायिनीम् ॥ ७९५ ॥
हृदयस्य जगद्धात्र्या आत्मनो हृदयस्य च ।
अनेककरणाद्देवि महान् दोषोऽभिजायते ॥ ७९६ ॥
फलं न जायतेऽर्चायाः सिद्धिहानिः पदे पदे ।
अतो हृदयविद्यां तु दशवारं जपेत् सुधीः ॥ ७९७ ॥

आवरणपूजा विधि का कथन—अब क्रम से देवी के आवरण की पूजा बतलाऊँगा । सामरस्य को प्राप्त गुह्यकाली एवं नृसिंह की पूजा कर बलि देकर उसके बाद प्राणायाम करना चाहिये । इसके बाद षडङ्गन्यास करे पुनः कुसुमाञ्जलि को बिखेर कर देवी के हृदय का स्पर्श करते हुए वक्ष्यमाण मन्त्र का जप करना चाहिये । अपने हृदय को आदर के साथ देवी के हृदय से एक करने के कारण हे वरानने! साधक गण इसको हृदय नामक विद्या (= हृदयविद्या) कहते हैं । पूर्व में प्रतिज्ञात तथा आगे तुमको बतलायी जाने वाली विद्या को बतला रहा हूँ । क्योंकि यह सद्यः सिद्धिदायिनी है । हे देवि! देवी के तथा अपने हृदय को भिन्न-भिन्न करने

से महान् दोष होता है; पूजा का फल नहीं मिलता और पग-पग पर सिद्धि की हानि होती है । इसलिये विद्वान् को चाहिये कि वह इस हृदयविद्या का दश बार जप करे ॥ ७९१-७९७ ॥

[मन्त्रात्मिकाया: हृदयाख्यविद्याया: स्वरूपम्]

वेदादि: कमला रावोऽन्वेतस्माद् गुह्यकालिके।
अस्त्रमन्त्र: शाकिनी च कूर्चो हृन्मन्त्र एव च ॥ ७९८ ॥
त्रयोदशाक्षरी विद्या महाघौघप्रणाशिनी ।

मन्त्रात्मिका हृदयविद्या का स्वरूप—वेदादि कमल राव के बाद 'गुह्यकालिके' फिर अस्त्र मन्त्र शाकिनी कूर्च हृन्मन्त्र । यह तेरह अक्षरों वाली विद्या महापापसमूह का नाश करने वाली है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं श्रीं फ्रें गुह्यकालिके फट् फ्रें हूँ नम:) ॥ ७९८-७९८- ॥

[हृदयाख्यमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

ऋषिरस्या: भरद्वाज: पंक्तिश्छन्द उदीर्यते॥ ७९९ ॥
हृदयं देवतैतस्या: कामलं बीजमुच्यते।
शाकिनी शक्तिरुदिता कूर्च: कीलकमीरितम्॥ ८०० ॥
विनियोगो हृदययोरेकीकरण एव च।

हृदय मन्त्र के ऋषि आदि—इस विद्या के ऋषि भारद्वाज और छन्द पंक्ति कहा जाता है । हृदय देवता और कमला बीज है । शाकिनी शक्ति और कूर्च कीलक कहा गया है । दो हृदयों के एकीकरण में इसका विनियोग होता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—अस्या हृदयविद्याया भारद्वाज ऋषि: पंक्तिश्छन्द: नम: देवता श्रीं बीजं फ्रें शक्ति: हूं कीलकं हृदयोरेकीकरणे विनियोग:) ॥ ७९९-८०० ॥

[हृदयाख्यविद्याया: जपनिर्देश:]

इति संस्मृत्य ऋष्यादिमङ्गे विन्यस्य चात्मन: ॥ ८०१ ॥
दशकृत्व: कालिकाहृत् दशकृत्वो निजं च हृत् ।
संस्मृत्य प्रजपेदेनं मन्त्रं साधकसत्तम: ॥ ८०२ ॥
आवाह्यैनां पूजयीत गन्धपुष्पाक्षतादिभि: ।
पुन: हृद्यञ्जलिं बध्वा नयने विनिमील्य च ॥ ८०३ ॥
समयाख्यामथो विद्यामन्यामेकां जपेद् बुध: ।
स्वनाम्नैव समाख्याता विद्येयं सुरदुर्लभा ॥ ८०४ ॥
नैनां जग(प)न्न चाप्नोति फलं देव्यर्चनेऽण्वपि ।

हृदयविद्या के जप का निर्देश—इस प्रकार उत्तम साधक ऋषि आदि का संस्मरण कर और अपने अङ्गों में न्यास कर कालिका के एवं अपने हृदय का

दश-दश बार स्मरण कर इस मन्त्र का जप करे। फिर इस देवी का आवाहन कर गन्ध पुष्प अक्षत आदि से इसकी पूजा करे। उसके बाद विद्वान् मन्त्रज्ञ अपने हृदय के ऊपर हाथ जोड़कर और आँखें बन्द कर समय नामक एक अन्य विद्या का जप करे। देवताओं के लिये भी दुर्लभ यह विद्या अपने नाम से ही विख्यात है। इसका जप नहीं करनेवाला देवी की पूजा का रञ्चमात्र भी फल नहीं प्राप्त करता ॥ ८०१-८०४- ॥

[मन्त्रात्मिकायाः समयाख्यविद्यायाः स्वरूपम्]

तारक्रोधघ्राणरावहृच्छीर्षाणि क्रमेण हि ॥ ८०५ ॥
अष्टाक्षरी महाविद्या समयाख्या प्रकीर्तिता।
शतकृत्वो जपेदेनां दशकृत्वोऽपि वा प्रिये ॥ ८०६ ॥

मन्त्रात्मिका समय विद्या का स्वरूप—तार क्रोध घ्राण राव हृदय और शिर क्रम से आठ अक्षरों वाली समय नामक महाविद्या कही गयी है। हे प्रिये! इसको एक सौ बार अथवा दश बार जानना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं हूं क्ष्रूं फ्रें नमः स्वाहा) ॥ ८०५-८०६ ॥

[समयाख्यविद्याया ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋष्यादिमधुनैतस्य(स्याः) समाकलय तत्त्वतः।
ऋषिरस्याः श्वेतकेतुरनुष्टुप् छन्द एव च ॥ ८०७ ॥
देवता गुह्यकाली च शाकिनी बीजमुच्यते।
डाकिन्यपि तथा शक्तिः फेत्कारी कीलकं स्मृतम्॥ ८०८ ॥
विनियोगस्तथैकाकाचाराय प्रकीर्तितः।
इति ते समया विद्या विविच्य प्रतिपादिता ॥ ८०९ ॥
पूर्ववत् फलमेतस्या अपि विज्ञेयमर्थिभिः।

समयविद्या के ऋषि आदि—अब इसके ऋषि आदि को तत्त्वतः सुनो। इसके ऋषि श्वेतकेतु छन्द अनुष्टुप् देवता गुह्यकाली बीज शाकिनी कहा जाता है। शक्ति डाकिनी कीलक फेत्कारी माना गया है। इसका विनियोग एकाकारचार के लिये कहा गया है। इस प्रकार तुमको समयाविद्या विवेचन के साथ बतलायी गयी। इसका फल भी अर्थियों के द्वारा पूर्व की भाँति जानना चाहिये ॥ ८०७-८०९- ॥

[कापालिकादिसम्प्रदायान्तराणामिह हृदयाख्यसमयाख्यविद्ययोरसहमतिः]

एते विद्ये न मन्यन्ते देवि कापालिकादयः ॥ ८१० ॥
ते वै हृदयविद्यायामम्बाहृदयमूचिरे।
तथा च समयाख्यायां विष्णुतत्त्वं प्रपेदिरे ॥ ८११ ॥
नैतद् युक्तमिति प्राह त्रिपुरघ्नः पुरा मम।

कापालिक सम्प्रदायवादियों के मत में हृदय एवं समयविद्या में मतभेद—हे देवि! कापालिक आदि इन विद्याओं को नहीं मानते । वे हृदयविद्या के स्थान पर अम्बाहृदय को स्वीकार करते हैं । इसी प्रकार समयविद्या के बदले विष्णुतत्त्व कहते हैं । यह मत ठीक नहीं है—ऐसा त्रिपुरारि ने पहले मुझसे कहा ॥ ८१०-८११- ॥

[स्वमतपोषणार्थं परमतनिरासे युक्तिः]

जपार्थं मूलमन्त्रास्ते ये मया पूर्वमुद्धृताः ॥ ८१२ ॥
तैरेव हि जपः कार्यः पुरश्चरणमेव च ।
एते पूजार्थमुदिता उपमन्त्राः पुरारिणा ॥ ८१३ ॥
उपमन्त्रैर्जपः कार्यो नैवेति प्रतिषिद्धता ।
मूलमन्त्रा न कर्तव्या उपमन्त्रा कथञ्चन ॥ ८१४ ॥
इत्यावरणपूजार्थमङ्गीकुर्वद्‌भिरैश्वरम् ।
वचः कापालिकमतप्रपन्नैः साधकादिभिः ॥ ८१५ ॥
विष्णुतत्त्वाम्बाहृदयमन्त्रोपासनकारिभिः ।
कर्तव्यमनयोः स्थाने किमिति त्वं विचारय ॥ ८१६ ॥
तस्मात् सामयिकीं विद्यां हार्दीं विद्यामपि प्रिये ।
अङ्गीकुर्वीत मतिमान् विचार्यैवं बलाबले ॥ ८१७ ॥
एते आवरणार्चायाः स्मर्तव्ये पूर्वमेव हि ।
प्रकृते कर्मणोदानीं धत्स्व चेतः समाहिता ॥ ८१८ ॥

अपने मत की पुष्टि तथा दूसरे मत के निरास के विषय में युक्ति—मेरे द्वारा पहले जो मन्त्र जप के लिये तुमको बतलाये गये उन्हीं के द्वारा जप और पुरश्चरण करना चाहिये । त्रिपुरारि ने इन (समय एवं विष्णुतत्त्व आदि) मन्त्रों को पूजा के लिये बतलाया । उपमन्त्रों से जप नहीं करना चाहिये—ऐसा प्रतिषेध है । आवरण पूजा के लिये स्वीकार करने वाले कापालिक मतानुसारी साधकों के द्वारा उपमन्त्रों का कभी भी मूलमन्त्र के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये—ऐसा त्रिपुरारि का वचन है । इसलिये विष्णुतत्त्व और अम्बाहृदय मन्त्रों के उपासक इन दोनों के स्थान में क्या करें । यह तुम्हीं विचार करो । इसलिये हे प्रिये! सामयिकी विद्या और हार्दीविद्या को बुद्धिमान् बलाबल का विचार कर स्वीकार करे । आवरणार्चा के पहले ही इन दोनों का स्मरण करना चाहिये । अब समाहित होकर प्रस्तुत कर्म में मन लगाओ ॥ ८१२-८१८ ॥

[आवरणपूजाया ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य श्रीगुह्यकाल्यावरणपूजनकर्मणः ।
गर्ग उक्त ऋषिश्छन्दः प्रोक्ताभ्यष्टिर्वरानने ॥ ८१९ ॥
सर्वे देवास्तथा सर्वा देव्यो वै देवताः स्मृताः ।

व्ययबीजं बीजमुक्तं कुटिला शक्तिरेव च ॥ ८२० ॥
विधृति: कीलकं प्रोक्तं विनियोगोऽस्य पार्वति ।
कथितो गुह्यकाल्यावरणपूजनमे(ए)व हि ॥ ८२१ ॥
यावत्यो मूर्तिसम्बन्धाद् यावत्य: पीठयोगत: ।
तावत्य: प्रक्रिया बोध्या उभयोरपि पार्वति ॥ ८२२ ॥
तनुमर्यादया काश्चित् पीठमर्यादया परा: ।
मर्यादयोभयो: काश्चित् विज्ञेयास्तनुपीठयो: ॥ ८२३ ॥

आवरणपूजा के ऋषि आदि—हे वरानने! इस गुह्यकाली आवरण पूजा कर्म के ऋषि गर्ग कहे गये हैं । छन्द अभ्याष्ट कहा गया है । समस्त देवता तथा सभी देवियाँ इसकी देवता मानी गयी हैं । बीज व्यय और शक्ति कुटिला कही गयी है । विधृत को कीलक कहा गया है । हे पार्वति! इसका विनियोग गुह्यकाली के आवरण पूजन में ही होता है । जितनी मूर्ति के सम्बन्ध के कारण और जितनी पीठ योग से सम्बद्ध देवतायें हैं । हे पार्वति! दोनों में उतनी ही प्रक्रिया जाननी चाहिये ॥ ८१९-८२३ ॥

[पीठमध्ये सकलदेवानामर्चायै मन्त्रनिर्देश:]

अत: परं निबोध त्वं मन्त्रानावरणात्मकान् ।
क्रमेणोद्ध्रियमाणान् (तान्) तत्तच्छब्दोपबृंहितान् ॥ ८२४ ॥
तारमैथत्रपारावकूर्चान् पुरत उद्धरेत् ।
तत: शब्दो महावर्त: पुन: कल्लोलमाल्यपि ॥ ८२५ ॥
अनु रक्तसमुद्रश्च ङेऽन्तमेतत्त्रयं वदेत् ।
हृच्छीर्षमन्त्रौ शेषस्थौ प्रथमो मनुरीरित: ॥ ८२६ ॥
इमं च वक्ष्यमाणाञ्च मन्त्रानुच्चार्य पार्वति ।
पुष्पैरथाक्षतै: पत्रैर्जलबिन्दुभिरेव वा ॥ ८२७ ॥
देवता: सकला पीठमध्य एव प्रपूजयेत् ।
सारस्वतरमाकामवधूप्रासादमेव च ॥ ८२८ ॥
विलिख्य मांसपदत: सैकतं तदनन्तरम् ।
रक्तद्वीपपदद्वन्द्वं कृत्वा ङेऽन्तं नम: शिर: ॥ ८२९ ॥
पाशो माया तथा प्रेतभैरव्यङ्कुश एव च ।
चामुण्डा भैरवमयवेष्टनायेति वर्णयुक् ॥ ८३० ॥
हृदुत्तमाङ्गे प्रवदेत् तृतीये शोभने मनौ ।
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयस्तदनन्तरम् ॥ ८३१ ॥
फेत्कारी च तथा त्रेताऽयुतयोजनशब्दत: ।
प्रमाणं तदनूद्धृत्य भूमिमण्डलमेव च ॥ ८३२ ॥
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिश्योभयं कूर्चास्त्रमुच्चरेत् ।
नम: स्वाहा मन्त्रयुगं चरमे च प्रतिष्ठितम् ॥ ८३३ ॥

पीठ के मध्य में सकल देवताओं की पूजा के लिये मन्त्र निर्देश—इसके बाद तुम उन आवरणात्मक मन्त्रों को जानो जो कि तत्तत् शब्दों से बने हैं और क्रम से उद्धृत हो रहे हैं—पहले तार मैध त्रपा राव कूर्च को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद 'महावर्त्त' शब्द पुनः 'कल्लोल माली' और 'रक्तसमुद्र' ये तीन शब्द ङेऽन्त कहने चाहिये । अन्त में हृदय और शीर्ष यह प्रथम मन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं महावर्त्ताय कल्लोलमालिने रक्तसमुद्राय नमः स्वाहा)।

हे पार्वति! इस मन्त्र एवं वक्ष्यमाण मन्त्रों का उच्चारण कर पुष्पों अक्षतों अथवा जल विन्दुओं से समस्त देवताओं की पीठ के मध्य में पूजा करनी चाहिये । सारस्वत रमा काम वधू प्रासाद का उल्लेख कर 'मांस' पद के बाद 'सैकत' तथा 'रक्तद्वीप' इन दो पदों को ङेऽन्त कहकर नमः शिर, यह दूसरा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं श्रीं क्लीं स्त्री हौं मांससैकतरक्तद्वीपाय नमः स्वाहा) ।

पाश माया प्रेत भैरवी अङ्कुश 'चामुण्डाभैरवमयवेष्टनाय' के बाद हृदय और उत्तमाङ्ग तृतीय सुन्दर मन्त्र के विषय में कहना चाहिये, यह तीसरा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं ह्रीं स्हौः सौः क्रों चामुण्डाभैरवमयवेष्टनाय नमः स्वाहा) ।

शाकिनी डाकिनी प्रलय उसके बाद फेत्कारी त्रेता के बाद 'अयुतयोजन' शब्द के अनन्तर 'प्रमाण' फिर 'भूमिमण्डल' को ङेऽन्त कहकर कूर्च और अस्त्र दोनों को उद्धृत करना चाहिये । यह चौथा मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—फ्रें खफ्रें हसफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें अयुतयोजनप्रमाणभूमिमण्डलाय हूं फट् नमः स्वाहा) ।

ये दो मन्त्र अन्त में स्थित होते हैं ॥ ८२४-८३३ ॥

दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लान् वर्णानुच्चार्य पञ्च वै ।
भैरवीदेहघटितः प्राकारस्तदनन्तरम् ॥ ८३४ ॥
चतुर्थ्यन्तावुभौ कार्यावेकस्मिन् वचने प्रिये ।
अङ्गुष्ठतर्जनीसंज्ञावुभौ मन्त्रौ ततोऽप्यनु ॥ ८३५ ॥
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा तदनु स्मृता ।
केकराक्षी कालरात्रिरिति पञ्च पुरः स्मरेत् ॥ ८३६ ॥
शतयोजनप्रमाणं च ततोऽनु सुरवन्दिते ।
महाश्मशानशब्दं च ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिशेत् ॥ ८३७ ॥
तावेव मन्त्रौ शेषस्थौ यावेतस्य पुरोदितौ ।
द्वीपो जम्भः षडङ्गश्च ककुच्छैशुक एव च ॥ ८३८ ॥
व्यापिन्यै योगिनीभित्तये रोषास्त्रद्वयं तथा ।

अन्त्योदितौ चतुर्वर्णौ सप्तमो मनुरेष वै ॥ ८३९ ॥
वेणुसान्वक्षमौञ्जांश्च सूत्रबीजं ततः परम् ।
नरान्त्रतोरणशब्दो मुण्डस्त्रगिति वै पदम् ॥ ८४० ॥
हृदयं शिरसा युक्तं चरमे तु विभावयेत् ।
मैधकालादित्यशक्तिकुलिकानि यथाक्रमम् ॥ ८४१ ॥
ज्वालाजालकरालेभ्योऽष्टश्मशानेभ्य एव च ।
हूं फट् नमस्ततः स्वाहा सामान्यो व्यापको मनुः ॥ ८४२ ॥

दण्ड लज्जा गो अंशु शुक्ल इन पाँच वर्णों का उच्चारण कर हे प्रिये! 'भैरवीदेहघटित' एवं 'प्राकार' दोनों को चतुर्थ्यन्त एकवचन करना चाहिये । इसके बाद अङ्गुष्ठ तर्जनी नामक दो मन्त्र—

(मन्त्र-स्वरूप—ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं भैरवीदेहघटिताय प्राकाराय सखफ्रें (?) हसखफ्रें हूं फट् नमः स्वाहा) ।

यह पाँचवाँ मन्त्र है । फिर प्रभञ्जना भ्रामरी उसके बाद प्रचण्डा कही गयी है । साथ में केकराक्षी और कालरात्रि इन पाँच का पहले स्मरण करना चाहिये । हे सुरवन्दिते! इसके बाद 'शतयोजनप्रमाण' और 'महाश्मशान' ङेन्त निर्देश करना चाहिए । फिर जो दो मन्त्र पहले कहे गये, अन्त में उनको कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ख्फ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं शतयोजनप्रमाणाय महाश्मशानाय सखफ्रें (?) हसखफें हुं फट् नमः स्वाहा) ।

यह छठा मन्त्र है। द्वीप जम्भ षडङ्ग ककुत् शैशुक के बाद 'व्यापिन्यै योगिनीभित्तये' के पश्चात् रोष दो अस्त्र फिर अन्त्य में कथित चार वर्ण यह सातवाँ मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं व्यापिन्यै योगिनीभित्तये हूं फट् फट् नमः स्वाहा) ।

यह सातवाँ मन्त्र है । वेणु सानु अक्ष मौञ्ज सूत्र के बाद 'नरान्त्रतोरण' के पश्चात् 'मुण्डस्त्रक्' यह पद कहना चाहिये । अन्त में हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं नरान्त्रतोरणमुण्डस्त्रजे नमः स्वाहा) ।

यह आठवाँ मन्त्र है । मैध काल आदित्य शक्ति कुलिक को क्रमशः कहकर 'ज्वालाजालकरालेभ्योऽष्टश्मशानेभ्यः हूँ फट् नमः स्वाहा' यह आठों श्मशानों के लिये सामान्य व्यापक मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं जूं सः ब्लूं स्हौः ज्वालाजालकरालेभ्योऽष्टश्मशानेभ्यो हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ८३४-८४२ ॥

[अष्टश्मशानपूजामन्त्रः]

ब्रवीम्यष्टश्मशानानां प्रत्येकमधुना मनुम् ।
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा॥ ८४३ ॥
एतानि पञ्च बीजानि सर्वेषामग्रगानि हि ।
कालव्यापीनि बोध्यानि ततः शब्दाश्चलाः पृथक्॥ ८४४ ॥
तेषां श्मशानशब्देन विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
पूर्वे चलाः स्थिराः शेषा उभयोः पदयोरपि ॥ ८४५ ॥
कूर्चास्त्रहृच्छिरोरूपाः सर्वशेषे षडक्षरी ।
विज्ञेयैषापि कूटस्था सर्वमन्त्रान्तगामिनी ॥ ८४६ ॥

अष्टश्मशानपूजा का मन्त्र—अब मैं आठ श्मशानों मे से प्रत्येक का मन्त्र बतला रहा हूँ । भौवनेशी योगिनी कूर्च स्त्री और शाकिनी ये पाँच बीज सब मन्त्रों के पहले स्थायी जानने चाहिये । उसके बाद अलग-अलग अस्थिर शब्द होते हैं । उनके साथ ङेविभक्त्यन्त श्मशान शब्द समस्त होता है । फिर दोनों पदों के बाद पूर्ववर्त्ती चल और स्थिर शब्द रहते हैं । सबके अन्त में कूर्च अस्त्र हृदय और शिर रूपा षडक्षरी रहती है । इस षडक्षरी को भी सभी मन्त्रों के अन्त में सदा स्थायी समझना चाहिये ॥ ८४३-८४६ ॥

[अष्टश्मशाननामानि]

नामान्यथ श्मशानानां क्रमेण व्याहरामि ते।
महाघोरः कालदण्डो ज्वालाकुल इतः परम्॥ ८४७ ॥
चण्डपाशस्तथा कापालिको धूमाकुलस्तथा।
भीमाङ्गारो भूतनाथो दिक्ष्वित्यष्टसु पूजयेत्॥ ८४८ ॥
भारुण्डा काकिनी नागश्चक्रमौदुम्बरस्तथा।
ज्वालाकुलश्मशानाष्टदिग्भागेभ्य इतीरयेत्॥ ८४९ ॥
केवलं नम उच्चार्य(र्यो) न कूर्चास्त्रे न वा शिरः।
इति सामान्यतोऽभ्यर्च्य विशेषात् पूजयेत् ततः ॥ ८५० ॥
वेदादिमायाकमलाकामयोगिन्य एव च।
अचलानि समस्तानि बीजानीमानि वै पुराः (रा) ॥ ८५१ ॥
मध्ये पूर्वादिहरितां विदिशां च क्रमेण हि।
विभागा नामभिर्भिन्नैः प्रत्येकं प्रतिपादिताः॥ ८५२ ॥
तांश्चतुर्थ्येकवचनान् कृत्वा तदनु कीर्तयेत्।
एतैः(ताः) पृथक् पृथग् ब्रूयाः पूर्वगैर्नामभिः प्रिये॥ ८५३ ॥
द्वितीयैः स्थिरतापन्नैः सपरस्परविग्रहैः ।
या पूर्वमीरिता शेषे सैव ज्ञेया षडक्षरी॥ ८५४ ॥
श्मशानानां दिग्विदिशोरष्टौ नामानि वै क्रमात्।
शृणु पार्वति यत्नेन श्रुत्वा चैवावधारय॥ ८५५ ॥

आठ श्मशानों के नाम—इसके बाद मैं तुमको आठ श्मशानों के नाम बतला रहा हूँ । महाघोर, कालदण्डी, ज्वालाकुल इसके बाद चण्डपाश, कापालिक, धूमाकूल, भीमाङ्गार और भूतनाथ की क्रमश: आठ दिशाओं में पूजा करनी चाहिये । भारुण्डा काकिनी नाग चक्र औदुम्बर के बाद 'ज्वालाकुलश्मशानाष्टदिग्भागेभ्य' कहना चाहिये । फिर केवल 'नम:' का उच्चारण करना होता है । न कूर्च अस्त्र और न शिर । इस प्रकार सामान्य पूजा कर उसके अनन्तर विशेष पूजा करनी चाहिये । वेदादि माया कमला काम योगिनी ये समस्त बीज पहले स्थायी रहते हैं । मध्य में पूर्व आदि दिशाओं और विदिशाओं का कहना होता है । इनमें भिन्न-भिन्न नामों से विभाग किये गये होते हैं । उनको चतुर्थी एकवचान्त कर कहना चाहिये । हे प्रिये! पूर्वगामी नामों से इनको पृथक्-पृथक् कहो । दूसरे स्थिर नामों से परस्पर समास के साथ कहना चाहिये । जो पहले अन्त में षडक्षरी कही गयी (वह यहाँ भी कही जायगी) । हे पार्वती! श्मशानों की दिशाओं और विदिशाओं के आठ नामों को क्रम से सुनो और सुनकर प्रयत्नपूर्वक समझो ॥ ८४४-८५५ ॥

[श्मशानानां दिग्विभाग:]

प्रथम: स्वस्तिकावर्तो ज्वालावर्तस्तत: परम् ।
याम्यावर्तस्ततो ज्ञेयो नद्यावर्त: सुरेश्वरि ॥ ८५६ ॥
भद्रावर्त: पुन: सौम्यावर्तोऽपि प्रतिपादित: ।
मङ्गा(ङ्ग)लावर्त इति च सम्भ्रमावर्त एव च ॥ ८५७ ॥
इत्येतेऽष्टश्मशानानां दिग्विभागा: क्रमात् प्रिये।
पूज्या आवरणार्चायां साधकेन विपश्चिता ॥ ८५८ ॥

श्मशानों के दिग्विभाग—पहला स्वास्तिकावर्त्त उसके बाद ज्वालावर्त्त तत्पश्चात् याम्यावर्त तदनु हे सुरेश्वरि! नद्यावर्त जानना चाहिये । पुन: भद्रावर्त फिर सौम्यावर्त्त कहा गया है । मङ्गलावर्त्त इसके बाद सम्भ्रमावर्त्त । हे प्रिये! ये आठ श्मशानों के दिग्विभाग हैं । विद्वान् साधक के द्वारा आवरणार्चा में इनकी पूजा की जानी चाहिये । (पूजा मन्त्रों का स्वरूप—ज्वालाकुलश्मशानाष्टदिग्भागेभ्यो नम: । इति सामान्य पूजा)—

१. ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं फ्रें महाघोरश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्वतिकावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नम: स्वाहा ।
२. ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं फ्रें कालदण्डश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं ज्वालावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नम: स्वाहा ।
३. ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं फ्रें ज्वालाकुलश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं याम्यावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नम: स्वाहा ।
४. ह्रीं छ्रीं ह्रूं स्त्रीं फ्रें चण्डपाशश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं नद्यावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नम: स्वाहा ।

५. ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें कापालिकश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं भद्रावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नमः स्वाहा ।

६. ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें धूमाकूलश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं सौम्यावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नमः स्वाहा ।

७. ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भीमाङ्गारश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं मङ्गलावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नमः स्वाहा ।

८. ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भूतनाथश्मशानाय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं सम्भ्रमावर्त्तश्मशानाय हूं फट् नमः स्वाहा ॥ ८५६-८५८ ॥

[द्वारपालपूजामन्त्रविधिः]

द्वारपालांस्ततश्चाष्टौ वक्ष्यमाणैर्मनूत्तमैः ।
पूजयेत् त्रिदशेशानि देव्यावरणपूजने ॥ ८५९ ॥
पञ्च बीजानि सर्वेषां मनूनामादिगामीनि ।
विज्ञेयान्यचलान्येव ततः पूर्वोदितैः प्रिये ॥ ८६० ॥
श्मशानस्याष्टदिग्भागनामभिर्द्विपदान्वितैः ।
अधिष्ठातृपदस्यापि विग्रहो ङेवचोऽन्वितः ॥ ८६१ ॥
त्रयाणामेव शब्दानां सर्वाऽद्यं चञ्चलं मतम् ।
उत्तरं पदयोर्युग्मं निस्तरङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ ८६२ ॥
भिन्नभिन्नाः पुनः शब्दास्ततः परमुदीरिताः ।
तैर्द्वारपालशब्दस्य समासो ङेस्वरूपधृक् ॥ ८६३ ॥
ततोऽनु भिन्नभिन्नानि नामानि सुरवन्दिते ।
चतुर्थ्येकवचोरूपः कर्तव्यः सोऽपि(?)तत्परम् ॥ ८६४ ॥
परम्परागता या तु सा पश्चिमषडक्षरी ।
इति सामान्य उद्धारो मयोक्तो दुर्ग्रहो नृभिः ॥ ८६५ ॥

द्वारपालपूजा मन्त्रविधि—हे त्रिदशेशानि! इसके बाद देवी की आवरण पूजा के क्रम में आठ द्वारपालों की वक्ष्यमाण उत्तम मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये । हे प्रिये! पाँच बीज सभी मन्त्रों के पहले, स्थायी रूप से रहते हैं । इसके बाद श्मशान के आठ दिग्भाग के नामों, जो कि पदों वाले होते हैं, के साथ चतुर्थ्यन्त 'अधिष्ठातृ' पद का भी समास रहता है । इन तीनों शब्दों में पहला शब्द चल माना गया है । उत्तर दोनों पद निस्तरङ्ग अर्थात् स्थायी माने गये हैं । उनके साथ 'द्वारपाल' शब्द का चतुर्थ्यन्त समास होता है । उसके बाद भिन्न-भिन्न शब्द कहे गये हैं । हे सुरवन्दिते! उसके बाद भिन्न-भिन्न नाम आते हैं । वह भी चतुर्थी एकवचन रूप करना चाहिये । उसके बाद जो परम्परा से प्राप्त अन्तिम षडक्षरी है, वह रहती है । यह सामान्य उद्धार जो कि मनुष्यों के द्वारा दुर्ज्ञेय है, मैंने तुमको बतलाया ॥ ८५९-८६५ ॥

[द्वारपालानां विशेषपूजाविधिः]

विशेषमधुना वक्ष्ये भविष्यन्ति स्फुटास्ततः ।
मैधपाशाङ्कुशाः कूर्चः शाकिनी तदनन्तरम् ॥ ८६६ ॥
अपरिप्लवरूपाणि ज्ञेयानीमानि पञ्च वै ।
द्वारपालपदात् पूर्वगतान् शब्दान् निशामय ॥ ८६७ ॥
पूर्व आग्नेयविदिशः दक्षिणस्तदनन्तरम् ।
तन्नैर्ऋतविदिक् चापि पश्चिमोऽस्यानु कीर्तितः ॥ ८६८ ॥
वायव्यविदिगस्यानु तत उत्तर एव च ।
ऐशानविदिगन्ते स्यादेवंरूपपदोद्धृतिः ॥ ८६९ ॥
द्वारपालपदस्यानु भिन्नान शब्दान् शृणूत्तरान् ।
कालपाशो भीमपाशो यमपाशस्ततः परम् ॥ ८७० ॥
मृत्युपाशो दण्डपाशो नागपाशस्ततः परम् ।
ज्वालापाशो घोरपाश इत्यष्टौ द्वारपालकाः ॥ ८७१ ॥

द्वारपालों की विशेष पूजा—अब विशेष पूजा बतलाऊँगा जिससे मन्त्र स्पष्ट हो जायेंगे । मैध पाश अङ्कुश कूर्च शाकिनी ये पाँच अपरिप्लवरूपी अर्थात् स्थायी रूपी जानने चाहिये । अब 'द्वारपाल' शब्द के पूर्ववर्त्ती पदों को सुनो । पूर्व आग्नेय कोण दक्षिण उसके बाद नैर्ऋत दिशा के बाद पश्चिम फिर वायव्य दिशा उसके बाद उत्तर और अन्त में ऐशान कोण । इस प्रकार पदों का उद्धार है । अब 'द्वारपाल' पद के बाद आने वाले भिन्न शब्दों को सुनो । कालपाश भीमपाश यमपाश मृत्युपाश दण्डपाश नागपाश के बाद ज्वालापाश और घोरपाश ये आठ द्वारपाल हैं—

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं आं क्रों हूं फ्रें पूर्वस्वस्तिकावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय कालपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
२. ऐं आं क्रों हूं फ्रें आग्नेयविदिक्ज्वालावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय भीमपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
३. ऐं आं क्रों हूं फ्रें दक्षिणयाम्यवर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय यमपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
४. ऐं आं क्रों हूं फ्रें नैर्ऋतविदिक्नद्यावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय मृत्युपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
५. ऐं आं क्रों हूं फ्रें पश्चिमभद्रावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय दण्डपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
६. ऐं आं क्रों हूं फ्रें वायव्यविदिक्सौम्यावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय नागपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।

७. ऐं आं क्रों हूं फ्रें उत्तरमङ्गलावर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय ज्वालापाशाय हूं फट् नमः स्वाहा ।

८. ऐं आं क्रों हूं फ्रें ईशानिविदिक्सम्भ्रमवर्त्ताधिष्ठात्रे द्वारपालाय घोरपाशाय हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ८६६-८७१ ॥

[त्रिशूलसामान्यपूजा]

अथ शृणु मनूद्धारानन्यानावरणाध्वनि ।
वैकारिकः प्रथमतो मन्दारस्तदनन्तरम् ॥ ८७२ ॥
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च बीजानीमानि पञ्च वै ।
ततोऽष्टभ्यस्त्रिशूलेभ्यो नम इत्येव केवलम् ॥ ८७३ ॥
इति सामान्यरूपेण त्रिशूलानि प्रपूज्य वै ।

त्रिशूल सामान्य पूजा—अब आवरणपूजा के क्रम में अन्य मन्त्रों के उद्धारों को सुनो । पहले वैकारिक फिर मन्दार सिन्धु महेन्द्र और ईश्वर के पाँच बीजनाम इसके बाद 'अष्टत्रिशूलेभ्यो नमः' ।

(मन्त्र-स्वरूप—रम्रां रम्रीं रम्रूं रम्रैं रम्रौं अष्टत्रिशूलेभ्यो नमः) ।

इस प्रकार सामान्य रूप से त्रिशूल की पूजा करे ॥ ८७२-८७३- ॥

[विशेषेण त्रिशूलपूजा]

क्रमात् पुनर्विशेषेण वक्ष्यमाणैर्मनूच्चयैः ॥ ८७४ ॥
पूजयीत समुद्धारमधुना कलयेश्वरि ।
मैधो गारुडविश्वौ च मेघो विद्युदनन्तरम् ॥ ८७५ ॥
एते वर्णाः स्थिरा ज्ञेयाः प्रतिमन्त्रं महोदयाः ।
पूर्वादितः(पूर्वोदितैः)
श्मशानाष्टदिग्भागाख्यपदैः सह ॥ ८७६ ॥
वर्तिशब्दस्य विज्ञेयो विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
क्रमेणैव चलाः पूर्व(पूर्वे)स्थिरावुत्तरगौ पुनः ॥ ८७७ ॥
चतुर्वर्णात्मकानां वै त्रिशूलानां ततः परम् ।
नामानि भिन्नभिन्नानि तैस्त्रिशूलपदस्य च ॥ ८७८ ॥
विग्रहः स चतुर्थ्येकवचनात्मा व्यवस्थितः ।
कूर्चमन्त्रं च हृदयं ततोऽप्यनलवल्लभा ॥ ८७९ ॥

त्रिशूल विशेष पूजा—इसी क्रम में वक्ष्यमाण मन्त्र समूहों के द्वारा पूजा करनी चाहिये । हे ईश्वरि! अब उन मन्त्रों का उद्धार सुनो—मैध गारुड विश्व मेघ विद्युत् ये महोदय वर्ण प्रत्येक मन्त्र के साथ स्थिर समझे जाने चाहिये । पूर्वोक्त श्मशान के आठ दिग्भाग नाम वाले पदों के साथ 'वर्त्ति' शब्द को समस्त कर ङेऽन्त कहना

चाहिये । इसमें पूर्ववर्त्ती क्रमशः अस्थायी होते हैं किन्तु उत्तरवर्त्ती दो शब्द 'वर्त्तिने' और 'त्रिशूलाय' स्थिर होते हैं । उसके बाद चार वर्णों वाले त्रिशूलों के भिन्न-भिन्न नाम और उनके साथ 'त्रिशूल' पद का समास, वह भी चतुर्थी एकवचनवाला होता है । कूर्च अस्त्र और हृदय उसके बाद अग्निवल्लभा कहना चाहिये ॥ ८७४-८७९ ॥

[अष्टौ त्रिशूलनामानि]

अथ त्रिशूलनामानि क्रमेण शृणु पार्वति ।
जयावहो विद्युदस्त्रश्चण्डखण्डस्ततः परम् ॥ ८८० ॥
विकरालः कालकूटो घोरनादो विदारणः ।
शोणितोदश्च नामानि त्रिशूलानाममूनि हि ॥ ८८१ ॥

त्रिशूलों के आठ नाम—हे पार्वति! अब क्रमशः त्रिशूलों के नाम सुनो—जयावह विद्युदस्त्र चण्डखण्ड विकराल कालकूट घोरनाद विदारण एवं शोणितोद त्रिशूलों के ये आठ नाम हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं स्वस्तिकावर्त्तवर्त्तिने जयावहत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
२. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं ज्वालावर्त्तवर्त्तिने विद्युदात्रत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
३. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं याम्यावर्त्तवर्त्तिने चण्डखण्डत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
४. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं नद्यावर्त्तवर्त्तिने विकरालत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
५. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं भद्रावर्त्तवर्त्तिने कालकूटत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
६. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं सौम्यावर्त्तवर्त्तिने घोरनादत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
७. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं मङ्गलावर्त्तवर्त्तिने विदारणत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा ।
८. ऐं क्रौं फ्रौं स्फौं ब्लौं सम्भ्रमावर्त्तवर्त्तिने शोणितोदत्रिशूलाय हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ८८०-८८१ ॥

[वज्रस्य सामान्यपूजामन्त्रः]

विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिका ।
चतुर्भ्यो(?पञ्चभ्यो)ऽनु च
वज्रेभ्यो नम इत्यथ कीर्तयेत् ॥ ८८२ ॥
वज्राण्यभ्यर्च्य सामान्यप्रकारेण सुरेश्वरि ।

वज्रों की सामान्य पूजा का मन्त्र—विचित्र धन्य उल्लोप्य विस्मृति और पाणिगीतिका के बाद 'वज्रेभ्यो नमः' कहना चाहिये । हे सुरेश्वरि! सामान्यरूप से वज्रों की पूजा करे ॥ ८८२-८८२- ॥

[वज्रस्य विशेषपूजामन्त्रः]

पुनः सम्पूजयेत् तानि विशेषनामपूर्वकम् ॥ ८८३ ॥
कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ।
सन्तारं वैकक्षमपि पञ्च बीजाग्रतस्त्वसौ ॥ ८८४ ॥
सर्वत्रैव स्थिरतरश्चलाँच्छब्दानतः शृणु ।
उल्कामुखोऽङ्गारमयो भस्मान्तकभयङ्करौ ॥ ८८५ ॥
एभिर्वज्रपदस्यापि विग्रहस्तदनन्तरम् ।
तङ्(न्)ङेऽन्तत्वेन निर्दिश्य
नमोऽन्ते विनियोजयेत् ॥ ८८६ ॥
ततोऽध्वानविवत्सौ च सम्भारोऽथास्य पश्चिमे ।
संयोगश्च वियोगश्च पञ्चैतानि पुरो वदेत् ॥ ८८७ ॥
अथोल्कामुखवज्राभिपदैर्धारिन् पदस्य च ।
विग्रहीकृत्य युञ्जीत ङेविभक्तिं वरानने ॥ ८८८ ॥

वज्र की विशेष पूजा का मन्त्र—पुनः उनकी विशेष नाम लेकर पूजा करनी चाहिये । कलावती सर्वस्व विप्रिय उसके बाद सन्तार और वैकक्ष ये पाँच बीच पहले रहते हैं । ये सर्वत्र स्थिर रहते हैं । इसके बाद चल शब्दों को सुनो—उल्कामुख अङ्गारमय भस्मान्तक भयङ्कर इनके साथ 'वज्र' पद का समास होता है । इसको ङेऽन्त के रूप में निर्दिष्ट कर अन्त में 'नमः' जोड़ना चाहिये । इसके पश्चात् अध्वान विवत्स सम्भार इसके अनन्तर संयोग और वियोग पहले कहना चाहिये । बाद में फिर 'उल्कामुखवज्र' आदि पदों के साथ 'धारिन्' पद को समस्त कर हे वरानने! ङेविभक्ति जोड़नी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं उल्कामुखवज्राय नमः ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं ह्लखफ्रौं उल्कामुखवज्रधारिणे (नमः) ।
२. ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं अङ्गारमयवज्राय नमः ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं ह्लखफ्रौं अङ्गारमयवज्रधारिणे (नमः) ।
३. ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं भस्मान्तकवज्राय नमः ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं ह्लखफ्रौं भस्मान्तकवज्रधारिणे (नमः) ।
४. ह्लछ्रां ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं ह्लछ्रौं भयङ्करवज्राय नमः ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं ह्लखफ्रौं भयङ्करवज्रधारिणे (नमः) ॥ ८८३-८८८ ॥

[वेतालचतुष्टयपूजाविधि:]

चत्वार्यन्यानि नामानि तैर्वेतालपदस्य च ।
पूर्ववत् सकलं कृत्वा नमोऽन्ते विनियोजयेत् ॥ ८८९ ॥
तान्यग्नितुण्डः प्रथमं मृत्युजिह्वस्ततोऽप्यनु ।
कालदण्डो जम्बुनादः कार्यः सन्ध्यन्वितोऽग्रगः॥ ८९० ॥

चार वेतालों की पूजाविधि—चार भिन्न-भिन्न नाम, उसके साथ 'वेताल' पद का समास कर पूर्ववत् (अर्थात् चतुर्थ्यन्त कर) अन्त में 'नम:' जोड़ना चाहिये । वे नाम हैं—पहला अग्नितुण्ड दूसरा मृत्युजिह्व फिर कालण्ड और जम्बुनाद । इन सबको सन्धियुक्त करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. अग्नितुण्डवेतालाय नम: ।	२. मृत्युजिह्ववेतालाय नम: ।
३. कालदण्डवेतालाय नम: ।	४. जम्बुनादवेतालाय नम: ।)॥८८९-८९०॥

[सिंहासनसामान्यपूजा]

वेदादिरथ चैतन्यं मायालक्ष्मीस्मरस्त्रियः ।
योगिनी क्षेत्रपालश्च बीजान्यष्टौ पुरो लिखेत् ॥ ८९१ ॥
सर्वाधः स्थितशब्दश्च ततः सिंहासनं पुनः ।
विधायोभयमीशानि ङेऽन्तत्वेन ततः परम् ॥ ८९२ ॥
कूर्चरावोऽस्त्रहृच्छीर्षबीजान्यन्ते नियोजयेत् ।
इति सामान्यतः सिंहासनं सम्पूज्य साधकः ॥ ८९३ ॥

सिंहासन की सामान्य पूजा—वेदादि चैतन्य माया लक्ष्मी काम स्त्री योगिनी क्षेत्रपाल इन आठ बीजों को पहले लिखना चाहिये । फिर 'सर्वाध:स्थित' शब्द उसके बाद 'सिंहासन' हे ईशानि! दोनों को लिखकर ङेऽन्त करना चाहिये । उसके पश्चात् अन्त में कूर्च राव अस्त्र हृदय और शिर जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं क्षौं सर्वाध:स्थितसिंहासनाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा) ॥ ८९१-८९३ ॥

[विशेषेण सिंहासनपूजनम्]

विशेषतः पुनरपि कुसुमादिभिरर्चयेत् ।
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यमि दुरूहं शृणु सादरा ॥ ८९४ ॥
सारस्वतरमाकामाः कूर्चविश्वावमान्वितौ ।
दस्त्रशक्ती चाष्टबीजी पुरतः कथिता स्थिरा॥ ८९५ ॥
सर्वाधःस्थितसिंहासनधरायापि च स्थिरम् ।
आयुर्वेदो धनुर्वेदस्ततो गन्धर्ववेदयुक् ॥ ८९६ ॥

अर्थवेदः क्रमादेते चतुर्थ्येकवचोधराः ।
रोषरावास्त्रहृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥ ८९७ ॥
आद्यन्तौ सन्धिरहितौ करणीयौ मनूद्धृतौ ।
ततस्तारत्रपाक्षेत्रपालप्रासादयोगिनीः ॥ ८९८ ॥
रत्नसिंहासनायानु नमः पदमुदीरयेत् ।
इत्थं सिंहासनं रात्नं सामान्येनार्च्य पार्वति ॥ ८९९ ॥

सिंहासन की विशेष पूजा—(सामान्य पूजा के बाद) पुन: पुष्प आदि से (सिंहासन की) विशेष पूजा करनी चाहिये । उसका दूरूह उद्धार बतलाऊँगा । आदर के साथ सुनो—सारस्वत रमा काम कूर्च विश्व अमा दस्र शक्ति ये आठ बीज पहले स्थायी रहता है । उसके साथ 'सर्वाध:स्थितसिंहासनधराय' भी स्थायी रहता है । आयुर्वेद धनुर्वेद फिर गन्धर्ववेद और अर्थवेद ये क्रमश: चतुर्थी एकवचन वाले होते हैं । उसके पश्चात् रोष राव अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये । प्रथम और अन्तिम मन्त्र को सन्धिरहित करना चाहिये । उसके बाद तार त्रपा क्षेत्रपाल प्रासाद योगिनी के बाद 'रत्नसिंहासनाय नम:' पद कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं श्रीं क्लीं हूं फ्रौं ब्लूं ब्लीं ब्लूं सर्वाध:स्थितसिंहासनायधराय आयुर्वेदाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।

२. ऐं श्रीं क्लीं हूं फ्रौं ब्लूं ब्लीं ब्लूं सर्वाध:स्थितसिंहासनायधराय धनुर्वेदाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।

३. ऐं श्रीं क्लीं हूं फ्रौं ब्लूं ब्लीं ब्लूं सर्वाध:स्थितसिंहासनायधराय गन्धर्ववेदाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।

४. ऐं श्रीं क्लीं हूं फ्रौं ब्लूं ब्लीं ब्लूं सर्वाध: स्थितसिंहासनायधराय अर्थवेदाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।)

हे पार्वति! इस प्रकार रत्नसिंहासन की सामान्य पूजा करे ॥ ८९०-८९९ ॥

[सिंहासनधारिण: विशेषपूजाविधि:]

विशेषतः पुनः सिंहासनधारिण आर्चयेत् ।
ताररावौ पुरो वाच्यौ नमो वाच्यं च पश्चिमे ॥ ९०० ॥
आद्यन्तौ सुस्थिरौ प्रोक्तौ कलयान्यत्पुरः स्थिरम् ।
नमः पदात् पूर्वगतं मुण्डासनपदं प्रिये ॥ ९०१ ॥
चतुर्थ्येकवचः कृत्वा स्थिरं सर्वत्र योजयेत् ।
पदानि मध्यसंस्थानि मत्तः कलय साम्प्रतम् ॥ ९०२ ॥
आदौ कृतयुगं त्रेतायुगं तदनु कथ्यते ।
ततोऽनु द्वापरयुगं ततः कलियुगं मतम् ॥ ९०३ ॥

ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च ।
अथर्ववेदः कथितः सर्वशेषे वरानने ॥ १०४ ॥
एतैर्मुण्डासनस्यापि कर्तव्यो द्वन्द्वविग्रहः ।
भविष्यन्ति ततो मन्त्राः स्फुटा आवरणार्चने ॥ १०५ ॥
अनाहतो भोगसृष्टी फेत्कारी त्रेतयाऽन्विता ।
कराली च तथा कृत्या तर्जनी च कटङ्कटा ॥ १०६ ॥
नव बीजानि पुरतो व्याहृत्य वरवर्णिनि ।
हीरमौक्तिकसिंहासनाय तस्मात् परं नमः ॥ १०७ ॥
पूजयित्वेति सामान्याद् विशेषेण ततोऽर्चयेत् ।
ताररावौ पुरः सर्वमन्त्राणां कथिताविमौ ॥ १०८ ॥
हार्दमन्त्रः सर्वशेषे तादृगेव व्यवस्थितः ।
मध्ये पदत्रयं ङेऽन्तं सर्वत्रैव स्थिरं समम् ॥ १०९ ॥
नमः पदात् पूर्वपदं सिंहासनधरं पदम् ।
द्विबीजतोऽष्टदिक्पालाः स्वस्वनाम्ना व्यवस्थिताः ॥ ११० ॥
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ।
वायुः कुबेर ईशान एतादृग्भिः स्वनामभिः ॥ १११ ॥
अनयोरन्तरपदं त्रिपद्यैव विनिर्मितम् ।
परस्परं विग्रहिण्याऽमुष्यास्तु चरमं पदम् ॥ ११२ ॥
पतिरित्यभिनिर्दिष्टं तत्पूर्वे द्वे पदे शृणु ।
दिशां चतसृणामेव न चान्येषां कथञ्चन ॥ ११३ ॥
पूर्वदिग् विदिगित्येवं ततो दक्षिणदिक् पुनः ।
विदिक् पश्चिमदिक् चापि विदिगुत्तरदिक् तथा ॥ ११४ ॥
पुनर्विदिगथोच्चार्य मन्त्रानष्टौ प्रपूजयेत् ।
अथवान्यप्रकारेण दिक्पालानां प्रपूजनम् ॥ ११५ ॥

सिंहासनधारी की विशेष पूजा—पुनः सिंहासनधारी की विशेष पूजा करनी चाहिये । पहले तार और राव कहना चाहिये । अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । आदि और अन्त वाले ये दोनों स्थिर कह गये हैं । अन्य पहले स्थित को जानो । हे प्रिये! 'नमः' पद से पहले 'मुण्डासन' पद रहता है । इसको चतुर्थी एकवचनान्त कर स्थायी रूप से सर्वत्र जोड़ना चाहिये । अब मध्यस्थ पदों को मुझसे सुनो । पहले कृतयुग उसके बाद त्रेतायुग कहा जाता है । उसके पश्चात् द्वापरयुग फिर कलियुग कह गया होता है । ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और हे वरानने! सबके अन्त में अथर्ववेद कहा जाता है । इनके साथ मुण्डासन का भी द्वन्द्व समास करना चाहिये । इससे आवरणार्चन में मन्त्र स्फुट हो जायेंगे ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें कृतयुगऋग्वेदमुण्डासनाय नमः ।
२. ओं फ्रें त्रेतायुगयजुर्वेदमुण्डासनाय नमः ।
३. ओं फ्रें द्वापरयुगसामवेदमुण्डासनाय नमः ।
४. ओं फ्रें कलियुगअथर्ववेदमुण्डासनाय नमः ।)

हे वरवर्णिनि! अनाहत भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कराली कृत्या तर्जनी कटङ्कटा इन नव बीजों को पहले कहकर 'हीरमौक्तिकसिंहासनाय' और उसके बाद 'नमः' इस सामान्य मन्त्र से पूजा कर फिर विशेष से पूजन करना चाहिये ।

(सामान्य मन्त्र-स्वरूप—हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः हीरमौक्तिकसिंहासनाय नमः) ।

इसके बाद विशेष पूजा करनी चाहिये । समस्त मन्त्रों के पहले तार और राव ये दो कहे जाते हैं । सबके अन्त में हार्द मन्त्र उसी प्रकार स्थित रहता है । मध्य में तीन ङेऽन्त पद सर्वत्र स्थिर माने गये हैं । 'नमः' पद के पूर्व 'सिंहासनधर' पद रहता है । दो बीजों (= तार, राव) के बाद आठ दिक्पाल अपने-अपने नाम से प्रतिष्ठित होते हैं । उनके नाम हैं—इन्द्र अग्नि यम निर्ऋति वरुण वायु कुबेर और ईशान । इन दोनों के बीच का पद त्रिपदीवाला होता है । परस्पर समासवाली इस त्रिपदी का अन्तिम पद 'पति' कहा गया है । उसके पूर्ववर्त्ती दो पदों को सुनो । ये दो पद चारों दिशाओं के हैं अन्य के नहीं । वे दो पद हैं—पूर्वदिक्, विदिक्, दक्षिणदिक् विदिक् पश्चिमदिक् विदिक् और उत्तरदिक् विदिक् ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें पूर्वदिक्पतये इन्द्राय सिंहासनधराय नमः ।
२. ओं फ्रें अग्निदिक्पतये अग्नये सिंहासनधराय नमः ।
३. ओं फ्रें दक्षिणदिक्पतये यमाय सिंहासनधराय नमः ।
४. ओं फ्रें नैर्ऋतिदिक्पतये निर्ऋतये सिंहासनधराय नमः ।
५. ओं फ्रें पश्चिमदिक्पतये वरुणाय सिंहासनधराय नमः ।
६. ओं फ्रें वायव्यदिक्पतये वायवे सिंहासनधराय नमः ।
७. ओं फ्रें उत्तरदिक्पतये कुबेराय सिंहासनधराय नमः ।
८. ओं फ्रें ईशानदिक्पतये ईशानाय सिंहासनधराय नमः ।)

अथवा अन्य प्रकार से दिक्पालों का पूजन करना चाहिये ॥ ९००-९१५ ॥

[प्रकारान्तरेण दिक्पालानां पूजा]

विस्तरेण प्रब्रवीमि मनो दत्त्वा निशामय ।
एतेषामेव मन्त्राणां ये द्वे बीजे पुरः स्थिते ॥ ९१६ ॥

ते एव बीजे विज्ञेये वक्ष्यमाणमनुष्वपि ।
अमीषामेव सर्वान्ते कथिता या नवाक्षरी ॥ ११७ ॥
साऽप्येतेष्वपि विज्ञेया तत्पूर्वं वरवर्णिनि ।
परं सपरिवारं तु ङेऽन्तं कृत्वा नियोजयेत् ॥ ११८ ॥
इदमप्यखिले मन्त्रे शिरस्त्वेन नियोजितम् ।
द्विबीजादनु दिक्पालान् सर्वान् पूर्वोदिताक्षरैः ॥ ११९ ॥
ङेऽन्तान् विधाय युञ्जीत विशेषणपदत्रयम् ।
ततस्तत्त्वेन निर्दिश्य तदग्रे विनियोजयेत् ॥ १२० ॥
इदानीं क्रमतो वक्ष्ये मध्यगानां समुद्धृतिम् ।
पीतो रक्तश्च कृष्णश्च धूमः(म्रः)श्वेतस्तथैव च ॥ १२१ ॥
श्यामो गौरस्तथा शुभ्र एतैर्वर्णपदस्य हि ।
विग्रहः स क्रमाज्ज्ञेय आद्यमेकं विशेषणम् ॥ १२२ ॥
ऐरावतस्तथा छागो महिषस्तुरगस्तथा ।
मकरो हरिणश्चैव नरो वृषभ एव च ॥ १२३ ॥
एतैर्वाहनशब्दस्य समासः पूर्ववत् क्रमः ।
विशेषणमिदं बोध्यं द्वितीयं सुरवन्दिते ॥ १२४ ॥
वज्रं शक्तिर्दण्डखड्गपाशध्वजगदाः क्रमात् ।
त्रिशूलश्चेदृशैः शब्दैरायुधस्य च विग्रहः ॥ १२५ ॥
इदं तृतीयं विज्ञेयं विशेषणमतः परम् ।
विभक्तिवचने पूर्वमीरिते ते सुरेश्वरि ॥ १२६ ॥

दिक्पालों का प्रकारान्तर से पूजन—उन दिक्पालों का पूजन विस्तार से बतला रहा हूँ । मन लगाकर सुनो । उपर्युक्त मन्त्रों के जो दो बीज पूर्ववर्त्ती थे उन्हीं दोनों को वक्ष्यमाण मन्त्रों के भी पूर्ववर्त्ती जानने चाहिये । इनके अन्त में जो नवाक्षरी कही गयी हे वरवर्णिनि! यहाँ भी वह उनके पूर्व जाननी चाहिये । उसके बाद 'सपरिवार' को ङेऽन्त कर जोड़ना चाहिये । यह भी सम्पूर्ण मन्त्र में शिरोमन्त्र के साथ जुड़ा हुआ होता है । दो बीजों (= ओं फ्रें) के बाद पूर्वोक्त अक्षरों के साथ सब दिक्पालों को ङेऽन्त बनाकर जोड़ना चाहिये । तीन विशेषणों को तत्त्व के रूप में निर्दिष्ट कर उसके आगे जोड़ना चाहिये । अब क्रम से मध्यवर्त्ती पदों का समुद्धार बतलाऊँगा । पीत रक्त कृष्ण धूम्र श्वेत श्याम गौर तथा शुभ्र इन पदों के साथ 'वर्ण' पद का समास होता है । यह प्रथम एक विशेषण हुआ । ऐरावत छाग महिष तुरग मकर हरिण नर वृषभ इन पदों के साथ 'वाहन' शब्द का समास होता है । क्रम पहले-जैसा होता है । हे सुरवन्दिते! इसको दूसरा विशेषण जानना चाहिये । वज्र शक्ति दण्ड खड्ग पाश ध्वज गदा और त्रिशूल इन शब्दों के साथ 'आयुध' शब्द का समास होता है । इसको तीसरा विशेषण समझना चाहिये । हे सुरेश्वरि! विभक्ति और वचन पहले ही कहे जा चुके हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः पीतवर्णाय ऐरावतवाहनाय वज्रायुधाय इन्द्राय सपरिवाराय नमः ।

२. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः रक्तवर्णाय छागवाहनाय शक्त्यायुधाय अग्नये सपरिवाराय नमः ।

३. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः कृष्णवर्णाय महिषवाहनाय दण्डायुधाय यमाय सपरिवाराय नमः ।

४. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः धूम्रवर्णाय तुरगवाहनाय खड्गायुधाय निर्ऋतये सपरिवाराय नमः ।

५. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः श्वेतवर्णाय मकरवाहनाय पाशायुधाय वरुणाय सपरिवाराय नमः ।

६. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः श्यामवर्णाय हरिणवाहनाय ध्वजायुधाय वायवे सपरिवाराय नमः ।

७. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः गौरवर्णाय नरवाहनाय गदायुधाय कुबेराय सपरिवाराय नमः ।

८. ओं फ्रें हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं हसखफ्रैं हसखफ्रें हसखफ्रः शुभ्रवर्णाय वृषभवाहनाय त्रिशूलायुधाय ईशानाय सपरिवाराय नमः ।) ॥ ९१६-९२६ ॥

[प्रकारान्तरेण दिक्पालसामान्यपूजाविधि:]

एवमन्यप्रकारेण दिगीशपरिपूजनम् ।
कार्यमेकमशक्तौ तु शक्तौ तूभयमाचरेत् ॥ ९२७ ॥
फलातिरेकमिच्छूनामुभयं शस्यते प्रिये ।
तारो लज्जा शाकिनी च नृसिंहः प्रेतभैरवी॥ ९२८ ॥
कर्णिकाशृङ्खले चोक्त्वा ज्योतिर्मयपदादनु ।
सिंहासनाय च नमः सामान्येन प्रपूजयेत् ॥ ९२९ ॥

अन्य प्रकार के दिक्पालों की सामान्य पूजा—इसी प्रकार अन्यविधि से दिक्पालों का पूजन करना चाहिये । यदि (यजमान) असमर्थ है तो केवल एक प्रकार

की पूजा करे और यदि समर्थ है तो दोनों प्रकार की पूजा करनी चाहिये। हे प्रिये! जो लोग विशेष फल चाहते हैं, उनके लिये दोनों प्रकार का पूजन श्रेयस्कर माना जाता है। तार लज्जा शाकिनी नृसिंह प्रेत भैरवी कर्णिका शृङ्खला बीजों को कहकर 'ज्योतिर्मय' पद के बाद 'सिंहासनाय नमः' इस मन्त्र से सामान्य पूजा करनी चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्लीं फ्रें क्ष्रौं स्हौः सौः क्ष्ह्लीं रग्रौं ज्योतिर्मयसिंहासनाय नमः) ॥ ९२७-९२९ ॥

[सिंहासनधराणां विशेषपूजाविधिः]

ततो विशेषं कलय सिंहासनधरार्चने।
सारस्वतरमाकामाः प्रासादक्षेत्रपाविति ॥ ९३० ॥
बीजानि पञ्च संलिख्य ताररावौ ततः परम्।
सामान्यैतानि सर्वेषामन्ते च नम इत्यपि ॥ ९३१ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एकैकमेषामेकस्मिन् मन्त्रे क्रमत ईरयेत् ॥ ९३२ ॥
महाप्रेतपदं सर्वसामान्यत्वेन तत्परम्।
ज्योतिर्मयानु सिंहासनधरस्तत्परोऽपि च ॥ ९३३ ॥
विशेष्यत्वेनोक्त आद्यो(द्यौ) विशेषणतयाऽपरौ।
ङेऽन्तत्वेन विनिर्दिष्टास्त्रयोऽपि त्रिदशार्चिते ॥ ९३४ ॥
अथ वेदादिचैतन्यरमामायास्मरस्त्रियः।
प्रासादनरसिंहौ च भैरवीकूटमन्वतः ॥ ९३५ ॥
कृष्णवर्णेत्यतः शब्दस्तत्पिङ्गलजटोऽपि च।
नरमुण्डास्थिमाली च महाशब्दादनु प्रिये ॥ ९३६ ॥
भैरवासनमित्येवं चत्वार्येव पदानि हि।
कार्याणि ङेऽन्तरूपाणि सर्वाण्येव मनूद्धृतौ ॥ ९३७ ॥
कूर्चरावास्त्रहृच्छीर्षमनवश्चरमस्थिताः ।

सिंहासनधारियों की विशेष पूजा—इसके बाद सिंहासनधारियों के पूजन में विशेष को जानो। सारस्वत रमा काम प्रासाद क्षेत्रपाल इन पाँच बीजों को लिखकर उसके बाद तार और राव और अन्त में 'नमः' ये सब मन्त्रों के लिये सामान्य है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव इनमें से एक-एक को क्रम से एक-एक मन्त्र में कहना चाहिये। उसके बाद 'महाप्रेत' पद सब मन्त्रों में सामान्य रहेगा। उसके बाद 'ज्योतिर्मय' के बाद 'सिंहासनधर' पद विशेष्य के रूप में कहा गया होता है। उसके पहले वाले दोनों पद विशेषण के रूप में रहते हैं। हे त्रिदशार्चिते! तीनों पदों को ङेऽन्त कहना चाहिये। उसके बाद वेदादि चैतन्य रमा माया काम स्त्री प्रासाद नरसिंह के बाद भैरवीकूट फिर 'कृष्णवर्ण' फिर 'पिङ्गलजटः' फिर हे प्रिये! 'नरमुण्डास्थि-

माली' 'महा' शब्द के बाद 'भैरवासन' इन चारों पदों को सभी मन्त्रों के उद्धार में ङेऽन्त कहना चाहिये । अन्त में कूर्च राव अस्त्र हृदय और शिरोमन्त्र रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं श्रीं क्लीं हौं क्ष्रौं ओं फ्रें ब्रह्मणे महाप्रेताय ज्योतिर्मयसिंहासनधराय नमः ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हौं क्ष्रौं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं कृष्णवर्णाय पिङ्गलजटाय नरमुण्डास्थिमालिने महाभैरवासनाय हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।

२. ऐं श्रीं क्लीं हौं क्ष्रौं ओं फ्रें विष्णवे महाप्रेताय ज्योतिर्मयसिंहासनधराय नमः ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हौं क्ष्रौं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं कृष्णवर्णाय पिङ्गलजटाय नरमुण्डास्थिमालिने महाभैरवासनाय हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।

३. ऐं श्रीं क्लीं हौं क्ष्रौं ओं फ्रें रुद्राय महाप्रेताय ज्योतिर्मयसिंहासनधराय नमः ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हौं क्ष्रौं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं कृष्णवर्णाय पिङ्गलजटाय नरमुण्डास्थिमालिने महाभैरवासनाय हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।

४. ऐं श्रीं क्लीं हौं क्ष्रौं ओं फ्रें ईश्वराय महाप्रेताय ज्योतिर्मयसिंहासनधराय नमः ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हौं क्ष्रौं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं कृष्णवर्णाय पिङ्गलजटाय नरमुण्डास्थिमालिने महाभैरवासनाय हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।

५. ऐं श्रीं क्लीं हौं क्ष्रौं ओं फ्रें सदाशिवाय महाप्रेताय ज्योतिर्मयसिंहासनधराय नमः ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं हौं क्ष्रौं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं कृष्णवर्णाय पिङ्गलजटाय नरमुण्डास्थिमालिने महाभैरवासनाय हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा) ॥ १३०-१३७- ॥

[शिवासनार्चामन्त्रः]

क्रमाभावेऽपि देवेशि शिवासनमनुं शृणु ॥ १३८ ॥
तारो लज्जा च कमला प्रलयः कर्णिका तथा ।
नादान्तकश्चामरश्च विमर्दः शेखरोऽपि च ॥ १३९ ॥
श्रीकण्ठकूटं तदनु कूटौ शाङ्करशाम्भवौ ।
द्वादशैवं समुद्धृत्य बीजकूटानि पार्वति ॥ १४० ॥
शशाङ्कशेखरपदं नागहारिपदं ततः ।
भीमदर्शनमित्येवं वज्रदंष्ट्रानखं ततः ॥ १४१ ॥
व्याघ्रचर्माम्बरमपि शूलखट्वाङ्गधार्यपि ।
ततो धूमलवर्णश्च पुनः पिङ्गजटाधरः ॥ १४२ ॥
शिवाकारश्च नवमो दशमश्च शिवासनम् ।
सर्वेऽप्येते चतुर्थ्येकवचः सुपरिगुम्फिताः ॥ १४३ ॥
क्रोधोऽपि शाकिन्यस्त्रं च नमः स्वाहा तथैव च ।
शिवासनस्य पूजायां मन्त्र एष प्रकाशितः ॥ १४४ ॥

शिवासनार्चा मन्त्र—हे देवेशि! क्रम न होने पर भी शिवासन पूजा का मन्त्र सुनो—तार लज्जा कमला प्रलय कर्णिका नादान्तक चामर विमर्द शेखर श्रीकण्ठकूट उसके बाद शाङ्कर और शाम्भवकूट इस प्रकार बारह बीज कूटों को उद्धृत कर 'शशाङ्कशेखर' पद 'नागहारि' पद 'भीमदर्शन वज्रदंष्ट्रानख व्याघ्रचर्माम्बर शूलखट्वाङ्गधारी धूलवर्ण' पुन: 'पिङ्गजटाधर शिवाकार' और दशमपद 'शिवासन' ये सब के सब चतुर्थी एकवचन में कहे जायेंगे । क्रोधा शाकिनी अस्त्र 'नम: स्वाहा' यह शिवासन पूजा के विषय में मन्त्र प्रकाशित किया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्लीं श्रीं हसफ्रें क्ष्ह्लीं खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं क्लक्षसहमव्य्रऊं लक्षमह्जरक्रव्य्रऊं स्हजहलक्षम्लवनऊं शशाङ्कशेखराय नागहारिणे भीमदर्शनाय वज्रदंष्ट्रानखाय व्याघ्रचर्माम्बराय शूलखट्वाङ्गधारिणे धूमलवर्णाय पिङ्गजटाधराय शिवाकाराय शिवासनाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा) ॥ ९३८-९४४ ॥

[शिवासने चतुर्विंशदलाम्बुजकल्पनाकथा]

अत: परं सुरेशानि दुरूहं समुपस्थितम् ।
तत्र धेहि मन: सूक्ष्मं तस्माद् बोधमुपैष्यसि ॥ ९४५ ॥
मया यत्पूर्वमुदितं तस्यावसर आगत: ।
अविद्यमानमप्यत्र मण्डले परिकल्प्य हि ॥ ९४६ ॥
धियावरणपूजार्थं प्रकारं विदधीत वै ।
दशवक्त्रार्चनविधौ न चतुर्विंशतिच्छदम् ॥ ९४७ ॥
वर्तते कमलं यन्त्रे मयैव समुदीरितम् ।
तथाप्यावरणार्चार्थं पद्भं कल्प्यं धियेदृशम् ॥ ९४८ ॥
यस्मिन् यस्मिन् भवेद् यन्त्रे चतुर्विंश:दलाम्बुजम् ।
न तत्रेदृग्विधं पद्मं कल्पनीयं धियाऽनघे ॥ ९४९ ॥
अभावे यत्र यत्र स्याद् यस्य यस्य सरोरुह: ।
तत्र तत्र धिया कार्यमेवमाह पुरद्विष: ॥ ९५० ॥
शिवासनोपरि ध्यात्वा चतुर्विंशदलाम्बुजम् ।
आवृत्तिव्यावृता देवीरर्चयेत् कुसुमाक्षतै: ॥ ९५१ ॥

शिवासन में चौबीस दलों वाले कमल की कल्पना—हे सुरेशानि! इसके पश्चात् दुरूह विषय उपस्थित हैं । उसमें मन को लगाओ । तब सूक्ष्म बोध को प्राप्त करोगी । मैंने पहले जो कहा था उसका अवसर आ गया है । इस मण्डल में यद्यपि वह विद्यमान नहीं है तो भी मन से उसकी कल्पना कर आवरण पूजा के लिये प्रकार बनाना चाहिये । यद्यपि दशवक्त्रपूजा की विधि में यन्त्र में चौबीस दलों वाले कमल की कल्पना नहीं है यह मैंने ही कहा है तो भी आवरण पूजा के लिये बुद्धि के द्वारा इस प्रकार की अर्थात् चौबीस दलों वाले कमल की कल्पना कर लेनी चाहिये । हे

अनघे! जिस-जिस यन्त्र में चौबीस दलों वाले कमल की स्थिति है उस-उस यन्त्र में इस प्रकार के कमल की बुद्धि से कल्पना नहीं करनी चाहिये । जहाँ-जहाँ अभाव हो वहाँ-वहाँ कमल की कल्पना बुद्धि से कर लेनी चाहिये ऐसा त्रिपुरारि ने कहा है । शिवासन के ऊपर चौबीस दलों वाले कमल का ध्यान कर आवृत्ति से आवृत देवियों की पुष्पाक्षत से पूजा करनी चाहिये ॥ ९४५-९५१ ॥

[चतुर्विंशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः]

अथोद्धारक्रमेणैव मन्त्रान् वक्ष्यामि पार्वति ।
सावधानमना भूत्वा निशामय महोदयान् ॥ ९५२ ॥
एकैकस्मिन् पद्मदले काल्येका परिपूज्यते ।
तारो माया योगिनी च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ॥ ९५३ ॥
पञ्चेमानि च बीजानि पुरः सर्वत्र योजयेत् ।
अम्बा श्री पादुकामुक्त्वा पूजयामि ततः परम्॥ ९५४ ॥
रोषरावौ च हृदयं मन्त्राणामखिलात्मनाम् ।
वर्णावली शेषगेयं विविच्य प्रतिपादिता ॥ ९५५ ॥
मध्ये काली क्रमाद् वक्ष्ये ताभिरम्बा सुसंस्थिता ।
उग्रकाली रौद्रकाली ततो वेतालकाल्यपि ॥ ९५६ ॥
संहारकाली तदनु भीमकाली ततः परम् ।
धूमकाली मुण्डकाली नादकाल्यनु कथ्यते ॥ ९५७ ॥
ततो महारात्रिकाली नग्नकाल्यनु कथ्यते ।
ततो दुर्जयकाली च पुनर्मन्थानकाल्यपि ॥ ९५८ ॥
कल्पान्तकाली रुधिरकाली कङ्कालकाल्यपि ।
सन्त्रासकाली तदनु स्याद्भयङ्करकाल्यपि ॥ ९५९ ॥
स्यात् त्रयोविंशतितमा काली विकटपूर्विका ।
घोरघोरतरार्णानु काली शेषे प्रतिष्ठिता ॥ ९६० ॥
चतुर्विंशतिराख्याता इत्येताः कालिका प्रिये ।
एकैकस्मिन् दले पूज्याः काल्यावरणपूजने ॥ ९६१ ॥

चतुर्विंशतिदलकमलस्थ देवी पूजा की समन्त्रविधि—हे पार्वति! अब उद्धार क्रम से मन्त्रों को बतलाऊँगा । सावधान मन वाली होकर महान् उदयकारक (मन्त्रों) को सुनो । कमल के एक-एक दल में एक-एक काली की पूजा की जाती है । तार माया योगिनी प्रेत और भैरवी इन पाँच बीजों को सर्वत्र पहले जोड़ना चाहिये । उसके बाद 'अम्बा श्रीपादुकां' कहकर 'पूजयामि' कहना चाहिये । रोष राव और हृदय यह सभी मन्त्रों में रहेगा । इस प्रकार अन्त में रहने वाली वर्णावली को अलग-अलग कर बतलाया गया । मध्य में 'काली' को क्रम से बतलाऊँगा । उन (कालियों) के साथ 'अम्बा' जुड़ी रहती है । कालियों के नाम—उग्रकाली रौद्रकाली वेतालकाली

संहारकाली भीमकाली धूमकाली मुण्डकाली नादकाली महारात्रिकाली नग्नकाली दुर्जयकाली मन्थानकाली कल्पान्तकाली रुधिरकाली कङ्कालकाली सन्त्रासकाली भयङ्करकाली[1] । विकटकाली तेईसवीं और अन्त में घोरघोरतर काली है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं छ्रीं स्हौः सौः उग्रकाल्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि हूं फ्रें नम: ।)

इसी प्रकार रौद्रकाली से लेकर घोरघोरतर काली के साथ अम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फ्रें नमः जोड़कर समस्त कालियों की पूजा करनी चाहिये ॥९५२-९६१॥

[षोडशदलाम्बुजस्थदेवीपूजायाः समन्त्रो विधिः]

अथ षोडशपत्रस्य कमलस्य निशामय ।
आदौ तु पञ्च बीजानि सर्वत्रैवाचलानि हि ॥ ९६२ ॥
ततः षोडश नामानि भिन्नभिन्नानि सुन्दरि ।
तैः शब्दैः मूर्तिशब्दस्य विग्रहो ङेविभक्तिकः ॥ ९६३ ॥
पुनः पृथक् पृथङ् नाम सर्वेषु मनुषु ध्रुवम् ।
तैः कालिकापदस्यापि पूर्ववत् सकलं स्मृतम् ॥ ९६४ ॥
रोषरावौ च हृदयं स्वाहेति च षडक्षरी ।
शेषे सर्वत्र सर्वेषां स्थिरा तुल्या प्रकीर्तिता ॥ ९६५ ॥
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ।

षोडशदल कमलस्थ देवी पूजा की समन्त्र विधि—इसके बाद षोडशदल कमल (में देवी) की पूजा को सुनो । पहले पाँच बीज सर्वत्र स्थिर रहते हैं । हे सुन्दरि! इसके बाद भिन्न-भिन्न सोलह नाम रहते हैं । उनके साथ 'मूर्त्ति' शब्द का चतुर्थ्यन्त समास होता है । पुन: समस्त मन्त्रों में पृथक्-पृथक् नाम होते हैं । उनके साथ 'कालिका' पद का (समास इत्यादि) सब होता है । अन्त में क्रोध राव हृदय और 'स्वाहा' ये छह अक्षर सर्वत्र समान रूप से स्थिर रहते हैं । इस प्रकार सामान्य रूप से विधि बतलायी गयी । अव विशेष विधि को सुनो ॥ ९६२-९६५- ॥

[विशिष्टा माहिम्नी आवरणार्चा]

वेदादिर्भौवनेशी च शाकिनी प्रलयोऽपि च ॥ ९६६ ॥

---

[1] यहाँ पर कालियों की संख्या सत्रह है । विकटकाली को तेईसवीं कहा गया है । अर्थात् बीच में चार काली का नाम और होना चाहिये । एतदर्थ निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है—

ततः प्रलयकाली च विद्याकाली ततोऽप्यनु ।
शक्तिकाली महाकाली कुलकाली ततः परम् ॥

इस प्रकार चौबीस संख्या पूर्ण हो जाती है । पच्चीसवीं काली कर्णिका में पूजित होती है ।

फेत्कारी चेति बीजानां पञ्चकं पुरतो मतम् ।
महाज्ञानं महेच्छा च महारम्भ इतः परम् ॥ १६७ ॥
महैश्वर्यं चापि महावैराग्यं कान्त(ल?) एव च।
महाधर्ममहाशान्ती तदनन्तरमीरिते ॥ १६८ ॥
महानन्दश्च देवेशि महाधनमतः परम् ।
महादण्डोऽपि महाप्रभा तदनु कथ्यते ॥ १६९ ॥
महाकौमुद्यपि महास्फुलिङ्गोऽस्यानु वर्णितः ।
महाघोरोऽपि च महारणोऽप्य स्यानु कीर्तितः ॥ १७० ॥
महामोक्षश्चेति शेषे षोडशैवं प्रकीर्तिताः ।
तत्पदं नास्ति देवेशि यन्महोपपदान्वितम् ॥ १७१ ॥
अत आवरणार्चेयं माहिम्नीति निगद्यते ।
मूर्तिशब्दस्य पूर्वोपपदान्युक्तानि वै तव ॥ १७२ ॥
इदानीं कालिकाशब्दात् पूर्वशब्दान्निशामय ।
दिगम्बरस्तथोद्दामः प्रपञ्चो विजयस्तथा ॥ १७३ ॥
योगः क्रतुस्तपोभोगः सङ्ग्रामश्चण्ड एव च ।
सूर्यश्चन्द्रस्तथैवाग्निर्वज्रो धीरस्ततः परम् ॥ १७४ ॥
(.. ॥)
तान्यपि प्रब्रवीम्यत्र त्रुट्यभावाय केवलम् ।
आदौ विवेक उत्साह उद्यमः सम्भ्रमोऽपि च ॥ १७५ ॥
विग्रहो मङ्गलं चैव नियमः समयोऽपि च ।
चैतन्यं च समाधिश्च निदानं विस्मयोऽपि च ॥ १७६ ॥
प्रभावोऽनु प्रमाणं च कैवल्यं च प्रकाशयुक् ।
इति षोडश निर्दिष्टाः कालिकादिपदक्रमे ॥ १७७ ॥
माहिम्नीति च पञ्चापि त्रिपुटीति निगद्यते ।
त्रिवर्णकत्वात् शब्दानां धर्मवाचितया तथा ॥ १७८ ॥
त्रिपुटी वा त्रिवर्णा वा परिभाषाद्वयं समम् ।
संहितामतमीदृक्षमन्येषामवधारय ॥ १७९ ॥

विशिष्ट माहिम्नी आवरणार्था—वेदादि भौवनेशी शाकिनी प्रलय और फेत्कारी ये पाँच बीज पहले स्थायी रहते हैं । इसके बाद महाज्ञान महेच्छा महारम्भ उसके बाद महैश्वर्य महावैराग्य (महाकाल) इसके बाद महाधर्म महाशान्ति कहे जाते हैं । हे देवेशि! महानन्द महाधन इसके बाद महादण्ड उसके बाद महाप्रभा कही जाती है । उसके पश्चात् महाकौमुदी और महास्फुलिङ्ग का वर्णन है । तदनन्तर महाघोर महारण भी कहा गया है । अन्त में महामोक्ष, इस प्रकार सोलह पद कहे गये । हे देवेशि! ऐसा कोई पद नहीं है जिसके पहले 'महा' पद न हो । इसीलिये यह आवरणार्चा

माहिम्नी (= महिमा वाली) कही जाती है । 'मूर्ति' शब्द के पूर्ववर्ती पद तुमको बतलाये गये । अब 'कालिका' शब्द के पूर्ववर्ती पदों को सुनो—दिगम्बर उद्दाम प्रपञ्च विजय योग क्रतु तपो, भोग संग्राम चण्ड सूर्य चन्द्र अग्नि वज्र उसके बाद धीर[1] (.......................)[2] उनको भी यहाँ केवल त्रुटि को दूर करने के लिये कह रहा हूँ । पहले विवेक फिर उत्साह उद्यम सम्भ्रम विग्रह मङ्गल नियम समय चैतन्य समाधि निदान विस्मय प्रभाव प्रमाण कैवल्य और प्रकाश ये सोलह पद कालिकादि पद के क्रम में कहे गये । (विवेक उत्साह आदि पदों के) तीन वर्णोंवाला होने से तथा (महिमत्व) धर्म का वाचक होने से यह त्रिपुटी तथा महिम्नी कही जाती है । उसे चाहे त्रिपुटी कहिये अथवा त्रिवर्णा दोनों ही परिभाषा (= तात्पर्य) समान है—ऐसा महाकालसंहिता का मत है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाज्ञानमूर्त्तये दिगम्बरकालिकाविवेकाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महेच्छामूर्त्तये उद्दामकालिकोत्साहाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महारम्भमूर्त्तये प्रपञ्चकालिकोधमाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
४. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महैश्वर्यमूर्त्तये विजयकालिकासम्भ्रमाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
५. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महावैराग्यमूर्त्तये योगकालिकाविग्रहाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
६. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाधर्ममूर्त्तये क्रतुकालिकामङ्गलाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
७. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाशान्तिमूर्त्तये तपःकालिकानियमाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
८. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महानन्दमूर्त्तये भोगकालिकासमयाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।
९. ओं ह्रीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाधनमूर्त्तये संग्रामकालिकाचैतन्याय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

---

[1] यहाँ एक श्लोक लुप्त प्रतीत होता है । इस लुप्त श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'धीर' का पश्चाद्वर्त्ती सोलहवाँ शब्द उक्त रहा होगा और उत्तरार्द्ध में 'यानि' से प्रारम्भ होनेवाला कोई वाक्य जिसके परामर्श के लिये अग्रिम श्लोक में 'तान्यपि' कहा गया ।

[2] यहाँ 'दिगम्बर' से लेकर 'धीर' तक पन्द्रह ही शब्द कहे गये । जबकि उनकी संख्या सोलह होनी चाहिये । सोलहवाँ शब्द कौन-सा है इसमें विद्वज्जन ही प्रमाण हैं ।

१०. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महादण्डमूर्त्तये चण्डकालिकासमाधये (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

११. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाप्रभामूर्त्तये सूर्यकालिकानिदानाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

१२. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाकौमुदीमूर्त्तये चन्द्रकालिकाविस्मयाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

१३. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महास्फुलिङ्गमूर्त्तये अग्निकालिकाप्रभावाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

१४. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महाघोरमूर्त्तये वज्रकालिकाप्रमाणाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

१५. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महारणमूर्त्तये धीरकालिकाकैवल्याय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।

१६. ओं ह्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें महामोक्षमूर्त्तये..........कालिकाप्रकाशाय (?) हूं फ्रें नमः स्वाहा ।) ॥ ९६६-९७९ ॥

[कापालिकमतेन षोडशदलाम्बुजस्थदेवीपूजाप्रकारकथनम्]

कापालिकानां देवेशि महाकौलिकताजुषाम् ।
अर्चा षोडशपत्राब्जे पृथगेव निरुच्यते ॥ ९८० ॥
तां ते ब्रवीमि कलय सम्यगुद्धारपूर्वकम् ।
आदौ बीजद्वयं सर्वसाधारणतयोदितम् ॥ ९८१ ॥
एकैकं कूटमस्यानु तत्पृथक् पृथगुच्यते ।
एतस्यानु स्थिरा ज्ञेया ङिविभक्तिः षडक्षरी ॥ ९८२ ॥
पुनर्विभिन्ननामानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ।
अग्रे स्थिरा पुनः पञ्चाक्षरी पूर्वोदितैः पदैः ॥ ९८३ ॥
विग्रहोऽस्याः स च ङेऽन्तः चलं पूर्वं स्थिरं परम् ।
पुनरन्यानि नामानि क्रमेणैव पृथक् पृथक् ॥ ९८४ ॥
आद्योदितानां मन्त्राणां या तु शेषे दशाक्षरी ।
सैवामीषु प्रयोक्तव्या समान्योद्धृतिरीदृशी ॥ ९८५ ॥

कापालिक मत के अनुसार षोडशदल कमलस्थ देवी की पूजा के मन्त्र—हे देवेशि! अब अन्य महाकौल मतानुयायी कापालिकों द्वारा की जाने वाली षोडशपत्राब्ज देवी की पूजा पृथक् कही जा रही है। उसको मैं तुमको उद्धारपूर्वक भलीभाँति बतला रहा हूँ, समझो। पहले दो बीज सर्व साधारण रूप से कहे गये होते हैं। इसके बाद एक-एक कूट वह भी अलग-अलग कहा जाता है। इसके पश्चात् ङिविभक्ति और षडक्षरी स्थिर जाननी चाहिये। हे सुरेश्वरि! पुनः प्रत्येक मन्त्र में विभिन्न नाम होते हैं। पूर्वोक्त पदों के साथ पुनः पञ्चाक्षरी आगे स्थायी रूप से रहती है। इस पञ्चाक्षरी का

समास होता है और वह ङेऽन्त होता है । (समस्त पद से) पहला भाग चल और दूसरा स्थिर रहता है । पुनः अन्य भाग क्रम से पृथक्-पृथक् होते हैं । प्रथम कहे गये मन्त्रों के अन्त में जो दशाक्षरी है उसी का इसमें भी प्रयोग होना चाहिये । यह सामान्य उद्धार है ॥ ९८०-९८५ ॥

विशेषोद्धारमेतेषामिदानीं कलय प्रिये ।
वेदादिरावौ बीजे द्वे आसनाम्बुरुहस्य हि ॥ ९८६ ॥
दलनाम्ना तु ये कूटास्ते ततः परमीरिताः ।
अन्वेतेषां यज्ञमयपद्मशब्दः प्रतिष्ठितः ॥ ९८७ ॥
ततः क्रमेण कूटानां नाम कूटं न चोद्धरेत् ।
पुनः क्रमेण चैतेषां दलाधिष्ठात्र्यनन्तरम् ॥ ९८८ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्रो वह्निर्यमस्तथा ।
वायुर्विश्वो वसुर्मृत्युर्यक्षोरक्षश्च साध्ययुक् ॥ ९८९ ॥
मेघो निधिश्च मोक्षश्चेत्येते क्रमत ईरिताः ।
एभिर्मन्त्रैर्यजन्त्याद्यां षोडशच्छदपङ्कजे ॥ ९९० ॥
कापालिका यामलीयास्तथैव च दिगम्बराः।
इति नानाप्रकारेण पूजाभेदा मयोदिताः ॥ ९९१ ॥
एकमावश्यकं चैषां कर्तव्यत्वेन सुन्दरि ।
फलातिरेकता सर्वप्रकारकरणेन हि ॥ ९९२ ॥

हे प्रिये! अब इन मन्त्रों का विशेष उद्धार जानो । पहले वेदादि और राव ये दो बीज रहते हैं । उसके बाद आसनरूपी कमल के दल के नाम से जो कूट हैं, वे रखे जाते हैं। इनके बाद 'यज्ञमयपद्म' शब्द रखा जाता है । इसके बाद क्रम से कूटों का नाम लिखना चाहिये 'कूट' शब्द नहीं । फिर क्रम से इन दलों की अधिष्ठात्री देवियाँ, तत्पश्चात् ब्रह्मा विष्णु रुद्र शक्र वह्नि यम वायु विश्ववसु मृत्यु यक्ष रक्ष साध्य मेध निधि और मोक्ष ये क्रम से कहे गये होते हैं[१] । इन मन्त्रों के द्वारा कापालिक यामलीय और दिगम्बर साधक आद्याकाली की षोडशदल कमल पर पूजा करते हैं । इस प्रकार (आद्याकाली) की पूजा के अनेक प्रकार मेरे द्वारा कहे गये । हे सुन्दरि! इनमें से एक अवश्य कर्त्तव्य है । सब प्रकार की पूजा करने से फलाधिक्य होता ही है ॥ ९८६-९९२ ॥

[द्वादशपत्राम्बुजे देवीपूजाविधिः]

अतः परममुष्योदूर्ध्वं द्वादशच्छदमम्बुजम् ।

---

१. इन सोलह मन्त्रों के स्वरूप निर्वचन के सन्दर्भ में ङिविभक्त्यन्त पद, दशाक्षरी, कमलदल के नाम से कूट, दलों की अधिष्ठात्री देवियों के नाम मूल ग्रन्थ में सङ्केतित न होने से मन्त्र-स्वरूप का स्पष्टीकरण दुष्कर है ।

तदर्चनप्रकारं ते कथयामि सुरेश्वरि ॥ ९९३ ॥
एतद्वत् तदपि ज्ञेयं नानाविधतया स्थितम् ।

द्वादश पत्राम्बुज पर देवी पूजा की विधि—इसके बाद इस षोडशदल कमल के ऊपर द्वादश दल कमल रहता है । हे सुरेश्वरि! तुमको उसकी पूजा की विधि बतला रहा हूँ । इसको भी पूर्व की भाँति अनेक प्रकार की जाननी चाहिये ॥ ९९३-९९३- ॥

[अभ्यर्हितत्वेन त्रिपुरघ्नमतस्याभिधानम्]

प्रथमं त्रिपुरघ्नोक्तमाकर्णय वरानने ॥ ९९४ ॥
तारलक्ष्मीकामवधूकूर्चाः प्रथममीरिताः ।
हृच्छिरोऽभिहितौ मन्त्रौ योज्यौ चरमगामिनौ ॥ ९९५ ॥
विज्ञातव्याविमौ कालव्यापिनौ जगदीश्वरि ।
मध्ये काली ङेऽन्तरूपा भिन्नभिन्ना उदीरयेत् ॥ ९९६ ॥
आद्या दक्षिणकाली च द्वितीया धनकाल्यपि ।
भद्रकाली सिद्धिकाली चण्डकाली तथैव च ॥ ९९७ ॥
ततः कामकलाकाली भीमकाली ततोऽप्यनु ।
घोरकाल्युग्रकाली च नवमी परिकीर्तिता ॥ ९९८ ॥
श्मशानकाली तदनु ज्वालाकाली ततोऽप्यनु ।
सर्वशेषे गुह्यकाली द्वादशी परिकीर्तिता ॥ ९९९ ॥
मुख्यः पक्षोऽयमुदितस्त्रिपुरघ्नमुखोद्गतः ।

सर्वश्रेष्ठ होने से त्रिपुरारि के मत का वर्णन—हे वरानने! पहले त्रिपुरारि के द्वारा उक्त विधि को सुनो । सबसे पहले तार लक्ष्मी काम वधू कूर्च कहे जाते हैं । हृदय और शिरोमन्त्र अन्तर्वर्ती करके जोड़े जाते हैं । हे जगदीश्वरि! इन दोनों को कालव्यापी अर्थात् स्थायी समझना चाहिये । मध्य में भिन्न-भिन्न काली को ङेऽन्त करके कहना चाहिये । (उन कालियों के नाम इस प्रकार हैं—) प्रथम दक्षिणकाली दूसरी धनकाली फिर भद्रकाली सिद्धिकाली चण्डकाली उसके बाद कामकलाकाली तत्पश्चात् भीमकाली घोरकाली और उग्रकाली नवीं कही गयी है । उसके अनन्तर श्मशानकाली तदनु ज्वालाकाली और सबके अन्त में गुह्यकाली बारहवीं कही गयी है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं दक्षिणकाल्यै नमः स्वाहा ।
२. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं धनकाल्यै नमः स्वाहा ।
३. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं भद्रकाल्यै नमः स्वाहा ।
४. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं सिद्धिकाल्यै नमः स्वाहा ।
५. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं चण्डकाल्यै नमः स्वाहा ।

६. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं कामकलाकाल्यै नम: स्वाहा ।
७. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं भीमकाल्यै नम: स्वाहा ।
८. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं घोरकाल्यै नम: स्वाहा ।
९. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं उग्रकाल्यै नम: स्वाहा ।
१०. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं श्मशानकाल्यै नम: स्वाहा ।
११. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं ज्वालाकाल्यै नम: स्वाहा ।
१२. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं गुह्यकाल्यै नम: स्वाहा ।)

त्रिपुरारि के मुख से निकला हुआ यह मुख्य पक्ष है ॥ ९९४-९९९- ॥

[अत्र कापालिकमताभिधानम्]

इदानीं डामरीयानां प्रकारमवधारय ॥ १००० ॥
आदौ बीजान्यष्ट शिवे स्थिराणि प्रतिमन्वपि ।
ङेऽन्ता षडक्षरी चैषा मनुः स्थिरतरा तथा ॥ १००१ ॥
उपकूटानि चैतस्या अनुबोध्यानि वै पृथक् ।
ततः पुनर्भिन्नभिन्ननामानि सुरवन्दिते ॥ १००२ ॥
षडक्षरी ततः स्थाण्णुर्ङेऽन्ता पूर्वोदितैः पदैः ।
विग्रहश्च तथा सन्धिरावश्यकतया स्थितः ॥ १००३ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां पदाभ्यांतु द्विवर्णाभ्यां विनिर्मितम् ।
पदमेकमदन्तं च भिन्नभिन्नं ततः स्मृतम ॥ १००४ ॥
तैः कालिकापदस्यापि विग्रहो ङेविभक्तितः ।
सप्ताक्षरी ततः शेषे कालव्यापिन्युदीरिता ॥ १००५ ॥
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ।
तारत्रपे योगिनी च रमाकामौ च डाकिनी ॥ १००६ ॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानि स्थैर्यभाञ्जि हि ।
ततोऽनु वै शस्त्रमयपदाशब्दः प्रतिष्ठितः ॥ १००७ ॥
ब्रह्मास्त्रमाग्नेयास्त्रं च वायव्यास्त्रमनन्तरम् ।
ऐषीकास्त्रं पार्वतास्त्रं नागास्त्रं तदनन्तरम् ॥ १००८ ॥
प्रस्वापनास्त्रं तदनु सौपर्णास्त्रं ततोऽप्यनु ।
मातङ्गास्त्रं दानवास्त्रं पैशाचास्त्रमतः परम् ॥ १००९ ॥
सर्वशेषे ब्रह्मशिरोऽस्त्रं देवि परिकीर्तितम् ।
एतस्माद् देवदेवेशि तत्तदस्त्रस्य नाम हि ॥ १०१० ॥
पुनरष्टदलाधिष्ठात्री शब्द उपवर्णितः ।
सप्ताक्षरी दृश्यतया संहितार्था षडक्षरी ॥ १०११ ॥
उल्कामुखः पिङ्गजटो दावानल इतः परम् ।
प्रेतासनश्च शुष्कोदर ज्वालाकुल एव च ॥ १०१२ ॥

चण्डहासस्तथा भूतोन्मादश्चापि महोदयः ।
कुलचक्रो मेघनादो विश्वरूपोऽन्तगोचरः ॥ १०१३ ॥
कूर्चरावावथास्त्रं च नमः स्वाहा तथैव च ।
एषा सप्ताक्षरी विद्या सर्वेषामन्तगामिनी ॥ १०१४ ॥
द्वादशच्छदनाम्भोजावरणार्चा मयोदिता ।
कपालडामरीयास्तु एतामेव प्रकुर्वते ॥ १०१५ ॥

कापालिक मत—अब डामरियों के मत को समझो । हे शिवे! पहले प्रत्येक मन्त्र में आठ बीज स्थिर रहते हैं । छह अक्षरोंवाला ङेन्त मन्त्र स्थिरतर कहा गया है । इसके बाद उपकूटों को अलग-अलग जानना चाहिये । हे सुरवन्दिते! इसके बाद भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । उसके पश्चात् पूर्वोक्त पदों के साथ ङेऽन्त षडक्षरी स्थिर रूप से रहती है । समास और सन्धि दोनों आवश्यक रूप से स्थित रहते हैं । उसके अनन्तर दो-दो वर्णों से बने दो-दो पदों के द्वारा एक अदन्त पद बनता है और वह भिन्न-भिन्न होता है । उनके साथ 'कालिका' पद का समास होता है और वह समस्त पद चतुर्थ्यन्त होता है । इसके बाद अन्त में सप्ताक्षरी स्थायी रूप से रहती है । यह सामान्य रूप से कहा गया । अब विशेष को सुनो—तार त्रपा योगिनी रमा काम डाकिनी प्रलय और फेत्कारी ये सात बीज स्थिरता वाले हैं । इसके पश्चात् 'शस्त्रमयपदा' शब्द स्थिर रहता है । ब्रह्मास्त्र आग्नेयास्त्र वायव्यास्त्र उसके बाद ऐषीकास्त्र पार्वतास्त्र नागास्त्र तदनन्तर प्रस्वापनास्त्र तत्पश्चात् सौपर्णास्त्र फिर मातङ्गास्त्र दानवास्त्र पैशाचास्त्र और सबके अन्त में ब्रह्मशिरोऽस्त्र कहा जाता है । हे देवदेवेशि! इसके बाद तत्तत् अस्त्र का नाम रहता है । पुनः 'अष्टदलाधिष्ठात्री' शब्द कहा गया होता है । यह सप्ताक्षरी दृश्य रूप में संहित अर्थ वाली षडक्षरी ही है । (फिर निम्नलिखित बारह शब्द रहते हैं—) उल्कामुख, पिङ्गजट, दावानल इसके बाद प्रेतासन, शुष्कोदर, ज्वालाकुल, चण्डहास, भूतोन्माद, महोदय, कुलचक्र, मेघनाद और अन्त में विश्वरूप । उसके बाद कूर्च राव अस्त्र 'नमः स्वाहा' । यह सप्ताक्षरी विद्या सब मन्त्रों के अन्त में रहती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै क्षलफलओं उल्कामुखाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रम्लव्रीं पिङ्गजटाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै सम्लव्रीं दावानलाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
४. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रक्षहम्र घ्रम्लऊं प्रेतासनाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।

५. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै ह्क्षम्लस्रयूं शुष्कोदराष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
६. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै ह्क्षम्रफ्रयूं ज्वालाकुलाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
७. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रसखयम्रूं चण्डहासाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
८. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै ह्क्षम्लव्य्रऊं भूतोन्मादाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
९. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रक्षफ्रभ्रग्रम्लऊं महोदयाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
१०. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रक्षक्रम्रग्रम्लऊं कुलचक्राष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
११. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै रक्षभ्रम्लऊं मेघनादाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
१२. ओं ह्रीं छ्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शस्त्रमयपदायै क्षक्लूं विश्वरूपाष्टदलाधिष्ठात्र्यै हूं फ्रें फट् नमः स्वाहा ।)

मैंने द्वादशदल कमलावरण की पूजा बतलायी । कपालडामरीय लोग इसी को करते हैं ॥ १०००-१०१५ ॥

[अत्र दिगम्बरमताभिधानम्]

दिगम्बराणां सिद्धान्तमधुना कलय प्रिये ।
तारो रमा च कामश्च कर्णिका दुष्कृतं तथा ॥ १०१६ ॥
तन्त्रा तथा चर्पटं च शाम्भवं तदनन्तरम् ।
अष्टौ बीजानि पुरतः स्थिराण्येतानि कीर्तयेत् ॥ १०१७ ॥
चतुर्वर्णात्मिका देव्यो द्वादशातः परं स्मृताः ।
कोकामुखी ऋक्षकर्णी पूर्णभद्रा महोदरी ॥ १०१८ ॥
कपालिन्येकपादा च कुरुकुल्ला तथैव च ।
महामारी चण्डघण्टा जालन्धर्यवलोकिनी ॥ १०१९ ॥
संहारिणी सर्वशेषे द्वादशैवं प्रकीर्तिताः ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यन्तगो मनुः ॥ १०२० ॥
इति द्वादशपत्राब्जपूजा प्रोक्ता त्रिधा मया ।

दिगम्बर मत—हे प्रिये! अब दिगम्बरों के मत को सुनो । तार रमा काम कर्णिका दुष्कृत तन्त्रा चर्पट उसके बाद शाम्भव इन आठ स्थायी बीजों को पहले कहना चाहिये । इसके बाद चार वर्णों वाली बारह देवियाँ कही जाती हैं । (उनके नाम हैं—) कोकामुखी ऋक्षकर्णी पूर्णभद्रा महोदरी कपालिनी एकपादा कुरुकुल्ला

महामारी चण्डघण्टा जालन्धरी अवलोकिनी और सबके अन्त में संहारिणी इस प्रकार बारह देवियाँ कही गयीं । 'श्रीपादुकां पूजयामि' यह अन्तिम मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं कोकामुखीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
२. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं ऋक्षकर्णीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं पूर्णभद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं महोदरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं कपालिनीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं एकपादाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं कुरुकुल्लाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं महामारीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
९. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं चण्डघण्टाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१०. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं जालन्धरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
११. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं अवलोकिनीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं श्रीं क्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लक्ष्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्ग्फ्रीं संहारिणीश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।)

इस प्रकार त्रिविध द्वादशाब्जपूजा मेरे द्वारा कही गयी ॥ १०१६-१०२०- ॥

[अष्टपत्राम्वुजे देवीपूजाविधिः]

इदानीमष्टपत्राब्जपूजारीतिं निशामय ॥ १०२१ ॥
अत्र नानाविधा भेदा भूयांसः प्रतिपादिताः ।
नानामतप्रकाराश्च यदुक्ता डामरादिषु ॥ १०२२ ॥
सर्वान् विशिष्य वक्ष्यामि सावधाना निशामय ।

अष्टदलकमल पर देवी की पूजा—अब अष्टदलकमल पर (देवी की) पूजा के विधान को सुनो। इस विषय में अनेक प्रकार के बहुत सारे भेद कहे गये हैं। जो डामर आदि में नानामत कहे गये हैं। उन सबको विशेष रूप से बतलाऊँगा, सावधान होकर सुनो- ॥ १०२१-१०२२- ॥

[अत्राभ्यर्हितत्वात् त्रिपुरघ्नमताभिधानम्]

तत्रादौ त्रिपुरघ्नोक्तं तवाहं प्रतिपादये ॥ १०२३ ॥
मैधं माया च सानुश्च कर्णिका दुष्कृतं तथा।
आदाविमानि बीजानि पञ्चैव परमेश्वरि ॥ १०२४ ॥
हूं फट् नमस्ततः स्वाहा शेषे सर्वत्र कीर्तयेत्।
अष्टौ देव्यस्ततो ङेऽन्ता मध्ये प्रोक्ता वरानने ॥ १०२५ ॥
आदौ महाचण्डयोगेश्वरी भवति देवता।
वज्रकापालिनी चापि सिद्धिलक्ष्मीस्तथैव च ॥ १०२६ ॥
कालसङ्कर्षणी चापि कुब्जिका तदनन्तरम्।
चण्डेश्वरी तथा वज्रेश्वरी तदनु कथ्यते ॥ १०२७ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेया चण्डकापालिनी प्रिये।

श्रेष्ठतम होने से त्रिपुरारि का मत—उनमें से पहले मैं तुमको त्रिपुरारि के द्वारा उक्त (मत) को बतला रहा हूँ। हे परमेश्वरि! पहले मेध माया सानु कर्णिका दुष्कृत ये पाँच बीज उसके बाद सबके अन्त में 'हूं फट् नमः स्वाहा:' कहना चाहिये। हे वरानने! इसके बाद आठ देवियों को ङेऽन्त कहना चाहिये। (उनके नाम हैं—) पहली देवता महाचण्डयोगेश्वरी है। फिर वज्रकापालिनी सिद्धिलक्ष्मी कालसङ्कर्षिणी उसके बाद कुब्जिका चण्डेश्वरी उसके बाद वज्रेश्वरी कही जाती है। हे प्रिये! सबके अन्त में चण्डकापालिनी को जानना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं महाचण्डयोगेश्वर्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं वज्रकापालिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
३. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं सिद्धिलक्ष्म्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
४. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं कालसङ्कर्षिण्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
५. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं कुब्जिकायै हूं फट् नमः स्वाहा।
६. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं चण्डेश्वर्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
७. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं वज्रेश्वर्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
८. ऐं ह्लीं रह्लीं छ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लीं चण्डकापालिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।) ॥ १०२३-१०२७- ॥

[अष्टपत्राम्बुजे प्रकारान्तरेण देवीपूजाविधिः]

अथवान्यप्रकारेण वसुपत्राम्बुजार्चनम् ॥ १०२८ ॥
कङ्कालं मानसं शान्तिरु(मु)ग्रं डामरमेव च ।
एतानि पुरतः प्रोच्य नमः शेषे नियोजयेत् ॥ १०२९ ॥
अन्तरे देवता अष्टौ तान् ब्रवीमि निशामय ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ १०३० ॥
चण्डा चण्डवती चैवअतिचण्डा च चण्डिका ।
ङेऽन्ता अमूर्विनिष्पाद्य द्वयोर्मध्ये नियोजयेत् ॥ १०३१ ॥

अष्टदलकमल पर दूसरी विधि से देवी की पूजा—अथवा अन्य प्रकार से अष्टदल कमल (पर देवी) की पूजा (करनी चाहिये)। कङ्काल मानस शान्ति उग्र डामर इनको पहले कहकर अन्त में 'नमः' जोड़ना चाहिये। बीच में आठ देवतायें (कही जाती हैं) उनको बतला रहा हूँ, सुनो—उग्रचण्डा प्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती अतिचण्डा और चण्डिका। इन सबको ङेऽन्त बनाकर दोनों के मध्य में जोड़ना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं उग्रचण्डायै नमः ।
२. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं प्रचण्डायै नमः ।
३. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं चण्डोग्रायै नमः ।
४. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं चण्डनायिकायै नमः ।
५. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं चण्डायै नमः ।
६. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं चण्डवत्यै नमः ।
७. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं अतिचण्डायै नमः ।
८. रह्लीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ष्रीं चण्डिकायै नमः ।) ॥ १०२८-१०३१ ॥

[पुनः प्रकारान्तरेण तद्विधेरभिधानम्]

पुनरन्यप्रकारेण वसुपत्राब्जपूजनम् ।
मैधपाशाङ्कुशप्रेतभैरव्यः प्रथमे स्थिताः ॥ १०३२ ॥
शेषे कूर्चो योगिनी च नृसिंहो डाकिनी तथा ।
शाकिन्यस्त्रं च हृदयं शिरश्चेति दशाक्षरी ॥ १०३३ ॥
सर्वेषां समरूपा च स्थिरा च जगदीश्वरि ।
मध्ये काला(ली) च कलविकरणी तदनन्तरम् ॥ १०३४ ॥
पश्चादस्याश्च बलविकरणी च बला तथा ।
बलप्रमथिनी चापि तथैवोन्मन्यपि प्रिये ॥ १०३५ ॥
मनोन्मन्यप्यघोराणि क्रमादष्टाविमा मताः ।

कर्तव्या ङेविभक्त्यन्ता विनिवेश्याश्च मध्यतः ॥ १०३६ ॥
इति प्रकारत्रितयं त्रिपुरघ्नमुखोदितम् ।

प्रकारान्तर से उस विधि का कथन—पुन: अन्य प्रकार से अष्टदल कमल का पूजन (सुनो) । पहले मैध पाश अङ्कुश प्रेत और भैरवी रहते हैं । अन्त में कूर्च योगिनी नृसिंह डाकिनी शाकिनी अस्त्र हृदय और शिर यह दशाक्षरी रहती है । हे जगदीश्वरि! यह सभी मन्त्रों में समानरूप वाली तथा स्थायी रहती है । मध्य में काली कलविकरिणी बलविकरिणी बला बलप्रमथिनी उन्मनी मनोन्मनी अघोरा ये आठ क्रम से मानी गयी हैं । इनको ङेविभक्त्यन्त तथा मध्य में विनिविष्ट करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं आं क्रों स्हौः सौः काल्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
२. ऐं आं क्रों स्हौः सौः कलविकरिण्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
३. ऐं आं क्रों स्हौः सौः बलविकरिण्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
४. ऐं आं क्रों स्हौः सौः बलायै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
५. ऐं आं क्रों स्हौः सौः बलप्रमथिन्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
६. ऐं आं क्रों स्हौः सौः उन्मन्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
७. ऐं आं क्रों स्हौः सौः मनोन्मन्यै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
८. ऐं आं क्रों स्हौः सौः अघोरायै हूं छ्रीं क्ष्रौं खफ्रें फ्रें फट् नमः स्वाहा ।)

त्रिपुरारि के मुख से कहे गये यह देवी पूजा के तीन प्रकार हैं ॥ १०३२-१०३६-॥

[अत्र कापालिकमतम्]

कपालडामरप्रोक्तं कापालिकमतं शृणु ॥ १०३७ ॥
वेदादिकामिनीपाशा इच्छा निर्वेद एव च ।
एते पञ्चापि वर्णाः स्युः सर्वमन्त्रादिवर्तिनः ॥ १०३८ ॥
कलावती कालकर्णी कापालिन्यप्यथोच्यते ।
कालरौद्री कौलकिनी ततोऽपि च करालिनी ॥ १०३९ ॥
कोकामुखी तथा कामेश्वरी चेत्यष्ट कीर्तिताः ।
आद्यवर्गाद्यवर्णाङ्काश्चतुर्वर्णात्मिकास्तथा ॥ १०४० ॥
मध्ये योज्याः सन्धियुक्ता एता अम्बापदैः सह ।
श्रीपादुकां पूजयामि तत इत्यक्षराष्टकम् ॥ १०४१ ॥
कूर्चः संविच्च हृदयं सर्वेषां चरमे स्थिरम् ।

कापालिक मत—हे देवि! अब कपाल डामर में कथित कापालिक मत को सुनो—वेदादि कामिनी पाश इच्छा निर्वेद ये पाँच बीज वर्ण सब मन्त्रों के आदि में रहने वाले हैं । इसके वाद कलावती कालकर्णी कापालिनी कही जाती है । काल रौद्री कौलकिनी इसके बाद करालिनी कोकामुखी तथा कामेश्वरी ये आठ कही गयी होती

हैं। प्रथम वर्ग के प्रथम वर्ण से अङ्कित तथा चार वर्णों वाली इन देवियों को 'अम्बा' पद के साथ सन्धियुक्त जोड़ना चाहिये । इसके बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि' ये आठ अक्षर रहते हैं । सबके अन्त में कूर्च संवित् और हृदय रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कलावत्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
२. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कालकर्ण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
३. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कापालिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
४. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कालरौद्र्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
५. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कौलकिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
६. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं करालिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
७. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कोकामुख्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।
८. ओं स्त्रीं आं फां फीं कं कामेश्वर्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि हूं फें नमः ।) ॥ १०३७-१०४१- ॥

[अथ दिगम्बरमतम्]

दिगम्बराणां समयमथाकलय भामिनि ॥ १०४२ ॥
पुरतो नव बीजानि सर्वेषां स्थैर्यभाञ्जि हि ।
ततो नामानि भिन्नानि दीगीशानां च दिक्तथा(?) ॥ १०४३॥
तैः शब्दैर्दलशब्दस्य विग्रहो ङिविभक्तिकः ।
ततो नामानि भिन्नानि सुबन्तानि सुरेश्वरि ॥ १०४४ ॥
ततश्च कालिकेत्येवं शब्दः सर्वत्र वै स्थिरः ।
प्रसीदतां तारबीजं सन्ध्यूनं चाप्यतः परम् ॥ १०४५ ॥
तच्छब्दश्च ततो ङेऽन्ता(न्तः) सोऽपि स्थिरतयोदितः।
पूर्वोदितानि नामानि कालिकापदमेव च ॥ १०४६ ॥
ङेऽन्ते विधाय सम्भाष्ये शेषे नम इति स्थिरम् ।
इति सामान्य उदित उद्धारः परमेश्वरि ॥ १०४७ ॥
अधुनोद्धारमेतस्य विशेषादवधारय ।
वेदादिः सानुहारौ च कर्णिका सुरसोऽपि च ॥ १०४८ ॥
दुष्कृतं च तथा तन्त्रा चर्पटं शाम्भवं तथा ।
दिगीशसंज्ञितदिशामतो नामानि ते शृणु ॥ १०४९ ॥
ऐन्द्रमाग्नेययाम्यं च नैर्ऋत्यं वारुणं तथा ।
वायव्यं चापि कौबेरं शेष ऐशानमेव च ॥ १०५० ॥
चतुर्वर्णात्मकं नाम देवीनां कलयाधुना ।
ज्योतिर्मयी महाशक्तिः प्रभावत्यथ कथ्यते ॥ १०५१ ॥
सन्तापिनी ततो ज्ञेया प्रमादिन्यप्यतः परम् ।

सन्त्रासिनी चापि बलाकिन्यतः शातकर्ण्यपि ॥ १०५२ ॥
इत्येष उदितो देवि दिगम्बरमतक्रमः ।
परेषामथ च स्वस्य मिलित्वा जगदीश्वरि ॥ १०५३ ॥
पञ्च प्रकाराः कथिता अष्टपत्राम्बुजार्चने ।

दिगम्बर मत—हे भामिनि! अब दिगम्वर मत को समझो । समस्त मन्त्रों के पहले नवबीज स्थायी होते हैं । इसके बाद दिगीश्वरों के भिन्न-भिन्न नाम तथा 'दिक्' शव्द रहता है । उन शब्दों के साथ 'दल' शब्द का ङिविभक्तिक समास रहता है । हे सुरेश्वरि! इसके पश्चात् भिन्न-भिन्न सुवन्त नाम रहते हैं । इसके अनन्तर 'कालिका' शव्द सर्वत्र स्थिर रहता है । 'प्रसीदतां' फिर सन्धिरहित तार बीज उसके अनन्तर ङेऽन्त वह शब्द रहता है । वह भी स्थायी कहा गया है । पूर्वोक्त नामों और 'कालिका' पद दोनों को ङेऽन्त बनाकर कहने चाहिये । अन्त में नमः पद स्थिर रहता है । हे परमेश्वरि! यह सामान्य उद्धार कहा गया । अव इसके विशेष उद्धार को समझो । पहले वेदादि सानु हार कर्णिका सुरस दुष्कृत तन्त्रा चर्पट तथा शाम्भव बीज रहते हैं । इसके वाद दिगीश संज्ञा वाले दिशाओं के नामों को मुझसे सुनो । ऐन्द्र आग्नेय याम्य नैर्ऋत्य वारुण वायव्य कौबेर और अन्त में ऐशान । अब देवी के चार अक्षरों वाले नामों को सुनो—ज्योतिर्मयी महाशक्ति प्रभावती पुनः सन्तापिनी जाननी चाहिये । इसके बाद प्रमादिनी सन्त्रासिनी वलाकिनी शातकर्णी ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं ऐन्द्रदिग्दले ज्योतिर्मयीकालिका प्रसीदतां ओं ज्योतिर्मय्यै कालिकायै नमः ।
२. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं आग्नेयादिग्दले महाशक्तिकालिका प्रसीदतां ओं महाशक्त्यै कालिकायै नमः ।
३. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं याम्यादिग्दले प्रभावतीकालिका प्रसीदतां ओं प्रभावत्यै कालिकायै नमः ।
४. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं नैर्ऋत्यदिग्दले सन्तापिनीकालिका प्रसीदतां ओं सन्तापिन्यै कालिकायै नमः ।
५. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं वारुणदिग्दले प्रमादिनीकालिका प्रसीदतां ओं प्रमादिन्यै कालिकायै नमः ।
६. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं वायव्यदिग्दले सन्त्रासिनीकालिका प्रसीदतां ओं सन्त्रासिन्यै कालिकायै नमः ।
७. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं कौबेरदिग्दले बलाकिनीकालिका प्रसीदतां ओं बलाकिन्यै कालिकायै नमः ।
८. ओं रह्लीं ह्लक्षम्लैं छ्रक्षह्लीं रक्ष्रीं रह्लछ्रक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं क्षरस्त्राङ्गुफ्रीं ऐशानदिग्दले शातकर्णीकालिका प्रसीदतां ओं शातकर्ण्यै कालिकायै नमः ।)

हे देवि! इस प्रकार दिगम्बर मत का क्रम कहा गया । हे जगदीश्वरि! अष्टदलकमल की पूजा में अपना और दूसरों का मत मिलाकर पाँच प्रकार कहे गये ॥ १०४२-१०५३- ॥

[पद्मोपरितनेऽवस्थितानां देवादीनां पूजायाः सप्रकारमभिधानम्]

एवं निर्वर्त्य पद्मार्चामथोपरितनार्चनम् ॥ १०५४ ॥
कुर्वीन भक्तिभावेन साधकोऽनलसः प्रिये ।
तस्या प्रकाराः वर्तन्ते भूयांसः कुटिला अपि ॥ १०५५ ॥
तांस्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन सावधाना निशामय ।
अष्टपत्राम्बुजस्योर्द्ध्वं रेखा अष्टौ सुरेश्वरि ॥ १०५६ ॥
वर्तन्ते तेन पीठस्य शोणितोदक्रमस्य हि ।
ता रेखा पंक्तिशब्देन कथ्यन्ते यामलादिषु ॥ १०५७ ॥
यस्यां यस्यां हि रेखायां यावत्यः सन्ति देवताः ।
तास्तावत्यः प्रवक्ष्यामि पूजादीनां क्रमेण च ॥ १०५८ ॥
ता रेखा भित्तिरूपास्तु न दिग्रूपा वरानने ।
यस्यां दिशि च या भित्तिः सा हि तद्दिक्तयोच्यते ॥ १०५९ ॥
मन्त्रो ध्यानं च कासाच्चित् पूजा साधारणी तथा ।
कासाञ्चित् केवला पूजा सापि साधारणी स्मृता ॥ १०६० ॥
पुंरूपाः देवताः काश्चित् स्त्रीरूपा अपरा मताः ।
रेखादिषु च पूर्वादिव्यवस्था परिकीर्त्यते ॥ १०६१ ॥
यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ।
प्राच्यादयो दिशो ज्ञेयाः पूजायागादिकर्मणि ॥ १०६२ ॥
अनयैव दिशा कार्या दिग्विदिक्परिकल्पना ।
रेखां रेखां प्रति ज्ञेया द्वात्रिंशत्संख्यदेवताः ॥ १०६३ ॥

कमल के ऊपर स्थित देवों की पूजा के प्रकार—हे प्रिये! इस प्रकार कमल की पूजा करने के बाद साधक आलस्यरहित होकर भक्तिभाव के साथ (कमल) के ऊपर स्थित देवों की पूजा करे । उसके बहुत से प्रकार कुटिल (= कठिन) भी हैं । मैं उनको तत्त्वतः बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो । हे सुरेश्वरि! अष्टदलकमल के ऊपर आठ रेखायें रहती हैं । इससे शोणितोदक्रम वाले उस पीठ की वे रेखायें यामल आदि ग्रन्थों में 'पंक्ति' शब्द से कही जाती हैं । जिस-जिस रेखा में जितनी देवतायें हैं उतनी उन देवताओं को मैं पूजा आदि के क्रम से बतलाऊँगा । हे वरानने! वे रेखायें भित्तिरूपा हैं, दिग्रूपा नहीं । जिस दिशा में जो भित्ति रहती है वह (भित्ति) उस दिशा के रूप में जानी जाती है । कुछ देवताओं के मन्त्र और ध्यान हैं तथा केवल साधारण पूजा होती है । कुछ की केवल पूजा ही होती है वह भी साधारण । कुछ देवतायें पुरुषरूपिणी होती हैं । दूसरी देवतायें स्त्रीरूपा मानी गयी हैं । (अब) रेखा

आदि में पूर्व आदि की व्यवस्था बतलायी जाती है । पूजा याग आदि कर्मों में देवताओं को यजमान के सम्मुख जाननी चाहिये । प्राची आदि दश दिशाओं को देवता के सामने जाननी चाहिये । इसी रीति से दिशा और विदिशा की कल्पना करनी चाहिये । एक-एक रेखा में बत्तीस-बत्तीस देवताओं को समझना चाहिये ॥ १०५४-१०६३ ॥

[प्रथमपंक्तिस्थदेवतार्चाविधिः]

नानाकल्पेषु याः सिद्धाः सिद्धा देवीप्रसादतः ।
ता आद्यायां तु रेखायां पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १०६४ ॥
नासां मन्त्रो न च ध्यानंकेवलं स्वस्वनामभिः ।
अभ्यर्चनीयाः कुसुमैर्दलैरप्यथवाक्षतैः ॥ १०६५ ॥
तासामिदानीं नामानि स्थानान्यभिदधे तथा ।
वेदादिर्भौवनेशी च रुड्योगिन्यथ शाकिनी ॥ १०६६ ॥
पञ्चैतान्यपि बीजानि पुरः शेषे नमोऽपि च ।
मध्येऽदन्तपदान्तस्थवत्प्रत्ययपुरःसरैः ॥ १०६७ ॥
चतुर्थ्यैकवचोभिस्तु पूजामन्त्रविनिर्णयः ।
पितामहस्तथा नारायणो रुद्रस्तथैव च ॥ १०६८ ॥
हेरम्बश्च विशाखश्च मार्तण्डेन्द्रधनास्तथा ।
राक्षसश्च पिशाचश्च जम्भो मदन एव च ॥ १०६९ ॥
मन्दारकामशकुनविलासास्तदनन्तरम् ।
आनैर्ऋत्यविदिग्भागादावायव्यान्तमर्चयेत् ॥ १०७० ॥
आरभ्यैशानविदिश आ आग्नेयान्तमर्चयेत् ।
धर्मो यमश्च मन्त्रश्च कल्पः पाण्डर एव च ॥ १०७१ ॥
चैतन्यं च हिरण्यं च तथा मातङ्ग एव च ।
आरभ्याग्नेयविदिश आनैर्ऋत्यान्तमर्चयेत् ॥ १०७२ ॥
सम्भ्रमः प्रलयः सत्त्वं रागो ललितमेव च ।
प्रपञ्चश्च विवेकश्च निर्वाणं तदनन्तरम् ॥ १०७३ ॥
आवायव्यविदिग्भागाद ऐशानान्तमर्चयेत् ।
प्रथमाया इयं पंक्तेरुक्ता पूजा यथाविधि ॥ १०७४ ॥

प्रथम पंक्ति में स्थित देवता की पूजा—जो अनेक कल्पों में स्थित सिद्ध है तथा वे जो देवी की कृपा से सिद्ध हुई हैं उनकी प्रथम पंक्ति में पूजा की जानी चाहिये । इनके लिये न तो कोई मन्त्र है और न ध्यान । केवल पुष्पों पत्रों अथवा अक्षतों से इनकी पूजा की जानी चाहिये । अब मैं (मन्त्रोद्धार के सन्दर्भ में) उनके नामों और स्थानों को कह रहा हूँ । वेदादि भौवनेशी क्रोध योगिनी शाकिनी इन पाँच बीजों को पहले और अन्त में 'नमः' (कहना चाहिये) । मध्य में अदन्त पद के अन्त में वत्

प्रत्यय रहना चाहिये । चतुर्थी के एकवचन से पूजा मन्त्र का निर्णय होता है । (अब बत्तीस देवताओं के नामों को बतला रहे हैं—) पितामह नारायण रुद्र हेरम्ब विशाखा मार्तण्ड इन्द्र और धन (ये आठ एक रेखा में रहने वाली देवतायें हैं) इनकी नैर्ऋत्य कोण से प्रारम्भ कर वायव्य कोण तक क्रम से पूजा करनी चाहिये । उसके बाद राक्षस पिशाच जम्भ मदन मन्दार काम शकुन और विलास (ये आठ दूसरी रेखा की देवतायें हैं) इनकी ईशान कोण से लेकर अग्निकोण तक क्रम से अर्चना करनी चाहिये । धर्म यम मन्त्र कल्प पाण्डर चैतन्य हिरण्य तथा मातङ्ग (ये आठ तीसरी रेखा के देव हैं) । इनका अग्निकोण से लेकर नैर्ऋत्य कोण तक पूजन करना चाहिये। सम्भ्रम प्रलय सत्त्व राग ललित प्रपञ्च विवेक और निर्वाण (चतुर्थ रेखा के देव हैं) इनकी वायव्य कोण से लेकर ऐशान कोण तक पूजा करनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें पितामहवत्यै नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें नारायणवत्यै नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें रुद्रवत्यै नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें हेरम्बवत्यै नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें विशाखवत्यै नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मार्त्तण्डवत्यै नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें इन्द्रवत्यै नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें धनवत्यै नमः ।)

इन आठ की क्रमशः नैर्ऋत्य दक्षिण पूर्व उत्तर पश्चिम अग्नि ईशान और वायव्य दिग्विदिक् में पूजा करनी चाहिये ।

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें राक्षसवत्यै नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें पिशाचवत्यै नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें जम्भवत्यै नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मदनवत्यै नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मन्दारवत्यै नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें कामवत्यै नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें शकुनवत्यै नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें विलासवत्यै नमः ।

इन आठ की क्रमशः ईशान उत्तर पश्चिम दक्षिण पूर्व वायव्य नैर्ऋत्य आग्नेय दिग्विदिक् में पूजन करना चाहिये ।

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें धर्मवत्यै नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें यमवत्यै नमः ।

३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मन्त्रवत्यै नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें कल्पवत्यै नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें पाण्डरवत्यै नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें चैतन्यवत्यै नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें हिरण्यवत्यै नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मातङ्गवत्यै नमः ।

इन आठ की क्रमशः अग्नि कोण पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ईशान वायव्य नैर्ऋत्य दिग्विदिक् में पूजा करनी चाहिये ।

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सम्भ्रमवत्यै नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें प्रलयवत्यै नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सत्त्ववत्यै नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें रागवत्यै नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें ललितवत्यै नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें प्रपञ्चवत्यै नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें विवेकवत्यै नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें निर्वाणवत्यै नमः ।

इन आठ की क्रमशः वायव्य पश्चिम दक्षिण पूर्व उत्तर नैर्ऋत्य आग्नेय और ईशान दिग्विदिक् में पूजा करनी चाहिये ।

यह प्रथम पंक्ति की पूजा विधि के अनुसार बतलायी गयी ॥ १०६४-१०७४ ॥

[द्वितीयपंक्तिस्थभैरवपूजाविधिः]

भैरवाणां तु पूजार्थं द्वितीया पंक्तिरुच्यते ।
अत्रापि हि परिज्ञेयः स एव हि विदिक्क्रमः ॥ १०७५ ॥
ध्यानमन्त्रावुभावेषां वर्तते तौ वदामि ते ।

द्वितीय पंक्ति में स्थित भैरव की पूजा—दूसरी पंक्ति भैरवों की पूजा के लिये कही जाती है । यहाँ भी पूर्वोक्त ही विदिशा का क्रम रहेगा । इनके ध्यान और मन्त्र भी हैं । उन दोनों को मैं तुमको बतला रहा हूँ ॥ १०७५-१०७५- ॥

[भैरवपूजामन्त्रः]

तारं मैधं च माया च लक्ष्मीरङ्कुशमेव च ॥ १०७६ ॥
रोषस्ततोऽनु प्रासादो महारोषो नृकेसरी ।
नवार्णोऽयं भैरवाणां सामान्यो मनुरुच्यते ॥ १०७७ ॥

भैरवपूजा का मन्त्र—भैरवपूजा का मन्त्रोद्धार इस प्रकार समझना चाहिये—तार मेध माया लक्ष्मी अङ्कुश क्रोध उसके बाद प्रासाद महाक्रोध नरसिंह यह नव वर्णोंवाला भैरवों का सामान्य मन्त्र कहा जाता है ।

(मन्त्रांश—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षूं क्ष्रौं) ॥ १०७६-१०७७ ॥

[भैरवध्यानम्]

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वेषामेकरूपि यत् ।
ज्वलद्धुतवहज्वालश्मशानस्थलचारिणः ॥ १०७८ ॥
पादालम्बिजटाभारा मसीपुञ्जसमप्रभाः ।
ज्वलच्चिताकुण्डनिभलोचनत्रयभूषिताः ॥ १०७९ ॥
लम्बोदराः पिङ्गजटाः स्थूलाः खर्वकलेवराः ।
नृमुण्डमालाघटितहारग्रैवेयकोज्वलाः ॥ १०८० ॥
मज्जासृङ्मांसमेदोऽस्थिवसासम्पूरिताननाः ।
घोरदंष्ट्राललज्जिह्वाकरालमुखमण्डलाः ॥ १०८१ ॥
शवोपरि कृतावासा अट्टहासा भयानकाः ।
द्विशीर्षाश्च त्रिशीर्षाश्च तथा विंशतिमौलयः ॥ १०८२ ॥
शतशीर्षास्त्रिपादाश्च बहुपादा अपादकाः ।
त्रिशूलचक्रपरिघगदामुसलतोमरान् ॥ १०८३ ॥
भुशुण्डीचापविशिखपाशपट्टिशमुद्गरान् ।
परश्वङ्कुशखट्वाङ्गभिन्दिपालष्टर्ययोगुडान् ॥ १०८४ ॥
कुन्तप्रासहुलायष्टिशक्तिच्छुरिककर्तृकाः ।
मुष्टीलीचर्मकुणपनागपाशाक्षछुच्छुकाः ॥ १०८५ ॥
घण्टाखर्परपाषाणांस्तथा तर्ज्जनमेव च ।
धारयन्तं करैः सर्वैः व्याघ्रचर्मावगुण्ठिताः ॥ १०८६ ॥
नृत्यन्तो विस्तृतकरा वेगकम्पिजटाभराः ।
द्वात्रिंशत्संख्यका एतादृशो भैरवरूपिणः ॥ १०८७ ॥
ध्यातव्या भैरवाः सर्वे द्वितीयपंक्तिमण्डले ।

भैरव का ध्यान—अब मैं भैरव का ध्यान बतलाऊँगा जो कि सब भैरवों के सन्दर्भ में समान है। ये भैरव जलती हुई अग्नि की ज्वाला वाली श्मशान भूमि में सञ्चरण करते हैं। इनकी जटायें पैरों तक लटकती हैं। इनकी कान्ति काली स्याही के समूह जैसी है। लम्बा पेट पीली जटाओं वाले ये स्थूल अर्थात् मोटे तथा नाटे शरीर वाले हैं नरमुण्ड की माला से बने हार को गले में पहनने से ये समुज्ज्वल हैं। इनके मुख मज्जा रक्त मांस मेदा अस्थि वसा अर्थात् चर्बी से भरे हुये हैं। घोर दाँतों लपलपाती जीभों से इनके मुख भयानक दिख रहे हैं। शवों के ऊपर बैठे हुए ये भयानक अट्टहास कर रहे हैं। दो तीन बीस सौ शिरों वाले इनमें से कोई तीन पैर वाले, कोई अनेक पैर वाले और कोई पादहीन भी हैं। समस्त हाथों में त्रिशूल चक्र परिघ गदा मुसल तोमर भुशुण्डी धनुष बाण पाश पट्टिश मुद्गर परशु अङ्कुश

खट्वाङ्ग भिन्दिपाल ऋष्टि अयोगुड कुन्त प्रास हुला यष्टि शक्ति छुरी कैंची मुष्टीली चर्म कुणप नाग पाश अक्ष छुच्छुक घण्टा खप्पर पत्थर तर्जन लिये हुए हैं । ये सब बाघ का चर्म पहने हुए हैं । हाथ फैलाकर नाच रहे हैं । वेग के कारण इनकी जटायें हिल रही हैं । द्वितीय पंक्ति मण्डल में इस प्रकार के रूप वाले बत्तीस भैरवों का ध्यान करना चाहिये ॥ १०७८-१०८७- ॥

[पूज्यभैरवानामानि]

भैरवानामथो नाम क्रमतः कीर्तयामि ते ॥ १०८८ ॥
कालः श्मशानो हुङ्कारोऽसिताङ्गो रुरुरेव च ।
भूताधिपः कृतान्तश्च कालाग्निर्भगमाल्यपि ॥ १०८९ ॥
उग्रायुधो भूतनाथश्चण्डः क्रोधो यमान्तकः ।
प्रचण्डो विकरालश्च कालान्तकः इतः परम् ॥ १०९० ॥
उन्मत्तश्च कपाली च भद्रो मृत्युस्तथैव च ।
उल्कामुखः प्रेतमाली वज्रमुष्टिर्दिगम्बरः ॥ १०९१ ॥
सन्तापको घोरनादः शोषणस्त्रिपुरान्तकः ।
भीषणश्चापि संहारश्चण्डोग्रः सर्वशेषगः ॥ १०९२ ॥
एभिः पदैः भैरवस्य समासो ङेविभक्तिकः ।
आदौ नवाक्षरं मन्त्रं समुच्चार्य ततोऽप्यदः ॥ १०९३ ॥
नमो नियोजयेच्छेषे प्रकार इति कीर्तितः ।
रीतिः पूर्वोदितैवात्र काश्चिद्वक्ष्ये ततोऽपि च ॥ १०९४ ॥
समाप्तावथ चारम्भे कोणेषु युगलं स्मरेत् ।
ऐशान्यां दिशि चारम्भसमाप्ती परिकीर्तिते ॥ १०९५ ॥
इति भैरवपंक्तीस्ते समासादुपवर्णिता ।

पूज्य भैरवों के नाम—अब मैं क्रम से तुमको भैरवों के नाम बतला रहा हूँ—कालभैरव, श्मशानभैरव, हुङ्कारभैरव, असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, भूताधिपभैरव, कृतान्तभैरव, कालाग्निभैरव, भगमालीभैरव, उग्रायुधभैरव, भूतनाथभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, यमान्तकभैरव, प्रचण्डभैरव, विकरालभैरव, कालान्तकभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालीभैरव, भद्रभैरव, मृत्युभैरव, उल्कामुखभैरव, प्रेतमालीभैरव, वज्रमुष्टिभैरव, दिगम्बरभैरव, सन्तापकभैरव, घोरनादभैरव, शोषणभैरव, त्रिपुरान्तकभैरव, भीषणभैरव, संहारभैरव और सबके अन्त में चण्डोग्रभैरव । इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त 'भैरव' पद का समास होता है । पहले नव बीजाक्षरों का उच्चारण कर फिर ये नाम, उसके बाद अन्त में 'नमः' जोड़ना चाहिये । इस प्रकार भैरवपूजा का प्रकार बतलाया गया । रीति पहले ही बतला दी गयी है । तो भी कुछ (विशेष यहाँ) बतलाऊँगा । आरम्भ और समाप्ति में कोणों में दो बीजाक्षरों का स्मरण करना चाहिये । आरम्भ और समाप्ति दोनों ईशान दिशा में कही गयी है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं कालभैरवाय नमः ।
२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं श्मशानभैरवाय नमः ।
३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं हुङ्कारभैरवाय नमः ।
४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं असिताङ्गभैरवाय नमः ।
५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं रुरुभैरवाय नमः ।
६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं भूताधिपभैरवाय नमः ।
७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं कृतान्तभैरवाय नमः ।
८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं कालाग्निभैरवाय नमः ।
९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं भगमालीभैरवाय नमः ।
१०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं उग्रायुधभैरवाय नमः ।
११. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं भूतनाथभैरवाय नमः ।
१२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं चण्डभैरवाय नमः ।
१३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं क्रोधभैरवाय नमः ।
१४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं यमान्तकभैरवाय नमः ।
१५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं प्रचण्डभैरवाय नमः ।
१६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं विकरालभैरवाय नमः ।
१७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं कालान्तकभैरवाय नमः ।
१८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं उन्मत्तभैरवाय नमः ।
१९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं कपालीभैरवाय नमः ।
२०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं भद्रभैरवाय नमः ।
२१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं मृत्युभैरवाय नमः ।
२२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं उल्कामुखभैरवाय नमः ।
२३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं प्रेतमालीभैरवाय नमः ।
२४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं वज्रमुष्टिभैरवाय नमः ।
२५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं दिगम्बरभैरवाय नमः ।
२६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं सन्तापकभैरवाय नमः ।
२७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं घोरनादभैरवाय नमः ।
२८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं शोषणभैरवाय नमः ।
२९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं त्रिपुरान्तकभैरवाय नमः ।
३०. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं भीषणभैरवाय नमः ।
३१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं संहारभैरवाय नमः ।
३२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हूं हौं क्षू क्ष्रौं चण्डोग्रभैरवाय नमः ।)

इस प्रकार तुमको भैरवों की पंक्तियाँ संक्षेप में बतलायी गयी ॥१०८८-१०९५-॥

[तृतीयपंक्तिपूज्यानां भैरवीणां पूजाविधि:]

इदानीं भैरवीपंक्तिं कथयाम्यवधारय ॥ १०९६ ॥

तृतीय पंक्ति में पूज्य भैरवियों की पूजा—अब इसके वाद भैरवी पंक्ति को बतला रहा हूँ ॥ १०९६ ॥

[भैरवीपूजामन्त्र:]

तारो माया च रोषश्च योगिनी शाकिनी तथा ।
पञ्चेमानि पुर: स्मृत्वा व्याहरेच्चरमे नम: ॥ १०९७ ॥
अन्तरा भैरवीनामान्युद्धरामि क्रमेण हि ।
एतासां हि ध्यानमन्त्रौ कथितौ त्रिपुरारिणा ॥ १०९८ ॥

भैरवी पूजा का मन्त्र—भैरवीपूजा का मन्त्रोद्धार निम्नलिखित रूप से करना चाहिये—तार माया रोष योगिनी शाकिनी इन पाँच का पहले स्मरण कर फिर अन्त में 'नम:' कहना चाहिये । बीच में आने वाले भैरवी नामों को क्रम से कह रहा हूँ । इनके ध्यान और मन्त्र को त्रिपुरारि ने कहा है ॥ १०९७-१०९८ ॥

[पूज्यभैरवीनामानि]

लम्बोदरी शुष्कमुखी चर्चिका कालमर्दिनी ।
अग्निजिह्वा वज्रतुण्डी वातवेगा प्रभञ्जना ॥ १०९९ ॥
सम्पत्प्रदा मेघमाला फेरुरावा कटङ्कटा ।
ज्वालिनी पिङ्गला चैव चण्डोग्रा कुलकुट्टिनी ॥ ११०० ॥
उल्कानना दीर्घदंष्ट्रा विकराली कपालिनी ।
शवाशिनी दीर्घकेशा काकपर्णी भगाकुला ॥ ११०१ ॥
रतिप्रिया पूतना च लेलिहाना विरोधिनी ।
चाण्डालिनी केकराक्षी वह्निकुण्डा मदोत्कटा ॥ ११०२ ॥
एतास्तृतीयरेखायां पूजनीया विधानत: ।
नामान्येतानि च तथा भैरव्याश्च पदद्वयम् ॥ ११०३ ॥
ङेऽन्तं पृथक् पृथक् कृत्वा मध्य एव नियोजयेत् ।
चतुर्विंशतिनामानि चतुर्दिक्षु नियोजयेत् ॥ ११०४ ॥
कोणे द्वयं द्वयं चापि पूर्तावारम्भ एव च ।

पूज्य भैरवियों के नाम—लम्बोदरी, शुष्कमुखी, चर्चिका, कालमर्दिनी, अग्निजिह्वा, वज्रतुण्डी, वातवेगा, प्रभञ्जना, सम्पत्प्रदा, मेघमाला, फेरुरावा, कटङ्कटा, ज्वालिनी, पिङ्गला, चण्डोग्रा, कुलकुट्टिनी, उल्कानना, दीर्घदंष्ट्रा, विकराली, कपालिनी, शवाशिनी, दीर्घकेशा, काकपर्णी, भगाकुला, रतिप्रिया, पूतना, लेलिहाना, विरोधिनी, चाण्डालिनी, केकराक्षी, वह्निकुण्डा और मदोत्कटा[1], इनकी तीसरी रेखा में

---

[1] १. इनके नामों का जो अर्थ है, उनका स्वरूप भी प्राय: वैसा ही है ।

विधिवत् पूजा करनी चाहिये । इन नामों और 'भैरवी' दोनों पदों को पृथक्-पृथक् चतुर्थ्यन्त कर मध्य में जोड़ना चाहिये । इन चौबीस नामों को चारो दिशाओं में जोड़ना चाहिये । कोणों में दो तथा आरम्भ और अन्त में भी दो-दो बार उच्चारण करना चाहिये । (इस प्रकार २४ + (२+२) + (२+२) = ३२ नाम उच्चार्य हो जाते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें लम्बोदर्यै भैरव्यै नम: ।
२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें शुष्कमुख्यै भैरव्यै नम: ।
३. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें चर्चिकायै भैरव्यै नम: ।
४. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें कालमर्दिन्यै भैरव्यै नम: ।
५. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अग्निजिह्वायै भैरव्यै नम: ।
६. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें वज्रतुण्डायै भैरव्यै नम: ।
७. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें वातवेगायै भैरव्यै नम: ।
८. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें प्रभञ्जनायै भैरव्यै नम: ।
९. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें सम्पत्प्रदायै भैरव्यै नम: ।
१०. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें मेघमालायै भैरव्यै नम: ।
११. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें फेरुरावायै भैरव्यै नम: ।
१२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें कटङ्कटायै भैरव्यै नम: ।
१३. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें ज्वालिन्यै भैरव्यै नम: ।
१४. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें पिङ्गलायै भैरव्यै नम: ।
१५. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें चण्डोग्रायै भैरव्यै नम: ।
१६. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें कुलकुट्टिन्यै भैरव्यै नम: ।
१७. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें उल्काननायै भैरव्यै नम: ।
१८. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें दीर्घदंष्ट्रायै भैरव्यै नम: ।
१९. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें विकराल्यै भैरव्यै नम: ।
२०. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें कपालिन्यै भैरव्यै नम: ।
२१. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें शवाशिन्यै भैरव्यै नम: ।
२२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें दीर्घकेशायै भैरव्यै नम: ।
२३. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें काकपर्ण्यै भैरव्यै नम: ।
२४. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें भगाकुलायै भैरव्यै नम: ।
२५. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें रतिप्रियायै भैरव्यै नम: ।
२६. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें पूतनायै भैरव्यै नम: ।
२७. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें लेलिहानायै भैरव्यै नम: ।
२८. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें विरोधिन्यै भैरव्यै नम: ।

२९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें चाण्डालिन्यै भैरव्यै नमः ।
३०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें केकराक्ष्यै भैरव्यै नमः ।
३१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें वह्निकुण्डायै भैरव्यै नमः ।
३२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मदोत्कटायै भैरव्यै नमः ।) ॥ १०९९-११०४- ॥

[चतुर्थपंक्तिस्थडाकिनीपूजाविधि:]

चतुर्थीं डाकिनीपंक्तिं गदतो विनिबुध्यताम् ॥ ११०५ ॥
वाग्भवश्च रमा माया योगिनी शाकिनी तथा ।
बीजानि पञ्चेमान्यादौ शेषे हार्दाभिधो मनुः ॥ ११०६ ॥
मध्ये तत्तन्नाम चैव डाकिनीति पदं तथा ।
ङेऽन्तं विधाय संयोज्य शृणु नामान्यतः परम् ॥ ११०७ ॥
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च महोत्सवा ।
गुह्यनिद्रा वज्रिणी च ततो दोर्दण्डखण्डिनी ॥ ११०८ ॥
कौमुदी विमला चैव कौलिनी कालसुन्दरी ।
कुम्भोदरी डमरुका भीमदंष्ट्रा च शूलिनी ॥ ११०९ ॥
तारावती भानुमती मेनका भगमालिनी ।
एकानङ्गा वज्रनखी विद्युत्केशाञ्जनप्रभा ॥ १११० ॥
प्रस्वापनी जम्भका च ज्वालिनी लिङ्गमर्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सर्पजिह्वा रतोत्सवा ॥ ११११ ॥
कबन्धकन्धरा शेषे द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।
रीतिः पूर्ववदेव स्यात् स्थानं सानुक्रमं तथा ॥ १११२ ॥
मन्त्रा भिन्ना न चैतासां ध्यानमस्ति तदीरये ।

चतुर्थ पंक्ति में स्थित डाकिनियों की पूजा—उक्त पूजा का मन्त्रोद्धार निम्नलिखित है—वाग्भव रमा माया योगिनी शाकिनी—ये पाँच बीज पहले तथा अन्त में हृदय नामक मन्त्र रहता है । मध्य में डाकिनियों के भिन्न-भिन्न नाम तथा 'डाकिनी' पद रहता है । इनको ङेऽन्त बनाकर जोड़ना चाहिये । इसके बाद नामों को सुनो । महारात्रि, कालरात्रि, विरूपा, महोत्सवा, गुह्यनिद्रा, वज्रिणी, दोर्दण्डखण्डिनी, कौमुदी, विमला, कौलिनी, कालसुन्दरी, कुम्भोदरी, डमरुका, भीमदंष्ट्रा, शूलिनी, तारावती, भानुमती, मेनका, भगमालिनी, एकानङ्गा, वज्रनखी, विद्युत्केशा, अञ्जनप्रभा, प्रस्वापनी, जम्भका, ज्वालिनी, लिङ्गमर्दिनी, एकदन्ता, उल्कामुखी, सर्पजिह्वा, रतोत्सवा और अन्त में कबन्धकन्धरा[1] ये बत्तीस कही गयी हैं । रीति स्थान और क्रम पहले की भाँति है । इनके मन्त्र भिन्न नहीं हैं । किन्तु इनका ध्यान है । उसको कह रहा हूँ ।

---

[1] १. इनके नामों का जो अर्थ है, उनका स्वरूप भी प्रायः वैसा ही है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें महारात्र्यै डाकिन्यै नमः ।
२. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कालरात्र्यै डाकिन्यै नमः ।
३. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें विरूपायै डाकिन्यै नमः ।
४. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें महोत्सवायै डाकिन्यै नमः ।
५. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें गुह्यनिद्रायै डाकिन्यै नमः ।
६. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें वज्रिण्यै डाकिन्यै नमः ।
७. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें दोर्दण्डखण्डिन्यै डाकिन्यै नमः ।
८. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कौमुद्यै डाकिन्यै नमः ।
९. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें विमलायै डाकिन्यै नमः ।
१०. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कौलिन्यै डाकिन्यै नमः ।
११. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कालसुन्दर्यै डाकिन्यै नमः ।
१२. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कुम्भोदर्यै डाकिन्यै नमः ।
१३. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें डमरुकायै डाकिन्यै नमः ।
१४. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें भीमदंष्ट्रायै डाकिन्यै नमः ।
१५. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें शूलिन्यै डाकिन्यै नमः ।
१६. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें तारावत्यै डाकिन्यै नमः ।
१७. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें भानुमत्यै डाकिन्यै नमः ।
१८. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें मेनकायै डाकिन्यै नमः ।
१९. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें भगमालिन्यै डाकिन्यै नमः ।
२०. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें एकानङ्गायै डाकिन्यै नमः ।
२१. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें वज्रनख्यै डाकिन्यै नमः ।
२२. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें विद्युत्केशायै डाकिन्यै नमः ।
२३. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें अञ्जनप्रभायै डाकिन्यै नमः ।
२४. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें प्रस्वापन्यै डाकिन्यै नमः ।
२५. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें जम्भकायै डाकिन्यै नमः ।
२६. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें ज्वालिन्यै डाकिन्यै नमः ।
२७. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें लिङ्गमर्दिन्यै डाकिन्यै नमः ।
२८. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें एकदन्तायै डाकिन्यै नमः ।
२९. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें उल्कामुख्यै डाकिन्यै नमः ।
३०. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें सर्पजिह्वायै डाकिन्यै नमः ।
३१. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें रतोत्सवायै डाकिन्यै नमः ।
३२. ऐं श्रीं ह्लीं छ्रीं फ्रें कबन्धकन्धरायै डाकिन्यै नमः ।)॥११०५-१११२-॥

[डाकिनीनां ध्यानम्]

काश्चित् बन्धूकसदृशाः काश्चिन्नीलघनप्रभाः ॥ १११३ ॥
काश्चिन्मार्तण्डविम्बाभाः काश्चिदिन्दीवरप्रभाः ।
काश्चित् स्फटिकखण्डाभाः काश्चित् स्वर्णसमप्रभाः ॥ १११४ ॥
इन्द्रगोपनिभाः काश्चित् काश्चित् धूमाभविग्रहाः ।
काश्चिच् चम्पकपुष्पाभाः काश्चिदेवाञ्जनप्रभाः ॥ १११५ ॥
दीर्घकर्णचलद्घोरनृमुण्डाङ्कितकुण्डलाः ।
शुष्कस्तनकपोलो(रू)जङ्घाग्रीवामुखोदराः ॥ १११६ ॥
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणाः घोरदर्शनाः ।
ज्वलच्चिताग्निजिह्वाभजटामण्डलमण्डिताः ॥ १११७ ॥
अर्धचन्द्रसतुद्भासिललाटतटपट्टिकाः ।
विदीर्णमुखनिर्गच्छज्जिह्वादंष्ट्राविभीषणाः ॥ १११८ ॥
पादालम्बिजटाभारा दिगम्बर्यः श्मशानगाः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सज्जन्त्यः कामलालसाः ॥ १११९ ॥
दोर्भ्यामादाय कुणपान् गिलन्त्यः पितृकानने ।
त्रासयन्त्यस्तर्जयन्त्यो जगदेतच्चराचरम् ॥ ११२० ॥
दीर्घैर्भुजैर्धारयन्त्यः शस्त्रास्त्राणि च भूरिशः ।
बाणान् धनूंषि परिघान् कृपाणांस्तोमरान् गदाः ॥ ११२१ ॥
खट्वाङ्गानि त्रिशूलानि कुठारान् मुद्गरानपि ।
भिन्दिपालान् भुशुण्डीश्च शक्तिश्चक्राणि पट्टिशान् ॥ ११२२ ॥
शूलान् प्रासांश्च कुणपान् मुसलानङ्कुशान् गुडान् ।
चर्माणि घण्टाडमरून् भेरीझर्झरमर्द्दलान् ॥ ११२३ ॥
सवसासृक्पलास्थीनि खर्पराणि बहूनि च ।
नृत्यन्तश्चर्चरीशब्दैः प्रकम्पितजगत्त्रयाः ॥ ११२४ ॥
कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यज्वलच्चपलतारकाः ।
दीर्घातिशुष्ककठिनगर्ताभुग्नकलेवराः ॥ ११२५ ॥
देव्या पारिषदीभूता बद्धाञ्जलिपुटद्वयाः ।
किङ्कर्य आज्ञाकारिण्यः सर्वा देव्याः पुरःस्थिताः ॥ ११२६ ॥
एवंरूपाः प्रधा(ध्या)तव्याः डाकिन्यो घोरदर्शनाः ।
अर्चास्थानानि बोध्यानि रीत्या पूर्वोक्तयैव हि ॥ ११२७ ॥

डाकिनियों का ध्यान—कोई बन्धूक के समान, कोई काले बादल के सदृश, कोई सूर्यबिम्ब-जैसी, कोई इन्दीवर (= नीलकमल) की कान्तिवाली, कोई स्फटिक खण्ड और कोई स्वर्ण-जैसी प्रभावाली, कोई इन्द्रगोप (= बीरबहूटी नामक बरसाती कीड़ा)-सदृश, कोई धूम-जैसे शरीर वाली, कोई चम्पा के फूल-जैसी, कोई अञ्जन के

समान है । लम्बे-लम्बे कानों में हिलते-डुलते भयानक नरमुण्ड का कुण्डल धारण की हुई, उनके स्तन कपोल उरु जङ्घा ग्रीवा मुख और उदर शुष्क हैं । मनुष्यों की हड्डियों के आभूषण समस्त अङ्गों में पहनी हुई हैं । वे देखने में ही भयानक लगती हैं । जलती हुई चिता की अग्नि की लपटों के समान जटाओं से अलंकृत हैं । अर्धचन्द्र-जैसे उज्ज्वल ललाट तटपर पट्ट बाँधी हुई (अथवा उनके ललाट अर्धचन्द्ररूपी पट्ट से शोभित हैं), उनके खुले हुए मुख से निकली हुई जिह्वा और दाँत से वे भयङ्कर दिखती हैं । उनकी जटायें पैर तक लटकने वाली हैं । नग्न वे श्मशान में भ्रमण करती रहती हैं । कामेच्छा से आपूरित वे भूत प्रेत पिशाच आदि के द्वारा आलिङ्गित हैं । श्मशान में वे दोनों भुजाओं से शवों को लेकर खाती रहती हैं । इस चराचर जगत् को वे भयभीत करती एवं धमकाती रहती हैं । लम्बी-लम्बी भुजाओं में बहुत से शस्त्रास्त्र धारण की हुई हैं । वे अस्त्र हैं—बाण, धनुष, परिघ, कृपाण, तोमर, गदा, खट्वाङ्ग, त्रिशूल, कुठार, मुद्गर, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, शक्ति, चक्र, पट्टिश, शूल, प्राश, शव, मूसल, अंकुश, गुड, ढाल, घण्टा, डमरु, भेरी, झाँझ, मर्द्दल । इसके अतिरिक्त (वे सब हाथों में) बहुत से खर्पर (= कपाल) ली हुई हैं, जिनमें वसा, रक्त, मांस और अस्थियाँ भरी हुई हैं । वे चर-चर शब्द के साथ नाचती हुई तीनों लोकों को प्रकम्पित करती हैं । करोड़ों विद्युत् के समान दुर्निरीक्ष्य जलती हुई चञ्चल ताराओं वाली ये दीर्घ अत्यन्त शुष्क कठिन गड्ढा होने से कुछ झुकी शरीर वाली हैं । देवी के पार्षद रूप में स्थित ये हाथ जोड़े रहती हैं । आज्ञाकारिणी ये समस्त किङ्करियाँ देवी के सामने खड़ी रहती हैं । घोर दर्शन वाली इस प्रकार की डाकिनियों का ध्यान करना चाहिये । इनकी पूजा के स्थान पूर्वोक्त ही रीति के अनुसार जानना चाहिये ॥ १११३-११२७ ॥

[पञ्चम्यां पंक्तौ पूज्यानां शक्तीनां पूजाविधिः]

पञ्चम्यामथ रेखायां पूज्यन्ते शक्तयोऽखिलाः ।

पाँचवीं पंक्ति में पूज्य शक्तियों की पूजा—पाँचवीं रेखा में सम्पूर्ण शक्तियों की पूजा की जाती है ॥ ११२७- ॥

[शक्तिपूजामन्त्रः]

तारमायारमाक्रोधकालीकामाङ्कुशामृतैः ॥ ११२८ ॥
बीजैरष्टभिरादिस्थैश्चरमस्थैर्नमःपदैः ।
मध्ये तु शक्तयः सर्वाःतासां नामानि मे शृणु ॥ ११२९ ॥

शक्ति पूजा का मन्त्र—शक्तिपूजा का मन्त्रोद्धार अधोलिखित है—तार माया रमा क्रोध काली काम अङ्कुश अमृत इन आठ बीजों को आदि में तथा 'नमः' को अन्त में रखकर (पूजा करे) । मध्य में सारी शक्तियाँ रहती हैं । उनके नामों को मुझसे सुनो ॥ ११२८-११२९ ॥

[शक्तिनामानि]

सूक्ष्मा जया तथा माया सुप्रभा विजया प्रभा।
विशुद्धिर्नन्दिनी कान्तिः विभूतिः कीर्तिरुन्नतिः॥ ११३० ॥
अपराजिता जिता ऋद्धिः स्मृतिर्लक्ष्मीर्धृतिः मतिः।
श्रद्धा मेधा क्रिया दीप्ता प्रीतिरिच्छा च चेतना॥ ११३१ ॥
सत्या शान्तिस्तथा रौद्री ज्येष्ठा भद्रा च विद्युता।
एताः शक्तय आख्याता देव्याः सख्य इव स्थिताः॥ ११३२ ॥

शक्तियों के नाम—सूक्ष्मा, जया, माया, सुप्रभा, विजया, प्रभा, विशुद्धि, नन्दिनी, कान्ति, विभूति, कीर्त्ति, उन्नति, अपराजिता, जिता, ऋद्धि, स्मृति, लक्ष्मी, धृति, मति, श्रद्धा, मेधा, क्रिया, दीप्ता, प्रीति, इच्छा, चेतना, सत्या, शान्ति, रौद्री, ज्येष्ठा, भद्रा एवं विद्युता—ये बत्तीस शक्तियाँ कही गयी हैं, जो देवी की सखी के रूप में स्थित रहती हैं।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सूक्ष्मायै शक्त्यै नमः।
२. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं जयायै शक्त्यै नमः।
३. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं मायायै शक्त्यै नमः।
४. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सुप्रभायै शक्त्यै नमः।
५. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं विजयायै शक्त्यै नमः।
६. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं प्रभायै शक्त्यै नमः।
७. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं विशुद्ध्यै शक्त्यै नमः।
८. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं नन्दिन्यै शक्त्यै नमः।
९. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं कान्त्यै शक्त्यै नमः।
१०. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं विभूत्यै शक्त्यै नमः।
११. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं कीर्त्त्यै शक्त्यै नमः।
१२. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं उन्नत्यै शक्त्यै नमः।
१३. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं अपराजितायै शक्त्यै नमः।
१४. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं जितायै शक्त्यै नमः।
१५. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं ऋद्ध्यै शक्त्यै नमः।
१६. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं स्मृत्यै शक्त्यै नमः।
१७. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं लक्ष्म्यै शक्त्यै नमः।
१८. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं धृत्यै शक्त्यै नमः।
१९. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं मत्यै शक्त्यै नमः।
२०. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं श्रद्धायै शक्त्यै नमः।
२१. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं मेधायै शक्त्यै नमः।

२२. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं क्रियायै शक्त्यै नमः ।
२३. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं दीप्तायै शक्त्यै नमः ।
२४. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं प्रीत्यै शक्त्यै नमः ।
२५. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं इच्छायै शक्त्यै नमः ।
२६. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं चेतनायै शक्त्यै नमः ।
२७. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सत्यायै शक्त्यै नमः ।
२८. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं शान्त्यै शक्त्यै नमः ।
२९. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं रौद्र्यै शक्त्यै नमः ।
३०. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं ज्येष्ठायै शक्त्यै नमः ।
३१. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं भद्रायै शक्त्यै नमः ।
३२. ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं विद्युतायै शक्त्यै नमः ।)॥११३०-११३२॥

[शक्तिध्यानम्]

ध्यानं यथोदितं वक्ष्ये शक्तीनां शृणु सादरा।
निरङ्कपूर्णिमापूर्णचन्द्रविम्बसमानना: ॥ ११३३ ॥
विशालफुल्लराजीवदलशोणायतेक्षणाः ।
विलसद्रत्नताटङ्कश्रवणाभरणोज्ज्वलाः ॥ ११३४ ॥
मन्दारमालासन्नद्धधम्मिल्लभरगर्विताः ।
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ॥ ११३५ ॥
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताः ।
रत्नमञ्जीरकेयूरकङ्कणाङ्गदशोभिताः ॥ ११३६ ॥
किङ्किणीहारमुकुटमुद्रिकावलयान्विताः ।
त्रैलोक्यसारसौन्दर्ययौवनोन्मादगर्विताः ॥ ११३७ ॥
सिंहासनसमारूढा विचित्रविविधाम्बराः ।
स्वच्छशीतांशुशकलविराजितललाटिकाः ॥ ११३८ ॥
सुशुक्लमाल्यवसनाः स्वस्वचेटीगणैर्वृताः ।
गौराङ्गदेहसंशोभिचन्दनागुरुचित्रकाः ॥ ११३९ ॥
सुस्मितोद्भासिवदनचञ्चद्दशनपंक्तयः ।
भुजाभ्यां धारयन्त्यश्च वराभयमनुत्तमम् ॥ ११४० ॥
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाः ।
एवंरूपाः प्रयत्नेन ध्यातव्या शक्तयोऽखिलाः ॥ ११४१ ॥
उक्त्वा ङेन्तद्वयं शक्तेर्नाम शक्तिं तथैव च ।
उभयोर्मन्त्रयोर्मध्ये प्रवेश्य स्थिररूपयोः ॥ ११४२ ॥
स्थानस्य परिपाटी तु पूर्ववत्परिकीर्तिता ।

शक्तियों का ध्यान—(हे देवि! अब) मैं यथोक्त (= त्रिपुरारि के द्वारा जैसा कहा

गया वैसा) ध्यान बतलाऊँगा। आदर के साथ सुनो। पूर्णिमा के निष्कलङ्क पूर्णचन्द्र विम्ब के समान मुखोंवाली, विशाल खिले हुए नीलकमल के पङ्खुड़ी के समान लाल विशाल आखोंवाली, शोभायमान रत्न से युक्त ताटङ्क नामक कर्णाभूषण से देदीप्यमान, कल्पवृक्ष के फूलों की माला से बँधी चोटी के भार से गर्वित, विशाल जाँघों वाली, अत्यन्त क्षीण कटिस्थल वाली, कठोर बड़े उँचे दो स्तनों से युक्त, रत्नजटित मञ्जीर केयूरकङ्कण से दशों अङ्गों में सुशोभित, किङ्किणी हार मुकुट मुद्रिका वलय से अन्वित, त्रैलोक्य को निचोड़ कर लिये गये सौन्दर्य और यौवन के उन्माद से गर्वित, सिंहासन पर आरूढ़, विचित्र एवं नाना प्रकार के वस्त्रों को धारण की हुई, स्वच्छ चन्द्रमा के खण्ड से शोभायमान ललाटवाली, शुभ्रमाला एवं शुभ्र वसन धारण की हुई, अपनी-अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, गोरे अङ्गोंवाली, देह पर शोभायमान चन्दन अगर के चित्रोंवाली, मन्द मुस्कान से दीपित मुख में चमकने वाली दन्तपंक्ति से युक्त, दो भुजाओं से उत्तम वरद एवं अभय मुद्रायें धारण की हुई, आनन्द से पूर्ण चञ्चल एवं लीला के कारण आन्दोलित नेत्रोंवाली सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयत्नपूर्वक ध्यान करना चाहिये। शक्ति का नाम और शक्ति दोनों को ङेऽन्त कहकर स्थिर दोनों मन्त्रों के बीच उन ङेन्तों को प्रविष्ट कराकर (ध्यान करना चाहिये) स्थान की परिपाटी पूर्ववत् कही गयी है ॥ ११३२-११४२ ॥

[षष्ठ्यां पंक्तौ योगिनीपूजाया: विधि:]

पंक्त्यां षष्ठ्यां तु तदनु योगिनीः परिपूजयेत् ॥ ११४३ ॥
तारह्रीयोगिनीरावडाकिन्यः प्रथमं स्मृताः।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मध्यस्थान्यधुना शृणु ॥ ११४४ ॥

छठीं पंक्ति में योगिनी पूजा की विधि—उसके बाद छठीं पंक्ति में योगिनियों की पूजा करनी चाहिये। पूजा मन्त्र का उद्धार निम्नलिखित है—तार ह्रीं योगिनी राव डाकिनी का पहले उच्चारण करना चाहिये। कूर्च अस्त्र हृदय और शिर को अन्त में कहना चाहिये। अब मध्यस्थ (नामों) को सुनो ॥ ११४३-११४४ ॥

[योगिनीनामानि]

गौरी शिवा कौशिकी च शाकम्भर्यपि शाङ्करी।
शान्ताऽम्बिका क्षमा धात्री जयन्ती सर्वमङ्गला॥ ११४५ ॥
अपर्णा च स्वधा स्वाहा तारो(रा)ऽमा विजया जया।
नन्दा हैमवती कल्पा तामसी लिङ्गधारिणी॥ ११४६ ॥
मानसी कुमुदा भद्रा काकाङ्गी पिङ्गलापि च।
लोहिता कौलिकी वामा सर्वशेषे पतङ्गिनी॥ ११४७ ॥
नामान्येतानि सर्वाणि योगिनीपदमेव च।
पृथक् पृथक् विधायात्र ङेऽन्तत्वेनान्तरा क्षिपेत्॥ ११४८ ॥
अनुक्रमणिका चान्या पूर्वोदितसमा स्मृता।

योगिनियों के नाम—गौरी, शिवा, कौशिकी, शाकम्भरी, शाङ्करी, शान्ता, अम्बिका, क्षमा, धात्री, जयन्ती, सर्वमङ्गला, अपर्णा, स्वधा, स्वाहा, तारा, अमा, विजया, जया, नन्दा, हैमवती, कल्पा, तामसी, लिङ्गधारिणी, मानसी, कुमुदा, भद्रा, काकाङ्गी, पिङ्गला, लोहिता, कौलिकी, वाम और सबसे अन्त में पतङ्गिनी—इन नामों को तथा 'योगिनी' पद को पृथक्-पृथक् ङेऽन्त बनाकर बीच में डालना चाहिये। क्रम पूर्वोक्त के समान माना गया है।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें गौर्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें शिवायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
३. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें कौशिक्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
४. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें शाकम्भर्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
५. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें शाङ्कर्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
६. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें शान्तायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
७. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें अम्बिकायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
८. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें क्षमायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
९. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें धात्र्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१०. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें जयन्त्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
११. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें सर्वमङ्गलायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१२. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें अपर्णायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१३. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें स्वधायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१४. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें स्वाहायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१५. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें तारायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१६. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें अमायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१७. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें विजयायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१८. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें जयायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
१९. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें नन्दायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२०. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें हैमवत्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२१. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें कल्पायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२२. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें तामस्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२३. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें लिङ्गधारिण्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२४. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें मानस्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२५. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें कुमुदायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।
२६. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें भद्रायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा।

२७. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें काकाङ्ग्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा ।
२८. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें पिङ्गलायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा ।
२९. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें लोहितायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा ।
३०. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें कौलिक्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा ।
३१. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें वामायै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा ।
३२. ओं ह्लीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें पतङ्गिन्यै योगिन्यै हूं फट् नमः स्वाहा)॥११४५-११४८-॥

[सप्तम्यां पंक्तौ चामुण्डापूजाया: विधि:]

सप्तम्यामप्यथो पंक्तौ चामुण्डां(ण्डाः) परिपूजयेत् ॥ ११४९ ॥
मायारोषौ डाकिनी च फेत्कारी प्रलयादनु ।
आद्यानीमानि शेषे तु हार्दमन्त्रः प्रतिष्ठितः ॥ ११५० ॥
अन्तःस्थायीनि कलय पदानि खलु साम्प्रतम् ।

सातवीं पंक्ति में चामुण्डाओं की पूजा विधि—इसके अनन्तर सातवीं पंक्ति में चामुण्डाओं की पूजा करनी चाहिये । इसके मन्त्र का उद्धार निम्नलिखित रूप में जानना चाहिये—माया क्रोध डाकिनी फेत्कारी के बाद प्रलय—ये पूर्ववर्त्ती पद हैं । अन्त में हृदय मन्त्र रहता है । अन्त बीच में स्थित होने वाले पदों को सुनो ॥ ११४९-११५०- ॥

[चामुण्डानामानि]

चण्डिका भैरवी रौद्री शिवदूती च कालिका॥ ११५१ ॥
करालिनी भ्रामरी च भीमा चाथ घटोदरी।
कूष्माण्डी चण्डघण्टा च चाण्डाली कौणपी तथा॥ ११५२ ॥
कात्यायनी स्कन्दमाता मसीपुञ्जा दिगम्बरी।
मातङ्गिनी पिङ्गकेशी वर्वरा रक्तपायिनी॥ ११५३ ॥
प्रेतमाला तारकाक्षी लोलजिह्वा च घर्घरा।
कङ्कालिनी कङ्कमुखी राक्षसी च पिशाचिनी॥ ११५४ ॥
व्याघ्रानना च वेताली सर्वशेषे करङ्किणी।
एता आख्याश्च चामुण्डा ङेऽन्ता मध्ये नियोजयेत्॥ ११५५ ॥
पूर्वोदितैव सरणिरत्रापि प्रतिबुध्यताम्।

चामुण्डा के नाम—चण्डिका, भैरवी, रौद्री, शिवदूती, कालिका, करालिनी, भ्रामरी, भीमा, घटोदरी, कूष्माण्डी, चण्डघण्टा, चाण्डाली, कौणपी, कात्यायनी, स्कन्दमाता, मसीपुञ्जा, दिगम्बरी, मातङ्गिनी, पिङ्गकेशी, वर्वरा, रक्तपायिनी, प्रेतमाला, तारकाक्षी, लोलजिह्वा, घर्घरा, कङ्कालिनी, कङ्कमुखी, राक्षसी, पिशाचिनी, व्याघ्रानना, वेताली और सबके अन्त में कटकिंणी इन नामों तथा 'चामुण्डा' पद को ङेऽन्त बनाकर मध्य में जोड़ना चाहिये । पूर्वोक्त ही रीति यहाँ भी समझनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें चण्डिकायै चामुण्डायै नमः ।
२. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें भैरव्यै चामुण्डायै नमः ।
३. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें रौद्र्यै चामुण्डायै नमः ।
४. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें शिवदूत्यै चामुण्डायै नमः ।
५. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कालिकायै चामुण्डायै नमः ।
६. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें करालिन्यै चामुण्डायै नमः ।
७. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें भ्रामर्यै चामुण्डायै नमः ।
८. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें भीमायै चामुण्डायै नमः ।
९. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें घटोदर्यै चामुण्डायै नमः ।
१०. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कूष्माण्ड्यै चामुण्डायै नमः ।
११. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें चण्डघण्टायै चामुण्डायै नमः ।
१२. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें चाण्डाल्यै चाण्डाल्यै चामुण्डायै नमः ।
१३. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कौणप्यै चामुण्डायै नमः ।
१४. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कात्यायन्यै चामुण्डायै नमः ।
१५. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें स्कन्दमात्रे चामुण्डायै नमः ।
१६. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें मसीपुञ्जायै चामुण्डायै नमः ।
१७. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें दिगम्बर्यै चामुण्डायै नमः ।
१८. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें मातङ्गिन्यै चामुण्डायै नमः ।
१९. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें पिङ्गकेश्यै चामुण्डायै नमः ।
२०. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें वर्वरायै चामुण्डायै नमः ।
२१. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें रक्तपायिन्यै चामुण्डायै नमः ।
२२. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें प्रेतमालायै चामुण्डायै नमः ।
२३. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें तारकाक्ष्यै चामुण्डायै नमः ।
२४. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें लोलजिह्वायै चामुण्डायै नमः ।
२५. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें घर्घरायै चामुण्डायै नमः ।
२६. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कङ्कालिन्यै चामुण्डायै नमः ।
२७. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें कङ्कमुख्यै चामुण्डायै नमः ।
२८. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें राक्षस्यै चामुण्डायै नमः ।
२९. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें पिशाचिन्यै चामुण्डायै नमः ।
३०. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें व्याघ्राननायै चामुण्डायै नमः ।
३१. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें वेताल्यै चामुण्डायै नमः ।
३२. ह्रीं हूं ख्फ्रें हसखफ्रें हसफ्रें करङ्किण्यै चामुण्डायै नमः)॥ ११५१-११५५॥

[अष्टम्यां पंक्तौ देवीनां पूजाया विधिः]

अष्टम्यामधुना पंक्तौ देवीः सर्वाः प्रपूजयेत् ॥ ११५६ ॥
यद्यप्यासां हि वर्तन्ते मन्त्राः ध्यानानि च ध्रुवम् ।
एतस्मिन् कर्मणि तथा न प्रयोजनमेतयोः ॥ ११५७ ॥
त्रिपुरघ्नेन यन्नोक्तं तदहं कथमीरये ।
अथावधेहि देवीनां पूजनं पंक्तिवर्ति यत् ॥ ११५८ ॥
तारो मैधं च पाशश्च भौवनेश्यङ्कुशोऽपि च ।
लक्ष्मीकामौ वधूश्चापि योगिनी रुट् च शाकिनी ॥ ११५९ ॥
द्वादशः परिविज्ञेयो नारसिंहार्ण उत्तमः ।
तत्तद्देवीनाम ङेऽन्तं मध्यतो विनियोजयेत् ॥ ११६० ॥
अस्त्रद्वयं च हृदयं शीर्षं सर्वत्र शेषगम् ।

आठवीं पंक्ति में देवियों की पूजा-विधि—अब आठवीं पंक्ति में समस्त देवियों की पूजा करनी चाहिये । यद्यपि इनके मन्त्र और ध्यान निश्चित रूप से हैं तथापि इस कर्म में इन दोनों का प्रयोजन नहीं है । जिसको त्रिपुरारि ने नहीं कहा उसको मैं (= महाकाल) कैसे कह सकता हूँ । अब पंक्ति में वर्तमान देवियों की पूजा को समझो । (उसका मन्त्रोद्धार निम्नलिखित है—) तार मैध पाश भौवनेशी अङ्कुश लक्ष्मी काम वधू योगिनी क्रोध शाकिनी और बारहवाँ नरसिंह (इनको पहले कहना चाहिये) मध्य में तत्तद् देवियों के नाम (तथा 'देवी' पद को ङेऽन्त कहकर) अन्त में सर्वत्र दो अस्त्र हृदय और शिर रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं महालक्ष्म्यै देव्यै (?) फट् फट् नमः स्वाहा ।
२. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं महिषमर्दिन्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।
३. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं राजमातङ्ग्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।
४. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं भुवनेश्वर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।
५. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं राजराजेश्वर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।
६. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं शूलिन्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।
७. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं त्वरितायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

८. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं स्वर्णकोटेश्वर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

९. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं कात्यायन्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१०. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं वाग्वादिन्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

११. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं कुब्जिकायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१२. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं कालरात्र्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१३. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं शिवदूत्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१४. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं कुक्कुट्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१५. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं जयकङ्केश्वर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१६. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं तुम्बुरेश्वर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१७. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं कालसङ्कर्षिण्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१८. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं भोगवत्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

१९. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं धनदायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२०. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं सिद्धिलक्ष्म्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२१. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं उग्रतारायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२२. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं त्रिपुरसुन्दर्यै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२३. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं हरसिद्धायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२४. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं छिन्नमस्तायै देव्यै फट् फट् नमः स्वाहा ।

२५. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं भीमादेव्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

२६. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं बाभ्रव्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

२७. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं गुह्येश्वर्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

२८. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं डामर्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

२९. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं चण्डेश्वर्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

३०. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं अर्धमस्तकायै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

३१. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं धूमावत्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा ।

३२. ओं ऐं आं ह्रीं क्रों श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें क्ष्रौं महामार्यै देव्यै फट् फट् नम: स्वाहा) ॥ ११५६-११६०- ॥

[पूज्यदेवीनामानि]

इदानीं क्रमतो नाम गदतो विनिबोध मे ॥ ११६१ ॥
सर्वाद्या तु महालक्ष्मीस्ततो महिषमर्दिनी ।
ततश्च राजमातङ्गी भुवनेश्वर्यनन्तरम् ॥ ११६२ ॥
राजराजेश्वरी चैव शूलिनी त्वरितापि च ।
स्वर्णकोटेश्वरी कात्यायनी वाग्वादिनी तथा ॥ ११६३ ॥
कुब्जिका कालरात्रिश्च शिवदूती च कुक्कुटी ।
जयकङ्केश्वरी चापि तुम्बुरेश्वर्यनन्तरम् ॥ ११६४ ॥
कालसङ्कर्षिणी भोगवती च धनदा तथा ।
सिद्धिलक्ष्मीरुग्रतारा ततस्त्रिपुरसुन्दरी ॥ ११६५ ॥
हरसिद्धा छिन्नमस्ता भीमादेवी च बाभ्रवी ।
गुह्येश्वरी डामरी च चण्डेश्वर्यर्द्धमस्तका ॥ ११६६ ॥
धूमावती महामारी त्रिंशदेता द्व्याधिका: ।
पंक्तीनामित्थमष्टानां क्रमतो देव्य ईरिता: ॥ ११६७ ॥
द्वात्रिंशत् प्रतिरेखं हि गुह्यावरणपूजने ।

पूज्य देवियों के नाम—अब क्रम से मुझसे नामों को समझो । सबसे पहले महालक्ष्मी उसके बाद महिषमर्दिनी फिर राजमातङ्गी भुवनेश्वरी राजराजेश्वरी शूलिनी त्वरिता स्वर्णकोटेश्वरी कात्यायनी वाग्वादिनी कुब्जिका कालरात्रि शिवदूती कुक्कुटी

जयकङ्केश्वरी तुम्बुरेश्वरी कालसङ्कर्षिणी भोगवती धनदा सिद्धिलक्ष्मी उग्रतारा त्रिपुरसुन्दरी हरसिद्धा छिन्नमस्ता भीमादेवी बाभ्रवी गुह्येश्वरी डामरी चण्डेश्वरी अर्धमस्तका धूमावती और महामारी—ये बत्तीस देवियाँ हैं । इस प्रकार मैंने आठ पंक्तियों की देवियों को क्रम से बतलाया । गुह्यकाली की आवरणपूजा में प्रत्येक रेखा में बत्तीस (देवियों की पूजा की जानी चाहिये) ॥ ११६१-११६७- ॥

[कापालिकदिगम्बरयोर्मते नवमीमिह पंक्तिं कृत्वा मातृणां पूजाया निर्देशः]

अधिकं कुरुतः किञ्चित् कापालिकदिगम्बरौ ॥ ११६८ ॥
उररीकृत्य नवमीं पंक्तिं मातः महन्ति ते ।
वेदादिरोषरावार्णैरादिस्थैश्चरमे नमः ॥ ११६९ ॥
मध्ये मातृस्तथा ङेऽन्ताः कृत्वा सम्पूजयन्ति ते ।

कापालिक और दिगम्बर मत में नवीं पंक्ति बनाकर माताओं की पूजा—कापालिक और दिगम्बर (इस विषय में) कुछ अधिक करते हैं । वे नवीं पंक्ति को स्वीकार कर माताओं की पूजा करते हैं । पहले वेदादि रोष राव वर्ण और अन्त में 'नमः' मध्य में माताओं के नाम (तथा 'मातृ' शब्द को) ङेऽन्त कर वे पूजा करते हैं ॥ ११६८-११६९- ॥

[मातृणां नामानि]

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ ११७० ॥
देवसेना स्वधा स्वाहा तुष्टिः पुष्टिः स्मृतिर्धृतिः ।
कुलदेव्यात्मदेवी च षोडशेमाः प्रकीर्तिताः ॥ ११७१ ॥
अष्टौ निश्चितमेव स्युः कोणेषु च चतुर्ष्वपि ।
तथा द्विद्विमिता देव्य आशास्वपि चतसृषु ॥ ११७२ ॥
इयान् विशेषस्त्वत्रास्ते पूर्वं नामालिखं समम् ।
पूर्वोदितानां पंक्तीनामष्टानां मन्त्रगक्रमे ॥ ११७३ ॥
विशेषो वर्तते भूयान् न कोणरहितोऽणुः(?) ।
पंक्तीना मत्क्रमोक्तानां व्युत्क्रमं केऽपि कुर्वते ॥ ११७४ ॥
न ते रहस्यं जानन्ति त्रिपुरघ्नमुखोद्गतम् ।
सिद्धानां पंक्तितः पूर्वं भैरवीपंक्तिमूचिरे ॥ ११७५ ॥
व्युत्क्रमं पुनरन्योन्यं विभिन्नं विदधत्यपि ।
वृथाभिमानिनस्ते ते तत्त्वं जानन्ति न प्रिये ॥ ११७६ ॥

माताओं के नाम—गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया देवसेना स्वधा स्वाहा तुष्टि पुष्टि स्मृति धृति कुलदेवी और आत्मदेवी ये सोलह (मातायें) कही गयी हैं । चारों कोणों में चार मातायें और चार दिशाओं में दो-दो मातायें (इस प्रकार सोलहो मातायें स्थिर रहती हैं) । यहाँ इतना ही विशेष है कि पहले समान रूप से

मैंने नामोल्लेख किया । पूर्वोक्त आठ पंक्तियों के मन्त्र क्रम में बहुत विशेष हैं । यहाँ कोई भी रञ्चमात्र कोणरहित नहीं है (?) । कुछ लोग पंक्तियों के मेरे द्वारा उक्त क्रम में व्युत्क्रम कर देते हैं । (इसका कारण यह है कि) वे त्रिपुरारि के मुख से निःसृत क्रम को नहीं जानते । वे भैरवी पंक्ति को सिद्धों की पंक्ति से पहले कहते हैं । पुनः परस्पर अनेक प्रकार का व्युत्क्रम करते हैं । हे प्रिये! व्यर्थ अभिमान करनेवाले वे तत्त्व को नहीं जानते ॥ ११७०-११७६ ॥

[अष्टारबहिर्भागस्थवर्तुले कालीपूजाविधिः]

अथाष्टाराद् बहिःसंस्थं वर्तुलं वर्तते हि यत् ।
चतुर्धा तद्विभज्येशि पूर्वादिहरितो यथा ॥ ११७७ ॥
चतस्रस्तदधिष्ठात्रीः कालीः पीठगता यजेत् ।
तासां मन्त्रानुद्धरामि दत्तकर्णा भव क्षणम् ॥ ११७८ ॥

अष्टकोण के बाहरी भाग में स्थित वृत्त में काली की पूजा—हे ईश्वरि! अष्टकोण के बाहर जो वृत्त स्थित होता है, उसको चार भागों में बाँटकर पूर्व आदि दिशाओं में पीठगत चार कालियों की पूजा करनी चाहिये । वे कालियाँ उन भागों की अधिष्ठात्री होती हैं । मैं उनके मन्त्रों को उद्धृत करता हूँ । एक क्षण के लिये कान लगाओ ॥ ११७७-११७८ ॥

[वर्तुलस्थकालीपूजामन्त्रः]

वेदादिमायारोषाश्च योगिनीशाकिनीरमाः ।

वर्त्तुलस्थ कालीपूजा का मन्त्र—तार माया रोष योगिनी शाकिनी और लक्ष्मी । (इन छह बीजों को आदि में उच्चारण करने के बाद पीठों का उच्चारण करना चाहिये) ॥ ११७९ ॥

[पीठचतुष्टयाभिधानम्]

ओड्डियानं तथा जालन्धरं पूर्णगिरिस्तथा ॥ ११७९ ॥
कामरूपं ततः शेषे पीठोऽमीभिर्विगृह्य हि ।
ङ्यन्तत्वभावमास्थाय बीजषट्केन सम्मिलेत् ॥ ११८० ॥
तथार्थकीर्तिपूर्णाश्च कामशब्दसमन्विताः ।
ऐक्यभावं समास्थाय मङ्गलेतिपदेन हि ॥ ११८१ ॥
पुनश्च कालिकाशब्दैः ङेऽन्तत्वेन निरूपितैः ।
पदात् स्वसमया पश्चात् सहितापदमेव च ॥ ११८२ ॥
ङेऽन्तरूपत्वमालम्ब्य योज्या हृन्मनुना सह ।
मण्डलस्य चतुर्भागस्थायिनीः कालिकास्तथा ॥ ११८३ ॥
पूजयेत् प्रोक्तमनुना अथाग्रे प्रकृतं शृणु ।

अष्टारं वर्तते यत्तदष्टभागान्वितं स्फुटम् ॥ ११८४ ॥
नागा मुद्राः क्षेत्रपाला गणाधिपतयस्तथा ।
प्रत्येकं तेऽष्ट वै नागा मुद्रास्तावत्य एव च ॥ ११८५ ॥
क्षेत्रपालाश्च तावन्तो गणेशा अपि तत्समाः ।
क्रमेण तासां(तेषां) महनं निखिलं गदतः शृणु ॥ ११८६ ॥

चार पीठों का कथन—ओड्रियान जालन्धर पूर्णगिरि और कामरूप इनके अन्त में 'पीठ' पद का समास कर ङयन्त बनाना चाहिये । फिर (पूर्वोक्त) छह बीजों से इनको जोड़ना चाहिये । फिर 'अर्थ' 'कीर्त्ति' 'पूर्ण' और 'काम' शब्दों से समन्वित इनको 'मङ्गल' पद से एक कर पुन: ङेऽन्त कालिका शब्द 'स्वसमया' पद के बाद 'सहिता' पद को ङेऽन्त बनाकर हृन्मन्त्र के साथ जोड़ देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्त्रीं ओड्रियानपीठे अर्थमङ्गलकालिकायै स्वसमयासहितायै नम: ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्त्रीं जालन्धरपीठे कीर्तिमङ्गलकालिकायै स्वसमयासहितायै नम: ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्त्रीं पूर्णगिरिपीठे पूर्णमङ्गलकालिकायै स्वसमयासहितायै नम: ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्त्रीं कामरूपपीठे काममङ्गलकालिकायै स्वसमयासहितायै नम: ।)

इन उक्त मन्त्रों से मण्डल के चार भागों में स्थित कालियों की पूजा करनी चाहिये । अब आगे प्रस्तुत को सुनो ।

आठ भाग से स्पष्टतया युक्त जो अष्ट कोण है, उसमें नाग मुद्रा क्षेत्रपाल और गणाधिपति (की पूजा करनी होती है) । ये नाग मुद्रा क्षेत्रपाल और गणेश प्रत्येक आठ-आठ की संख्या में होते हैं । क्रम से उनकी सम्पूर्ण पूजा को बतानेवाले मुझसे सुनो ॥ ११७९-११८६ ॥

[अष्टारमध्यगतनागपूजाविधि:]

तारो माया च नागश्च रोषो रावः पुरो गताः ।
नमः पदं शेषगतं मध्यगानुपवर्णये ॥ ११८७ ॥
वासुकिस्तक्षकश्चैव मणिभद्रश्च कालियः ।
धृतराष्ट्रैरावतौ च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ ११८८ ॥
इत्येते क्रमतो नागा एषां वर्णानतः शृणु ।
श्वेतो रक्तः पाटलश्च श्यामः पाण्डुर एव च ॥ ११८९ ॥

पीतधूसरधूम्राश्च एतैर्वर्णपदस्य हि ।
विग्रहः कथितं ह्येतत् द्वितीयं पदमीश्वरि ॥ ११९० ॥
जटासूत्रं नूपुरं च केयूरं हार एव च ।
यज्ञोपवीतं तदनु कङ्कणं क्षुद्रघण्टिका ॥ ११९१ ॥
ताटङ्कं शेषगं चैतै रूपिशब्दस्य विग्रहः ।
पदानि त्रीणि चैतानि ङेऽन्तानि परिकीर्तयेत् ॥ ११९२ ॥
आद्यं विशेष्यभूतं हि शेषस्थे द्वे विशेषणे ।
पूर्वादिदिक्क्रमेणैव पूजयेदष्टपन्नगान् ॥ ११९३ ॥

अष्टकोण के मध्यस्थ नागपूजा की विधि—नागपूजा मन्त्र का उद्धार अधोलिखित है—पहले तार माया नाग और रोष बीज रहते हैं । अन्त में 'नम:' पद रहता है । मध्यपाती पदों का वर्णन कर रहा हूँ । वासुकि तक्षक मणिभद्र कालिय धृतराष्ट्र ऐरावत कर्कोटक एवं धनञ्जय ये क्रमश: नाग (के नाम) हैं । इसके पश्चात् इनके रङ्गों को सुनो—श्वेत रक्त पाटल श्याम पाण्डुर पीत धूसर और धूम्र । इन पदों के साथ 'वर्ण' पद का समास होता है । हे ईश्वरि! यह द्वितीय पद कहा गया । जटासूत्र नूपुर केयूर हार यज्ञोपवीत कङ्कण क्षुद्रघण्टिका और ताटङ्क इनके साथ 'रूपि' शब्द का समास होता है । इन तीनों पदों को ङेऽन्त कहना चाहिये । पहला पद विशेष्य है । शेष दो विशेषण हैं । आठों सर्पों की पूर्व आदि (= आग्नेय, दक्षिण नैर्ऋत्य पश्चिम वायव्य उत्तर ईशान) के क्रम से पूजा करनी चाहिये ।

पूजा-मन्त्र—

१. ओं ह्रीं ब्रीं हूं श्वेतवर्णाय जटासूत्ररूपिणे वासुकये नम: ।
२. ओं ह्रीं ब्रीं हूं रक्तवर्णाय नूपुररूपिणे तक्षकाय नम: ।
३. ओं ह्रीं ब्रीं हूं पाटलवर्णाय केयूररूपिणे मणिभद्राय नम: ।
४. ओं ह्रीं ब्रीं हूं श्यामवर्णाय हाररूपिणे कालियाय नम: ।
५. ओं ह्रीं ब्रीं हूं पाण्डुरवर्णाय यज्ञोपवीतरूपिणे धृतराष्ट्राय नम: ।
६. ओं ह्रीं ब्रीं हूं पीतवर्णाय कङ्कणरूपिणे ऐरावताय नम: ।
७. ओं ह्रीं ब्रीं हूं धूसरवर्णाय क्षुद्रघण्टिकारूपिणे कर्कोटकाय नम: ।
८. ओं ह्रीं ब्रीं हूं धूम्रवर्णाय ताटङ्करूपिणे धनञ्जयाय नम: ॥११८७-११९३॥

[कापालिकदिगम्बराभ्यां नागपदेन दिग्गजमादाय तेषां पूजा क्रियते].

नागशब्दस्य नानार्थतया कमललोचने ।
अष्टकाष्ठाधिपानष्टौ नागानस्मिन् क्षणे क्रमात्॥ ११९४ ॥
अर्हतो डामरोक्तत्वात् कापालिकदिगम्बरौ ।
प्रमाणमिति कृत्वा तत् प्रवदामि यथाविधि ॥ ११९५ ॥
मैधलक्ष्मीस्मरानुक्त्वा त्रीन् वर्णान् प्रथमस्थितान् ।

रोषरावास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते सप्ताक्षरीमपि ॥ ११९६ ॥
मध्य ऐरावतं त्वाद्यं पुण्डरीकं द्वितीयगम् ।
तृतीयं वामनं चापि चतुर्थं कुमुदं तथा ॥ ११९७ ॥
अञ्जनं पञ्चमं षष्ठं पुष्पदन्तमथेरयेत् ।
सप्तमं सार्वभौमं च सुप्रतीकमथाष्टमम् ॥ ११९८ ॥
ङेऽन्तानेतान् संविधाय मध्येषु विनियोजयेत् ।
एतेषामनुदेव्येकं पदमास्ते विशेषणम् ॥ ११९९ ॥
पूर्वमाग्नेययाम्यं च नैर्ऋत्यां पश्चिमं तथा ।
वायव्यं चोत्तरमपि शेषमैशानमेव च ॥ १२०० ॥
एतैर्दिग्गजशब्दस्य विग्रहो ङेविभक्तिकः ।
एवंप्रकारेणोद्धारः कथितस्तव सुन्दरि ॥ १२०१ ॥
फलबाहुल्यमिच्छन्तः कुर्युरेतामपि ध्रुवम् ।

कापालिक और दिगम्बर नाग पद का हाथी अर्थ लेते हैं—हे कमललोचने! नाग शब्द के अनेकार्थक होने से इस पूजन में कापालिक एवं दिगम्बर मतानुयायी डामरतन्त्र में उक्त होने के कारण आठ दिशाओं के आठ स्वामी हाथियों को प्रमाण मानते हैं । उसको मैं विधिवत् बतला रहा हूँ । (यहाँ मन्त्रोद्धार निम्नलिखित क्रम से जानना चाहिये—) मैध लक्ष्मी काम इन तीन बीजों को प्रथम स्थित मानना चाहिये । रोष राव अस्त्र हृदय और शिर इस सप्ताक्षरी को अन्त में मानना चाहिये । मध्य में पहला ऐरावत दूसरा पुण्डरीक तीसरा वामन चौथा कुमुद है । पाँचवाँ अञ्जन छठाँ पुष्पदन्त कहना चाहिये । सप्तम सार्वभौम आठवाँ सुप्रतीक कहना चाहिये । इनको चतुर्थ्यन्त बनाकर मध्य में जोड़ना चाहिये । हे देवि! इनके पश्चात् एक विशेषण भी रहता है । पूर्व आग्नेय याम्य नैर्ऋत्य पश्चिम वायव्य उत्तर ऐशान इन पदों के साथ 'दिग्गज' शब्द का चतुर्थ्यन्त समास रहता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं श्रीं क्लीं ऐरावताय पूर्वदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
२. ऐं श्रीं क्लीं पुण्डरीकाय आग्नेयदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
३. ऐं श्रीं क्लीं वामनाय दक्षिणदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
४. ऐं श्री क्लीं कुमुदाय नैर्ऋत्यदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
५. ऐं श्री क्लीं अञ्जनाय पश्चिमदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
६. ऐं श्रीं क्लीं पुष्पदन्ताय वायव्यदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
७. ऐं श्रीं क्लीं सार्वभौमाय उत्तरदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।
८. ऐं श्रीं क्लीं सुप्रतीकाय ऐशानदिग्गजाय हूं फ्रें फट् नम: स्वाहा ।)

हे सुन्दरि! तुमको मन्त्रोद्धार बतलाया गया । अधिक फल चाहने वाले इसको भी निश्चित रूप से करें ॥ ११९४-१२०१- ॥

[मुद्राणां पूजाविधिः]

आवृत्तौ तु द्वितीयायां मुद्रा अष्टौ प्रपूजयेत् ॥ १२०२ ॥
तारह्रीकूर्चयोगिन्यः शाकिनीसहिता इमाः ।
पुरःशेषे नमोयुक्ता मध्यगांच्छृण्वतः परम् ॥ १२०३ ॥
मन्त्रः कला च सिद्धिश्च मात्रा माया ततः परम् ।
चक्रं कुलं च गुह्यं च शब्दैरेतैः सविग्रहाः ॥ १२०४ ॥
मुद्राशब्दाः सङेन्ताश्च शब्दानन्यान् पुनः शृणु ।

मुद्राओं की पूजा विधि—दूसरी आवृत्ति (= आवरण) में आठ मुद्राओं की पूजा करनी चाहिये । (इसका मन्त्रोद्धार निम्नलिखित है—) शाकिनी के साथ तार ह्रीं कूर्च योगिनी—ये पहले (कही जाती है) अन्त में 'नमः' से युक्त होती है । इसके बाद मध्यपाती पदों को सुनो । मन्त्र कला सिद्धि मात्रा माया उसके पश्चात् चक्र कुल और गुह्य इन शब्दों के साथ समासयुक्त 'मुद्रा' शब्द को ङेऽन्त (कहना चाहिये) । पुनः अन्य शब्दों को सुनो ॥ १२०२-१२०४- ॥

[मुद्राष्टकनामानि]

योनिर्वशीकरणयुगङ्कुशं धेनुरेव च ॥ १२०५ ॥
आकर्षणं द्रावणं च सामरस्यं च खेचरी ।
एते सन्धिविहीनाः स्युरेतदग्रपदं शृणु ॥ १२०६ ॥
आद्यष्टमुद्रासहिताः पदैरेभिश्च विग्रहः ।
सन्धानं ङेविभक्त्या च मन्त्ररीतिरितीरितम् ॥ १२०७ ॥

आठ मुद्राओं के नाम—योनि, वशीकरण, युगङ्कुश, धेनु, आकर्षण, द्रावण, सामरस्य और खेचरी ये सन्धिरहित प्रयुक्त होते हैं । इनके आगे के पद को सुनो । प्रथम अष्टमुद्रा के साथ इन पदों का समास होता है । ङेविभक्ति के साथ सन्धि होती है । यह मन्त्र की रीति कही गयी ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मन्त्रमुद्रायै योनिमुद्रायै नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें कलामुद्रायै वशीकरणमुद्रायै नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सिद्धिमुद्रायै युगङ्कुशमुद्रायै नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मात्रामुद्रायै धेनुमुद्रायै नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें मायामुद्रायै आकर्षणमुद्रायै नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें चक्रमुद्रायै द्रावणमुद्रायै नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें कुलमुद्रायै सामरस्यमुद्रायै नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें गुह्यमुद्रायै खेचरीमुद्रायै नमः) ॥ १२०५-१२०७ ॥

[क्षेत्रपालानां पूजाविधि:]

तृतीयावृत्तिरुदिता क्षेत्रपालैर्वरानने ।
सारस्वतरमाकामाङ्गनाशाकिन्य एव च ॥ १२०८ ॥
पुरः शेषे नमः स्वाहापदं समनुकीर्तयेत् ।
मध्ये ङेन्तान् क्षेत्रपालान् वक्ष्यमाणपदैः सह ॥ १२०९ ॥
पूर्वभागस्थितैः साकं विग्रहीकृत्य संवदेत् ।

क्षेत्रपालों की पूजा-विधि—हे वरानने! क्षेत्रपालों के द्वारा तीसरी आवृत्ति (= आवरण) कही गयी हैं । (अब क्षेत्रपालों के मन्त्र का उद्धार जानो—) सारस्वत रमा काम अङ्गना शाकिनी ये पहले रहते हैं । अन्त में 'नम: स्वाहा' पद कहना चाहिये । मध्य में ङेऽन्त 'क्षेत्रपालों' को वक्ष्यमाण पदों के साथ कहना चाहिये । ये पद 'क्षेत्रपाल' पद के पूर्व में समस्त करके कहे जाते हैं ॥ १२०८-१२०९- ॥

[पूज्यक्षेत्रपालनामानि]

अथ नामानि वक्ष्येऽहं तेषामाद्यस्तु हेतुकः ॥ १२१० ॥
त्रिपुरान्तको द्वितीयस्तु वेतालोऽपि तृतीयकः ।
हुताशजिह्वस्तुर्यश्च महाकालोऽपि पञ्चमः ॥ १२११ ॥
कपाली चैकपादश्च भीमरावस्ततः परम् ।

पूज्यक्षेत्रपालों के नाम—अब नामों को बतलाऊँगा । पहला क्षेत्रपाल हेतुक, दूसरा त्रिपुरान्तक, तीसरा वेताल, चौथा हुताशजिह्व, पाँचवाँ महाकाल, छठाँ कपाली फिर सातवाँ एकपाद और आठवाँ भीमराव ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हेतुकक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
२. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें त्रिपुरान्तकक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
३. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें वेतालक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
४. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हुताशजिह्वक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
५. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें महाकालक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
६. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें कपालीक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
७. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें एकपादक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा ।
८. ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें भीमरावक्षेत्रपालाय नम: स्वाहा) ॥ १२१०-१२११-॥

[गणाधिपतीनां पूजाया: विधि:]

चतुर्थ्यामप्यथावृत्तौ गणाधिपतयः प्रिये ॥ १२१२ ॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन महाविघ्नौघनाशकाः ।
तारह्रीरोषयोगिन्यः शाकिनीसहिता इमाः ॥ १२१३ ॥

पुरः स्थिता, नमः शब्दः सर्वशेषे प्रतिष्ठितः ।
चतुर्थ्येकवचः संस्थान् गणेशान् प्रवदामि ते ॥ १२१४ ॥
लम्बोदरो वक्रतुण्डो गजवक्त्रस्तथैव च ।
हेरम्ब एकदन्तश्च महाकायस्ततः स्मृतः ॥ १२१५ ॥
गणाधिपतिरस्यानु विघ्नान्तक इतः परम् ।
आवृत्तयश्चतस्रः स्युरेवमष्टारपूजने ॥ १२१६ ॥
कापालिका यामलीयास्तथा चैव दिगम्बराः ।
पुनरन्ये सुरेशानि द्वे आवृत्ती प्रकुर्वतः ॥ १२१७ ॥
कपालडामरोक्तत्वात् ते अपि व्याहरामि ते ।
आवृत्तावथ पञ्चम्यां शैलानां पूजनं चरेत् ॥ १२१८ ॥
तारमायारमाकामरूपं पञ्चादिभागगाः ।
रावास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मध्ये शैलान्निशामय ॥ १२१९ ॥
सुमेरुरथ कैलासो हिमालय इतः परम् ।
गन्धमादनविन्ध्यौ च हेमकूटस्ततोऽप्यनु ॥ १२२० ॥
महेन्द्रमलयो वाथ चतुर्थ्येकवचोऽन्विताः ।
सर्वान् विधाय युञ्जीत मध्य आवरणार्चने ॥ १२२१ ॥
षष्ठ्यामथ नदीरष्टौ पूजयेत् पुण्यदायिनीः ।
सुमेरुविन्ध्यमलयहिमवत्पादनिःसृताः ॥ १२२२ ॥
याः स्वयं प्रविशन्त्यब्धिम(मा)सङ्गत्यापरा नदीः ।
यासु वर्षासु देवेशि रजोदोषो न विद्यते ॥ १२२३ ॥
वाग्भवः पाशमाये चाङ्कुशः शाकिन्यनन्तरम् ।
इमानि पुर उच्चार्य पञ्च बीजानि सुन्दरि ॥ १२२४ ॥
शेषे कूर्चास्त्रमूर्ध्नापि मध्यगाः सरितः शृणु ।
गङ्गा च नर्मदा तापी गोदावर्यथ कीर्त्यते ॥ १२२५ ॥
कृष्णवेल्ला च कावेरी ताम्रपर्णी तथैव च ।
वितस्ता सर्वशेषस्था चतुर्थ्येकवचोऽन्विताः ॥ १२२६ ॥
सर्वाः कृत्वान्तरा युज्यादित्येतत् सरिदर्चनम् ।
दोषो नाप्यत्राणुरपि दिग्गजार्चावदीश्वरि ॥ १२२७ ॥
ज्ञात्वैते अपि कर्तव्ये प्रमाणं तत्र मद्वचः ।
एवमष्टारसंस्थाने षडावृत्तय ईरिताः ॥ १२२८ ॥

गणेशों की पूजा-विधि—हे प्रिये! इसके बाद चौथे आवरण में महाविघ्नों के समूहों के नाशक गणेश्वरों की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये । (इस पूजा का मन्त्रोद्धार निम्नलिखित है—) तार ह्रीं क्रोध योगिनी और शाकिनी सहित ये पहले

रहती हैं । सबके अन्त में 'नमः' शब्द प्रतिष्ठित रहता है । अब चतुर्थी एकवचन में रहने वाले गणेशों को तुमको बतला रहा हूँ । 'लम्बोदर वक्रतुण्ड गजवक्त्र हेरम्ब एकदन्त' उसके बाद 'महाकाय' कहा गया है । 'गणाधिपति' इसके पीछे 'विघ्नान्तक' रहता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें लम्बोदराय नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें वक्रतुण्डाय नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें गजवक्त्राय नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें हेरम्बाय नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें एकदन्ताय नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें महाकायाय नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें गणाधिपतये नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें विघ्नान्तकाय नमः ।)

इस प्रकार अष्टारपूजन में चार आवृत्तियाँ होती है । हे सुरेशानि! कापालिक यामलीय और दिगम्बर और अन्य लोग दो अधिक आवृत्तियों का पूजन करते हैं क्योंकि वे कपाल डामर में कही गयी हैं । उनको भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । पाँचवीं आवृत्ति में पर्वतों का पूजन करना चाहिये । (पूजा-मन्त्र का उद्धार निम्नलिखित है—) तार माया रमा काम और रूप—ये पाँच पहले भाग में रहते हैं। राव अस्त्र हृदय और शिर ये अन्त में रहते हैं । मध्यगामी पर्वतों को सुनो—'सुमेरु कैलास हिमालय' उसके बाद 'गन्धमादन विन्ध्य' उसके पश्चात् 'हेमकूट महेन्द्र' और मलय । ये सब चतुर्थी एकवचनान्त होते हैं । इन सबको आवरणार्चन में मध्य में जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां सुमेरवे फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां कैलासाय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां हिमालयाय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
४. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां गन्धमादनाय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
५. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां विन्ध्याय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
६. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां हेमकूटाय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
७. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां महेन्द्राय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।
८. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कां मलयाय फ्रें फट् नमः स्वाहा ।)

छठीं पंक्ति में पुण्यदायिनी (उन) आठ नदियों की पूजा करनी चाहिये जो हे देवेशि! सुमेरु विन्ध्य मलय और हिमालय से निकलकर दूसरी नदियों से मिलकर

स्वयं समुद्र में गिरती हैं तथा जिनमें वर्षाकाल में भी रजोदोष नहीं होता । पूजा का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—हे सुन्दरि! वाग्भव पाश माया अङ्कुश शाकिनी इन पाँच बीजों को पहले उच्चरित कर अन्त में कूर्च अस्त्र और शिर का उच्चारण करना चाहिये । मध्यपाती नदियों को सुनो—गङ्गा नर्मदा ताप्ती गोदावरी कृष्णवेल्ला (= कृष्णा) कावेरी ताम्रपर्णी और सबके अन्त में वितस्ता (= व्यास) । ये सब चतुर्थी एकवचन से युक्त होती हैं । सबको बीच में रखकर जोड़ना चाहिये । यह नदी-पूजन है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें गङ्गायै हूं फट् स्वाहा ।
२. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें नर्मदायै हूं फट् स्वाहा ।
३. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें ताप्त्यै हूं फट् स्वाहा ।
४. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें गोदावर्यै हूं फट् स्वाहा ।
५. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें कृष्णवेल्लायै हूं फट् स्वाहा ।
६. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें कावेर्यै हूं फट् स्वाहा ।
७. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें ताम्रपर्ण्यै हूं फट् स्वाहा ।
८. ऐं आं ह्लीं क्रों फ्रें वितस्तायै हूं फट् स्वाहा ।)

हे ईश्वरि! दिग्गज पूजा के समान इसमें भी रञ्चमात्र दोष नहीं है । ऐसा जानकर इन दोनों आवृत्तियों को भी करना चाहिये । इसमें मेरा ही वचन प्रमाण है । इस प्रकार अष्टारसंस्थान में छह आवृत्तियाँ कही गयीं ॥ १२१२-१२२८ ॥

[अष्टारोपरितनस्थितवर्तुलस्थदेवानां पूजाविधिः]

अष्टारस्योद्ध्वर्भागे तु पुनर्वर्तुलमस्ति हि ।
अष्टभागं च तत्कृत्वा पूर्वादिहरितो यथा ॥ १२२९ ॥
वक्ष्यमाणाः पूजयीत देवताः सुरवन्दिते ।
आदौ पञ्चैव बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ॥ १२३० ॥
सर्वशब्दा भ्यसन्ताश्च पुंल्लिङ्गत्वेन तत्परम् ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दास्तादृशाकारधारिणः ॥ १२३१ ॥
निर्देश्यः सर्वशब्दोऽपि स्त्रीलिङ्गत्वेन तत्परम् ।
ये पूर्वमीरिताः शब्दास्तेऽपि स्त्रीलिङ्गधारिणः ॥ १२३२ ॥
ङीबन्ता उभयं चापि भ्यसन्तत्वेन कथ्यते ।
अष्टाक्षरी सर्वशेषे सर्वेषां सदृशी मता ॥ १२३३ ॥
इति सामान्यरूपेण मनवः प्रतिपादिताः ।
तानेव साम्प्रतं देवि विशेषात्प्रतिपादये ॥ १२३४ ॥
वेदादिः शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयस्तथा ।

फेत्कारी चैव बीजानि कथ्यन्ते पञ्च वै पुरः ॥ १२३५ ॥
भिन्नाः शब्दाः नाकचरः खेचरो भूचरस्तथा ।
रोदसीचर इत्येवं पातालचर इत्यपि ॥ १२३६ ॥
ततो जलचरश्चापि शाखाचर इतः परम् ।
गोचरः सर्वशेषे तु नानार्थत्वेन वर्णितः ॥ १२३७ ॥
शेषगानधुना वर्णानष्टौ सम्प्रतिपादये ।
अस्त्रत्रयं च कूर्चश्च हृदयं शीर्षमेव च ॥ १२३८ ॥
एतैः सम्पूजयेदेवं विभक्ते मण्डलेऽष्टधा ।

अष्टार के ऊपर स्थित वृत्त में रहने वाली देवताओं की पूजा—अष्टकोण के ऊपरी भाग में एक वृत्त है ही । उसको पूर्व आदि दिशा के क्रम से आठ भाग कर, हे सुरवन्दिते! वक्ष्यमाण देवताओं की पूजा करनी चाहिये । (पूजा का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—) पहले पाँच बीज सर्वत्र स्थायी रहते हैं । उसके बाद 'सर्व' शब्द को भ्यस् प्रत्ययान्त और पुल्लिङ्ग कहना चाहिये । उसके बाद उसी प्रकार के आकार वाले (अर्थात् भ्यसन्त) भिन्न-भिन्न शब्द रहते हैं । उसके बाद 'सर्व' शब्द स्त्रीलिङ्ग के रूप में निर्दिष्ट होना चाहिये । जो शब्द पहले कहे गये वे भी स्त्रीलिङ्गवाची डीवन्त हैं । दोनों भ्यसन्त कहे जाते हैं । सबके अन्त में अष्टाक्षरी समानरूप से सर्वत्र रहती है । इस प्रकार सामान्य रूप से मन्त्रों का प्रतिपादन किया गया । हे देवि! उन्हीं को विशेषरूप से बतला रहा हूँ । वेदादि शाकिनी डाकिनी प्रलय और फेत्कारी ये पाँच बीज पहले कहे जाते हैं । भिन्न शब्द ये हैं—नाकचर खेचर भूचर रोदसीचर पातालचर जलचर शाखाचर और सबके अन्त में गोचर । अन्तिम यह शब्द अनेकार्थक रूप से वर्णित है । अब अन्तिम आठ वर्णों को बतला रहा हूँ—तीन अस्त्र कूर्च हृदय और शिर । इस प्रकार आठ भागों में विभक्त मण्डल पर इन मन्त्रों से पूजा करनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यो नाकचरेभ्यः सर्वाभ्यो नाकचरीभ्यः फट् फट् फट् हूं नमः स्वाहा ।
२. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यः खेचरेभ्यः सर्वाभ्यः खेचरीभ्यः फट् फट् फट् हूं नमः स्वाहा ।
३. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यो भूचरेभ्यः सर्वाभ्यो भूचरीभ्यः फट् फट् फट् हूं नमः स्वाहा ।
४. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्य रोदसीचरेभ्यः सर्वाभ्य रोदसीचरीभ्यः फट् फट् फट् हूं नमः स्वाहा ।
५. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यो पातालचरेभ्यः सर्वाभ्य पातालचरीभ्यः फट् फट् फट् हूं नमः स्वाहा ।

६. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यो जलचरेभ्य: सर्वाभ्यो जलचरीभ्य: फट् फट् फट् हूं नम: स्वाहा ।
७. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्य: शाखाचरेभ्य: सर्वाभ्य: शाखाचरीभ्य: फट् फट् फट् हूं नम: स्वाहा ।
८. ओं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें सर्वेभ्यो गोचरेभ्य: सर्वाभ्यो गोचरीभ्य: फट् फट् फट् हूं नम: स्वाहा) ॥ १२२९-१२३८- ॥

[लब्धसिद्धीनामृषीणां पूजाविधि:]

एतस्यैवाथ द्वितीयामावृत्तिमवधारय ॥ १२३९ ॥
ये पूर्वमृषयो जाता नानाकल्पेषु पार्वति ।
यावद्भि: सहिता: शिष्यै: सिद्धिं देवीप्रसादत: ॥ १२४० ॥
प्राप्तवन्त: स्वयंसिद्धा: जाताश्च तदनुग्रहात् ।
स्वस्वशिष्यगणैर्युक्तास्तेषां पूजनमुच्यते ॥ १२४१ ॥
द्वितीयायामथावृत्तौ तस्योद्धारं वदाम्यहम् ।
तारमैधौ योगिनी च रमाकामस्त्रियस्तथा ॥ १२४२ ॥
कूर्चराव इमेऽष्टौ हि प्रतिमन्त्रं स्थिरा: प्रिये ।
नारदो गौतमश्चापि वसिष्ठ: कपिलस्तथा ॥ १२४३ ॥
कश्यपोऽप्यथ जाबालो हारीतस्तदनन्तरम् ।
सम्वर्त: सर्वशेषे च ऋषयोऽमी प्रकीर्तिता: ॥ १२४४ ॥
नाथशब्दस्य चैतेषां विग्रहो नित्य उच्यते ।
सङ्केतत्वेन वक्तव्योऽथ संख्या: क्रमत: शृणु ॥ १२४५ ॥
आदावष्टौ षोडश च चतुर्विंशतिरित्यपि ।
द्वात्रिंशत्तदनुज्ञेया चत्वारिंशदत: परम् ॥ १२४६ ॥
अष्टचत्वारिंशदपि षट्पञ्चाशत्ततोऽप्यनु ।
चतु:षष्टि: सर्वशेषे पूर्वैरस्य पदै: सह ॥ १२४७ ॥
षष्ठाद्ययोस्तु सन्धानं शेषे प्रकृतवत्स्थितम् ।
आभिस्तु शिष्यसहितेत्येवं शब्दस्य विग्रह: ॥ १२४८ ॥
क्रमेण स विशेष्यस्य वचो लिङ्गधर: स्मृत: ।
हृच्छिरोमनुसंयुक्ता: प्रत्येकं मनव: स्फुटा: ॥ १२४९ ॥
मौलेया: किञ्चिदधिकं कुर्वन्त्यत्र सुरेश्वरि ।
तदपि व्याहरिष्यामि तेषां मततया स्थितम् ॥ १२५० ॥

सिद्ध ऋषियों की पूजा-विधि—अब इसी की द्वितीय आवृत्ति को समझो । हे पार्वति! पहले अनेक कल्पों में जो ऋषि हुए तथा देवी की कृपा से जितने शिष्यों के साथ उन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कीं तथा उसकी कृपा से अपने-अपने शिष्यों के साथ

स्वयं सिद्ध हुए, उनका पूजन बतलाया जा रहा है । द्वितीय आवृत्ति में उस (मन्त्र) का उद्धार मैं बतला रहा हूँ । तार मैध योगिनी रमा काम स्त्री कूर्च और राव, हे प्रिये! ये आठ बीज प्रत्येक मन्त्र में स्थायी रूप से रहते हैं । नारद गौतम वसिष्ठ कपिल कश्यप जाबाल हारीत और सब के अन्त में सम्वर्त्त ये ऋषि कहे गये हैं । इनका 'नाथ' शब्द के साथ नित्य समास कहा जाता है । इस समास को ङेऽन्त के साथ कहना चाहिये । अब संख्याओं को क्रम से सुनो । पहले 'अष्ट' फिर षोडश चतुर्विंशति द्वात्रिंशत् चत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् षट्पञ्चाशत् इसके बाद सबके अन्त में चतु:षष्ठि । इनका पूर्वपदों के साथ समास होता है । प्रथम और षष्ठ संख्या की पदों के साथ सन्धि होती है । अन्त में प्रकृतिवत् स्थिति रहती है । इन संख्याओं के साथ 'शिष्यसहित' पद का समास होता है । क्रम से वह विशेष्य वचन के लिङ्गवाला होता है । प्रत्येक मन्त्र हृदय और शिर से स्पष्ट रूप से संयुक्त रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें नारदनाथायाष्टौशिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
२. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें गौतमनाथाय षोडशशिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
३. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें वसिष्ठनाथाय चतुर्विंशतिशिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
४. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें कपिलनाथाय द्वात्रिंशत्शिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
५. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें कश्यपनाथाय चत्वारिंशत्शिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
६. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें जाबालनाथायाष्टचत्वारिंशत्शिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
७. ओं ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें हारीतनाथाय षट्पञ्चाशत्शिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।
८. ओ ऐं छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें संवर्त्तनाथाय चतु:षष्ठिशिष्यसहिताय नम: स्वाहा ।)

हे सुरेश्वरि! मौलेय इस विषय में कुछ अधिक करते हैं । उनके मत के अनुसार उसको भी मैं बतलाऊँगा ॥ १२३९-१२५० ॥

[कापालिकादिसम्प्रदायपरिचय:]

देव्युवाच—

कापालिका: के देवेशि(श)पुन: के च दिगम्बरा: ।
मौलेया: के च कथ्यन्ते मतं तेषां च कीदृशम् ॥ १२५१ ॥

कैः कैस्तन्त्रैः तथा धर्मैः सर्वे व्यवहरन्ति ते।
समासादेतदाचक्ष्व महत्कौतूहलं मम॥ १२५२ ॥

कापालिक आदि समुदाय का परिचय—देवी ने कहा—हे देवेश! कापालिक कौन हैं एवं दिगम्बर कौन हैं? कौन लोग मौलेय कहे जाते हैं? उनका मत किस प्रकार का है? वे सब किन-किन तन्त्रों तथा धर्मों के अनुसार व्यवहार करते हैं? इसको संक्षेप में बतलाइये। मेरे मन में महा कौतूहल है ॥ १२५१-१२५२ ॥

श्रीमहाकाल उवाच—

साधु साधु वरारोहे धन्यासि त्वं न संशयः।
मतज्ञनाय सर्वेषां रोचते यन्मनस्तव॥ १२५३ ॥
विशिष्य सर्वं वक्ष्ये ते श्रुत्वा चैवावधारय।
कपालडामरप्रोक्तमतसञ्चारिणो नराः॥ १२५४ ॥
कापालिकाः निगद्यन्ते ते महाकौलिका अपि।
संहितां भैरवप्रोक्तां ये पुनः समुपासते॥ १२५५ ॥
दिगम्बरास्ते विख्याता न पुनर्नग्नरूपिणः।
एतेऽपि कौलिकश्रेष्ठाः श्मशानादिषु निर्घृणाः॥ १२५६ ॥
प्रसन्नाः(?प्रपन्नाः) यामलप्रोक्तं ये पन्थानं सुरेश्वरि।
ते मौलेयाः परिख्याता महाकौलिकतो वराः॥ १२५७ ॥
ये च शाबरतन्त्रज्ञास्तन्मतैकप्रवर्तिनः।
विख्याता भाण्डिकेरास्ते मौलेयसदृशा मताः॥ १२५८ ॥
प्राप्ताः पाशुपतीं दीक्षां शैवाः कथ्यन्त ईश्वरि।
अश्वमेधादिकर्तारो याज्ञिकाः वेदमार्गगाः॥ १२५९ ॥
अर्हतोपासका जैना बौद्धाः बुद्धोपसेवकाः।
चार्वाकाः बौद्धभेदाः स्युः सांख्याश्चैव निरीश्वराः॥ १२६० ॥
निराकारं भावयन्तो वेदान्तिन इति स्मृताः।
सौरवैष्णवगाणेशाः विज्ञेयास्ते पृथक् पृथक्॥ १२६१ ॥
स्मार्ताः स्मृत्युदिताध्वन्याः श्रौताः श्रुतिपथस्थिताः।
मदुक्तसंहितोक्तिज्ञा मध्यस्थाः परिकीर्तिताः॥ १२६२ ॥
एषामाद्यास्तु चत्वारो मदुक्तज्ञोऽपि पञ्चमः।
एते शाक्ततयाख्याता देव्युपासनतत्पराः॥ १२६३ ॥

श्रीमहाकाल ने कहा—हे वरारोहे! साधु साधु! तुम धन्य हो इसमें संशय नहीं हैं; क्योंकि तुम्हारा मन समस्त मतों के ज्ञान के लिये इच्छुक है। मै विशेष रूप से सब तुमको बतलाऊँगा। सुनकर समझो। कपाल डामर ग्रन्थ में वर्णित मत के अनुसार आचरण करनेवाले मनुष्य कापालिक कहे जाते हैं। उनको महाकौलिक भी कहा

जाता है । जो भैरव के द्वारा उक्त संहिता की उपासना करते हैं अर्थात् उसके अनुसार आचरण करते हैं वे दिगम्बर कहे जाते है न कि जो निर्वस्त्र होते हैं (उनको दिगम्बर कहा जाता है) । ये भी उत्तम कोटि के कौलिक होते हैं तथा श्मशान आदि से भी घृणा नहीं करते । हे सुरेश्वरि! जो यामलोक्त मार्ग का अनुसरण करते हैं वे मौलेय (के नाम से) विख्यात हैं । वे महाकौल से भी श्रेष्ठ होते हैं । जो शाबरतन्त्र के ज्ञाता तथा उसके मत के अनुसार व्यवहार करनेवाले हैं, वे भाण्डिकेर के रूप में विख्यात हैं । वे मौलेय के समान माने गये हैं । हे ईश्वरि! जो पाशुपती दीक्षा प्राप्त करते हैं, वे शैव कहे जाते हैं । वेदमार्ग के अनुयायी तथा अश्वमेध आदि को करने वाले (वैदिक या) याज्ञिक कहे जाते हैं । अर्हत् के उपासक जैन और बुद्ध के उपासक बौद्ध होते हैं । चार्वाक बौद्धों के ही एक भेद हैं । जो ईश्वर की सत्ता नहीं मानते वे सांख्य हैं । निराकार तत्त्व की भावना करने वाले वेदान्ती हैं । सौर वैष्णव गाणपत्य को अलग-अलग जानना चाहिये । स्मृतियों में प्रोक्त मार्ग के पथिक स्मार्त्त तथा वेदपथ में स्थित श्रौत कहे जाते हैं । मेरे द्वारा कही गयी संहिता (= महाकाल-संहिता) के वचन को जानने वाले मध्यस्थ कहे जाते हैं । इनमें से प्रथम चार एवं पाँचवाँ भी जो मेरे मत को जानता है, देवी की उपासना में तत्पर वे शाक्त के रूप में विख्यात हैं ॥ १२५३-१२६३ ॥

[स्वसंहितोक्तोपासनपद्धतिवैशिष्ट्याभिधानम्]

श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म देव्युपासनमेव च ।
उभयं कुर्वते देवि मदुदीरितवेदिनः ॥ १२६४ ॥
अतोऽदः श्रेष्ठमन्येभ्यो मन्येऽहमिति पार्वति ।

अपनी संहिता में वर्णित उपासना पद्धति की विशेषता—हे देवि! मेरे वचन के ज्ञाता लोग श्रुति स्मृति में वर्णित कर्मों का अनुष्ठान तथा देवी की उपासना भी करते हैं, इसलिये हे पार्वति! मैं इस मार्ग को श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ १२६४-१२६४-॥

[मौलेयादिसम्प्रदायनिन्दा]

मौलेयभाण्डिकेरौ हि स्यातां यद्यपि कौलिकौ ॥ १२६५ ॥
युक्तायुक्तं विचार्यैवं प्रवर्तेते तथापि तौ ।
गर्हाकृत्कर्मकर्तारौ निर्घृणौ निन्द्यतां गतौ ॥ १२६६ ॥
सर्वाधमौ परिज्ञेयौ कापालिकदिगम्बरौ ।
श्मशानवासिनौ नित्यं कुणपाम्बरधारिणौ ॥ १२६७ ॥
सर्वभक्षौ च बीभत्सौ वेदमार्गबहिष्कृतौ ।
भक्ष्येष्वेषामभक्ष्यं हि गोमांसं सुरवन्दिते ॥ १२६८ ॥
शक्तिश्चैषामसम्भोग्या स्वकीया जननी तथा ।
विमाता भ्रातृजाया च भगिनी दुहिता स्नुषा ॥ १२६९ ॥

पितृमातृस्वसा चैव मातुलानी तथैव च ।
प्रवेशयन्त्यमूः सर्वाः शक्तिकोटौ वरानने ॥ १२७० ॥
देवीं विना भावयन्ति नैवान्यं मनसाऽपि ते ।
विस्तारबीजमित्येवं वर्तते पापकर्मणाम् ॥ १२७१ ॥
दिगम्बरः पापतमो देवि कापालिकादपि ।
नरमांसं यदश्नाति देव्यै दत्त्वा प्रसादवत् ॥ १२७२ ॥
डामरं यामलं चापि तथा भैरवसंहिताम् ।
तथा शाबरतन्त्राणि शास्त्रमेषां प्रकीर्तितम् ॥ १२७३ ॥
कुर्वन्ति देव्याः पूजादिं तत्तत्तन्त्रोदितक्रमैः ।
पूजां कृत्वा उपादेयाः कदाचाराद्विगर्हिताः ॥ १२७४ ॥
मतज्ञानैः किमेभिस्ते प्रकृतं शृणु साम्प्रतम् ।

मौलेय आदि सम्प्रदायों की निन्दा—मौलेय और भाण्डिकेर यद्यपि कौलिक ही होते हैं तथापि वे उचित-अनुचित का विचार करके ही (अपने मार्ग में) प्रवृत्त होते हैं। वे दोनों निन्द्य कर्म करनेवाले तथा घृणारहित होते हैं, अत: वे निन्दा के पात्र होते हैं। कापालिक और दिगम्बर को सबसे नीच जानना चाहिये; क्योंकि वे श्मशान में रहते है और कफन को पहनते हैं। वे सर्वभक्षी होते हैं तथा वेदमार्ग से बहिष्कृत होते हैं। हे सुरवन्दिते! भक्ष्यों में ये गोमांस नहीं खाते। अपनी पत्नी तथा माता के साथ ये सम्भोग नहीं करते। हे वरानने! सौतेली माँ, भाई की पत्नी, बहन, पुत्री, पुत्रवधू, फूफी, मौसी, मामी को भी ये लोग शक्ति अर्थात् स्त्री की श्रेणी में रखते हैं। वे लोग देवी को छोड़कर अन्य की मन से भी चिन्ता नहीं करते। उनके अनुसार ऐसा करने पर पापकर्मों के बीज का विस्तार होता है। हे देवि! कापालिक की अपेक्षा दिगम्बर अधिक पापी माना जाता है; क्योंकि वह मनुष्य का माँस देवी को अर्पित कर उसे प्रसाद के रूप में खाता है। डामर यामल भैरवसंहिता तथा शाबरतन्त्र इनके शास्त्र कहे गये हैं। ये लोग तत्तत् तन्त्र में वर्णित क्रम से देवी की पूजा करते हैं। कुत्सित आचार के कारण निन्दनीय ये पूजा करने के बाद ग्राह्य होते हैं। तुमको इनके मत और ज्ञान से क्या लेना-देना। अब प्रस्तुत को सुनो ॥ १२६५-१२७४- ॥

[सम्प्रदायान्तरेषु निर्दिष्टस्य पूजाधिक्यस्य कथनम्]

यामलीयास्तु मौलेयाः पुनरष्टारसीमनि ॥ १२७५ ॥
अर्चयन्त्यधिकं किञ्चित् तद्रीतिं कलय प्रिये ।
तारराावौ डाकिनी च फेत्कारी प्रलयादनु ॥ १२७६ ॥
पञ्चेमानि पुरः स्मृत्वा पठेदन्ते नमः शिरः ।
चतसृष्वपि काष्ठासु मध्ये ङेऽन्तानुदीरयेत् ॥ १२७७ ॥

धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं च क्रमात् पृथक् ।
विदिक्ष्वधर्ममज्ञानमवैराग्यमत: परम् ॥ १२७८ ॥
अनैश्वर्यं तथैशान्यामित्येतस्य क्रमोऽखिल: ।
पुनरुक्ततया नैतन्मतं मम वरानने ॥ १२७९ ॥
पीठन्यासे तथा योगरत्ने हृदय एव च ।
अमीषां पूजनं प्रोक्तं धर्मादीनां पुरा मया ॥ १२८० ॥
तथाप्यदोष: करणे फलबाहुल्यमेव च ।

अन्य सम्प्रदायों में निर्दिष्ट पूजा की अधिकता—यामल एवं मौलेय सम्प्रदाय वाले लोग अष्टकोण के अन्दर कुछ अधिक पूजा करते हैं । हे प्रिये! उस पद्धति को समझो । तार राव डाकिनी फेत्कारी प्रलय इन पाँच का स्मरण करने के बाद अन्त में नम: और शिर का कथन करना चाहिये । चारो दिशाओं में मध्य में धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करना चाहिये । चारो कोणों में अधर्म अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य का उच्चारण करना चाहिये । हे वरानने! पुनरुक्त होने के कारण यह मत मेरा नहीं है । मैंने पहले ही पीठन्यास योगरत्न तथा हृदय में इन धर्म आदि के पूजन कर वर्णन कर दिया है । तो भी इसके करने में कोई दोष नहीं है, प्रत्युत फलाधिक्य ही है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (पूर्वदिशायां) धर्माय नम: स्वाहा ।
२. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (दक्षिणदिशायां) ज्ञानाय नम: स्वाहा ।
३. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (पश्चिमदिशायां) वैराग्याय नम: स्वाहा ।
४. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (उत्तरदिशायां) ऐश्वर्याय नम: स्वाहा ।
५. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (आग्नेयविदिशि) अधर्माय नम: स्वाहा ।
६. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (नैर्ऋत्यविदिशि) अज्ञानाय नम: स्वाहा ।
७. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (वायव्यविदिशि) अवैराग्याय नम: स्वाहा ।
८. ओं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें हसफ्रें (ऐशानविदिशि) अनैश्वर्याय नम: स्वाहा) ॥ १२७५-१२८०- ॥

[नवारपूजाया: सामान्यविधि:]

नवारपूजामधुना समाकलय सुन्दरि ॥ १२८१ ॥
नवबीजानि पुरत: प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ।
तत्तद्देवीस्ततो ङेऽन्ता: स्त्रीलिङ्गा: परिकीर्तिता: ॥ १२८२ ॥
पञ्चाक्षरी पुन: शेषे सर्वत्रैव नियोजयेत् ।

नवारपूजा की सामान्य विधि—हे सुन्दरि! अब नवारपूजा को सुनो । प्रत्येक मन्त्र में पहले नवबीज स्थायी रहते हैं । इसके बाद तत्तत् देवियों के नाम

चतुर्थ्यन्त तथा स्त्रीलिङ्ग वाले होते हैं । पुन: सबके अन्त में पञ्चाक्षरी का संयोजन करना चाहिये ॥ १२८१-१२८२- ॥

[नवारपूजाया विशेषेणाभिधानम्]

उक्तं सामान्यरूपेण विशेषेणाधुना ब्रुवे ॥ १२८३ ॥
चैतन्यमायाकमलाकामस्त्रीरावडाकिनीः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी बीजानीमानि वै नव ॥ १२८४ ॥
ब्रह्माणी प्रथमा देवी माहेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
कौमारी वैष्णवी चैव वाराही तदनन्तरम् ॥ १२८५ ॥
नारसिंही तथेन्द्राणी शिवदूत्यष्टमी पुनः ।
चामुण्डा नवमी चापि नवेमा मध्यगाः स्मृताः ॥ १२८६ ॥
हृदस्त्रं शीर्षमन्ते च ज्ञेया पञ्चाक्षरी त्वियम् ।

नवारपूजा का विशेषरूप से कथन—सामान्यरूप से पूजन कहा गया । अब विशेषरूप से कह रहा हूँ । चैतन्य माया कमला काम स्त्री राव डाकिनी प्रलय फेत्कारी ये नव बीज हैं । इसके बाद पहली देवी ब्राह्मणी उसके बाद माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही उसके बाद नारसिंही इन्द्राणी शिवदूती आठवीं तथा चामुण्डा नवीं है । ये नव देवियाँ मध्यगामिनी कही गयी हैं । हृदय अस्त्र और शिर ये पञ्चाक्षरी अन्त में जाननी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें ब्रह्माण्यै नम: फट् स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें माहेश्वर्यै नम: फट् स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें कौमार्यै नम: फट् स्वाहा ।
४. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें वैष्णव्यै नम: फट् स्वाहा ।
५. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें वाराह्यै नम: फट् स्वाहा ।
६. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें नारसिंह्यै नम: फट् स्वाहा ।
७. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें इन्द्राण्यै नम: फट् स्वाहा ।
८. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें शिवदूत्यै नम: फट् स्वाहा ।
९. ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें चामुण्डायै नम: फट् स्वाहा ।) ॥ १२८३-१२८६- ॥

[तत्र नवग्रहपूजाविधि:]

द्वितीयायामथावृत्तौ पूजयेद्वै नव ग्रहान् ॥ १२८७ ॥
मायारमाडाकिनी च बीजत्रयमिदं पुरः ।
नमः शेषेऽन्तरासंस्थपदानि कलयाधुना ॥ १२८८ ॥
आदित्यः प्रथमः सोमो मङ्गलो बुध एव च ।

बृहस्पतिस्तथा शुक्रः शनैश्चर इतः परम् ॥ १२८९ ॥
राहुः केतुरितीदृक्षांच्छब्दाङ्ङेऽन्तान् समुद्धरेत् ।
ईदृग्गुणग्रहपदमस्यानु प्रतिकीर्तयेत् ॥ १२९० ॥
एवं मन्त्रा नव व्यक्ता द्वितीयावृत्तिपूजने ।

नवग्रहपूजाविधि—(प्रथम आवरण में उक्त नव देवियों की पूजा के बाद) द्वितीय आवरण में नवग्रहों की पूजा करनी चाहिये । माया रमा डाकिनी इन तीन बीजों को पहले कहकर अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । अब बीच में आने वाले पदों को सुनो—आदित्य प्रथम हैं । उसके बाद सोम मङ्गल बुध बृहस्पति शुक्र शनि राहु और केतु है । इन शब्दों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद इस प्रकार के गुणवाले अर्थात् चतुर्थ्यन्त 'ग्रह' पद का कीर्त्तन करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ह्रीं श्रीं खफ्रें आदित्याय ग्रहाय नमः ।
२. ह्रीं श्रीं खफ्रें सोमाय ग्रहाय नमः ।
३. ह्रीं श्रीं खफ्रें मङ्गलाय ग्रहाय नमः ।
४. ह्रीं श्रीं खफ्रें बुधाय ग्रहाय नमः ।
५. ह्रीं श्रीं खफ्रें बृहस्पतये ग्रहाय नमः ।
६. ह्रीं श्रीं खफ्रें शुक्राय ग्रहाय नमः ।
७. ह्रीं श्रीं खफ्रें शनैश्चराय ग्रहाय नमः ।
८. ह्रीं श्रीं खफ्रें राहवे ग्रहाय नमः ।
९. ह्रीं श्रीं खफ्रें केतवे ग्रहाय नमः ।)

इस प्रकार से द्वितीय आवरण की पूजा में यहाँ उपरोक्त नौ मन्त्र स्पष्ट किये गये ॥ १२८७-१२९०- ॥

[अत्र नवचक्रपूजाविधिः]

अतः परं तु चक्राणि देहस्थानि समर्चयेत् ॥ १२९१ ॥
यद्यपि स्युःषडेतानि चक्राण्येव शुचिस्मिते ।
सूक्ष्मरूपतयान्येषामपि ग्रहणमिष्यते ॥ १२९२ ॥
कन्दमूलाधारयुक्तसहस्राम्बुरुहग्रहः ।
मैधपाशो तथा प्रेतो भैरव्यङ्कुशमेव च ॥ १२९३ ॥
पञ्चेमान्यादिमार्णानि शेषे कूर्चास्त्रहृच्छिरः ।
पदानि मध्यसंस्थानि प्रवदाम्यधुना तव ॥ १२९४ ॥
कन्दमूलाधार इति ततः कुण्डलिनीत्यपि ।
ततः स्वाधिष्ठानमपि मणिपूरकमेव च ॥ १२९५ ॥
अनाहतं विशुद्धं च तत आज्ञाह्वयं प्रिये ।

सहस्रदलमस्यानु शब्दाः एते नवेरिताः ॥ १२९६ ॥
एतैश्चक्रपदस्यापि विग्रहो ङेविभक्तितः ।
विशिष्य कथिता तुभ्यं नवचक्रार्हणेदृशी ॥ १२९७ ॥

इसमें नवचक्र की पूजा-विधि—इसके बाद देहस्थ चक्रों की अर्चना करनी चाहिये । हे शुचिस्मिते! यद्यपि इनकी संख्या छह ही है तथापि सूक्ष्मरूप से अन्य चक्रों का भी ग्रहण होता है । यहाँ कन्द मूलाधार से युक्त सहस्रदल का ग्रहण होता है । मैध पाश प्रेत भैरवी अङ्कुश ये पाँच वर्ण पहले रहते हैं । अन्त में कूर्च अस्त्र हृदय और शिर रहता है । अब तुमको मध्यस्थ पदों को बतला रहा हूँ । कन्द-मूलाधार इसके पश्चात् कुण्डलिनी फिर स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध उसके अनन्तर हे प्रिये! आज्ञा फिर सहस्रदल ये नौ शब्द कहे गये । इनके साथ ङेऽन्त विभक्त्यन्त 'चक्र' पद का समास होता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं आं स्हौः सौः क्रों कन्दचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
२. ऐं आं स्हौः सौः क्रों मूलाधारचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
३. ऐं आं स्हौः सौः क्रों कुण्डलिनीचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
४. ऐं आं स्हौः सौः क्रों स्वाधिष्ठानचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
५. ऐं आं स्हौः सौः क्रों मणिपूरचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
६. ऐं आं स्हौः सौः क्रों अनाहतचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
७. ऐं आं स्हौः सौः क्रों विशुद्धचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
८. ऐं आं स्हौः सौः क्रों आज्ञाचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
९. ऐं आं स्हौः सौः क्रों सहस्रदलचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।)

तुमको इस प्रकार की नौ चक्र की पूजा विशेषरूप से बतलायी गयी ॥ १२९१-१२९७ ॥

[सम्प्रदायान्तरविहितकर्तव्याधिक्याभिधानम्]

चक्रशब्दस्य सन्धाय नानार्थत्वं वरानने ।
अधिकं कुरुतः किञ्चित् कापालिकदिगम्बरौ ॥ १२९८ ॥
सिद्धान्तकथने प्रान्ते या रेखा वर्तुलाकृतिः ।
तदत्र चक्रशब्देन कथ्यते वरवर्णिनि ॥ १२९९ ॥
न कदापि बहिर्गच्छेत् स्वस्वसिद्धान्तयुक्तितः ।
अभेद्यमप्रतीकार्यं चक्रवच्चक्रमुच्यते ॥ १३०० ॥
अथोद्धारक्रमं वक्ष्ये कापालिकमतक्रमैः ।
तारमैधत्रपालक्ष्मीकामाः पञ्चादिगोचराः ॥ १३०१ ॥
पूर्वोदितैर(ता ह्य)विज्ञेया सर्वशेषे षडक्षरी(?) ।

जन्म कालश्च मृत्युश्च मन्त्रः सिद्धिःकुलं तथा ॥ १३०२ ॥
समयो भावना योनिः शब्दा एतेऽन्तरस्थिताः ।
विगृह्य चक्रशब्देन ङेऽन्तं रूपं विधृत्य च ॥ १३०३ ॥
एवं नवारपूजेयं चतुर्द्धा कथिता मया ।

अन्य सम्प्रदाय में निहित कर्त्तव्याधिक्य—हे वरानने! 'चक्र' शब्द को लेकर अनेक अर्थ होते हैं । इस आधार पर कापालिक और दिगम्बर कुछ अधिक करते हैं । हे वरवर्णिनि! सिद्धान्त के वर्णन में जो अन्त में गोल आकार वाली रेखा होती है, वह यहाँ 'चक्र' शब्द से अभिहित होती है । अपने-अपने सिद्धान्त की युक्ति से बाहर कभी भी नहीं जाना चाहिये । जो चक्र के समान अभेद्य और अप्रतीकार्य है वह चक्र कहलाता है । अब कापालिकमत क्रम के अनुसार उद्धार क्रम को बतलाऊँगा । तार मैध त्रपा लक्ष्मी और काम ये पाँच पहले रहते हैं । सबके अन्त में पूर्वोक्त षडक्षरी जाननी चाहिये । जन्म काल मृत्यु मन्त्र सिद्धि कुल समय भावना और योनि ये (नौ) शब्द 'चक्र' शब्द के साथ समस्त होकर तथा ङेऽन्त रूप धारण कर मध्य में रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं जन्मचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
२. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
३. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मृत्युचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
४. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मन्त्रचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
५. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धिचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
६. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कुलचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
७. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं समयचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
८. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भावनाचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।
९. ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं योनिचक्राय हूं फट् नमः स्वाहा ।)

इस प्रकार चार प्रकार की नवारपूजा मैंने बतलायी ॥ १२९८-१३०३- ॥

[पञ्चारपूजाविधिः]

पञ्चारपूजामधुना समाकलय सादरा ॥ १३०४ ॥
दुरूहामल्पबुद्धीनां विचार्या धीमतामपि ।
असंलक्ष्यक्रमां मध्ये प्रसङ्गान्तरयोगतः ॥ १३०५ ॥
परिपाटीं पुरो वक्ष्ये शेष उद्धारमेव च ।
नवानामपि कोणानामुपरिष्टाद्वरानने ॥ १३०६ ॥
पञ्च कोणाः स्थिताः ज्ञेया एकैकस्मिंस्तु तत्र हि ।
सप्तविंशतिसंख्याका कोणे पूजा प्रजायते ॥ १३०७ ॥

पञ्चानामपि कोणानां पञ्चत्रिंशच्छताधिका ।
आख्या पुनर्भिन्नभिन्ना कोणानां जगदीश्वरि ॥ १३०८ ॥
सृष्टिस्थित्याख्यसंहारानाख्याभासपदाभिधा ।
कुलक्रमतयैकैव साख्या भिन्नार्चनक्रमे ॥ १३०९ ॥
आदौ सामान्यरूपेण तत्कुलक्रमकालिकाः ।
पूजयेत्तदनु ह्यासामुपासकतयोद्भटान् ॥ १३१० ॥
पूजयेत्तत्क्रमेणैव दिव्यौघानपि तत्परम् ।
पूजाद्वयमिदं प्रोक्तं ततो द्वादशकालिकाः ॥ १३११ ॥
तत्सोपासकदिव्यौघपुटिताः प्रत्यनन्तरम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याका पूजेयं सुरवन्दिते ॥ १३१२ ॥
उक्तानुक्ततया शेषे पूर्णाप्येका निगद्यते ।
सप्तविंशतिरित्येकरूपिण्यर्चा प्रजायते ॥ १३१३ ॥

पञ्चार पूजा-विधि—अब तुम आदर के सहित पञ्चार पूजा को सुनो। यह मूर्खों के लिये दुरूह और बुद्धिमानों के लिये विचार्य तथा अन्य प्रसङ्ग से सम्बद्ध होने के कारण मध्य में असंलक्ष्य क्रमवाली है। पहले परिपाटी को कहूँगा फिर अन्त में उद्धार बतलाऊँगा। हे वरानने! नवों कोणों के ऊपर पाँच कोणों को स्थित जानना चाहिये। उनमें भी एक-एक कोण में सत्ताईस-सत्ताईस संख्यक पूजा होती है। इस प्रकार पाँचों कोणों में एक सौ पैंतीस पूजायें होती हैं। हे जगदीश्वरि! कोणों के नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। वे नाम हैं—सृष्टि स्थिति संहार अनाख्या और भासा। कुलक्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न पूजाक्रम में वह अनाख्या एक ही होती है। पहले सामान्य रूप से उस कुल की कालियों की पूजा करनी चाहिये। उसके बाद इनके उपासक के रूप में उसी क्रम से उद्भटों की तत्पश्चात् दिव्यौघ गुरुओं की पूजा करनी चाहिये। ये दो पूजायें कही गयी हैं। तदनन्तर उपासक और दिव्यौघ से सम्पुटित द्वादश कालियों की पूजा करनी चाहिये। हे सुरवन्दिते! यह पूजा चौबीस संख्यावाली होती है उक्त-अनुक्त रूप से अन्त में एक पूर्णा पूजा भी कही जाती है। इस प्रकार यह सत्ताईस पूजा एकरूपिणी हो जाती है ॥ १३०४-१३१३ ॥

रीत्यानया परिज्ञेया पञ्चस्वर्चासमाकृतिः ।
दिव्यौघनाम्नाञ्चरमेपदव्या समये तया(?था)॥ १३१४ ॥
नामानि भिन्नभिन्नानि तिष्ठन्त्येकञ्च पार्वति ।
तत्तत्समय एवादः प्रकाश्यं युक्तियुक्ततः ॥ १३१५ ॥
क्रमादुद्धारमधुना कथयाम्यवधारय ।
तारह्रीकूर्चयोगिन्यः सरावाः प्रथमं स्थिताः ॥ १३१६ ॥
ततः सृष्टिकुलेत्युक्त्वा क्रमार्णाद्गतकालिका।
देव्यम्बाश्रीपादुकाभ्यो नम इत्यपि कीर्तयेत् ॥ १३१७ ॥

एष सामान्यरूपेण मन्त्रः सर्वार्चने मतः ।
अपरः सर्वदिव्यौघसामान्यार्चासु कथ्यते ॥ १३१८ ॥
चैतन्यकमलाकामस्त्रीडाकिन्यःक्रमात् स्थिताः ।
पूर्वमन्त्रस्य पञ्चार्णबीजादनु चतुर्दश ॥ १३१९ ॥
यानि वर्णानि तान्यत्र देयानि तदनन्तरम् ।
ससन्ध्युपासकपदाद्दिव्यौघश्रीपदं भवेत् ॥ १३२० ॥
पादुकाभ्यो नमश्चेति द्वितीयो मनुरीरितः ।

इस रीति से पाँचों अरों में समान आकार वाली पूजा जाननी चाहिये । दिव्यौघ नामों के अन्त में तथा पदवी के समय हे पार्वति! इसके भिन्न-भिन्न नाम तथा एक नाम होते हैं । इसका तत्तत् समय में ही युक्ति के साथ प्रकाशन करना चाहिये । अब क्रम से उद्धार बतला रहा हूँ, सुनो । पहले तार ह्रीं कूर्च योगिनी और राव कहते हैं । इसके बाद 'सृष्टिकुल' कहकर 'क्रम' के बाद 'गतकालिकादेव्यम्बा-श्रीपादुकाभ्यो नमः' कहना चाहिये । यह सामान्य मन्त्र समस्त पूजाओं में माना गया है । दूसरा मन्त्र सम्पूर्ण दिव्यौघ की सामान्य अर्चा में बतलाया जा रहा है—चैतन्य कमला काम स्त्री डाकिनी क्रम से स्थित रहते हैं । पूर्वमन्त्र के पाँच बीजों के बाद जो चौदह वर्ण (= सृष्टि कुलक्रमगतकालिकादेव्यम्बा) कहे गये उनको यहाँ लिखना चाहिये । तदनन्तर सन्धिसहित 'उपासक' पद के बाद 'दिव्यौघश्री' पद देना चाहिये । 'पादुकाभ्यो नमः' यह दूसरा मन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमगतकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकाभ्यो नमः ।
२. ओं श्रीं क्लीं स्त्रीं खफ्रें सृष्टिकुलक्रमगतकालिकोपासकदिव्यौघश्रीपादुकाभ्यो नमः) ॥ १३१४-१३२०- ॥

अतः परं चतुर्विंशमन्त्रानाकर्णय प्रिये ॥ १३२१ ॥
आदौ द्वादशकालीनां दिव्यानां द्वादशापि हि ।
एकैकं तस्य चैकैकं पुटितं मन्त्रमुच्चरेत् ॥ १३२२ ॥
पूजावसर ईशानि शृणूद्धारमतः परम् ।
पुरतः पञ्चबीजानां श्रेणी परिनिगद्यते ॥ १३२३ ॥
सर्वत्र सा स्थिरा ज्ञेया ततोऽनु च षडक्षरी ।
सा कालव्यापिनी चोक्ता ततो नामानि वै पृथक् ॥ १३२४ ॥
अन्ते षोडशवर्णाः स्युः कालव्यापिन एव हि ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमवधारय ॥ १३२५ ॥
आदिमन्त्रादिमाः पञ्चबीजश्रेणीपुरस्थिताः ।
ततः स्थिरा सृष्टिकुलक्रमे वे(चे)ति षडक्षरी ॥ १३२६ ॥
नामान्यथो भिन्नभिन्नान्याकर्णय वरानने ।

आदिविश्वौ सर्गगुप्तभावनीतय ईरिता: ॥ १३२७ ॥
मोहहर्षक्रोधजम्भप्राणसृष्टय एव च ।
शेषसंस्थान् षोडशार्णानत:परमुदीरये(त्) ॥ १३२८ ॥
तच्चापि कालिकाशब्दाद्देव्यम्बापदमेव च ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यपि पार्वति ॥ १३२९ ॥
पूर्वशब्दै: कालिकाया विग्रहश्च समर्थ्यते ।
नि:सन्धिरादिशब्देन प्रथम: परिकीर्तित: ॥ १३३० ॥

हे प्रिये! इसके बाद चौबीस मन्त्रों को सुनो । पहले दिव्य द्वादशकालियों के बारह मन्त्र कहने चाहिये । एक-एक मन्त्र को एक-एक से सम्पुटित कर उच्चरित करना चाहिये । हे ईशानि! इसके बाद पूजा के अवसर पर (प्रयुक्त होने वाले मन्त्र का) उद्धार सुनो । पहले पाँच बीजों का समूह कहा जाता है और उसे सर्वत्र स्थिर समझना चाहिये । इसके अनन्तर छह अक्षरों का सङ्घात रहता है । वह भी स्थायी रहता है । अन्त में सोलह वर्ण रहते हैं । वे भी कालव्यापी (= स्थायी) होते हैं । यह मन्त्रों का सामान्य उद्धार है । विशेष को जानो । प्रथम मन्त्र की प्रथम पञ्चबीज पंक्ति पहले स्थित रहती है । इसके अनन्तर 'सृष्टिकुलक्रमे' यह षडक्षरी स्थायी रहती है । इसके पश्चात् हे वरानने! भिन्न-भिन्न नामों को सुनो—आदि विश्व सर्ग गुप्त भाव नीति मोह हर्ष क्रोध जम्भ प्राण सृष्टि के बाद सोलह वर्णों को कहना चाहिये । वह अवशिष्ट वर्ण है—'कालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि' । पूर्व शब्दों के साथ 'कालिका' शब्द का समास माना जाता है । प्रथम शब्द के साथ पहला शब्द सन्धिरहित होता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे आदिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे विश्वकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे सर्गकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे गुप्तकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे भावकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे नीतिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे मोहकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे हर्षकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे क्रोधकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे जम्भकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:।
११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे प्राणकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमे सृष्टिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम:।) ॥ १३२१-१३३० ॥

अथ दिव्यौघमन्त्राणामुद्धारं वर्णयामि ते ।
अत्रापि पञ्चबीजानि कूटस्थानि पुरः सदा ॥ १३३१ ॥
पुनरष्टाक्षरी पूर्ववदेषा स्थिरतान्विता ।
ततः पूर्वोदितैः शब्दैर्मोहत्वेन व्यवस्थितैः ॥ १३३२ ॥
स्थिरया च नवाक्षर्य्या विगृह्य परिरक्ष्यते ।
ततो नामानि भिन्नानि द्विद्विवर्णात्मकानि हि ॥ १३३३ ॥
तैरिन्द्रशब्दस्य पुनर्विग्रहः परिपठ्यते ।
तदन्ते नाथशब्दश्च पञ्चस्वपि समः स्थिरः ॥ १३३४ ॥
शेषे दशाक्षरी ज्ञेया नाथवत्स्थैर्य्यभागिनी ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमवधारय ॥ १३३५ ॥
एषां सामान्यपूजायां पञ्चबीज्युदिता हि या ।
सैवात्रापि प्रयोक्तव्या स्थिरामष्टाक्षरीं शृणु ॥ १३३६ ॥
तच्च सृष्टिकुलस्यानुक्रमागतपदं भवेत् ।
नवाक्षरी कालिकानु देव्यम्बोपासकेति च ॥ १३३७ ॥
द्विद्विवर्णात्मकान् भिन्नभिन्नांच्छब्दानथो शृणु ।
देवी विद्या खगो ज्ञानं धर्मः सत्यं सुखं तथा ॥ १३३८ ॥
सिद्धः कल्पकुलं विज्ञो धीरश्च द्वादशैव हि ।
श्रीपादुकां पूजयामि नम एषा दशाक्षरी ॥ १३३९ ॥
एवं षड्विंशतिर्मन्त्रा मयोद्धृत्य प्रकाशिताः ।
सप्तविंशतिसंख्याकं पूर्णरूपं मनुं शृणु ॥ १३४० ॥
तारह्रीरावडाकिन्यः फेत्कारी तदनन्तरम् ।
सृष्टिकूटं सृष्टिकालीं(लि) कालग्रसनकारिणि ॥ १३४१ ॥
निराकारे च तदनु पुनः खेचरचर्यपि ।
ततस्त्रिभुवनेत्यर्णात् भरिताद् भैरवाद्रवेः ॥ १३४२ ॥
निस्तरङ्गपरे सर्वार्थसाधक इतीरयेत् ।
कुलाकुलाद्रूपिणी च शून्ये शान्ते मनोन्मनि ॥ १३४३ ॥
कैवल्ये च निरूपे च ततो निरुपमेऽपि च ।
निर्विकाशे सुप्रकाशे सृष्टीश्वरि तथैव च ॥ १३४४ ॥
योगिनीकमलाकामवधूकूर्चास्त्रहृच्छिरः ।
इति मन्त्रं समुच्चार्य तारः सृष्टिकुलक्रम- ॥ १३४५ ॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ।
इत्येकारपरिपाटी विशिष्य गदिता तव ॥ १३४६ ॥

अब तुमको दिव्यौघ मन्त्रों का उद्धार बतला रहा हूँ। यहाँ भी पूर्ववर्त्ती पाँच बीज सदा स्थायी रहती हैं। पुनः पूर्व की भाँति अष्टाक्षरी भी स्थिरता लिये होती है। इसके बाद मोह के रूप में व्यवस्थित पूर्वोक्त शब्दों के साथ स्थायी नवाक्षरी का समास होता

है । इसके बाद दो-दो अक्षरों वाले भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । उनके साथ 'इन्द्र' शब्द का समास होता है । उसके अन्त में पाँचों में 'नाथ' शब्द समान रूप से स्थिर रहता है । अन्त में दशाक्षरी जाननी चाहिये । वह भी 'नाथ' के समान स्थायी रहती है । इस प्रकार सामान्य उद्धार बतलाया गया । विशेषोद्धार को समझो । इनकी सामान्यपूजा में जो पाँच बीजों का समूह कहा गया, वही यहाँ भी समझना चाहिये । अब स्थायी अष्टाक्षरी को सुनो । वह है—'सृष्टिकुल' के बाद 'क्रमागत' पद । नवाक्षरी है—'कालिकादेव्यम्बोपासक' । इसके बाद दो-दो वर्णों वाले भिन्न-भिन्न शब्दों को सुनो । देवी विद्या खग ज्ञान धर्म सत्य सुख सिद्ध कल्प कुल विज्ञ और बारहवाँ है—धीर । इसके बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि नम:' । यह दशाक्षरी रहती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागत-आदिकालिकादेव्यम्बोपासकदेवीन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतविश्वकालिकादेव्यम्बोपासकविद्येन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतसर्गकालिकादेव्यम्बोपासकखगेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतगुप्तकालिकादेव्यम्बोपासकज्ञानेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतभावकालिकादेव्यम्बोपासकधर्मेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतनीतिकालिकादेव्यम्बोपासकसत्येन्द्र-नाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतमोहकालिकादेव्यम्बोपासकसुखेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतहर्षकालिकादेव्यम्बोपासकसिद्धेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतक्रोधकालिकादेव्यम्बोपासककल्पेन्द्र-नाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतजम्भकालिकादेव्यम्बोपासककुलेन्द्र-नाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतप्राणकालिकादेव्यम्बोपासकविज्ञेन्द्रनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें सृष्टिकुलक्रमागतसृष्टिकालिकादेव्यम्बोपासकधीरेन्द्रनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।)

इस प्रकार छब्बीस (= २ + १२ + १२) मन्त्रों का मैंने उद्धार किया । अव पूर्ण रूप वाले सत्ताईसवें मन्त्र को सुनो—तार ह्रीं राव डाकिनी फेत्कारी उसके बाद सृष्टिकूट के बाद ‘सृष्टिकालिकाकालग्रसनकारिणि निराकारे’ उसके वाद पुन: ‘खेचरचरि’ उसके बाद ‘त्रिभुवन’ वर्ण के पश्चात् ‘भरित’ के अनन्तर ‘भैरवाद्रवे’ उसके अनन्तर ‘निस्तरङ्गपरे सर्वार्थसाधके’ कहना चाहिये । ‘कुलाकुल’ फिर ‘रूपिणि’ के बाद ‘शून्ये शान्ते मनोन्मनि कैवल्ये निरुपे निरुपये निर्विकाशे सुप्रकाशे सृष्टीश्वरि’ के बाद योगिनी कमला काम वधू कूर्च अस्त्र हृदय और शिर इस मन्त्र का उच्चारण करने के बाद तार (= ओं) ‘सृष्टिकुलक्रमपलिकायै गुह्यकाल्यै नम:’ से पूजन करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें रक्षखरऊं सृष्टिकालि कालग्रसनकारिणि निराकारे खेचरचरि त्रिभुवनभरितभैरवाद्रवे (?) निस्तरङ्गपरे सर्वार्थसाधके कुलाकुलरूपिणि शून्ये शान्ते मनोन्मनि कैवल्ये नि (नी) रूपे निरूपमे निर्विकाशे सुप्रकाशे सृष्टीश्वरि छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फट् नम: स्वाहा) ।

इस प्रकार एक अर की परिपाटी को तुमको विशेष रूप से बतलाया गया ॥ १३३१-१३४६ ॥

[द्वितीयारपूजाविधानम्]

द्वितीयामधुना वक्ष्ये सावधाना निशामय ।
अस्यां क्रमो यः कथितः स एवात्रानुवर्तते ॥ १३४७ ॥
अग्रे तान्येव बीजानि शेषे तान्येव कीर्त्तयेत् ।
दिव्यौघमन्त्रेष्वप्येवं विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥ १३४८ ॥
सृष्टिस्थाने स्थितिर्ज्ञेया सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ।
नामानि कालिकायास्तु त्रित्रिवर्णात्मिकानि हि ॥ १३४९ ॥
दिव्यानामपि तावन्ति क्रमात्तान्यधुना ब्रुवे ।
नियमः समयश्चापि प्रकाशो मङ्गलं तथा ॥ १३५० ॥
सम्मोहश्च प्रतापश्च सम्वर्तो विभवोऽपि च ।
प्रकृतिः सुकृतश्चैव समाधिस्ताण्डवं तथा ॥ १३५१ ॥
स्थितिक्रमे कालिकातःपूर्वशब्दा इति स्मृताः ।
व्यभिचारो नाणुरपि पूर्वस्मादस्य बुध्यताम् ॥ १३५२ ॥
दिव्यौघा अथ कथ्यन्ते सर्वदैतदुपासकाः ।
भुवनश्च विवेकश्च कौलिको दीक्षितोऽपि च ॥ १३५३ ॥
प्रलयश्च प्रमोदश्च संविच्च कमलोदयौ ।

मर्यादाश्च विवादाश्च सर्वशेषेऽमृतं तथा ॥ १३५४ ॥
अजादिनामभि: सन्धि: कर्तव्यस्तत्तदन्तरे ।
पूर्वं यथेन्द्रशब्दान्ते दिव्यौघपदमीरिता (तम्) ॥ १३५५ ॥
तथात्रानन्दशब्दोऽन्ते तदन्ते नाथ एव च ।
सप्तविंशतिमन्त्राश्च स्युरेतेष्वपि पूर्ववत् ॥ १३५६ ॥
स्थितिक्रमस्य वै पूर्णामधुना कथयामि ते ।
चैतन्यं नरसिंहश्च विनादादित्रयं तथा ॥ १३५७ ॥
स्थितिकूटं समुच्चार्य स्थितिकालि समीरयेत् ।
सर्वाप्यायनकारिण्यनु स्थिति प्रतिकीर्तयेत् ॥ १३५८ ॥
निरोधसम्पूर्णपदाल्लक्षणीति समुद्धरेत् ।
भवबन्धपदस्यानु विमोचिनि समुद्धरेत् ॥ १३५९ ॥
शुद्धबुद्धस्वरूपेण ततोऽपरिमिताक्षरात् ।
तेजो निधानं सन्ध्यूनं महाबलपराक्रमम् ॥ १३६० ॥
सामरस्यपदस्यानु चारिणि प्रति संस्मरेत् ।
पुन: स्थितीश्वरीत्युक्त्वा पूर्वमन्त्रान्तगामिन: ॥ १३६१ ॥
वर्णान् दशात्रापि वदेत् साधको मन्त्रपूर्त्तये ।
एवं मन्त्रं समुच्चार्य तारात् स्थितिकुलक्रमम् ॥ १३६२ ॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ।
इति द्वितीयाररीतिर्विविच्य प्रतिपादिता ॥ १३६३ ॥

द्वितीयार पूजा का विधान—अब द्वितीय परिपाटी को बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो । इस प्रथम परिपाटी में जो क्रम कहा गया वही यहाँ अर्थात् द्वितीय परिपाटी में भी अनुवृत्त होता है । (मन्त्र में) पहले वे ही बीज रहते हैं और अन्त में भी उन्हीं (= पहले मन्त्र वाले) बीजों को कहना चाहिये । दिव्यौघ मन्त्रों में भी वही बात होती है । अब विशेष कहा जा रहा है । 'सृष्टि' के स्थान में 'स्थिति' शब्द का प्रयोग समझना चाहिये । शेष सब पूर्वोक्त के समान रहता है । काली के नाम तीन-तीन वर्णों वाले होते हैं । दिव्यौघों के भी नाम उतने ही वर्णों वाले होते हैं । अब इन (नामों) को कह रहा हूँ—निमय समय प्रकाश मङ्गल सम्मोह प्रताप सम्वर्त्त विभव प्रकृति सुकृत समाधि और ताण्डव । स्थिति क्रम में ये 'कालिका' के पूर्ववर्त्ती शब्द हैं, पूर्व पद्धति से इस पद्धति में रञ्चमात्र भी व्यभिचार नहीं जानना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे नियमकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे समयकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे प्रकाशकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे मङ्गलकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे सम्मोहकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे प्रतापकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे सम्वर्त्तकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे विभवकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे प्रकृतिकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे सुकृतकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे समाधिकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमे ताण्डवकालिकादेव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।)

अब इसकी सर्वदा उपासना करनेवाले दिव्यौघों का वर्णन कर रहा हूँ । भुवन विवेक कौलिक दीक्षित प्रलय प्रमोद संवित् कमल उदय मर्यादा विवाद और सबके अन्त में अमृत । जो नाम स्वरों से प्रारम्भ होते हैं उनके साथ बीच में सन्धि करनी चाहिये । जिस प्रकार पहले 'इन्द्र' शब्द के अन्त में दिव्यौघ पद (= नाथ) कहा गया उसी प्रकार यहाँ भी अन्त में 'आनन्द' शब्द और उसके अन्त में 'नाथ' शब्द रहेगा । इनमें भी पूर्व की भाँति सत्ताईस मन्त्र होते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतनियमकालिकादेव्यम्बोपासक-भुवनानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतसमयकालिकादेव्यम्बोपासक-विवेकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतप्रकाशकालिकादेव्यम्बोपासक-कौलिकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतमङ्गलकालिकादेव्यम्बोपासकदीक्षितानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतसम्मोहकालिकादेव्यम्बोपासकप्रलयानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतप्रतापकालिकादेव्यम्बोपासकप्रमोदानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतसम्बर्त्तकालिकादेव्यम्बोपासकसंविदानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतविभवकालिकादेव्यम्बोपासककमलानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतप्रकृतिकालिकादेव्यम्बोपासकउदयानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतसुकृतकालिकादेव्यम्बोपासकमर्यादानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतसमाधिकालिकादेव्यम्बोपासकविवादानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें स्थितिकुलक्रमागतताण्डवकालिकादेव्यम्बोपासकअमृतानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।)

अब स्थिति क्रम का अन्तिम मन्त्र तुमको बतला रहा हूँ । चैतन्य नरसिंह विनाद आदि तीन तथा स्थिति कूट का उच्चारण कर 'स्थितिकालि' कहना चाहिये । 'सर्वाप्यायनकारिणि' के बाद 'स्थिति' कहना चाहिये । 'निरोधसम्पूर्ण' पद के बाद 'लक्षणी' को उद्धृत करना चाहिये । 'भवबन्ध' पद के बाद 'विमोचिनि' को उद्धृत करना चाहिये । 'शुद्धबुद्धस्वरूपेण' फिर 'अपरिमित' अक्षर के बाद 'तेजोनिधान' सन्धिरहित 'महाबलपराक्रमसामरस्य' पदके बाद 'चारिणि' का संस्मरण करना चाहिये । पुन: साधक 'स्थितीश्वरि' कहकर पूर्वमन्त्र के अन्त में आनेवाले दश वर्णों को यहाँ भी मन्त्र की पूर्णता के लिये कहे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं क्षौं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं रक्षक्रूं स्थितिकालि सर्वाप्यायनकारिणि स्थितिनिरोधसम्पूर्णलक्षणि भवबन्धविमोचिनि शुद्धबुद्धस्वरूपेणापरिमित तेजोनिधानमहाबलपराक्रमसामरस्यपदचारिणि स्थितीश्वरि छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फट् नम: स्वाहा) ।

इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर तार के बाद अर्थात् 'ओं' के बाद 'स्थितिकुलक्रमपालिकायै नम:' इससे उसकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार दूसरी रीति स्पष्ट रूप से प्रतिपादित की गयी ॥ १३४७-१३६३ ॥

[तृतीयार(पूजा)विधानम्]

तृतीयारविधानं त्वमधुना कलय प्रिये ।
अत्रापि सैव मर्यादा या प्रोक्ता पूर्वयोर्द्वयोः ॥ १३६४ ॥
चतुर्वर्णानि नामानि ज्ञेयान्यत्रोभयोरपि ।
पूर्ववत् पञ्चबीज्यत्र सैवात्र प्रतिपाद्यते ॥ १३६५ ॥
सृष्टिस्थितिपदस्थाने संहारपदमीरयेत् ।
नामानि कलयेदानीं कालिकानां क्रमेण हि ॥ १३६६ ॥
शवाशिनी रक्तमुखी कालरात्रिस्ततः परम् ।
संहारिणी चण्डवृत्तिरावेशिन्यथ कथ्यते ॥ १३६७ ॥
वेगाकुला महामाया ततोऽप्यनु भगप्रिया ।
कामातुरा ततो जालन्धरी त्रिदशवन्दिते ॥ १३६८ ॥
कल्पमूर्त्तिः सर्वशेषे कालिकापूर्वगा इमाः ।
दिव्यौघानामथो नाम चतुर्वर्णात्मकं शृणु ॥ १३६९ ॥
कुलाकुलं प्रथमतः परापरमतः परम् ।
धर्म्माधर्मस्ततो ज्ञानाज्ञानं चैव वरानने ॥ १३७० ॥
नित्योऽनित्यश्च सदसद् विद्याविद्या ततः परम् ।
चराचरं ततो भावाभावोऽपि च मदामदः ॥ १३७१ ॥
लयालयः शक्त्यशक्तिरित्थं द्वादश कीर्त्तिताः ।
इन्द्रानन्दपदस्यान्ते (स्थाने) पदमीश्वरसंज्ञितम् ॥ १३७२ ॥
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ।
तार्तीयाख्यमथो पूर्णं शृणु मन्त्रं क्रमात्प्रिये ॥ १३७३ ॥
वेदादिः कर्णिका चैव दृष्कृतं तदनन्तरम् ।
तन्त्रा चर्पटमस्यानु कूटं संहारनामकम् ॥ १३७४ ॥
संहारकालीति ततो वदेत् सम्बुद्धिपूर्वकम् ।
महाचण्डपदाद् योगेश्वरि चण्डपदं ततः ॥ १३७५ ॥
कर्मसाधिनि सङ्कीर्त्य विश्वग्रासपदं वदेत् ।
घस्मर्यनु महामारी ततो विग्रहधारिणि ॥ १३७६ ॥
जगद्भक्षिणि सङ्कीर्त्य रुद्रक्रोधिनि संलिखेत् ।
सर्वशत्रुपदस्यान्ते प्रमर्द्दिनि विभावयेत् ॥ १३७७ ॥
ततो महापापपदात् प्रमोचिनि समुद्धरेत् ।
भोगमोक्षप्रदे चोक्त्वा संहारेश्वरि कीर्तयेत् ॥ १३७८ ॥
शेषे सैवात्रापि वेद्या पूर्वयोर्या दशाक्षरी ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य वेदादिं तदनन्तरम् ॥ १३७९ ॥
संहारपदतश्चापि कुलक्रमपदं वदेत् ।
पालिकायै गुह्यकाल्यै नम एतेन पूजयेत् ॥ १३८० ॥

तृतीयार पूजा-विधान—हे प्रिये! अब तुम तृतीयार विधान को जानो । पूर्ववर्त्ती दो अरों में जो नियम या पद्धति बतलायी गयी यहाँ भी वही है । यहाँ दोनों अर्थात् काली एवं दिव्यौघ में काली के चार वर्णों वाले नाम होते हैं ऐसा जानना चाहिये । पूर्व की भाँति पाँच बीजाक्षरों का यहाँ प्रतिपादन होता है । किन्तु 'सृष्टि स्थिति' पदों के बदले यहाँ 'संहार' पद कहना चाहिये । अब कालियों के नाम क्रम से सुनो—शवाशिनी रक्तमुखी कालरात्रि संहारिणी चण्डवृत्ति आवेशिनी वेगाकुला महामाया उसके बाद भगप्रिया कामातुरा जालन्धरी हे त्रिदशवन्दिते! सबके अन्त में कल्पमूर्त्ति । ये सब नाम कालिका के पूर्वगामी होते हैं । इसके बाद दिव्यौघों के चार वर्णों वाले नामों को सुनो—पहला कुलाकुल उसके बाद परापर फिर धर्माधर्म ज्ञानाज्ञान । हे वरानने! नित्यानित्य सदसद् विद्याविद्या उसके बाद चराचर फिर भावाभाव मदामद लयालय तथा शक्त्यशक्ति । इस प्रकार बारह नाम कहे गये । इन्द्र और आनन्द पदों के स्थान पर 'ईश्वर' पद कहना चाहिये । इसके बाद 'नाथ' शब्द कहना चाहिये । शेष सब पूर्व की भाँति जानना चाहिये ।

(काली मन्त्र का स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे शवाशिनीकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे रक्तमुखीकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे कालरात्रिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे संहारिणीकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे चण्डवृत्तिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे रावेशिनीकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे वेगाकुलाकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे महामायाकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे भगप्रियाकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे कामातुराकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे जालन्धरीकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमे कल्पमूर्त्तिकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।)

दिव्यौघों के मन्त्रों का स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतशवाशिनीकालिकादेव्यम्बोपासककुलाकुलेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतरक्तमुखीकालिकादेव्यम्बोपासकपरापरेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतकालरात्रिकालिकादेव्यम्बोपासकधर्माधर्मेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतसंहारिणीकालिकादेव्यम्बोपासकज्ञानाज्ञानेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतचण्डवृत्तिकालिकादेव्यम्बोपासकनित्यानित्येश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतआवेशिनीकालिकादेव्यम्बोपासकसदसदीश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतवेगाकुलाकालिकादेव्यम्बोपासकविद्याविद्येश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतमहामायाकालिकादेव्यम्बोपासकचराचरेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतभगप्रियाकालिकादेव्यम्बोपासकभावाभावेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतकामातुराकालिकादेव्यम्बोपासकमदामदेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतजालन्धरीकालिकादेव्यम्बोपासकलयालयेश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें संहारकुलक्रमागतकल्पमूर्त्तिकालिकादेव्यम्बोपासकशक्त्यशक्तीश्वरनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

हे प्रिये! इसके बाद तृतीय क्रम से तृतीय पूर्णमन्त्र को सुनो । वेदादि कर्णिका दुष्कृत उसके बाद तन्त्रा चर्पट इसके पश्चात् संहारकूट फिर सम्बोधनान्त पद 'संहारकाली' कहना चाहिये । 'महाचण्ड' पद के बाद 'योगेश्वरि चण्ड' पद फिर 'कर्मसाधिनि' कहकर 'विश्वग्रास' पद बोलना चाहिये । 'धस्मरि' के पश्चात् 'महामारी-विग्रहधारिणि जगद्भक्षिणि' का कथन कर 'रुद्रक्रोधिनि' का उल्लेख करना चाहिये ।

'सर्वशत्रु' पद के अन्त में 'मर्दिनि' की भावना करनी चाहिये । उसके अनन्तर 'महापाप' पद के बाद 'प्रमोचिनि' को उद्धृत करना चाहिये । 'भोगमोक्षप्रदे' कहकर 'संहारेश्वरि' का कीर्त्तन करना चाहिये । पूर्व दोनों मन्त्रों में जो दशाक्षरी वर्णित है, यहाँ भी अन्त में उसी को कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं छ्रक्ष्रह्लीं रह्लछरक्षह्लीं रक्षफ्रछ्रीं रज्रझक्ष्रीं स्हक्षम्लव्य्रऊं संहारकाली महाचण्डयोगेश्वरि चण्डकर्मसाधिनि विश्वग्रासधस्मरि महामारीविग्रहधारिणि जगद्भक्षिणि रुद्रक्रोधिनि सर्वशत्रुप्रमर्दिनि महापापप्रमोचिनि भोगमोक्षप्रदे संहारेश्वरि छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ १३६४-१३८० ॥

[चतुर्थारपूजाविधानम्]

विधानमवधेहि त्वं तुर्यस्यारस्य साम्प्रतम् ।
कुलक्रमपदस्य प्रागनाख्यापदमीरयेत् ॥ १३८१ ॥
दिव्यौघानां च सामान्यपूजास्वप्येतमीदृशम् ।
बीजाली सैव चात्रादौ सैवान्ते षोडशाक्षरी ॥ १३८२ ॥
कालिकानां नाम मध्ये त्रित्रिवर्णात्मकं प्रिये ।
कालाग्निरथ मार्त्तण्डो विचित्रं मुखरं तथा ॥ १३८३ ॥
ततो निदानमाधारो हिरण्यं भैरवोऽपि च ।
संक्षोभश्च विरावश्च दुर्गमस्तदनन्तरम् ॥ १३८४ ॥
विज्ञेया द्वादशतमा तुरीया सर्वशेषगा ।
इयान्विशेषः कथितः सर्वमन्यत्पुरोक्तवत् ॥ १३८५ ॥

चतुर्थार पूजा का विधान—अब तुम चतुर्थार का विधान सुनो—'कुलक्रम' पद के पहले 'अनाख्या' पद कहना चाहिये । दिव्यौघों की सामान्य पूजा में भी यह ऐसा ही अर्थात् 'अनाख्या' पद ही रहता है । यहाँ पहले बीजपंक्ति तथा अन्त में षोडशाक्षरी भी वही रहती है । हे प्रिये! मध्य में कालियों का नाम तीन-तीन वर्णोंवाला होता है । (वे नाम निम्नलिखित हैं—) कालाग्नि मार्तण्ड विचित्र मुखर निदान आधार हिरण्य भैरव संक्षोभ विराव उसके पश्चात् दुर्गम तथा बारहवीं देवी तुरीया सबके अन्त में है । इतना विशेष कहा गया । अन्य सब पूर्वोक्त की भाँति रहता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे कालाग्निकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे मार्तण्डकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

३. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे विचित्रकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे मुखरकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे निदानकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे आधारकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे हिरण्यकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे भैरवकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
९. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे संक्षोभकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१०. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे विरावकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
११. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे दुर्गमकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमे तुरीयाकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।) ॥ १३८१-१३८५ ॥

[दिव्यौघनामानि]

दिव्यौघानामथो नाम वर्णयामि सुरेश्वरि ।
द्विद्विवर्णात्मकं नाम शेषे पादपदादिकम् ॥ १३८६ ॥
सर्वत्रैवं परिज्ञेयं तदाख्या चतुरक्षरी ।
आचार्यपदमेतेषां पद्धतिः परिकीर्तिता ॥ १३८७ ॥
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वत्रैव समः स्थितः ।
पद्मः शङ्खो ध्वजो वज्रः कल्पः सिद्धिस्तथैव च ॥ १३८८ ॥
धर्मो लोकः सत्यनित्यौ शुद्धसूक्ष्मौ ततः परौ ।
अष्टवर्णात्मकं चैषां तेन नाम प्रसिद्ध्यति ॥ १३८९ ॥

दिव्यौघों के नाम—हे सुरेश्वरि! अब दिव्यौघों के नाम का वर्णन कर रहा हूँ । यह नाम दो-दो अक्षरोंवाला है तथा अन्त में 'पाद' पद अधिक रहता है । इस प्रकार सर्वत्र वह संज्ञा चार अक्षरोंवाली जाननी चाहिये । इनकी पद्धति 'आचार्य' पद कही गयी है । उसके अन्त में 'नाथ' पद सर्वत्र समान रूप से स्थित रहता है । पद्म शङ्ख ध्वज वज्र कल्प सिद्धि धर्म लोक सत्य नित्य शुद्ध सूक्ष्म (ये नाम हैं) इस प्रकार

इनके नाम आठ वर्णोंवाले सिद्ध होते हैं। (वे आठ वर्ण इस प्रकार होते हैं—नाम के दो अक्षर + पाद के दो अक्षर + ससन्धि आचार्य के दो अक्षर + नाथ के दो अक्षर)।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतकालाग्निकालिकादेव्यम्बोपासक पद्मपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतमार्तण्डकालिकादेव्यम्बोपासक शङ्खपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

३. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतविचित्रकालिकादेव्यम्बोपासक ध्वजपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

४. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतमुखरकालिकादेव्यम्बोपासक वज्रपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

५. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतनिदानकालिकादेव्यम्बोपासक कल्पपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

६. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतआधारकालिकादेव्यम्बोपासक सिद्धिपादाचार्यनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

७. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतहिरण्यकालिकादेव्यम्बोपासक धर्मपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

८. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतभैरवकालिकादेव्यम्बोपासक लोकपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

९. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतसंक्षोभकालिकादेव्यम्बोपासक सत्यपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

१०. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतविरावकालिकादेव्यम्बोपासक नित्यपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

११. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागतदुर्गमकालिकादेव्यम्बोपासक शुद्धपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।

१२. ओं ह्लीं हूं छ्रीं फ्रें अनाख्याकुलक्रमागततुरीयाकालिकादेव्यम्बोपासक सूक्ष्मपादाचार्यनाथश्रीपादुकां पूजयामि नम: ।) ॥ १३८६-१३८९ ॥

[अनाख्यापूर्णहोममन्त्रः]

अथानाख्यापूर्णहोममनुमाकर्णयोत्तमम् ।
विवत्सादिचतुष्कं च तारादिं प्रथमं स्मरेत् ॥ १३९० ॥
अनाख्याकूटमस्यान्तेऽनाख्याकालि ततः परम् ।
महाचण्डे चण्डमुखि चण्डयोगेश्वरीति च ॥ १३९१ ॥
ततोऽनु सर्वसमयलोपिनि प्रतिकीर्त्तयेत् ।

कुलार्णात्समयार्णाच्च प्रकाशिनि समालिखेत् ॥ १३९२ ॥
विसन्ध्यं(न्ध्य) मृतमूर्त्ते च तथैवासिद्धिदायिनी ।
नवपञ्चचक्रनिलये ततः परमुदीरयेत् ॥ १३९३ ॥
ततः सन्धिविहीनं स्यादनाख्येश्वरि चेत्यपि ।
योगिन्याद्या शिरोऽन्ता च सैवात्रापि दशाक्षरी ॥ १३९४ ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य प्रणवञ्च ततः परम् ।
यथाक्षरपदं पश्चात् स्यादनाख्याकुलक्रम ॥ १३९५ ॥
पालिकायै गुह्यकाल्यै नमः शेषे नियोजयेत् ।
एवमारस्य तुर्यस्य विधानं प्रतिपादितम् ॥ १३९६ ॥

अनाख्यापूर्ण होम मन्त्र—अब उत्तम अनाख्यापूर्ण होम मन्त्र को सुनो । पहले तार फिर विवत्स आदि चार का स्मरण करना चाहिये । फिर अनाख्या कूट इसके अन्त में 'अनाख्या कालि' फिर 'महाचण्डे चण्डमुखि चण्डयोगेश्वरि' कहे । उसके पश्चात् 'सर्वसमयलोपिनि' का कीर्त्तन करना चाहिये । 'कुल' एवं 'समय' वर्णों के बाद 'प्रकाशिनि' का उल्लेख करना चाहिये । सन्धिरहित 'मृतमूर्त्ते' उसी प्रकार 'आसिद्धिदायिनि' उसके बाद 'नवपञ्चचक्रनिलये' को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद सन्धिविहीन 'अनाख्येश्वरि' लिखना चाहिये । यहाँ भी योगिनी बीज से लेकर शिरोमन्त्र तक वही दशाक्षरी रहती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्खफ्रीं ह्खफ्रूं ह्खफ्रैं ह्खफ्रौं क्षस्हम्लव्य्रऊं अनाख्याकालि महाचण्डे चण्डमुखि चण्डयोगेश्वरि सर्वसमयलोपिनि कुलसमयप्रकाशिनि अमृतमूर्त्ते आसिद्धिदायिनि नवपञ्चचक्रनिलये अनाख्येश्वरि छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर उसके बाद प्रणव अर्थात् ओं के पश्चात् 'अनाख्याकुलक्रमपालिकायै गुह्यकाल्यै नमः' को अन्त में जोड़ना चाहिये । इस प्रकार चतुर्थ आर का पूजा-विधान बतलाया गया ॥ १३९०-१३९६ ॥

भासाभिधस्य चारस्य पञ्चमस्याधुना शृणु ।
भासापदं प्रयोक्तव्यं पञ्चबीजाक्षरादनु ॥ १३९७ ॥
दिव्यौघानामादिमन्त्रेष्वेवमेव सुरेश्वरि ।
भिन्नभिन्नानि नामानि कालिकानामथ ब्रुवे ॥ १३९८ ॥
तान्यपि द्विद्विवर्णानि भासाकालीकुलार्चने ।
मन्त्रो हंसक्रमश्चक्रं बलं योगस्तथैव च ॥ १३९९ ॥
व्योम ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र ईशः शिवस्तथा ।
पुरोक्तवत्सर्वमन्यद्विज्ञेयं बुद्धिशालिभिः ॥ १४०० ॥
दिव्यानामप्यथो नाम द्विद्विवर्णात्मकं शृणु ।
मही छत्रं योगधरासिद्धिवृद्धय एव च ॥ १४०१ ॥

प्राणः शशी कुलं मन्त्रं सुधा ज्ञानानि च क्रमात्।
एषामन्ते प्रदातव्यो धरशब्दोऽखिलात्मकम् ॥ १४०२ ॥
अस्याप्यन्ते सिद्धपदं पद्धतिन्वेन विश्रुतम् ।
तदन्ते नाथशब्दश्च सर्वत्रैव समः स्थिरः ॥ १४०३ ॥
सर्वमन्यत्पूर्वरीत्या वेदितव्यं वरानने ।

अब भासा नामक पञ्चम आर का पूजा-विधान सुनो । पाँच बीजाक्षरों के बाद 'भासा' पद का प्रयोग करना चाहिये । दिव्यौघों के आदि मन्त्रों में भी हे सुरेश्वरि! ऐसा ही होता है अर्थात् पहले पाँच बीजाक्षर प्रयुक्त होते हैं । अब कालिकाओं के भिन्न-भिन्न नामों को बतला रहा हूँ । वे भी दो-दो वर्णोंवाले होते हैं । वे हैं—मन्त्र हंस क्रम चक्र बल योग व्योम ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश शिव । अन्य सब कुछ बुद्धिमान् लोगों को पूर्वोक्त की भाँति जानना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे मन्त्रकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे हंसकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे क्रमकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे चक्रकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे बलकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे योगकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे व्योमकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे ब्रह्मकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे विष्णुकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे रुद्रकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे ईशकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमे शिवकालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।)

इसके बाद दिव्यौघों के भी दो-दो वर्णवाले नामों को सुनो—मही छत्र योग धरा सिद्धि वृद्धि प्राण काशी कुल मन्त्र सुधा ज्ञान । इन सबके अन्त में 'धर' शब्द देना चाहिये । इसके भी अन्त में 'सिद्ध' पद पद्धति के अनुसार प्रसिद्ध रहता है । उसके अन्त में 'नाथ' शब्द सर्वत्र समान रूप से रहता है । हे वरानने! अन्य सब पूर्ववत् जानना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतमन्त्रकालिकादेव्यम्बोपासकमहीधरसिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतहंसकालिकादेव्यम्बोपासकछत्रधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतक्रमकालिकादेव्यम्बोपासकयोगधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतचक्रकालिकादेव्यम्बोपासकधराधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतबलकालिकादेव्यम्बोपासकसिद्धिधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतयोगकालिकादेव्यम्बोपासकवृद्धिधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतव्योमकालिकादेव्यम्बोपासकप्राणधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतब्रह्मकालिकादेव्यम्बोपासककाशीधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
९. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतविष्णुकालिकादेव्यम्बोपासककुलधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१०. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतरुद्रकालिकादेव्यम्बोपासकमन्त्रधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
११. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतईशकालिकादेव्यम्बोपासकसुधाधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१२. ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें भासाकुलक्रमागतशिवकालिकादेव्यम्बोपासकज्ञानधर-
सिद्धनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।) ॥ १३९७-१४०३- ॥

[भासापूर्णाहुतिमन्त्रः]

भासापूर्णाहुतिमनुमधुनाकलय स्फुटम् ॥ १४०४ ॥
षट्चक्रादिद्वयं तारपूर्वं प्रथमतः स्मरेत् ।
शाम्भवं चैव चिच्छक्तिं भासाकूटं ततः परम् ॥ १४०५ ॥
भासेश्वरि समाभाष्य महातेजोवति स्मरेत् ।
प्रकाशिनीति प्रवदेत्तुरीयापदतस्ततः ॥ १४०६ ॥
विसन्ध्यवर्णेश्वरि च सर्वाप्यायनकारिणि ।
प्रबोधिनि ब्रह्मविद्यापदादनु ततः परम् ॥ १४०७ ॥
स्वमित्यक्षरतो ब्रूयात् प्रकाशय युगं प्रिये ।
सामरस्यपदात् तद्वत् समयाच्चापि चारिणी(णि) ॥ १४०८ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेया योगिन्यादिदशाक्षरी ।
इति पञ्चारचक्रस्य विधानमुपपादितम् ॥ १४०९ ॥

अत्र मन्त्रः समुदितः पञ्चत्रिंशच्छत तथा ।
पञ्चारे पूजितेऽमुष्मिन्नेतेन विधिना प्रिये ॥ १४१० ॥
अन्यावरणपूजा हि न कृताऽपि कृतां भवेत् ।
अकृतायाममुष्यां तु कृताप्यन्याऽकृताभवेत् ॥ १४११ ॥

भासापूर्णाहुति मन्त्र—अब भासा की पूर्णाहुति को स्पष्ट रूप से सुनो । पहले तार फिर षट्चक्र आदि दो का स्मरण करना चाहिये । इसके बाद शाम्भव कूट चित्शक्तिकूट भासाकूट के बाद 'भासेश्वरि' कहकर 'महातेजोवति' का स्मरण करना चाहिये । फिर 'तुरीया' पद के बाद 'प्रकाशिनि' कहना चाहिये । सन्धिरहित 'अवर्णेश्वरि' तथा 'सर्वाप्यायन कारिणि' 'ब्रह्मविद्यां' पदों के बाद 'प्रबोधिनि' कहना चाहिये । उसके बाद 'स्वं' कहकर हे प्रिये! 'प्रकाशय' को दो बार कहे । 'सामरस्य' और उसी प्रकार 'समय' पद के बाद 'चारिणि' के अनन्तर सबके अन्त में वही योगिनी आदि दश अक्षरों को कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं सह जहलक्षम्लवनऊं सक्लह्हसखफ्रक्ष्रीं (?) क्षह्म्लव्य्रऊं भासेश्वरि महातेजोवति तुरीयाप्रकाशिनि अवर्णेश्वरि सर्वाप्यायन- कारिणि ब्रह्मविद्याप्रबोधिनि स्वं प्रकाशय प्रकाशय सामरस्यसमयचारिणि छ्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस प्रकार पञ्चारचक्र की पूजा का विधान बतलाया गया । यहाँ अर्थात् पाँच अर में एक सौं पैंतीस मन्त्र बतलाये गये । हे प्रिये! उक्त विधि से इस पञ्चार चक्र की पूजा किये जाने पर अन्य आवरणों में न की गयी पूजा भी की गयी हो जाती है । इस पूजा के न किये जाने पर अन्य की गयी पूजा भी न की गयी होती है ॥ १४०४-१४११ ॥

[प्रकारान्तरेण प्रत्येकपञ्चारपूजाविधि:]

अथ प्रत्येकपञ्चारपूजामन्यां निशामय ।
पृथिव्यादीनि पूज्यानि महाभूतानि पञ्च वै ॥ १४१२ ॥
विधानं तस्य कलय गदतो मम सुन्दरि ।
मैधरावौ पाशमायाङ्कुशाः पञ्चाग्रतः स्थिताः ॥ १४१३ ॥
केवलौ हृच्छिरोमन्त्रौ सर्वशेषे प्रतिष्ठितौ ।
मध्ये पृथिव्यै अद्भ्यश्च किन्त्वयं सन्धिनान्वितः॥ १४१४ ॥
तेजसे वायवे चैव तथाकाशाय चेत्यपि ।

दूसरे प्रकार से प्रत्येक पञ्चार की पूजा-विधि—अब अन्य प्रकार की प्रत्येक पञ्चार पूजा को सुनो । पृथिवी आदि पाँच महाभूतों की पूजा करनी चाहिये । हे सुन्दरि! उसका वर्णन करने वाले मुझसे विधान सुनो—मैध राव पाश माया अङ्कुश ये पाँच बीज पहले रहते हैं । सबके अन्त में केवल हृदय और शिरोमन्त्र रहते हैं ।

मध्य में 'पृथिव्यै अद्भ्य' रहते हैं किन्तु वे सन्धि से युक्त होते हैं । उसी प्रकार 'तेजसे वायवे आकाशाय' भी रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें आं ह्लीं क्रों पृथिव्यै नमः स्वाहा ।
२. ओं फ्रें आं ह्लीं क्रों अद्भ्यो नमः स्वाहा ।
३. ओं फ्रें आं ह्लीं क्रों तेजसे नमः स्वाहा ।
४. ओं फ्रें आं ह्लीं क्रों वायवे नमः स्वाहा ।
५. ओं फ्रें आं ह्लीं क्रों आकाशाय नमः स्वाहा ।) ॥ १४१२-१४१४- ॥

[अत्र कापालिकमतम्]

विदधत्यधिकं किञ्चित् अत्र कापालिकाः प्रिये॥ १४१५ ॥
तदपि व्याहरिष्यामि फलाधिक्याय केवलम् ।
पञ्चेन्द्रियाण्यर्चयन्ति पञ्चारे मन्त्रपूर्वकम् ॥ १४१६ ॥
तच्च भूतक्रमेणैव तत्तद्वस्तुनिदानतः ।
तारो रमा च रावश्च डाकिनी कर्णिकाऽपि च ॥ १४१७ ॥
अग्रतोऽमूनि बीजानि चरमे हृदयं शिरः ।
मध्ये घ्राणाय जिह्वायै चक्षुषे च त्वचे तथा ॥ १४१८ ॥
कर्णायेति च पूज्यन्ते पञ्चेन्द्रियगणाः क्रमात् ।
आत्मानं पण्डितम्मन्याः किञ्चिदन्यद्दिगम्बराः ॥ १४१९ ॥
प्रस्तुवन्त्यन्यदधिकं तदपि व्याहरामि ते ।

इस विषय में कापालिक मत—हे प्रिये! इस विषय में कापालिक कुछ अधिक करते हैं । उसे भी मैं केवल फलाधिक्य के लिये कह रहा हूँ । कापालिक लोग पञ्चार चक्र में मन्त्र के साथ पाँच इन्द्रियों की पूजा करते हैं और वह पूजन भूतों के क्रम से तत्तद् वस्तु के निदान से करते हैं । (मन्त्र का उद्धार यह है—) तार रमा राव डाकिनी कर्णिका ये बीज पहले रहते हैं । अन्त में हृदय और शिरो बीज होते हैं । मध्य में 'घ्राणाय जिह्वायै चक्षुषे त्वचे तथा कर्णाय' होते हैं । इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय समूह क्रम से पूजित होते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं श्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्ह्लीं घ्राणाय नमः स्वाहा ।
२. ओं श्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्ह्लीं जिह्वायै नमः स्वाहा ।
३. ओं श्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्ह्लीं चक्षुषे नमः स्वाहा ।
४. ओं श्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्ह्लीं त्वचे नमः स्वाहा ।
५. ओं श्रीं फ्रें खफ्रें क्ष्ह्लीं कर्णाय नमः स्वाहा ।)

कुछ अन्य दिगम्वर लोग जो अपने को पण्डित मानते हैं कुछ और अधिक को प्रस्तुत करते हैं उसे भी मैं तुमको बतला रहा हूँ ॥ १४१५-१४१९- ॥

[अत्र दिगम्बरमतम्]

कल्पादीनि तु बीजानि पञ्च तारादिमानि हि ॥ १४२० ॥
अग्रतः समनूद्धृत्य पश्चिमे केवलं नमः ।
मध्ये गन्धो रसो रूपं स्पर्शः शब्दोऽप्यनुक्रमात्॥ १४२१ ॥
प्रत्येकं विग्रहीभूतास्तन्मात्रापदसञ्चयैः ।
ङेऽन्तश्चेत्युदिता मन्त्रा इन्द्रियग्राह्यवस्तुनः ॥ १४२२ ॥

दिगम्बर मत—पहले तार फिर कल्प आदि पाँच बीजों को पहले उद्धृत कर अन्त में केवल 'नम:' कहा जाता है । मध्य में 'गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द' क्रम से रहते हैं । इनमें से प्रत्येक 'तन्मात्रा' पद समूहों से समस्त रहता है । ये मन्त्र ङेऽन्त होते हैं । ये गन्ध तन्मात्रा आदि वस्तु इन्द्रियग्राह्यवस्तु से सम्बद्ध होती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं गन्धतन्मात्रायै नमः ।
२. ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं रसतन्मात्रायै नमः ।
३. ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं रूपतन्मात्रायै नमः ।
४. ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं स्पर्शतन्मात्रायै नमः ।
५. ओं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं शव्दतन्मात्रायै नमः ।) ॥ १४२०-१४२२ ॥

[अत्र मौलेयमतम्]

अधिक्यमाचरन्त्यत्र मौलेयाः पुनरेव हि ।
पञ्च प्राणान् पूजयन्ति तच्चापि विनिबोध मे ॥ १४२३ ॥
पाशः कला च शर्वश्च मैधमश्वत्थ एव च ।
व्याहृत्य पुरतः पञ्च शेषे हृच्छिरसी वदेत् ॥ १४२४ ॥
आदौ प्राणस्ततोऽपानः समानस्तदनन्तरम् ।
उदानस्तदनु व्यानो ङेन्तान् मध्ये क्रमात् पठेत् ॥ १४२५ ॥

मौलेय मत—इस विषय में मौलेय लोग कुछ और अधिक करते हैं । वे पञ्च प्राणों की पूजा करते हैं । उसे भी मुझसे जानो । पहले पाश कला शर्व मैध और अश्वत्थ को कहकर अन्त में हृदय और शिरो मन्त्र कहने चाहिये । पहले प्राण फिर अपान तदनन्तर समान फिर उदान उसके पश्चात् व्यान इनको मध्य में चतुर्थ्यन्त कहके पढ़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. आं ईं ऊं ऐं औं प्राणाय नमः स्वाहा ।

२. आं ईं ऊं ऐं औं अपानाय नमः स्वाहा ।
३. आं ईं ऊं ऐं औं समानाय नमः स्वाहा ।
४. आं ईं ऊं ऐं औं उदानाय नमः स्वाहा ।
५. आं ईं ऊं ऐं औं व्यानाय नमः स्वाहा ।) ॥ १४२३-१४२५ ॥

[अत्र भाण्डिकेरमतम्]

इतोऽप्यधिकमिच्छन्ति भाण्डिकेरा वरानने ।
एभिरेवादिभागस्थैः बीजैः शेषे नमोऽन्वितैः ॥ १४२६ ॥
मध्ये ङेऽन्तान् पूजयन्ति पञ्चान्यान् प्राणमारुतान् ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ १४२७ ॥
इति पञ्चारपूजा ते विस्तरेणोपपादिता ।

भाण्डिकेर मत—हे वरानने! भाण्डिकेर मतावलम्वी उक्त पूजा से भी अधिक चाहते हैं । मन्त्र के प्रारम्भ में आने वाले उक्त पाँच स्वरों तथा अन्त में 'नमः' के साथ मध्य में वे पाँच अन्य चतुर्थ्यन्त प्राणवायुओं की अर्चना करते हैं । वे प्राण वायु हैं—नाग कूर्म कृकर देवदत्त और धनञ्जय ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. आं ईं ऊं ऐं औं नागाय नमः ।
२. आं ईं ऊं ऐं औं कूर्माय नमः ।
३. आं ईं ऊं ऐं औं कृकराय नमः ।
४. आं ईं ऊं ऐं औं देवदत्ताय नमः ।
५. आं ईं ऊं ऐं औं धनञ्जय नमः ।) ॥ १४२६-१४२७- ॥

[त्र्यारपूजाविधिः]

त्र्यारपूजाऽधुना देवि कथ्यते बहुविस्तरा ॥ १४२८ ॥
गुणास्त्रयस्त्रयो देवा अग्नयस्त्रय एव च ।
भुवनानि तथा त्रीणि तिस्त्रोऽवस्थास्ततः परम् ॥ १४२९ ॥
तिस्त्रः सन्ध्यास्त्रयः कालास्तिस्त्रो वीथय एव च ।
वस्तूनामेवमष्टानां त्रितयं त्रितयं भवेत् ॥ १४३० ॥
तारह्रीरावबीजानि पुरो भागे नियोजयेत् ।
चरमे हृच्छिरोमन्त्रौ मध्यगांछृण्वतः परम् ॥ १४३१ ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैभिर्गुणशब्दस्य विग्रहः ।
शुक्लो रक्तः श्याम एभिर्वर्णशब्दस्य विग्रहः ॥ १४३२ ॥
पालनसृष्टिसंहारैः कर्तृशब्दस्य विग्रहः ।
ङेऽन्तास्त्रयोऽपि कर्तव्या नियोज्या मध्य एव च ॥ १४३३ ॥

तार: स्मरश्च प्रासादो बीजानि त्रीणि वै पुर: ।
शेषे तावेव मन्त्रौ द्वौ त्रींच्छब्दान् मध्यगांच्छृणु ॥ १४३४ ॥
विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च ङेऽन्तत्वेन निरूपिता: ।
पुर: कामत्रपालक्ष्म्यस्तावेव चरमे मनू ॥ १४३५ ॥
मध्ये ङेऽन्ता दक्षिणश्च गार्हपत्यस्तथैव च ।
पुनराहवनीयश्च ङेऽन्तोऽप्यग्नि: पृथक् पृथक् ॥ १४३६ ॥

त्र्यार पूजा की विधि—हे देवि! अब बहुत विस्तार वाली त्र्यार पूजा कही जा रही है । तीन गुण (= सत्त्व, रजस्, तमस्), तीन देव (= ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र), तीन अग्नियाँ (= आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिण), तीन भुवन (= स्वर्ग, मर्त्य, पाताल), तीन अवस्थायें (= बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य), तीन सन्ध्यायें (= प्रात:, मध्याह्न, सायं), तीन काल (= भूत, वर्तमान, भविष्य), तीन वीथियाँ (= तीन ग्रह क्षेत्र जिनके नाम हैं—अजवीथी, नागवीथी और देववीथी) । इस प्रकार आठ वस्तुओं के तीन-तीन प्रकार होते हैं । पहले तार ह्रीं राव बीजों को जोड़ना चाहिये । अन्त में हृदय एवं शिरो मन्त्र लिखना चाहिये । सत्त्व रजस् तमस् इनके साथ 'गुण' शब्द का समास होता है । शुक्ल रक्त और श्याम इनके साथ 'वर्ण' शब्द का समास होता है । पालन सृष्टि संहार इनके साथ 'कर्तृ शब्द समस्त होता है । तीनों को ङेऽन्त बनाना चाहिये और मध्य में रखना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं फ्रें सत्त्वगुणाय शुक्लवर्णाय पालनकर्त्रे नम: स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं फ्रें रजोगुणाय रक्तवर्णाय सृष्टिकर्त्रे नम: स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं फ्रें तमोगुणाय श्यामवर्णाय संहारकर्त्रे नम: स्वाहा ।)

तार स्मर प्रासाद तीन बीज पहले रहते हैं अन्त में वे दोनों (= नम: स्वाहा) रहते हैं । मध्यगामी तीन शब्दों को सुनो—विष्णु ब्रह्मा और रुद्र ङेऽन्त के रूप में रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं क्लीं हौं विष्णवे नम: स्वाहा ।
२. ओं क्लीं हौं ब्रह्मणे नम: स्वाहा ।
३. ओं क्लीं हौं रुद्राय नम: स्वाहा ।)

काम त्रपा लक्ष्मी बीजों को पहले रखना चाहिये । अन्त में वे ही दो मन्त्र रहते हैं । मध्य में ङेऽन्त दक्षिण गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. क्लीं ह्रीं श्रीं दक्षिणाग्नये नम: स्वाहा ।

२. क्लीं ह्रीं श्रीं गार्हपत्याग्नये नमः स्वाहा ।
३. क्लीं ह्रीं श्रीं आहवनीयाग्नये नमः स्वाहा ।) ॥ १४२८-१४३६ ॥

मैधाऽमाशाकिनीरादौ वदेच्छेषे नमः शिरः।
स्वर्गं मर्त्यं च पातालं मध्ये ङेऽन्तं विनिर्दिशेत्॥ १४३७ ॥
चैतन्यकामताराः स्युरेकैकार्णाः पृथक् पृथक्।
मध्ये बाल्यं यौवनं च जराः ङेऽन्ताः पृथक् पृथक्॥ १४३८ ॥
हृच्छिरोऽस्त्रं क्रमेणैवैकैकत्र विनियोजयेत्।
पुरस्ताराङ्गना कूर्चा अङ्गुष्ठोऽन्तकेवलः॥ १४३९ ॥
मध्ये प्रातश्च मध्याह्नसायाह्नाख्यैः पदैः प्रिये।
सन्ध्यां विगृह्य ङेऽन्तांश्च प्रत्येकं योजयेन् मनौ॥ १४४० ॥
पाशमायाङ्कुशाः पूर्वं शेषे हृच्छिरसी अपि।
अतीतो वर्तमानश्च भविष्यदिति नामभिः॥ १४४१ ॥
पदैः कालपदं चापि विगृह्य वरवर्णिनि।
सप्तम्यावरणार्चायां मध्ये ङेऽन्तां विनिःक्षिपेत्॥ १४४२ ॥
तारो माया योगिनी च शाकिनी डाकिनी तथा।
एतानि पुरतो दत्त्वा शेषे कूर्चास्त्रहृच्छिरः॥ १४४३ ॥
मध्येऽजवीथी प्रथमं नागवीथी ततः परम्।
देववीथी च निर्देश्या ङेऽन्तत्वेन सुरेश्वरि॥ १४४४ ॥
प्रत्येकं त्रित्रिरूपेण प्रोक्ताष्टौ त्र्यारगार्हणा।

पहले मैध अमा और शाकिनी तीन को कहना चाहिये । अन्त में 'नमः' और शिर बोलना चाहिये । मध्य में स्वर्ग मर्त्य पाताल को ङेऽन्त बनाकर रखना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं ब्लूं फ्रें स्वर्गलोकाय नमः स्वाहा ।
२. ऐं ब्लूं फ्रें मर्त्यलोकाय नमः स्वाहा ।
३. ऐं ब्लूं फ्रें पाताललोकाय नमः स्वाहा ।)

चैतन्य काम तार ये एकवर्ण वाले बीज पृथक्-पृथक् (पहले) रहते हैं । मध्य में बाल्य यौवन जरा ङेऽन्त एवं पृथक्-पृथक् रहते हैं । अन्त में एक-एक जगह हृदय शिर और अस्त्र क्रम से रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं क्लीं ओं बाल्याय नमः स्वाहा फट् ।
२. ओं क्लीं ओं यौवनाय नमः स्वाहा फट् ।
३. ओं क्लीं ओं जरायै नमः स्वाहा फट् ।)

पहले तार अङ्गना कूर्च रहते हैं । अन्त में केवल अङ्गुष्ठ (= आं) रहता है । हे प्रिये! मध्य में प्रात: मध्याह्न सायाह्न पदों के साथ 'सन्ध्या' का समास कर ङेऽन्त बनाने के बाद प्रत्येक मन्त्र में जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं स्त्रीं हूं प्रात:सन्ध्यायै आं ।
२. ओं स्त्रीं हूं मध्याह्नसन्ध्यायै आं ।
३. ओं स्त्रीं हूं सायाह्नसन्ध्यायै आं ।)

सातवीं आवरणार्चा में पहले पाश माया अङ्कुश और अन्त में हृदय और शिर जोड़ना चाहिये । मध्य में अतीत वर्त्तमान और भविष्यत् नामों के साथ हे वरवर्णिनि! 'काल' पद का समास कर ङेऽन्त के रूप में उच्चारण करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. आं ह्रीं क्रों अतीतकालाय नम: स्वाहा ।
२. आं ह्रीं क्रों वर्त्तमानकालाय नम: स्वाहा ।
३. आं ह्रीं क्रों भविष्यत्कालाय नम: स्वाहा ।)

तार माया योगिनी शाकिनी डाकिनी इनको पहले लिखकर शेष में कूर्च अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये । मध्य में पहले 'अजवीथी' उसके बाद नागवीथी और अन्त में देववीथी को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें अजवीथ्यै हूं फट् नम: स्वाहा ।
२. ओं ह्रीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें नागवीथ्यै हूं फट् नम: स्वाहा ।
३. ओं ह्रीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें देववीथ्यै हूं फट् नम: स्वाहा ।)

इस प्रकार तीन-तीन रूप से आठ त्र्यार की पूजा कही गयी ॥ १४३७-१४४४- ॥

[प्रत्येकत्र्यारपूजामन्त्र:]

अत: परं तु प्रत्येकं त्र्यारस्य मनुरुच्यते ॥ १४४५ ॥
पञ्चारपूर्णाहुतिवदुक्तानुक्तस्य पूजनात् ।
नामुष्मिन् मतभेदोऽस्ति केषाञ्चिदपि पार्वति ॥ १४४६ ॥
सर्वागमानामत्रार्थे ऐकमत्यं व्यवस्थितम् ।
अथ त्रयाणामाराणां प्रत्येकं वच्मि ते मनुम् ॥ १४४७ ॥

प्रत्येक त्र्यार पूजा का मन्त्र—इसके बाद प्रत्येक त्र्यार का मन्त्र कहा जा रहा है । हे पार्वति! इसमें पञ्चार पूर्णाहुति की भाँति उक्त-अनुक्त की पूजा के कारण किन्हीं को मतभेद नहीं है अर्थात् जिस प्रकार पञ्चारपूजा के सन्दर्भ में कापालिक मौलेय दिगम्बर आदि में वैमत्य है वैसा यहाँ नहीं है । इस विषय में समस्त

आगमों का एक मत निश्चित है । अब तुमको तीन अरों में से प्रत्येक का मन्त्र बतला रहा हूँ ॥ १४४५-१४४७ ॥

[त्र्यारघटितप्रथमारपूजनमन्त्रः]

मैधत्रयं शाकिनी च भ्रामर्यादिद्वयं ततः ।
पुरश्च मन्दसम्मोहौ भोगसृष्टी ततः परम् ॥ १४४८ ॥
दशैतानि तु बीजानि पुरतः समुदाहरेत् ।
वज्रकापालिनि प्रोच्य ततः सिद्धिकरालि च ॥ १४४९ ॥
पुनर्वदेत् महाघोररूपधारिणि चेत्यपि ।
श्मशानचारिणि ततः सर्वभूतभयङ्करि ॥ १४५० ॥
द्विवारमीरयेद्देवि कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
पुनश्च सर्वसमयलाभं कुरुयुगं ततः ॥ १४५१ ॥
भौवनेशी योगिनी च वधूर्हृच्छिर एव च ।
इत्येको मन्त्र उदित प्रथमारस्य पार्वति ॥ १४५२ ॥

त्र्यार के प्रथमार की पूजा का मन्त्र—तीन मैध शाकिनी भ्रामरी आदि दो पहले फिर मन्द सम्मोह भोग सृष्टि ये दश बीज पहले कहने चाहिये । फिर 'वज्रकापालिनि' कहकर पुनः 'सिद्धिकरालि' एवं 'महाघोररूपिणि' बोलना चाहिये । 'श्मशानचारिणि' फिर 'सर्वभूतभयङ्करि' के बाद हे देवि! कूर्च और अस्त्र को दो-दो बार कहना चाहिये । पुनः 'सर्वसमयलाभं' कहकर दो 'कुरु' को कहना चाहिये । भौवनेशी योगिनी वधू हृदय और शिर यह प्रथमार का एक मन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं फ्रें ख्फ्रीं ख्फ्रूं ह्स्फ्रीं हसफ्रूं ह्स्ख्फ्रीं हसखफ्रूं वज्रकापालिनि सिद्धिकरालि महाघोररूपिणि श्मशानचारिणि सर्वभूतभयङ्करि हूं हूं फट् फट् सर्वसमयलाभं कुरु कुरु ह्रीं छ्रीं स्त्रीं नमः स्वाहा) ॥ १४४८-१४५२ ॥

[त्र्यारघटकद्वितीयारपूजनमन्त्रः]

मनुं द्वितीयस्यारस्य गदतो विनिबोध मे ।
तारत्रयं पुरः प्रोच्य रमा कामश्च गारुडः ॥ १४५३ ॥
पाशः प्रेतोऽङ्कुशश्चापि डाकिनी चेति वै दश ।
ततो महाचण्डयोगेश्वरि घोराट्टहासिनि ॥ १४५४ ॥
श्मशानचारिणि ततः
फेरुराकिणि (रागिनि ?) चेत्यपि ।
विमुक्तचिकुरे चापि नवपञ्च पदात् ततः ॥ १४५५ ॥
प्रवदेच्चक्रनिलये नीलमेघप्रभे ततः ।
अक्षादित्रितयं हार्दशिरोमन्त्रौ ततः स्मृतौ ॥ १४५६ ॥
इति द्वितीयस्यारस्य मन्त्रः सम्प्रतिपादितः ।

द्वितीयार की पूजा का मन्त्र—द्वितीय अर के मन्त्र को मुझसे समझो । पहले तीन तार कह कर फिर रमा काम गारुड पाश प्रेत अङ्कुश और डाकिनी ये दश कहने चाहिये । इसके बाद 'महाचण्डयोगेश्वरि घोराट्टहासिनि श्मशानचारिणि फेरुरागिनि विमुक्तचिकुरे' के बाद 'नवपञ्च' पद । उसके अनन्तर 'चक्रनिलये नीलमेघप्रभे' कहने के बाद अक्ष आदि तीन उसके पश्चात् हार्द और शिरो मन्त्र कहे गये हैं । इस प्रकार द्वितीयार के मन्त्र का प्रतिपादन किया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं ओं श्रीं क्लीं क्रौं आं स्हौः क्रों ख्फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि घोराट्टहासिनि श्मशानचारिणि फेरुरागिनि विमुक्तचिकुरे नवपञ्चचक्रनिलये नीलमेघप्रभे रह्लूं रह्लैं रह्लौं नमः स्वाहा) ॥ १४५३-१४५६- ॥

[त्र्यारघटकतृतीयारपूजामन्त्रः]

तार्तीयकारमन्त्रं तमधुना कलय प्रिये ॥ १४५७ ॥
मायाबीजत्रयं चादौ तदग्रे हारकर्णिके ।
नाराचतन्त्रे तस्यानु नादान्तक इतः परम् ॥ १४५८ ॥
ततोऽनु चर्पटं वीरो दशैते पुरतः स्थिताः ।
ततो भगवति प्रोच्य चण्डकापालिनि स्मरेत् ॥ १४५९ ॥
एतस्याग्रे कौलमतप्रवर्तिनि समालिखेत् ।
कल्पान्तकारिण्युक्त्वा च महापिङ्गजटाक्षरात् ॥ १४६० ॥
भारभासुर इत्येवं मुण्डमालिन्यतः परम् ।
प्रकृत्यपरवर्णानु शिवनिर्वाणदे ततः ॥ १४६१ ॥
कुण्डो गर्भश्च दीपश्च नमः स्वाहा च पश्चिमे ।
एवमारत्रयस्यापि मनुरुद्धृत्य दर्शितः ॥ १४६२ ॥
स्मार्तकौलिकभिक्षूणां सर्वेषां सदृशं त्विदम् ।

तृतीयार की पूजा का मन्त्र—हे प्रिये! अब तृतीयार के मन्त्र को सुनो । पहले तीन माया बीज उसके आगे हार कर्णिका नाराच तन्त्र उसके पश्चात् नादान्तक इसके बाद चर्पट और वीर ये दश बीज मन्त्र पहले स्थित होते हैं । फिर 'भगवति' कहकर 'चण्डकापालिनि' का स्मरण करना चाहिये । इसके आगे 'कौलमतप्रवर्त्तिनि' लिखना चाहिये । 'कल्पान्तकारिणि' कहकर 'महापिङ्गजटा' अक्षर के बाद 'भारभासुरे' फिर 'मुण्डमालिनि' उसके बाद 'प्रकृत्यपर' वर्ण के बाद 'शिरनिर्वाणदे' तत्पश्चात् कुण्ड गर्भ दीप बीजों के बाद अन्त में 'नमः स्वाहा' । इस प्रकार का भी मन्त्र उद्धृत कर दिखला दिया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्क्षम्लैं क्ष्रह्रीं खफ्रछ्रीं प्रूं खफ्रक्ष्रीं रजझक्ष्रीं स्फह्ल्क्षीं भगवति चण्डकापालिनि कौलमतप्रवर्त्तिनि कल्पान्तकारिणि महापिङ्गजटाभारभासुरे मुण्डमालिनि प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणप्रदे कहलश्रीं रक्ष्रैं रक्ष्रों नमः स्वाहा) ।

यह मन्त्र स्मार्त्त कौल और दिगम्बर सबके यहाँ समान है ॥ १४५७-१४६२-॥

[बिन्दुपूजोपक्रमः]

वक्ष्येऽधुना बिन्दुपूजां यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १४६३ ॥
तस्यैकमन्त्र आदिस्थः शेषेऽप्येक उदाहृतः ।
मध्ये उच्चावचाश्चान्ये पूजारीतय ईरिताः ॥ १४६४ ॥
क्रमतः सर्वमाख्यास्ये सावधाना निशामय ।
आदावादिस्थितं मन्त्रं वदाम्युद्धृतिपूर्वकम् ॥ १४६५ ॥
तारो मैधश्च पाशं च कला माया च शाकिनी ।
मन्मथः कमला कान्ता कूर्चो डाकिन्यतः परम् ॥ १४६६ ॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी व्यजनं हारिणी तथा ।
रञ्जनी सर्वशेषे च षोडशैवं प्रकीर्तिताः ॥ १४६७ ॥
ङेऽन्ता ततो गुह्यकाली कूर्चास्त्रं हृदयं शिरः ।
एतेनैवादिभूतेन मन्त्रेण गुणशालिना ॥ १४६८ ॥
प्रथमं पूजयेद् बिन्दुं ततोऽन्यैर्मन्त्रसञ्चयैः ।
अतः परं तु कौलानां मतभेदान्निशामय ॥ १४६९ ॥

बिन्दुपूजा का उपक्रम—जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है उस बिन्दु की पूजा को अब बतलाऊँगा । उसका एक मन्त्र पहले रहता है तथा अन्त में भी एक मन्त्र रहता है । मध्य में अन्य ऊँची-नीची पूजा की विधियाँ रहती है । मैं क्रम से सब कहूँगा । सावधान होकर सुनो । पहले आदि में स्थित मन्त्र को उद्धार के साथ कह रहा हूँ । तार मैध पाश कला माया शाकिनी मन्मथ कमला कान्ता कूर्च डाकिनी उसके बाद प्रलय फेत्कारी व्यजन हारिणी और सबके अन्त में रञ्जनी इस प्रकार सोलह कहे गये । इसके आगे चतुर्थ्यन्त 'गुह्यकाली' कूर्च अस्त्र हृदय और शिर । आदि में स्थित गुणशाली इसी मन्त्र से बिन्दु के पहले पूजा करनी चाहिये । इसके बाद अन्य मन्त्र समूहों से ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं ईं ह्रीं फ्रें क्लीं श्रीं स्त्रीं हूं ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें खफ्रक्ष्रैं रजझक्ष्रैं रक्षफ्रछ्रैं गुह्यकाल्यै हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इसके अनन्तर कौलों के मतभेदों को सुनो ॥ १४६३-१४६९ ॥

[कापालिकरीत्या बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

पूर्वोक्तानां चतुर्णां हि डामरन्यस्तचेतसाम् ।
विरुद्धं नैकमप्येषु कृत्वैतत् प्रब्रवीम्यहम् ॥ १४७० ॥
उपदिष्टं च यन्मह्यं त्रिपुरघ्नेन वै पुरा ।
तदपि व्याहरिष्यामि सर्वशेषे स्वकं मतम् ॥ १४७१ ॥

गणरूपेण संख्याता ये देवा देव्य एव वा ।
या देवयोनयश्चापि बिन्दौ तेषां समर्हणा ॥ १४७२ ॥
अवरा शतकोटेस्तु न न्यूना कोटितस्तथा ।
सा संख्या वेदितव्यात्र कापालिकमतार्चने ॥ १४७३ ॥
प्रतिमन्त्रं स्थिराण्यादौ नव बीजानि पार्वति ।
भिन्नभिन्नास्ततः संख्यास्ताभिःकोटिपदस्य च ॥ १४७४ ॥
विग्रहोऽसौ चिरस्थायि पुनर्भिन्नपदानि हि ।
ताभिस्ततः पूर्वगस्य समासः परिकीर्तितः ॥ १४७५ ॥
विभक्तेरथ तुर्याया बहुत्वे सकलो मतः ।
शब्दमर्यादयोन्नेयं लिङ्गमेषां धिया तथा ॥ १४७६ ॥
सप्तवर्णाः सर्वशेषे सर्वेषां सदृशाः स्मृताः ।
उद्धार एष सामान्यः प्रथमं कथितो मया ॥ १४७७ ॥
विशेषमधुना वच्मि प्रयोगं मन्त्रसिद्धये ।
भौवनेशी योगिनी च वधूरङ्कुशमेव च ॥ १४७८ ॥
नृसिंहकमलाकामडाकिन्यः प्रेत एव च ।
आदौ चतुरशीतिः स्यादशीतिस्तदनन्तरम् ॥ १४७९ ॥
द्विसप्ततिश्चानुभवेदष्टषष्टिरितः परम् ।
चतुःषष्टिश्च षष्टिश्च षट्पञ्चाशत् ततः परम् ॥ १४८० ॥
पञ्चाशत् पञ्चचत्वारिंशच्चत्वारिंशदेव च ।
षट्त्रिंशच्च त्रयस्त्रिंशद्द्वात्रिंशस्त्रिंशदेव च ॥ १४८१ ॥
चतुर्विंशतिरस्यानु विंशतिः षोडशापि च्र ।
द्वादशोऽनु नव त्रि स्यादेकं शेषे प्रतिष्ठितम् ॥ १४८२ ॥
भैरवो भैरवी चापि चामुण्डा डाकिनी तथा ।
योगिनीयक्षयक्षिण्यः खेचरः खेचरी तथा ॥ १४८३ ॥
सिद्धः सिद्धा देवता च गन्धर्वस्तदनन्तरम् ।
गन्धर्वी किन्नरश्चापि किन्नरी तदनूद्यते ॥ १४८४ ॥
विद्याधरस्ततो विद्याधरी चापि प्रकीर्त्यते ।
देवयोनिश्चाप्सरसो देवी चाप्येकविंशतिः ॥ १४८५ ॥
रावरोषास्त्रहृच्छिर्षाण्यन्ते च विनियोजयेत् ।
इत्येकविंशतिमितैर्मनुभिर्बिन्दुपूजनम् ॥ १४८६ ॥
कापालिका विदधति डामरोक्ततया तथा ।

कापालिक रीति से बिन्दु पूजा—डामर में मन को लगाने वाले पूर्वोक्त चारों (= कापालिक, दिगम्बर, मौलेय एवं भाण्डिकेर) में से एक भी विरुद्ध नहीं है यह मानकर मैं कह रहा हूँ । पहले त्रिपुरारि ने मुझे जिसका उपदेश दिया उसको भी

बतलाऊँगा और सबके अन्त में अपना मत भी कहूँगा । जो देव अथवा देवियाँ तथा देवयोनियाँ भी गण रूप में विख्यात हैं बिन्दु में उस सबकी पूजा होती है । ये गण देवतायें सौ करोड़ से कम हैं लेकिन एक करोड़ से कम नहीं है (अर्थात् सौ करोड़ से अधिक नहीं है) । कापालिक मत के अनुसार पूजा में यह संख्या जाननी चाहिये । हे पार्वति! प्रत्येक मन्त्र में पहले नव बीज स्थायी रूप से रहते हैं । इसके बाद भिन्न-भिन्न संख्यावाची शब्द होते हैं । उनके साथ 'कोटि' पद का समास होता है । यह समास भी स्थायी होता है पुन: भिन्न-भिन्न पद होते हैं । उन संख्याओं के साथ पूर्वोक्त 'कोटि' पद का समास कहा गया होता है । चतुर्थी विभक्ति का बहुवचन सर्वत्र माना गया है । इनके लिङ्ग का उन्नयन अपनी बुद्धि से शब्दों की मर्यादा के अनुसार करना चाहिये । सबके अन्त में सात वर्ण समान माने गये हैं । पहले मैंने यह सामान्य उद्धार बतलाया । अब मन्त्रों को बतलाने के लिये विशेष प्रयोग बतला रहा हूँ । भौवनेशी योगिनी वधू अङ्कुश नृसिंह कमला काम डाकिनी प्रेत (ये बीज रहते हैं) उसके बाद चतुरशीति षष्टि षट्पञ्चाशत् उसके अनन्तर पञ्चाशत् पञ्चचत्वारिंशत् चत्वारिंशत् षट्त्रिंशत् त्रयस्त्रिंशत् द्वात्रिंशत् त्रिंशत् चतुर्विंशति उसके बाद विंशति षोडश द्वादश के अनन्तर नव त्रि और अन्त में एक स्थित रहता है । (देवों-देवियों के नाम ये हैं—) भैरव भैरवी चामुण्डा डाकिनी योगिनी यक्ष यक्षिणी खेचर खेचरी सिद्ध सिद्धा देवता गन्धर्व गन्धर्वी किन्नर किन्नरी विद्याधर विद्याधरी देवयोनि अप्सरायें देवी ये इक्कीस हैं । इसके अन्त में राव रोष अस्त्र हृदय और शिर को जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: चतुरशीतिकोटिभैरवेभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

२. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: अशीतिकोटिभैरवीभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

३. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: द्विसप्ततिकोटिचामुण्डाभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

४. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: अष्टषष्टिकोटिडाकिनीभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

५. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: चतु:षष्टिकोटियोगिनीभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

६. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: षष्टिकोटियक्षेभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

७. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौ: षट्पञ्चाशत्कोटियक्षिणीभ्य: फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा ।

८. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः पञ्चाशत्कोटिखेचरेभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

९. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः पञ्चचत्वारिंशत्कोटिखेचरीभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१०. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः चत्वारिंशत्कोटिसिद्धेभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

११. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः षट्त्रिंशत्कोटिसिद्धाभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१२. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवताभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१३. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः द्वात्रिंशत्कोटिगन्धर्वेभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१४. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः त्रिंशत्कोटिगन्धर्वीभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१५. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः चतुर्विंशतिकोटिकिन्नरेभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१६. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः विंशतिकोटिकिन्नरीभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१७. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः षोडशकोटिविद्याधरेभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१८. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः द्वादशकोटिविद्याधरीभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

१९. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः नवकोटिदेवयोनिभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

२०. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः त्रिकोटिअप्सरोभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।

२१. ह्रीं छ्रीं स्त्रीं क्रों क्ष्रौं श्रीं क्लीं खफ्रें स्हौः एककोटिदेवीभ्यः फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा ।)

इन इक्कीस मन्त्रों से बिन्दु का पूजन होता है । कापालिक लोग डामरोक्त विधि से पूजन करते हैं ॥ १४७०-१४८६- ॥

[दिगम्बरपथा बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

अन्यदेव प्रस्तुवन्ति पुनरस्मिन् दिगम्बराः ॥ १४८७ ॥
तदपि व्याहरिष्यामि फलभूयस्त्वहेतवे ।
तेषामपि च देवेशि संख्यापूर्वोऽर्चनक्रमः ॥ १४८८ ॥

साधकैः सा च विज्ञेया पञ्चाशद्भ्यो नवाधिका ।
क्वचिद् द्वे द्वे तिष्ठतोऽस्यां
वर्तन्ते त्रीणि च क्वचित् ॥ १४८९ ॥
तत्र तत्रैव वक्ष्यामि तेषामपि च निर्णयम् ।
आदौ सामान्यमुद्धारं कथयिष्यामि ते मनाक् ॥ १४९० ॥
अत्राप्यादावष्टबीजी स्थिराः संख्यास्ततः परम् ।
त अस्थिराः परिज्ञेयाः पुनः शब्दाः पृथक् पृथक् ॥ १४९१ ॥
तेऽप्यस्थिरा वेदितव्यास्ततोऽनु चतुरक्षरी ।
स्थावरा साथ वक्ष्यामि विशेषोद्धारमस्य हि ॥ १४९२ ॥
मैधपाशाङ्कुशक्रोधरावप्रेतपरामृतम् ।
पञ्चाशदूनपञ्चाशत् सप्तविंशतिरेव च ॥ १४९३ ॥
षड्विंशतिस्तथा पञ्चविंशतिस्तदनन्तरम् ।
अष्टादश ततः सप्तदश षोडश एव च ॥ १४९४ ॥
ततोऽनु पञ्चदश च द्वौ वारौ च चतुर्दश ।
त्रयोदशस्ततश्चापि द्विवारं द्वादशोच्चरेत् ॥ १४९५ ॥
एकादश दश प्रोच्य नव वारद्वयं वदेत् ।
अष्टवारद्वयं चाथ सप्त वारत्रयं वदेत् ॥ १४९६ ॥
षड् वारौ द्वौ पञ्च चापि चतुर्वारद्वयं तथा ।
त्रिवारद्वितयं चाथ द्वि ततोऽप्येकमेव हि ॥ १४९७ ॥
द्वात्रिंशत्संख्यकाःसंख्या एवं ते प्रतिपादिताः ।
एतासामुत्तरपदं क्रमतो वर्णयाम्यहम् ॥ १४९८ ॥
लिपिर्वायुश्च नक्षत्रं छन्दस्तत्त्वं तथैव च ।
द्वीपो मेघस्तथा यज्ञ क्रिया तस्यानु वै तिथिः ॥ १४९९ ॥
भुवनञ्च तथैवेन्द्रो विश्वे च तदनु स्मृताः ।
आदित्यो राशिरथ वै रुद्रादिरपि कथ्यते ॥ १५०० ॥
ग्रहो निधिर्वसु ततः कुलाचल उदीर्यते ।
ऋषिः स्वरश्च जिह्वाच ऋतुर्वाणस्ततः परम् ॥ १५०१ ॥
क्लेशः समुद्रस्तदनु आश्रमस्ताप एव च ।
ज्योतिः कर्म तथा ब्रह्मद्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ॥ १५०२ ॥
अथोत्तरपदैरेभिः समासः पुरतोदितैः ।
चतुर्थ्यास्तु बहुत्वेन निर्देश्याः सर्व एव ते ॥ १५०३ ॥
उपान्त्यं द्विवचोरूपमन्त्यं चैकवचस्तथा ।
हार्दशीर्षाभिधौ मन्त्रौ सर्वशेषे प्रतिष्ठितौ ॥ १५०४ ॥
कार्यं सर्वत्र सन्धानं विशेषोद्धार ईदृशः ।

ईदृशीमधिकां बिन्दुपूजां कुर्युर्दिगम्बराः ॥ १५०५ ॥
न दोषः करणे त्वस्य फलबाहुल्यमिच्छताम् ।

दिगम्बर मार्ग से बिन्दु पूजा का प्रकार—इस विषय में दिगम्बर लोग अन्य प्रकार को प्रस्तुत करते हैं । फल के आधिक्य के लिये मैं उसको भी बतला रहा हूँ । हे देवेशि! उनका भी पूजाक्रम संख्यापूर्वक होता है । साधकों को यह संख्या उनसठ जाननी चाहिये । कहीं दो-दो संख्यायें रहती हैं । कहीं तीन भी होती हैं । उनका निर्णय उसी स्थान में करूँगा । पहले तुमको थोड़ा सामान्य उद्धार बतला रहा हूँ । यहाँ भी पहले आठ बीज स्थायी रहते हैं । उसके बाद संख्यायें रहती हैं । वे (संख्यावाची) शब्द अस्थिर जानने चाहिये । उसके बाद चतुरक्षरी रहती है । वह भी स्थायी होती है । अब इसका विशेषोद्धार बतला रहा हूँ—मैध पाश अङ्कुश क्रोध राव प्रेत परम अमृत (ये आठ बीज स्थायी हैं) । पञ्चाशत् ऊनपञ्चाशत् सप्तविंशति षड्विंशति पञ्चविंशति अष्टादश सप्तदश षोडश इसके बाद पञ्चदश दो बार चतुर्दश, त्रयोदश, दो बार द्वादश दो बार एकादश दश कहकर नव को दो बार कहना चाहिये । अष्ट को दो बार, सप्त को तीन बार, छह को दो बार, पञ्च, चतुः को दो बार, तीन को दो बार इसके बाद दो और एक । इस प्रकार बत्तीस संख्यायें तुमको बतलायी गयीं । अब इन संख्याओं के बादवाले पदों को क्रम से बतला रहा हूँ । लिपि वायु नक्षत्र छन्द तत्त्व द्वीप मेघ यज्ञ क्रिया उसके बाद तिथि भुवन इन्द्र विश्वेदेव आदित्य राशि रुद्रादि[1] ग्रह निधि वसु उसके बाद कुलाचल कहा जाता है । ऋषि स्वर जिह्वा ऋतु बाण क्लेश समुद्र उसके बाद आश्रम ताप ज्योति कर्म तथा ब्रह्म ये बत्तीस कहे गये । इसके बाद पूर्वोक्त उत्तर पदों के साथ इनका समास होता है । सबके साथ चतुर्थी बहुवचन होता है । अन्तिम के समीपवाला द्विवचन (= दो पद) रूप और अन्तिम एकवचन (= एक पद) रूप होता है । सबके अन्त में हृदय और शिर स्थित रहते हैं । सर्वत्र सन्धि करनी चाहिये । इस प्रकार का विशेषोद्धार होता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं पञ्चाशत्लिपिभ्यः नमः स्वाहा ।
२. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं ऊनपञ्चाशत्वायुभ्यो नमः स्वाहा ।
३. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं सप्तविशंतिनक्षत्रेभ्यो नमः स्वाहा ।
४. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं षड्विंशतिछन्दोभ्यो नमः स्वाहा ।
५. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं पञ्चविंशतितत्त्वेभ्यो नमः स्वाहा ।
६. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं अष्टादशद्वीपेभ्यो नमः स्वाहा ।
७. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं सप्तदशमेधेभ्यो नमः स्वाहा ।

---

[1] यहाँ 'आदि' पद से दिक्पाल लेना चाहिये ।

८. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं षोडशयज्ञक्रियाभ्यो नमः स्वाहा ।
९. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं पञ्चदशतिथिभ्यो नमः स्वाहा ।
१०. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं चतुर्दशभुवनेभ्यो नमः स्वाहा ।
११. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं चतुर्दशेन्द्रेभ्यो नमः स्वाहा ।
१२. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं त्रयोदशविश्वेभ्यो नमः स्वाहा ।
१३. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं द्वादशादित्येभ्यो नमः स्वाहा ।
१४. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं द्वादशराशिभ्यो नमः स्वाहा ।
१५. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं एकादशरुद्रेभ्यो नमः स्वाहा ।
१६. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं दश (दिगीशेभ्यो) नमः स्वाहा ।
१७. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं नवग्रहेभ्यो नमः स्वाहा ।
१८. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं नवनिधिभ्यो नमः स्वाहा ।
१९. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं अष्टवसुभ्यो नमः स्वाहा ।
२०. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं सप्तकुलाचलेभ्यो नमः स्वाहा ।
२१. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं सप्तर्षिभ्यो नमः स्वाहा ।
२२. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं सप्तस्वरेभ्यो नमः स्वाहा ।
२३. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं षड्जिह्वाभ्यो (= रसेभ्यो) नमः स्वाहा ।
२४. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं षड्ऋतुभ्यो नमः स्वाहा ।
२५. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं पञ्चबाणेभ्यो नमः स्वाहा ।
२६. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं पञ्चक्लेशेभ्यो नमः स्वाहा ।
२७. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं चतुःसमुद्रेभ्यो नमः स्वाहा ।
२८. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं चतुराश्रमेभ्यो नमः स्वाहा ।
२९. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं त्रितापेभ्यो नमः स्वाहा ।
३०. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं त्रिज्योतिभ्यो नमः स्वाहा ।
३१. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं द्विकर्मभ्यो नमः स्वाहा ।
३२. ऐं ओं क्रों हूं फ्रें स्हौः गुं ग्लूं एकब्रह्मणे नमः स्वाहा ।)

इस प्रकार दिगम्बर लोग अधिक पूजा करते हैं । फलाधिक्य चाहनेवालों को इसके करने में कोई दोष नहीं है ॥ १४८७-१५०५- ॥

[मौलेयमार्गतः बिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

मौलेयानामथो वच्मि मतं बिन्दुप्रपूजने ॥ १५०६ ॥
तद्यामलोक्तमिति हि सर्वैः संगृह्यते वचः ।
अभिधास्यामि निखिलं मन्त्रोद्धरणपूर्वकम् ॥ १५०७ ॥
पुरतः पञ्च बीजानि सर्वत्रैकत्वभाञ्जि हि ।
ततः परं द्विद्विपदघटितं पदमुच्यते ॥ १५०८ ॥
तद्विग्रहीभूतमथ भिन्नं भिन्नं तदीरितम् ।

विभक्तेरथ तुर्याया द्विवचोरूपमिष्यते ॥ १५०९ ॥
ततो नवाक्षरी शेष प्रतिमन्त्रं स्थिरा मता ।
एषोऽवरो निगदित इदानीमुत्तमं शृणु ॥ १५१० ॥
मैधं माया रमा कामो डाकिनी च यथाक्रमम्।
शुभाशुभं पुण्यपापं जन्ममृत्यू ततः परम् ॥ १५११ ॥
ततश्च स्वर्गनरकं शीतोष्णमपि चान्वतः ।
ततो ज्ञेयञ्च जीवात्मपरमात्मेति वै पदम् ॥ १५१२ ॥
भावाभावमहोरात्रमावापोद्वाप एव च ।
ततोऽनु प्रकृतिविकृतिशिवशक्ति ततः परम् ॥ १५१३ ॥
नादविन्दु च तस्यानु द्वादशैवं प्रकीर्तिताः ।
रावकूर्चौ ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ॥ १५१४ ॥
मौलेयानामियं पूजा विशेषेणोपपादिता ।
युक्तरूपतयाऽदोऽपि ग्राह्यं पूजाविधौ नरैः ॥ १५१५ ॥

मौलेय मार्ग के अनुसार बिन्दुपूजा—इसके बाद बिन्दुपूजन में मौलेयों का मत बतला रहा हूँ । वह यामल में भी कहा गया है । इसलिये सबके साथ संग्रह कर मन्त्रोद्धार के साथ तुमको बतलाऊँगा । पहले पाँच बीज होते हैं और वे सर्वत्र समान होते हैं । इसके बाद दो-दो पदों से बने हुए एक पद कहा जाता है । वह समासयुक्त होता है । साथ ही वह भिन्न-भिन्न कहा गया होता है । उसके साथ चतुर्थी विभक्ति का द्विवचन होता है । इसके पश्चात् सबके अन्त में नवाक्षरी होती है और वह स्थिर मानी गयी है । (आदि की पञ्चाक्षरी इस प्रकार है—) मैध माया रमा काम और डाकिनी ये क्रम से रहते हैं । इसके बाद शुभाशुभ पुण्यपाप जन्म मृत्यु स्वर्गनरक इसके पश्चात् शीत उष्ण फिर जीवात्मपरमात्म जानना चाहिये । भावाभाव अहोरात्र अवापोद्वाप प्रकृतिविकृति शिवशक्ति उसके बाद नादबिन्दु इस प्रकार बारह कहे गये । अन्त में राव कूर्च अस्त्र तीन फिर हृदय और शिर कहना चाहिए ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें शुभाशुभाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
२. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें पुण्यपापाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
३. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें जन्ममृत्युभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
४. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें स्वर्गनरकाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
५. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें शीतोष्णाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
६. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें जीवात्मपरमात्मभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
७. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें भावाभावाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
८. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अहोरात्राभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
९. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अवापोद्वापाभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

१०. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें प्रकृतिविकृतिभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
११. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें शिवशक्तिभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।
१२. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें नादबिन्दुभ्यां फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।)

मौलेयों की यह पूजा विशेष रूप से बतलायी गयी । मनुष्यों के द्वारा पूजा विधि में उचित रूप से इसका भी ग्रहण किया जाना चाहिये ॥ १५०६-१५१५ ॥

[भाण्डिकेरसम्प्रदायानुसारं बिन्दुपूजाप्रकारकथनम्]

पुनः शाबरतन्त्रज्ञा भाण्डिकेराः प्रयुञ्जते ।
बिन्दुपूजाविधावन्यत्तदपि व्याहरामि ते ॥ १५१६ ॥
या या शक्तिर्यत्र यत्र देव्यास्तिष्ठत्यवाधिता ।
सा सा शक्तिस्तत्र तत्र पूज्यते तन्मतस्थितैः ॥ १५१७ ॥
अभिधास्ये तदुद्धारं सामान्याच्च विशेषतः ।
बीजत्रयं भिन्नं भिन्नं प्रतिमन्त्रमुदीर्य्यते ॥ १५१८ ॥
ततः शब्दा भिन्नभिन्नास्ते च ङेऽन्ताः प्रकीर्तिताः ।
पदानि पुनरन्यानि पृथक् पृथगितः परम् ॥ १५१९ ॥
तैर्विग्रहः शक्तिपदस्यापि ङेरूपधारकः ।
अन्ते षडक्षरी ज्ञेया स्थिरा सा शक्तिशब्दवत् ॥ १५२० ॥
इति सामान्य उद्धारो विशेषमधुना शृणु ।
तारमायारमाः शक्तिसुधासोमास्ततः परम् ॥ १५२१ ॥
पाशप्रेतपराश्चापि योगिनीशाकिनीस्त्रियः ।
चूडामणिशिखाजम्भास्तुङ्गमन्दारवेदयः ॥ १५२२ ॥
सुरसः समरो रागः कुटिला रञ्जिनी घटी ।
नादान्तकश्चामरश्च व्यजनं तदनन्तरम् ॥ १५२३ ॥
चर्पटं मणिमाला च हारिणी तदनु स्मृता ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दस्तदनूदितः ॥ १५२४ ॥
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानं सर्वशेषगम् ।
त्रिबीजानि द्वादशैवं तव देवि मयोदिता ॥ १५२५ ॥
ङयन्ता(ङेऽन्ता)निदानीं
कलय शब्दान् क्रमत एव हि ।
पृथिव्यापश्च वह्निश्च वायुः सूर्यस्तथैव च ॥ १५२६ ॥
चन्द्रो विद्युच्च माया च प्रपञ्चो ब्रह्म तत्परम् ।
अद्वैतं परमात्मा च क्रमतो व्याहृता इमे ॥ १५२७ ॥
एतेषामुत्तरपदं गौणं हि कलयाधुना ।
उद्भेतृत्वं क्लेदकत्वं दाहिका शोषिका तथा ॥ १५२८ ॥
प्रभा कौमुद्यपि तथा पुनरुद्योतिकापि च ।

विक्षेपासत्त्वमिति च ततः परमुदीरितम् ॥ १५२९ ॥
आविर्भावतिरोभावः कैवल्यं तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं निर्वाणमिति वै पदम् ॥ १५३० ॥
इतिकर्तव्यता चास्य पुरैव प्रतिपादिता ।
षडक्षरी तु कूर्चास्त्रे हृदयं शिर एव च ॥ १५३१ ॥
क्रमोऽयं भाण्डिकेराणां बिन्दुपूजाविधौ मतः ।
एषोऽपि युक्तरूपत्वात्
कर्तव्यः फलकाङ्क्षिभिः ॥ १५३२ ॥

भाण्डिकेर सम्प्रदाय के अनुसार बिन्दु पूजा—शाबरतन्त्र को जाननेवाले भाण्डिकेर बिन्दु पूजा में अन्य विधि का प्रयोग करते हैं वह भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । देवी की जो-जो शक्ति जहाँ-जहाँ अबाध रूप में रहती है उस-उस मत के अनुयायी लोगों के द्वारा उस-उस शक्ति की वहाँ-वहाँ पूजा की जाती है । सामान्य और विशेष रूप से मैं उसका उद्धार बतलाऊँगा । प्रत्येक मन्त्र में तीन भिन्न-भिन्न बीज कहे जाते हैं । उसके बाद भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं और वे चतुर्थ्यन्त कहे जाते हैं । इसके पश्चात् पुनः अन्य पद पृथक्-पृथक् कहे गये होते हैं । उनके साथ 'शक्ति' पद का समास होता है और वह चतुर्थ्यन्त होता है । अन्त में षडक्षरी जाननी चाहिये । वह 'शक्ति' शब्द के समान स्थायी होता है । यह सामान्य उद्धार है । अब विशेष उद्धार को सुनो—तार माया रमा, शक्ति सुधा सोम, उसके पश्चात् पाश प्रेत परम, योगिनी शाकिनी स्त्री, चूडामणि शिखा जम्भ, तुङ्ग मन्दार वेदि, सुरस समर राग, कुटिला रञ्जिनी घटी, नादान्तक चामर व्यजन, उसके बाद चर्पट मणिमाला उसके बाद हारिणी कही गयी है । मारण्ड विनाद उसके बाद विमर्द कहा गया है । दाक्षिक सौमत और सबके अन्त में प्रतान है । इस प्रकार मैंने बारह त्रिबीज बतलाये । अब चतुर्थ्यन्त शब्दों को क्रम से सुनो—पृथिवी आप वह्नि वायु सूर्य चन्द्र विद्युत माया प्रपञ्च उसके बाद ब्रह्म अद्वैत परमात्मा ये क्रम से कहे गये । इनके बाद आने वाले गौण उत्तर पद को जानो । उद्भेतृत्व क्लेदकत्व दाहिका शोषिका प्रभा कौमुदी उद्योतिका विक्षेप उसके बाद सत्त्व कहा गया । आविर्भाव तिरोभाव तदनन्तर कैवल्य और सबके अन्त में निर्वाण पद समझना चाहिये । इसकी इति कर्त्तव्यता (= किसके बाद कौन-सा पद रखना चाहिये) पहले ही प्रतिपादित की जा चुकी है । कूर्च अस्त्र हृदय शिर ये षडक्षरी हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं ह्रीं श्रीं पृथिव्यै उद्भेतृत्वशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
२. ब्लूं ग्लूं द्रां अद्भ्यः क्लेदकत्वशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
३. आं स्हौः गुं वह्नये दाहिकाशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
४. छ्रीं फ्रें स्त्रीं वायवे शोषिकाशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।

५. रझ्रीं रथ्रीं रफ्रीं सूर्याय प्रभाशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
६. रज्रीं रप्रीं रक्रीं चन्द्राय कौमुदीशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
७. रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं विद्युते उद्योतिकाशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
८. रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं मायायै विक्षेपशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
९. खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं प्रपञ्चाय आविर्भावशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
१०. रजझक्ष्रीं रजझक्ष्रूं रजझक्ष्रैं ब्रह्मणे तिरोभावशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
११. खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं अद्वैताय कैवल्यशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।
१२. खफ्रह्रीं खफ्रह्रूं खफ्रह्रैं परमात्मने निर्वाणशक्तये हूं फट् नमः स्वाहा ।)

विन्दुपूजा की विधि में भाण्डिकेरों का यह क्रम माना गया है । युक्तरूप होने से फलाकांक्षी साधकों के द्वारा यह भी किया जाना चाहिये ॥ १५१६-१५३२ ॥

[बिन्दुपूजायां स्वकीयरीतिकथनम्]

इदानीं त्रिपुरघ्नस्य मतमाकलय प्रिये ।
त्रिकोणं त्रिगुणाकारं बिन्दुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ॥ १५३३ ॥
तस्मिन् प्राप्ते प्रपञ्चानां पूजनं कथमिष्यते ।
भावाभावौ जन्ममृत्यू माया दुःखं सुखं तथा ॥ १५३४ ॥
तावदेव हि तिष्ठन्तियावद् ब्रह्म न दृश्यते ।
बिन्द्वर्चने यदन्येषां पूजनं प्रोच्यते परैः ॥ १५३५ ॥
त्रिपुरघ्नमतं तन्न मयापि न तदिष्यते ।
अतो बिन्दोः स्वरूपस्य पूजनं विनिगद्यते ॥ १५३६ ॥

बिन्दुपूजा में अपनी रीति का कथन—हे प्रिये! अब त्रिपुरघ्न का मत सुनो । तीन कोणोंवाला त्रिगुणाकार बिन्दु ही ब्रह्मस्वरूप धारण करनेवाला है । उसका साक्षात्कार हो जाने पर प्रपञ्चों का पूजन कैसे वाञ्छित होता है अर्थात् नहीं हो सकता । भाव-अभाव जन्म-मृत्यु माया तथा सुख-दुःख—ये सब तभी तक रहते हैं, जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो जाता । बिन्दु की पूजा में दूसरे लोग जो अन्य की पूजा की बात करते हैं वह त्रिपुरारि का मत नहीं है । मैं भी उसे नहीं मानता । इसलिये बिन्दु का स्वरूप बतलाया जा रहा है ॥ १५३३-१५३६ ॥

[बिन्दुपदार्थनिर्वचनम्]

बिन्दुः पुल्लिङ्ग उदितो ब्रह्म चैव नपुंसकम् ।
स्त्रीलिङ्गा गुह्यकाली च त्रयमेतत् समं मतम् ॥ १५३७ ॥
शब्दार्थौ द्वावपि शिवे ब्रह्मणः प्रतिपादकौ ।
परं तु लिङ्गं स्त्रीसंज्ञं निर्देश्या कालिका यतः ॥ १५३८ ॥

बिन्दु पद के अर्थ का वर्णन—'बिन्दु' शब्द पुल्लिङ्ग कहा गया है । 'ब्रह्म' शब्द नपुंसक लिङ्ग है । 'गुह्यकाली' स्त्रीलिङ्ग है । ये तीनों एक ही माने गये हैं । हे

शिवे! शब्द और अर्थ दोनों ही ब्रह्म के प्रतिपादक हैं । पर अर्थात् अर्थ स्त्रीलिङ्ग है; क्योंकि उसकी निर्देश्या कालिका है ॥ १५३७-१५३८ ॥

[बिन्दुपूजामन्त्र:]

उद्धारमधुना वच्मि सर्वेषां बुद्धिगोचरम् ।
सप्तविंशतिसंख्यानि पदानि सुरवन्दिते ॥ १५३९ ॥
विभिन्नं बीजमेकैकं सर्वत्र प्रथमं स्थितम् ।
स्त्रीलिङ्गाश्च तत: शब्दा विभिन्नास्तेऽपि चेरिता: ॥ १५४० ॥
ङेऽन्तत्वेन विनिर्देश्या: शेषे हृत्केवलं स्थितम् ।
तारो माया योगिनी च वधू रावश्च डाकिनी ॥ १५४१ ॥
प्रासादो गरुडश्चापि प्रेतो नरहरिस्तथा ।
कापालं काकिनी चापि क्षेत्रपालश्च फैरवम् ॥ १५४२ ॥
सूत्रं दीपश्च तुङ्गश्च जम्भस्तदनु कर्णिका ।
भूतिनी केकराक्षी च कालरात्रिरत: परम् ॥ १५४३ ॥
मन्दसम्मोहपतनसंहारास्तदनन्तरम् ।
सर्वेषां चरमस्था तु ज्ञेया चिच्छक्तिनामिका ॥ १५४४ ॥
नित्या शुद्धऽक्षरा सूक्ष्माऽग्राह्याऽरूपाप्यनिन्द्रिया।
निर्गुणा निर्विकारा च निराभासा निरञ्जनी ॥ १५४५ ॥
अवासना च निर्बन्धा कूटस्था चिद्विलासिनी ।
अनिमित्ता च कैवल्याऽद्वैताऽबाधप्रकाशिका ॥ १५४६ ॥
वेदान्तवेद्या चैतन्याकारा साक्षिण्यथामृता ।
परानन्दा गुणातीताऽनिर्देश्या तदनन्तरम् ॥ १५४७ ॥
तुरीया सर्वशेषस्था यया मुक्तिरवाप्यते ।
इत्येवं बिन्दुगा पूजा त्रिपुरघ्नमुखोद्गता ॥ १५४८ ॥
अहं च त्रिपुरघ्नानुशिष्टमेव ब्रवीमि ते ।
पञ्चानां मतभेदेन पञ्चधेत्थं समर्हणा ॥ १५४९ ॥

बिन्दुपूजा का मन्त्र—अब मैं मन्त्र का उद्धार बतला रहा हूँ जो कि सबकी समझ में आनेवाला है । हे सुरवन्दिते! पदों की संख्या सत्ताईस है । ये भिन्न-भिन्न बीज हैं जो सर्वत्र पहले एक-एक करके स्थित रहते हैं । उसके बाद स्त्रीलिङ्ग शब्द रहते हैं वे भी भिन्न-भिन्न कहे गये हैं । उनका निर्देश चतुर्थ्यन्त होता है । अन्त में केवल हृन्मन्त्र रहता है । (अब बीजों को सुनो—) तार माया योगिनी वधू राव डाकिनी प्रासाद गरुड प्रेत नरसिंह कापाल काकिनी क्षेत्रपाल फैरव सूत्र दीप तुङ्ग जम्भ उसके बाद कर्णिका भूतिनी केकराक्षी उसके परे कालरात्रि मन्द सम्मोह पतन संहार । उसके पश्चात् इस सबके अन्त में चिच्छक्ति रहती है । (ये सत्ताईस बीज हैं। अब भिन्न-भिन्न शब्द—) नित्या शुद्धा अक्षरा सूक्ष्मा अग्राह्या अरूपा अनिन्द्रिया निर्गुणा

निर्विकारा निराभासा निरञ्जनी अवासना निर्बन्ध कूटस्था चिद्‌विलासिनी अनिमित्ता कैवल्या अद्वैता अबाधप्रकाशिका वेदान्तवेद्या चैतन्याकारा साक्षिणी अमृता परानन्दा गुणातीता अनिर्देश्या उसके बाद सबके अन्त में तुरीया जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं नित्यायै नमः । २. ह्लीं शुद्धायै नमः ।
३. छ्रीं अक्षरायै नमः । ४. स्त्रीं सूक्ष्मायै नमः ।
५. फ्रें अग्राह्यायै नमः । ६. ख्फ्रें अरूपायै नमः ।
७. हौं अनिन्द्रियायै नमः । ८. क्रौं निर्गुणायै नमः ।
९. स्हौः निर्विकारायै नमः । १०. क्ष्रौं निराभासायै नमः ।
११. थ्रीं निरञ्जन्यै नमः । १२. फ्रीं अवासनायै नमः ।
१३. क्षौं निर्बन्धायै नमः । १४. स्त्रैं कूटस्थायै नमः ।
१५. रह्लौं चिद्‌विलासिन्यै नमः । १६. रक्ष्रों अनिमित्तायै नमः ।
१७. रज्रीं कैवल्यायै नमः । १८. स्क्रीं अद्वैतायै नमः ।
१९. क्ष्ह्लीं अबाधप्रकाशिकायै नमः । २०. खफ्रीं वेदान्तवेद्यायै नमः ।
२१. खफ्रैं चैतन्याकारायै नमः । २२. खफ्रौं साक्षिण्यै नमः ।
२३. हसफ्रीं अमृतायै नमः । २४. हसफ्रूं परानन्दायै नमः ।
२५. हसफ्रैं गुणातीतायै नमः । २६. हसफ्रौं अनिर्देश्यायै नमः ।
२७. करव्रां तुरीयायै नमः ।)

इस प्रकार बिन्दु की पूजा त्रिपुरारि के मुख से निर्गत हुई है और मैं त्रिपुरघ्न के अनुसार ही तुमको बतला रहा हूँ । इस प्रकार पाँच भिन्न मतों की दृष्टि से पूजा पाँच प्रकार की होती है ॥ १५३९-१५४९ ॥

[सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकाराभिधानम्]

ऐकमत्येन सर्वेषां बिन्द्वर्चा काऽपि विद्यते ।
तां तेऽहं कथयिष्यामि भिन्नमन्त्रोद्धृतिं विना ॥ १५५० ॥
या विद्या पूर्वमुदिता सर्वगेति मया तव ।
पठित्वा नववारं तु तया बिन्दुं प्रपूजयेत् ॥ १५५१ ॥
हृदयाख्या तु या विद्या तस्याः षड्वारकीर्तनात् ।
अभ्यर्चयेद् बिन्दुमेव प्रतिपूजां मनुं पठन् ॥ १५५२ ॥
त्रिवारं समयाविद्यामुच्चरन् बिन्दुमर्चयेत् ।
बिन्दुपूजा त्रिविद्याभिरेवं सकलसम्मतम् ॥ १५५३ ॥

सकल-सम्प्रदाय-सम्मत बिन्दुपूजा—सबके एकमत वाली अर्थात् सर्वसम्मत भी कोई बिन्दुपूजा होती है । मैं भिन्न मन्त्रोंद्धार के बिना तुमको बतलाऊँगा । मैंने पहले जो सर्वगामिनी विद्या अर्थात् सर्वसम्मत विद्या तुमको बतलायी उसका नौ बार पाठ कर उससे बिन्दु की पूजा करनी चाहिये । हृदय नामक जो विद्या है इसका छह बार

पाठ कर बिन्दु की पूजा करनी चाहिये और प्रत्येक पूजा में इस मन्त्र का पाठ भी करना चाहिये । समया विद्या का तीन बार उच्चारण करते हुए बिन्दु की अर्चना करनी चाहिये । इस प्रकार तीन विद्याओं के द्वारा बिन्दु की पूजा होती है, यह सर्व सम्मत (विधान) है ॥ १५५०-१५५३ ॥

[सकलसम्प्रदायानुमतबिन्दुपूजाप्रकारान्तराभिधानम्]

सर्वेषां सम्मतत्वेन बिन्द्वर्चान्याऽपि विद्यते ।
तामपि व्याहरिष्यामि फलबाहुल्यशालिनीम् ॥ १५५४ ॥
उपदिष्टा इमे मन्त्रा येषां स्युर्गुरुणा प्रिये ।
तैरियं संविधातव्या नान्येन शुभमिच्छता ॥ १५५५ ॥
विधात्रुपासितामादौ कामोपास्यामनन्तरम् ।
ततोऽनु वरुणाराध्यां पावकोपासितां ततः ॥ १५५६ ॥
आदित्योपासितां पश्चाच्छच्याराध्यामतः परम् ।
दानवाराधितां मृत्युकालोपास्यामनन्तरम् ॥ १५५७ ॥
च्यवनोपासितां पश्चाद्धारीतोपासितामपि ।
जाबालाराधितां विद्यां दक्षोपास्यामनन्तरम् ॥ १५५८ ॥
ततः सप्तदशीमन्त्रं रामाराधितमेव हि ।
हिरण्यकशिपूपास्यां ब्रह्माराध्यामनन्तरम् ॥ १५५९ ॥
ततोऽनु विद्यां वासिष्ठीं विष्णुतत्त्वं ततः परम् ।
अम्बाराधितमस्यानु तां महाषोडशीमपि ॥ १५६० ॥
षोडशानां सप्तदशीं रावणाराधितां ततः ।
षड्त्रिंशदक्षरीमन्त्रं रावणाराधितं ततः ॥ १५६१ ॥
सिद्धोपास्यां भोगविद्यां किन्नरोपासितामथ ।
मन्त्रं नवनवार्णाख्यं तं सहस्राक्षरीमनुम् ॥ १५६२ ॥
शक्तौ सत्यां सुराराध्ये बीजमालामयीमपि ।
नोपात्तेयमशक्तौ तु त्रिपुरघ्नवचो यथा ॥ १५६३ ॥
ततोऽनु शाम्भवीविद्या या महाशाम्भवी तथा ।
तुरीयाख्याऽप्यथ महातुरीया तदनन्तरम् ॥ १५६४ ॥
निर्वाणमप्यनु महानिर्वाणं जगदीश्वरि ।
द्वात्रिंशत्संख्यकैरेतैर्मनुभिः फलदायिभिः ॥ १५६५ ॥
त्रयस्त्रिंशद्बीजमालामय्या सह भवन्ति हि ।
सकृदुच्चरितैरेभिर्मनुभिर्बिन्दुमर्चयेत् ॥ १५६६ ॥
अयं समानः सर्वेषां बिन्दुपूजाविधिक्रमः ।

सकल सम्प्रदाय सम्मत बिन्दुपूजा का दूसरा प्रकार—सबकी सम्मत एक दूसरी भी बिन्दु पूजा है । अधिक फल देने वाली उसको भी मैं बतला रहा हूँ । हे

प्रिये! इन पूर्वोक्त मन्त्रों का जिनको उपदेश दिया गया हो कल्याणकामी उसी के द्वारा इसका अनुष्ठान किया जाना चाहिये अन्य के द्वारा नहीं। (उसके अनुष्ठान का क्रम इस प्रकार है—) पहले ब्रह्मा के द्वारा उपासित १. उसके अनन्तर कामोपासित २. पश्चात् आदित्य के द्वारा उपासित ३. इसके परे शची द्वारा आराधित ४. फिर दानवाराधित ५. अनन्तर मृत्युकालोपासित ६. फिर च्यवनोपास्य ७. बाद में हारीतोपास्य ८. फिर जाबाल के द्वारा आराधित ९. तदनन्तर दक्षोपास्य १०. फिर रामोपासित ११. सप्तदशीमन्त्र १२. हिरण्यकशिपु से आराधित १३. अनन्तर ब्रह्माराधित १४. फिर वसिष्ठाराधित विद्या १५. तत्पश्चात् विष्णु तत्त्व १६. ततःपरं अम्बाराधित १७. इसके बाद षोडशों की महाषोडशी १८. पुनः रावण के द्वारा आराधित १९. फिर सप्तदशी २०. उसके बाद रावणाराधित २१. छत्तीस अक्षरोंवाला मन्त्र २२. तत्पश्चात् सिद्धोपास्य २३. फिर किन्नरोपासित २४. फिर नवनवार्ण नामक मन्त्र २५. फिर सहस्राक्षर मन्त्र २६. हे सुराराध्ये! यदि सामर्थ्य हो तो बीजमाला मन्त्र २७. का अनुष्ठान करना चाहिये। यदि सामर्थ्य न हो तो नहीं करना चाहिये ऐसा त्रिपुरारि का मत है। इसके पश्चात् शाम्भवी विद्या २८. फिर महाशाम्भवी २९. तत्पश्चात् तुरीया ३०. पुनः महातुरीया ३१. निर्वाण के बाद हे जगदीश्वरि! ३२. महानिर्वाण ३३. महाफलदायी इन बत्तीस मन्त्रों के साथ पूजा करनी चाहिये। मालामन्त्र को लेकर इनकी संख्या तैंतीस हो जाती है। इन मन्त्रों के एक-एक बार उच्चारण के द्वारा बिन्दु की अर्चना करनी चाहिये। यह बिन्दुपूजा का क्रम सब मतावलम्बियों में समान है ॥ १५५४-१५६६- ॥

[बिन्दुपूजासमाप्तिकारिमन्त्राभिधानम्]

समाप्तिकारिणीं बिन्दुपूजामनुमथो शृणु ॥ १५६७ ॥
तारत्रयं प्रथमतो मैधत्रयमनन्तरम् ।
मायारमाकामरावयोगिनीरोषकामिनीः ॥ १५६८ ॥
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारीमप्यनन्तरम् ।
षोडशेमानि सम्भाष्य बीजानि सुरवन्दिते ॥ १५६९ ॥
सत्त्वकूटं च हैरण्यगर्भकूटमनन्तरम् ।
तस्यानु पुष्करं कूटं भासानाख्ये ततः परम् ॥ १५७० ॥
संहारानाहते चापि मणिपूरकमेव च ।
स्वाधिष्ठानं नवेमानि कूटानि पुरतो वदेत् ॥ १५७१ ॥
ततो भगवतीशब्दो गुह्यकालीपदं ततः ।
साङ्गा सवाहना चापि सायुधा तदनन्तरम् ॥ १५७२ ॥
ततः सपरिवारा च शब्दानेतान् क्रमेण षट् ।
ङेऽन्तानुच्चारयेद्धीमान् अस्त्रत्रयमतः परम् ॥ १५७३ ॥
चरमे हृच्छिरौ मन्त्रौ महामन्त्रोऽयमीरितः ।

एतेन शेषगां पूजां बिन्दोः परिसमापयेत् ॥ १५७४ ॥
आदावन्ते च पूजायां बिन्दोरेतौ मनू स्मृतौ ।
एतावता समाप्तं हि सर्वमावरणार्चनम् ॥ १५७५ ॥

बिन्दु पूजा समाप्त करनेवाला मन्त्र—इसके बाद समाप्तिकारिणी बिन्दुपूजा का मन्त्र सुनो । तीन तार उसके बाद तीन मैंध फिर माया रमा काम राव योगिनी रोष कामिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी इन सोलह बीजों को कहकर हे सुरवन्दिते! सत्त्वकूट हिरण्यगर्भकूट उसके पश्चात् पुष्करकूट भासाकूट अनाख्याकूट उसके परे संहारकूट अनाहतकूट मणिपूर और स्वाधिष्ठान इन नौ कूटों को कहना चाहिये । इसके बाद बुद्धिमान् 'भगवती' पद फिर 'गुह्यकाली' पद तदनन्तर 'साङ्गा सवाहना सायुधा' तत्पश्चात् 'सपरिवारा' इन छह शब्दों को क्रम से ङेऽन्त उच्चारण करे । इसके अनन्तर तीन अस्त्र अन्त में हृदय और शिर मन्त्रों को कहना चाहिये । यह महामन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें छ्रीं हूं स्त्रीं खफ्रें हसफ्रें हसखफ्रें क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं सहक्षम्लव्य्रईं क्षह्लक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं स्हक्षम्लव्य्रईऊं भगवत्यै गुह्यकाल्यै साङ्गायै सवाहनायै सायुधायै सपरिवारायै फट् फट् फट् नमः स्वाहा) ।

इससे बिन्दु की शेषगामिनी पूजा को समाप्त करना चाहिये । बिन्दु की पूजा के आदि और अन्त में ये दो मन्त्र कहे गये । इतने से सारी आवरण पूजा समाप्त हो जाती है ॥ १५६७-१५७५ ॥

[आवरणपूजापदार्थपरिचयः]

आबिन्दुपूजनं शेषं आनृसिंहार्चनं पुरः ।
गण्यते सकलं मध्ये देव्यावरणपूजनम् ॥ १५७६ ॥
अशक्नुवानः सकलं यावच्छक्यं समाचरेत् ।

आवरण पूजा पदार्थ का परिचय—अन्त में बिन्दुपूजन आदि में नृसिंहार्चन एवं मध्य में शेष सब यही देवी की आवरण पूजा है । यदि कोई सम्पूर्ण पूजा करने में असमर्थ हो तो जितनी कर सके उतनी करनी चाहिये ॥ १५७६-१५७६- ॥

[पात्रग्रहणविषये मतभेदप्रदर्शनं स्वनिर्णयश्च]

अथावधेहि देवेशि बिन्द्वर्चानन्तरां क्रियाम् ॥ १५७७ ॥
कापालिकाद्याः सकलाः भाण्डिकेरान्तिमाः प्रिये ।
मध्य एव हि पूजायाः कुर्वते पात्रसङ्ग्रहम् ॥ १५७८ ॥
युक्तायुक्तकुलाध्वन्यास्तथा ये चानुकल्पिकाः ।
ये च श्रौतमताशक्तास्तेषां विधिरुदीर्यते ॥ १५७९ ॥

ते षड्भिर्मनुभिर्देव्यै षट्पात्राणि ददत्यपि ।
तान् मन्त्रान् सम्प्रवक्ष्यामि क्रमेण जगदर्चिते॥ १५८० ॥

पात्र के ग्रहण में मतभेद एवं अपना निर्णय—हे देवेशि! अब बिन्दुपूजा के बाद की जानेवाली क्रिया को जानो । हे प्रिये! कापालिकों से लेकर भाण्डिकेरों तक सब के सब पूजा के मध्य में पात्र का सङ्ग्रह करते हैं । युक्तायुक्त कुलमार्गवाले तथा जो अनुकल्प को मानने वाले हैं एवं जो वेदमार्ग में आसक्त हैं, उनकी विधि बतलायी जा रही है । वे छह मन्त्रों के द्वारा देवी के लिये छह पात्रों का दान करते हैं । हे जगदर्चिते! मैं उन मन्त्रों को बतला रहा हूँ ॥ १५७७-१५८० ॥

[देवीपात्रसमर्पणमन्त्रः]

वेदादिमायाशाकिन्यः प्रथमं परिकीर्तिताः ।
ततोऽनु गुह्यकाल्यम्बा पात्रमित्यभिनिर्दिशेत्॥ १५८१ ॥
भगवत्यै ततः सिद्धिविकराल्यै समुद्धरेत् ।
समर्पयाम्यनु नमो रावबीजं ततः परम् ॥ १५८२ ॥
गृह्लयुग्मं भक्षयुगं सामरस्यपदं ततः ।
गच्छद्वन्द्वं समाभाष्य फट्युगं शिर एव च ॥ १५८३ ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य मूलपात्रं समुत्सृजेत् ।
प्रोक्षण्यादाय पात्रात्
तत् किञ्चिद् देव्याननेऽर्पयेत् ॥ १५८४ ॥

देवी के लिये पात्र समर्पण का मन्त्र—पहले वेदादि माया शाकिनी कहे गये हैं। इसके बाद 'गुह्यकाल्यम्बापात्रम्' का निर्देश करना चाहिये । 'भगवत्यै' फिर 'सिद्धिविकराल्यै' को उद्धृत करना चाहिये । 'समर्पयामि' के बाद 'नमः' रावबीज उसके बाद दो 'गृह्ल' दो 'भक्ष' तत्पश्चात् 'सामरस्य' पद फिर दो 'गच्छ' को कहकर दो 'फट्' और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्लीं फ्रें गुह्यकाल्यम्बापात्रं भगवत्यै सिद्धिकराल्यै समर्पयामि नमः फ्रें गृह्ल गृह्ल भक्ष भक्ष सामरस्यं गच्छ गच्छ फट् फट् स्वाहा) ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर मूलपात्र को दे देना चाहिये । पात्र से प्रोक्षणी लेकर उसे थोड़ा-सा देवी के मुख में डालना चाहिये ॥ १५८१-१५८४ ॥

[शक्तिपात्रसमर्पणमन्त्रः]

अथ वक्ष्ये शक्तिपात्रसमर्पणमनुं प्रिये ।
सारस्वतं डाकिनी च प्रलयस्तदनन्तरम् ॥ १५८५ ॥
शक्तिपात्रमिति प्रोच्य महाचण्डपदादनु ।
योगैश्वर्यै समुद्धृत्य गुडानां त्रितयं लिखेत् ॥ १५८६ ॥

समर्पयामि च पुनः भुङ्क्ष्व खाद युगं युगम् ।
रोषरावौ ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ॥ १५८७ ॥
आदाय भाजनात्तस्मात् दद्याद्देव्यानने मनाक् ।

शक्तिपात्र समर्पण का मन्त्र—हे प्रिये! अब शक्तिपात्र के समर्पण का मन्त्र बतलाऊँगा । सारस्वत डाकिनी प्रलय उसके बाद 'शक्तिपात्रं' कहकर 'महाचण्ड' पद के पश्चात् 'योगेश्वर्यै' को उद्धृत कर तीन गुड लिखना चाहिये । 'समर्पयामि' के बाद 'भुङ्क्ष्व' और 'खाद' को दो-दो बार फिर रोष राव उसके अनन्तर तीन अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं खफ्रें हसफ्रें शक्तिपात्रं महाचण्डयोगेश्वर्यै हं हं हं समर्पयामि भुङ्क्ष्व भुङ्क्ष्व खाद खाद हूं फ्रें फट् फट् फट् नमः स्वाहा) ।

उस पात्र से लेकर थोड़ा-सा पदार्थ देवी के मुख में भी अवश्य डालना चाहिये ॥ १५८५-१५८७-॥

[गुरुपात्रसमर्पणमन्त्रः]

पाशमायाङ्कुशानुक्त्वा गुरुपात्रमितीरयेत् ॥ १५८८ ॥
वज्रकापालिनीं ङेऽन्तां तदनन्तरमुद्धरेत् ।
निवेदयामि तदनु पिबयुग्मं हसद्वयम् ॥ १५८९ ॥
ततश्च सर्वसमयलाभं कुरुयुगं तथा ।
अस्त्रत्रयं पुनः स्वाहा पूर्ववत् किञ्चिदर्पयेत् ॥ १५९० ॥

गुरुपात्र समर्पण मन्त्र—पाश माया अङ्कुश कहकर 'गुरुपात्रम्' कहना चाहिये । उसके बाद ङेऽन्त 'वज्रकापालिनी' को उद्धृत करना चाहिये । 'निवेदयामि' के बाद दो 'पिब' दो 'हस' उसके परे 'सर्वसमयलाभम्' फिर दो 'कुरु' तीन अस्त्र पुनः 'स्वाहा' कहकर पूर्व की भाँति कुछ देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं ह्रीं क्रों गुरुपात्रं वज्रकापालिन्यै निवेदयामि पिब पिब हस हस सर्वसमयलाभं कुरु कुरु फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ १५८८-१५९० ॥

[भोगपात्रसमर्पणमन्त्रः]

चैतन्यकमलाकामान् भोगपात्रं च कीर्तयेत् ।
ङेऽन्तां सिद्धिकरालीं च ततस्तुभ्यमहं ददे ॥ १५९१ ॥
इदं ततः खादयुगं धयद्वितयमेव च ।
कह नृत्य तथा गाय त्रितयानां द्वयं द्वयम् ॥ १५९२ ॥
कौलिकावक्ष(क्त्र ?)युगलं
नमः स्वाहा ततो वदेत् ।
पूर्ववत् किञ्चिदादाय देवीवक्त्रे समुत्सृजेत् ॥ १५९३ ॥

भोगपात्र समर्पण मन्त्र—चैतन्य कमला काम के बाद 'भोगपात्रम्' कहना चाहिये। ङेऽन्त 'सिद्धिकराली' के बाद 'तुभ्यमहं ददे इदम्' के बाद दो 'खाद' दो 'धय' कहकर 'नृत्य' 'गाय' तीनों को दो-दो बार कौलिक और वक्त्र को दो-दो फिर 'नमः स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं श्रीं क्लीं भोगपात्रं सिद्धिकराल्यै तुभ्यमहं ददे, इदं खाद खाद धय धय नृत्य नृत्य गाय गाय रद्रैं रद्रैं भ्रीं भ्रीं नमः स्वाहा) ।

पूर्व की भाँति थोड़ा द्रव्य लेकर देवी के मुख में छोड़ना चाहिये ॥१५९१-१५९३॥

[वीरपात्रसमर्पणमन्त्रः]

वेदादिमैधनृहरीन् पुरत : समुदीरयेत् ।
वीरपात्रमिति प्रोच्य कालरात्र्यै ततो वदेत् ॥ १५९४ ॥
समर्पयामि च पुनः गृह्णद्वन्द्वं तुरुद्वयम् ।
खादयुग्मं भुञ्जयुगं खेचरीसिद्धिमेव च ॥ १५९५ ॥
दद देहि द्वयं द्वन्द्वं हूं फट् स्वाहा नमस्ततः ।
दद्यादेतस्यापि किञ्चिज्जग-
दम्बामुखं(?खे) कुलम् ॥ १५९६ ॥

वीरपात्र समर्पण मन्त्र—पहले वेदादि मैध और नरसिंह को कहना चाहिये । 'वीरपात्रम्' कहकर उसके बाद 'कालरात्र्यै' कहना चाहिये । 'समर्पयामि' पुनः दो 'गृह्ण' दो 'तुरु' दो 'खाद' दो 'भुञ्ज' के पश्चात् 'खेचरीसिद्धिम्' फिर दो 'दद' दो 'देहि' उसके बाद 'हूं फट् नमः स्वाहा' ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं क्ष्रौं वीरपात्रं कालरात्र्यै समर्पयामि गृह्ण गृह्ण तुरु तुरु खाद खाद भुञ्ज भुञ्ज खेचरी सिद्धिं दद दद देहि देहि हूं फट् नमः स्वाहा) ।

इस मन्त्र के द्वारा भी जगदम्बा के मुख में थोड़ा कुलद्रव्य (= मद्य) प्रदान करना चाहिये ॥ १५९४-१५९६ ॥

[षष्ठपात्रसमर्पणमन्त्रः]

भाजनस्यापि षष्ठस्य मन्त्रमाकर्णयार्पणे ।
तारो रावो डाकिनी च प्रासादक्षेत्रपावपि ॥ १५९७ ॥
सत्त्वकूटं च हैरण्यगर्भं पुष्करमेव च ।
भगवत्यै गुह्यकाल्यै कुलपात्रं ततो वदेत् ॥ १५९८ ॥
निवेदयामि चाभाष्य जय जीव युगं युगम् ।
खाद खाहि द्वयद्वन्द्वं राज्यं देहि द्वयं ततः ॥ १५९९ ॥
पुनश्च खेचरीसिद्धिं ददयुग्मं पुनस्ततः ।
सामरस्यं भजद्वन्द्वं कौलिकानामितीरयेत् ॥ १६०० ॥

पुनश्च सर्वसमये रक्षां कुरुयुगं तथा ।
रावरोषास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते च समनूद्धरेत् ॥ १६०१ ॥
पूर्ववत्किञ्चिदादाय मण्डलोपरि निःक्षिपेत् ।
इत्येवं देवि पात्राणां षण्णामुत्सर्गमाचरेत् ॥ १६०२ ॥
मन्त्रैर्यथा क्रमोदीर्णैः प्रत्येकं व्युत्क्रमं त्यजन् ।

षष्ठपात्र समर्पण मन्त्र—अब अर्पण के विषय में षष्ठ पात्र का मन्त्र सुनो—तार राव डाकिनी प्रासाद क्षेत्रपाल सत्त्वकूट हैरण्यगर्भकूट पुष्करकूट के बाद 'भगवत्यै गुह्यकाल्यै कुलपात्रं' कहना चाहिये । फिर 'समर्पयामि' कहकर 'जय' और 'जीव' को दो-दो बार 'खाद' और 'खाहि' को दो-दो फिर 'राज्यम्' के पश्चात् दो 'देहि' पुन: 'खेचरीसिद्धिम्' फिर दो 'दद' पुन: 'सामरस्यम्' फिर दो 'भज' कहना चाहिये । उसके बाद 'कौलिकानाम्' कहना चाहिये । पुन: 'सर्वसमये रक्षाम्' कहकर दो 'कुरु' फिर अन्त में राव रोष अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें खफ्रें हौ क्षौं क्षह्रम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं सहक्षम्लव्य्रईं भगवत्यै गुह्यकाल्यै कुलपात्रं निवेदयामि जय जय जीव जीव खाद खाद खाहि खाहि राज्यं देहि देहि खेचरीसिद्धिं दद दद सामरस्यं भज भज कौलिकानां सर्वसमये रक्षां कुरु कुरु फ्रें हूं फट् नम: स्वाहा) ।

पूर्व की भाँति कुछ द्रव्य लेकर मण्डल के ऊपर फेंकना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार छह पात्रों का उत्सर्ग करना चाहिये । इस क्रम में यथोक्त मन्त्रों का व्युत्क्रम-रहित उच्चारण करना चाहिये ॥ १५९७-१६०२- ॥

[बलिदानविधि:]

बलिदानमथो वक्ष्ये दत्तचित्ता निशामय ॥ १६०३ ॥
यद्यद्द्रव्यं तत्तदुक्तं पुरैव तव विस्तरात् ।
मन्त्रविधानं चेदानीं समाकलय तत्त्वतः ॥ १६०४ ॥

बलिदान-विधि—इसके बाद बलिदान-विधि बतलाऊँगा । दत्तचित्त होकर सुनो । (बलिदान में) जिस-जिस द्रव्य (का प्रयोग होता है) वह पहले ही तुमको विस्तार से बतला दिया गया । इस समय यथार्थत: मन्त्र का विधान सुनो ॥ १६०३-१६०४ ॥

[अष्टाभ्यो देवताभ्यो बलिदानविधि:]

अष्टधा सम्प्रदातव्या मूलं गणपतिस्तथा ।
वटुकाः क्षेत्रपालाश्च मातरस्तदनन्तरम् ॥ १६०५ ॥
योगिन्यश्चापि डाकिन्यः स्थानं चेत्यष्टसम्मिताः ।
संस्थाप्य देव्याः पुरतो
बलिद्रव्यममत्र(न्त्र)य(क)म् ॥ १६०६ ॥

समांसमीनं ससुरां बिन्दुं दातुरनुक्रमात् ।
पूजितं गन्धकुसुमाक्षतसिन्दूरयावकैः ॥ १६०७ ॥
धूपदीपान्वितं मूर्ध्नि ताम्बूलादिभिरर्चितम् ।
समुत्सृजेदथैतेषां पूजामन्त्रं निशामय ॥ १६०८ ॥

आठ देवताओं के लिये बलिदान विधि—आठ प्रकार की देवताओं की बलि दी जानी चाहिये । वे हैं—मूल अर्थात् प्रधान देवता, गणेश, वटुक भैरव, क्षेत्रपाल, मातायें, योगिनियाँ डाकिनियाँ और स्थानदेवता । देवी के सामने मन्त्र का उच्चारण किये विना बलिद्रव्य स्थापित करना चाहिये । वह द्रव्य मांस मत्स्य मद्य और दाता का बिन्दु (= रक्त या वीर्य?) होता है । इसकी गन्ध पुष्प अक्षत सिन्दूर यावक (= अलक्तक) धूपदीप और द्रव्य के ऊपर ताम्बूल आदि से पूजा कर इसका उत्सृजन करना चाहिये । अब इनके पूजा मन्त्र को सुनो ॥ १६०५-१६०८ ॥

[बल्यभ्युक्षणमन्त्रः]

प्रत्येकं पूजयेत् सर्वानथ तन्त्रेण चार्चयेत् ।
तारो माया योगिनी च भूतिनी डाकिनी तथा ॥ १६०९ ॥
भूतदैवतशब्दश्च बलिशब्दस्ततः परम् ।
वाच्यौ बहुत्वेन तुर्यविभक्तेरीदृशाविमौ ॥ १६१० ॥
हृद्रोषास्त्रशिरोमन्त्राश्चरमस्थानसंस्थिताः ।
मन्त्रेणानेनार्चयित्वा क्रमाद् बलिमथोत्सृजेत् ॥ १६११ ॥
तत्रादौ दीयते यद्यद् देव्यै तन्मूलमुच्यते ।

बलि के अभ्युक्षण का मन्त्र—पहले प्रत्येक की (सामान्य) पूजा करनी चाहिये। उसके बाद तन्त्र से अर्चना करनी चाहिये । (तान्त्रिक पूजा का मन्त्र यह है—) तार माया योगिनी भूतिनी डाकिनी 'भूतदैवत' शब्द फिर 'बलि' शब्द कहने चाहिये । बहुत होने के कारण ये दोनों चतुर्थ्यन्त बहुवचन होते हैं । हृदय रोष अस्त्र और शिरो मन्त्र अन्तिम स्थान में रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं छ्रीं खफ्रीं खफ्रें भूतदैवतेभ्यो बलिभ्यो नमः हूँ फट् स्वाहा) ।

इस मन्त्र से क्रमशः पूजा करने के बाद बलि का उत्सृजन करना चाहिये । इस क्रम में पहले देवी के लिये जो-जो द्रव्य दिया जाता है, उसका मूल बतलाया जा रहा है ॥ १६०९-१६११- ॥

[बल्युत्सर्गमन्त्रः]

तच्चतुष्पात्रमथवा द्विपात्रश्चैकमेव वा ॥ १६१२ ॥
तारमैधौ योगिनी च रावडाकिन्यमारुषः ।

विमर्दव्यजनत्र्यस्त्रप्रतानाः प्रकरी तथा ॥ १६१३ ॥
सम्बुद्धिर्भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततः परम् ।
विसन्धीमं बलिं गृह्णयुगलं खाहि च द्वयम् ॥ १६१४ ॥
ततश्च सर्वसमयसिद्धीश्वरि समुच्चरेत् ।
परविद्यामाकृष्यानु त्रुट छिन्धि युगं युगम् ॥ १६१५ ॥
मां रक्ष युगलं चापि सर्वसिद्धिमितीरयेत् ।
देहि दापय सङ्कीर्त्य मायाबीजात्तुरुद्वयम् ॥ १६१६ ॥
रावरोषौ ततोऽस्त्राणां त्रितयं हृदयं शिरः ।
अनेन मनुना दद्यात् मूलदेव्यै बलिं प्रिये ॥ १६१७ ॥

बलि के उत्सर्ग का मन्त्र—वह द्रव्य चार पात्रोंवाला, दो पात्रोंवाला अथवा एक पात्र का भी होता है । तार मैंध योगिनी राव डाकिनी अमा रोष विमर्द व्यजन त्र्यस्त्र प्रतान प्रकरी बीजों के बाद 'भगवती गुह्यकाली' दोनों का सम्बोधन इसके बाद सन्धिरहित 'इमं बलिं' के बाद दो 'गृह्ण' दो 'खाहि' इसके बाद 'सर्वसमयसिद्धीश्वरि' कहना चाहिये । 'परविद्यामाकृष्य' के बाद 'त्रुट छिन्धि' को दो-दो बार 'मां' के बाद 'रक्ष' को दो बार कहकर 'सर्वसिद्धिं' कहना चाहिये । 'देहि, दापय' (को दो-दो बार) कहकर माया बीज के बाद दो 'तुरु' राव रोष तीन अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं छ्रीं फ्रें खफ्रें ब्लूं हूं खफ्रछ्रैं खफ्रक्ष्रैं खफ्रह्रैं खफ्रह्रैं खफ्रक्लैं भगवति गुह्यकालि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण खाहि खाहि सर्वसमयसिद्धीश्वरि परविद्यामाकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि मां रक्ष रक्ष सर्वसिद्धिं देहि देहि दापय दापय ह्रीं तुरु तुरु फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा) ।

हे प्रिये! इस मन्त्र से देवी के लिये बलि देनी चाहिये ॥ १६०९-१६१७ ॥

[गणाधिपबल्युत्सर्गमन्त्रः]

ततो गणाधिपतये साधको बलिमाहरेत् ।
तन्मन्त्रं कलयेदानीं प्रयतेनान्तरात्मना ॥ १६१८ ॥
मैंधं माया च लक्ष्मीश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
देवीपुत्रपदं पश्चात् महाबलपराक्रमः ॥ १६१९ ॥
लम्बोदरो वक्रतुण्डः सर्वविघ्नहरोऽपि च ।
ङेन्तानेतान् वदेत्पञ्च शब्दान् क्रमत ईश्वरि ॥ १६२० ॥
गणेशबीजत्रितयं महागणपतिस्ततः ।
ङेऽन्तः सन्धिविहीनं स्यादिमं बलिमिदं पदम् ॥ १६२१ ॥
गृह्णयुग्मं सर्वविघ्नं हरयुग्ममतः परम् ।
नाशयद्वितयं चापि मर्दद्वन्द्वं सुखं घृणा ॥ १६२२ ॥

मर्यादापञ्चमः शुक्रः कूर्चास्त्रे हृदयं शिरः ।
बलिदानमनुस्त्वेष प्रोक्तो गणपतेरपि ॥ १६२३ ॥

गणपतिबलि का उत्सर्ग मन्त्र—इसके बाद साधक को गणेश के लिये वलि देनी चाहिये । अब प्रसिद्ध अन्तरात्मा से उसके मन्त्र को सुनो । मैंध माया लक्ष्मी शाकिनी डाकिनी के बाद 'देवीपुत्र' पद के पश्चात् 'महावलपराक्रम लम्बोदर वक्रतुण्ड सर्वविघ्नहर' हे ईश्वरि! इन पदों को क्रमशः चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । गणेश बीज को तीन बार फिर 'महागणपति' को ङेऽन्त कहकर सन्धिरहित 'इमं बलिं' इस पद को फिर दो 'गृह्ण' पुनः 'सर्वविघ्नं' के बाद दो 'हर' इसके बाद दो 'नाशय' दो 'मर्द' फिर सुख घृणा मर्यादा पञ्चम शुक्र कूर्च अस्त्र हृदय और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं फ्रें खफ्रें देवीपुत्राय महाबलपराक्रमाय लम्बोदराय वक्रतुण्डाय सर्वविघ्नहराय गं गं गं महागणपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण सर्वविघ्नं नाशय नाशय मर्द मर्द झां झीं झूं झैं झौं हूं फट् नमः स्वाहा) ।

यह गणपति का बलिदान मन्त्र भी कहा गया ॥ १६१८-१६२३ ॥

[वटुकबल्युत्सर्गमन्त्रः]

वटुकेभ्यो बलिं दातुं मनुमाकलयाधुना ।
तारः कामश्च कमला प्रलयो योगिनी तथा ॥ १६२४ ॥
देवीसहचरः शब्दो महावटुकनाथयुक् ।
पिङ्गलोर्ध्वजटश्चापि मुक्ताट्टाट्टपदादनु ॥ १६२५ ॥
हासः श्मशानवासी च शूलखट्वाङ्गधार्यपि ।
षडिमान् प्रवदेत् ङेन्तानिमं बलिमतः परम् ॥ १६२६ ॥
गृह्णद्वयं समाभाष्य भक्षयद्वितयं तथा ।
ततश्च सर्वसमयसिद्धिं देहि युगं वदेत् ॥ १६२७ ॥
त्रैलोक्यडामरपदं चित्तक्षोभणमेव च ।
विघ्नहर्तृपदं चापि ङेऽन्तं त्रितयमीरयेत् ॥ १६२८ ॥
हुंफट्नमस्ततः स्वाहा सर्वशेषगतं स्मरेत् ।

वटुकबलि का उत्सर्ग मन्त्र—अब वटुकभैरवों के लिये बलि देने का मन्त्र सुनो । तार काम कमला प्रलय योगिनी के बाद 'देवी सहचर' को 'वटुकनाथ' से युक्त कर कहना चाहिये । 'पिङ्गलोर्ध्वजट' 'मुक्ताट्टाट्ट' पद के बाद 'हास' 'श्मशानवासी शूलखट्वाङ्गधारी' इन छह पदों को ङेऽन्त कहना चाहिये । इसके बाद 'बलिं' दो 'गृह्ण' कहकर दो 'भक्षय' कहना चाहिये । इसके बाद 'सर्वसमयसिद्धिं' पुनः 'देहि' को दो बार कहना चाहिये । 'त्रैलोक्यडामर चित्तक्षोभण विघ्नहर्तृ' तीन पदों को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । सबके अन्त में 'हुं फट् नमः स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं क्लीं श्रीं हसफ्रें छ्रीं देवीसहचराय महावटुकनाथाय पिङ्गलोर्ध्वजटाय मुक्ताट्टाट्टहासाय श्मशानवासिने शूलखट्वाङ्गधारिणे इमं बलिं गृह्ण गृह्ण भक्षय भक्षय सर्वसमयसिद्धिं देहि देहि त्रैलोक्यडामराय चित्तक्षोभणाय विघ्नहर्त्रे हुं फट् नमः स्वाहा) ॥ १६२४-१६२८- ॥

[क्षेत्रपालबल्युत्सर्गमन्त्रः]

अतो निशामय मनुं क्षेत्रपालबलिप्रदम् ॥ १६२९ ॥
तारो मैधश्च माया च योगिनी वनिताऽपि च ।
शाकिनी डाकिनी चापि प्रलयोऽस्यानु गद्यते ॥ १६३० ॥
फेत्कारी चेति बीजानि पुरतो नव भावयेत् ।
हृन्मन्त्रः क्षेत्रपालेभ्यो भूतप्रेतपिशाच च ॥ १६३१ ॥
कूष्माण्डाधिपतिभ्यश्च ससन्धीमं बलिं ततः ।
गृह्णद्वयं भुञ्जयुगं भक्षयद्वितयं ततः ॥ १६३२ ॥
विसन्ध्यविघ्नमिति च कुरुयुग्ममनन्तरम् ।
पूरकादीनि पञ्चापि बीजानि तदनन्तरम् ॥ १६३३ ॥
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते मनुरेष प्रकाशितः ।

क्षेत्रपाल को बलि देने का मन्त्र—इसके बाद क्षेत्रपाल के लिये बलि देने का मन्त्र सुनो । तार मैध माया योगिनी वनिता शकिनी डाकिनी प्रलय और फेत्कारी इन नौ बीजों को पहले कहना चाहिये । उसके बाद हृन्मन्त्र । फिर 'क्षेत्रपालेभ्यो भूतप्रेतपिशाचकूष्माण्डाधिपतिभ्यो' के बाद सन्धियुक्त 'इमं बलिं' फिर दो 'गृह्ण' दो 'भुञ्ज' दो 'भक्षय' फिर सन्धिरहित 'अविघ्नं' दो 'कुरु' उसके बाद पूरक पाँच बीज तदनन्तर अन्त में कूर्च अस्त्र हृदय शिर यह मन्त्र प्रकाशित किया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हसफ्रें हसखफ्रें नमः क्षेत्रपालेभ्यो भूतप्रेतपिशाचकूष्माण्डाधिपतिभ्य इमं बलिं गृह्ण गृह्ण भुञ्ज भुञ्ज भक्षय भक्षय अविघ्नं कुरु कुरु क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ १६२९-१६३३- ॥

[मातृगणबल्युत्सर्गमन्त्रः]

अथ मातृगणानां हि बलिदानमनुं शृणु ॥ १६३४ ॥
मैधं माया रमा कामो डाकिनी नृहरिस्ततः ।
ततो नाराचनालीकौ फेत्कारी चेति वै नव ॥ १६३५ ॥
सर्वाशब्दो मातृशब्दः पुनः सर्वा च खेचरी ।
सर्वा च भूचरी सैव सर्वा दिक्चर्यपि प्रिये ॥ १६३६ ॥
पुनः सर्वा पदं चापि भूतप्रेतपिशाचिनी ।
सर्वा सिद्धा द्वादशैता भ्यसन्ताः परिकीर्तयेत् ॥ १६३७ ॥
सन्धानसहिताः सर्वा इमं बलिमतः परम् ।

निवेदयामि चाभाष्य सौम्या भवन्तु कीर्तयेत् ॥ १६३८ ॥
सन्धानसहिताः सर्वा इमं बलिमतः परम् ।
(गृह्णीतखादतद्वयं तदन्ते समुदीरयेत्) ॥ १६३९ ॥
सन्ध्यां सर्वोपद्रवांश्च ततो नाशयतेरयेत् ।
अविघ्नं कुरुतेत्युक्त्वा कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ॥ १६४० ॥

मातृसमूहों के लिये बलि देने का मन्त्र—अब मातृगणों के बलिदान का मन्त्र सुनो । मैध माया रमा काम डाकिनी नरसिंह उसके बाद नाराच नालीक और फेत्कारी ये नौ बीज उसके अनन्तर 'सर्वा' शब्द 'मातृ' शब्द पुनः 'सर्वा' और 'खेचरी सर्वा' और 'भूचरी सर्वा और 'दिक्चरी' । हे प्रिये! पुनः 'सर्वा' पद उसके बाद 'भूतप्रेत-पिशाचिनी सर्वा सिद्धा इन बारह को भ्यसन्त अर्थात् चतुर्थी बहुवचनान्त एवं सबको सन्धिसहित कहना चाहिये । 'इमं बलिं' इसके बाद निवेदयामि सौम्या भवन्तु ('गृह्णीत खादत' को दो-दो बार) 'सन्ध्यां सर्वोपद्रवांश्च' फिर 'नाशयत' कहना चाहिये । 'अविघ्नं कुरुत' कहकर कूर्च अस्त्र हृदय शिर कहे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें क्ष्रौं खफछ्रीं क्षस्त्रीं हसखफ्रें सर्वाभ्यो मातृभ्यः सर्वाभ्यः खेचरीभ्यः सर्वाभ्यो भूचरीभ्यः सर्वाभ्यो दिक्चरीभ्यः सर्वाभ्यो भूतप्रेत पिशाचिनीभ्यः सर्वाभ्यः सिद्धाभ्यः इमं बलिं निवेदयामि सौम्या भवन्तु गृह्णीत गृह्णीत खादत खादत सन्ध्यां सर्वोपद्रवांश्च नाशयत अविघ्नं कुरुत हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ १६३४-१६४० ॥

[योगिनीबल्युत्सर्गविधिः]

योगिनीनां बलिमनुं प्रवदामि तवाधुना ।
प्रणवो भौवनेशी च योगिनी शाकिनी रुषः ॥ १६४१ ॥
गुह्या सहचरीशब्दः सर्वायोगिन्यनन्तरम् ।
त्रयं भ्यसन्तमुद्धृत्य मध्ये सन्धानसंहितम् ॥ १६४२ ॥
इमं बलिं समाभाष्य गृह्ण खाहि युगं युगम् ।
सर्वारिष्टं ततश्चोक्त्वा विनाशय युगं लिखेत् ॥ १६४३ ॥
सर्वान् कामानपि प्रोच्य पूरयद्वितयं वदेत् ।
मम शत्रूनिति ततः संहरद्वितयं तथा ॥ १६४४ ॥
निद्रा च योगिनी पूर्णा धूमोऽपि ललिता ततः ।
पूर्वोदिता सर्वशेषे परिज्ञेया षडक्षरी ॥ १६४५ ॥

योगिनी बलि देने के विधि—अब तुमको योगिनियों की बलि का मन्त्र बतला रहा हूँ । प्रणव भौवनेशी योगिनी शाकिनी क्रोध के बाद 'गुह्या सहचरी' शब्द के अनन्तर 'सर्वायोगिनी' तीनों को भ्यसन्त कहकर मध्य में सन्धि सहित 'इमं बलिं' कहकर 'गृह्ण खाहि' को दो-दो बार उसके पश्चात् 'सर्वारिष्टं' कहकर 'विनाशय' को दो

वार लिखना चाहिये । 'सर्वान् कामान्' कहकर 'पूरय' को दो बार कहना चाहिये । 'मम शत्रून्' फिर दो 'संहर' कहकर निद्रा योगिनी पूर्णा धूम और ललिता के बाद सबके अन्त में षडक्षरी जाननी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं गुह्याभ्य: सहचरीभ्य: सर्वायोगिनीभ्य इमं वलिं गृह्ण गृह्ण खाहि खाहि सर्वारिष्टं विनाशय विनाशय सर्वान् कामान् पूरय पूरय मम शत्रून् संहर संहर छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं हूं फट् नम: स्वाहा) ॥ १६४१-१६४५ ॥

[डाकिनीबल्युत्सर्गमन्त्र:]

डाकिनीबलिदानस्य मन्त्रः साम्प्रतमुच्यते ।
सारस्वतञ्च प्रासादः क्षेत्रपालस्ततः परम् ॥ १६४६ ॥
डाकिनी नरसिंहौ च पञ्चबीजानि वै पुरः ।
सर्वाभ्यो डाकिनीभ्योऽनु सागरो गुप्तिरेव च ॥ १६४७ ॥
सन्तोषहायिपाकाश्च ततो ब्रूयादिमं बलिम् ।
गृह्ण खाद युगं युग्मं भुञ्ज खाहि तथैव च ॥ १६४८ ॥
सत्त्वयोरन्तरेणेव मां द्विषन्तं ततो वदेत् ।
मारयद्वयमाभाष्य मर्दय द्वितयं ततः ॥ १६४९ ॥
खेचरीसिद्धिमिति च देहि दापय तत्पद(र?)म् ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा तदनन्तरम् ॥ १६५० ॥
केकराक्षी कालरात्रिः कूर्चमन्त्रं नमः शिरः ।

डाकिनीबलि के उत्सर्ग का मन्त्र—अब डाकिनी बलिदान का मन्त्र कहा जा रहा है । सारस्वत प्रासाद क्षेत्रपाल उसके बाद डाकिनी नरसिंह ये पाँच बीज पहले रहते हैं । उसके बाद 'सर्वाभ्यो डाकिनीभ्यो' के पश्चात् सागर गुप्ति सन्तोष हयि पाक फिर कहना चाहिये—'इमं बलिं' फिर दो-दो 'गृह्ण खाद' उसी प्रकार 'भुञ्ज खाहि' फिर दो सत्त्व के बीच 'मां द्विषन्तं' कहना चाहिये । दो 'मारय' कहकर दो 'मर्दय' फिर 'खेचरीसिद्धिम्' 'देहि दापय' पद के बाद प्रभञ्जना भ्रामरी प्रचण्डा उसके बाद केकराक्षी कालरात्रि फिर कूर्चमन्त्र फिर 'नम:' और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं हौं क्षौं खफ्रें क्ष्रौं सर्वाभ्यो डाकिनीभ्यो डां डीं डूं डैं डौं इमं बलिं गृह्ण गृह्ण खाद खाद भुञ्ज भुञ्ज खाहि खाहि लां मां द्विषन्तं लां मारय मारय मर्दय मर्दय खेचरीसिद्धिं देहि दापय खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रौं हूं नम: स्वाहा) ॥ १६४६-१६५०- ॥

[स्थानाधिपबल्युत्सर्गमन्त्र:]

अथ स्थानबलेर्मन्त्रं व्याहरिष्यामि शेषगम् ॥ १६५१ ॥
तारो मैधं च माया च रमाकामवधूरुषः ।

शाकिनी डाकिनी चेति नवबीजानि वै पुरः ॥ १६५२ ॥
अत्रत्येभ्यो न सर्वेभ्यो देवेभ्यस्तदनन्तरम् ।
स्त्रीलिङ्गत्वेन देवेशि तान् स्त्रीनेव समुच्चरेत् ॥ १६५३ ॥
एतत्स्थानाधिपतिभ्य इमं बलिमथोद्धरेत् ।
वदेत्सौम्या भवन्तूक्त्वा कूर्चानां त्रितयं ततः ॥ १६५४ ॥
तथास्त्राणां त्रयं हार्दशिरोमन्त्रोन्त्यगाम्यपि ।
इत्यष्टधा बलिमनुर्मया ते प्रतिपादितः ॥ १६५५ ॥

स्थान स्वामी के बलिदान का मन्त्र—अब अन्तिम स्थानाधिपति के मन्त्र को कह रहा हूँ । तार मैध माया रमा काम वधू रुष शाकिनी डाकिनी इन नौ बीजों को पहले कहना चाहिये । 'अत्रत्येभ्य: सर्वेभ्यो देवेभ्य:' के बाद हे देवेशि! उनको स्त्रीलिङ्ग में कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'एतत् स्थानाधिपतिभ्य इमं बलिं' कहना चाहिये । इसके अनन्तर 'सौम्या भवन्तु' कहकर तीन कूर्च तीन अस्त्र हृदय और शिर यह अन्त में रहते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें खफ्रें अत्रत्येभ्य: सर्वेभ्यो देवेभ्य अत्रत्याभ्य: सर्वाभ्यो देवीभ्य एतत्स्थानाधिपतिभ्य इमं बलिं सौम्या भवन्तु हूं हूं हूं फट् फट् फट् नम: स्वाहा) ।

इस प्रकार मैंने तुमको आठ प्रकार की बलि का मन्त्र बतलाया ॥१६५१-१६५५॥

[शक्तिपूजोपक्रम:]

बलिदानं विधायाथ शक्तिपूजनमाचरेत् ।

शक्तिपूजा का उपक्रम—बलिदान करने के बाद शक्ति की पूजा करनी चाहिये ॥ १६५५- ॥

[शक्तिपूजानधिकारिण:]

शैवाः स्मार्ताः याज्ञिकाश्च तां न कुर्वन्ति पार्वति ॥ १६५६ ॥

शक्तिपूजा के अनधिकारी—हे पार्वति! शैव स्मार्त्त और याज्ञिक इसको नहीं करते ॥ १६५६ ॥

[शक्तिपूजाधिकारिण:]

कौलानामागमज्ञानां तान्त्रिकाचारवर्तिनाम् ।
अनुकल्पप्रदातॄणां मध्यस्थानां तथैव च ॥ १६५७ ॥
देवीति बुद्धिर्योषित्सु येषामविचला तथा ।
तेषां काल्यतिभक्तानां सर्वदा निश्चितात्मनाम् ॥ १६५८ ॥
आवश्यकी शक्तिपूजा पीठपूजावदीश्वरि ।
कालीबुद्धौ च सम्पूज्या न कामाकुलया धिया ॥ १६५९ ॥

चतुर्थाश्रमिणो मुक्त्वा ये काल्यर्चनतत्पराः ।
कौलिका वाप्यकौला वा ये चैतन्मतवर्तिनः ॥ १६६० ॥
तेषां नित्या शक्तिपूजा प्राहैवं मां पुरद्विषः ।

शक्तिपूजा के अधिकारी—हे ईश्वरि! कौल आगमज्ञ तन्त्राचारवाले, अनुकल्प देनेवाले, मध्यस्थ, स्त्रियों के विषय में जिनकी स्थिर देवीबुद्धि होती है तथा जो कि सर्वदा निश्चित आत्मावाले होते हैं ऐसे काली के अत्यन्त भक्तों के लिये पीठपूजा की भाँति शक्तिपूजा आवश्यक होती है । शक्ति अर्थात् स्त्री की पूजा कालीबुद्धि से करनी चाहिये न कि कामाकुल बुद्धि से । चतुर्थाश्रमी अर्थात् संन्यासियों को छोड़कर जो भी कौलिक या अकौलिक अथवा इस मत का अनुसरण करनेवाले हैं उनके लिये शक्तिपूजा नित्यकरणीय होती है—ऐसा मुझसे त्रिपुरारि ने कहा ॥ १६५७-१६६०-॥

[शक्तिपूजामाहात्म्यम्]

कृतायां शक्तिपूजायां सफलं नित्यपूजनम् ॥ १६६१ ॥
अकृतायाममुष्यां तु निःफलं नित्यपूजनम् ।
तस्माद् यत्नेन सम्पूज्या शक्तिर्नित्यार्चनादनु ॥ १६६२ ॥
देवीधियैव सम्पूज्या न सामान्यवधूधिया ।

शक्तिपूजा की महिमा—शक्तिपूजा के किये जाने पर नित्यपूजा सफल होती है । इस पूजा के न करने पर नित्यपूजा निष्फल होती है । इस कारण नित्यार्चन के बाद यत्नपूर्वक शक्तिपूजा करनी चाहिये । (शक्ति की पूजा शक्ति को) देवी मानकर करनी चाहिये न कि सामान्य स्त्री समझकर ॥ १६६१-१६६२- ॥

[शक्तिपरिचयः]

सा शक्तिर्द्विविधा ज्ञेया स्वकीया च पराङ्गना ॥ १६६३ ॥

शक्ति का परिचय—वह शक्ति दो प्रकार की होती है (१) स्वकीया अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री और (२) परकीया अर्थात् अपनी पत्नी से भिन्न ॥ १६६३ ॥

[स्वकीयायाः शक्तेरप्राशस्त्यम्]

स्वजातिसम्भवा या तु परिणीताऽभवत् प्रिये ।
सा स्वकीया समुद्दिष्टा तथा नेयं प्रशस्यते ॥ १६६४ ॥

अपनी शक्ति उत्तम नहीं होती—हे प्रिये! जो अपनी जाति में उत्पन्न और अपने से विवाहित होती है, वह स्वकीया कही गयी है । वह उतनी प्रशस्य नहीं मानी जाती ॥ १६६४ ॥

[परकीयाशक्तिभेदः]

परकीया पञ्चविधास्ताः क्रमेण ब्रवीम्यहम् ।
सजीवभर्तृकाऽन्योढ़ा तादृगेव मृतप्रिया ॥ १६६५ ॥

दासी वेश्या तथाऽनूढा प्रशस्ताश्चोत्तरोत्तरम् ।
अजातवत्सा युवती तास्वाद्यैव प्रशस्यते ॥ १६६६ ॥
कदाचित् जातवत्साऽपि सा पूर्वसदृशी मता ।
अभावे पूर्वपूर्वाया: परा ग्राह्याभिसाधकै: ॥ १६६७ ॥

परकीया शक्ति के प्रकार—परकीया शक्ति पाँच प्रकार की होती है । मैं उनको क्रम से बतला रहा हूँ । (१) जिसका पति जीवित हो ऐसी अन्य से ब्याही गयी (२) अन्य से ब्याही गयी किन्तु विधवा (३) दासी (४) वेश्या और (५) अविवाहिता । इसमें से जिसको सन्तान उत्पन्न न हुई हो ऐसी युवती सर्वोत्तम होती है । कभी सन्तानवाली भी युवती प्रशस्य मानी जाती है । पूर्व पूर्व के न मिलने पर साधकों को परा परा अर्थात् बाद वाली प्रयोग में लानी चाहिये ॥ १६६५-१६६७ ॥

[साधिकाया: कृते पुरुषस्यात्र नियतापेक्षा]

साधिकायां च कौलायां एवमेव पुमानपि ।
न साधकं विना नार्या न
पुंस: (साधिका-?) मृते ॥ १६६८ ॥
मन्त्रा: सिद्ध्यन्ति देवेशि कल्पकोटिशतैरपि ।

साधिका के लिये निश्चित पुरुष—यदि साधिका कौलमार्ग का अनुसरण करने वाली है तो पुरुष को भी ऐसा ही अर्थात् कौलमार्गी होना चाहिये । हे देवेशि! विना साधक के स्त्री को और विना साधिका के पुरुष को कोटिकल्पों में भी मन्त्र सिद्ध नहीं होते ॥ १६६८-१६६८- ॥

[परस्त्रीसङ्गमादेरौचित्यप्रतिपादनम्]

परस्त्रीसङ्गमो मद्योपसेवा प्राणिमारणम् ॥ १६६९ ॥
स्वार्थं चेन्नरकायैव देवार्थं सुकृताय हि ।
को हेतुर्नैव जानामि देवीप्रीतिकरा इमे ॥ १६७० ॥
न पापजनकं यद्वत् यज्ञार्थं पशुघातनम् ।
न किल्विषकरस्तद्वत् परस्त्रीसङ्गमादिक: ॥ १६७१ ॥

परस्त्री समागम आदि का औचित्य—पराई स्त्री के साथ सम्भोग, मदिरापान एवं प्राणियों की हिंसा यदि स्वार्थ की जाती है तो वह नरक में ले जाती है और यदि देवता के लिये विहित होती है तो इससे पुण्य होता है । इसके पीछे क्या कारण है, मैं नहीं जानता; किन्तु इतना अवश्य है कि ये कृत्य देवी को प्रसन्न करने वाले होते हैं। जिस प्रकार यज्ञ के लिये पशु हिंसा से पाप नहीं होता उसी प्रकार परस्त्री समागम आदि (यदि देवता के लिये किया गया होता है तो) पाप का कारण नहीं होता ॥ १६६९-१६७१ ॥

[परस्त्रीसङ्गमादितान्त्रिकविधेरनिन्द्यत्वसाधनम्]

इमं विधिमकुर्वाणैः यैः कैरपि वरानने ।
अवहेला न कर्तव्या न जुगुप्सा कदाचन ॥ १६७२ ॥
न निन्दा न परीवादो न द्वेषो नैव धिक्कृतिः ।
कृते तु सर्वनाशः स्यात् मरणं रोग एव वा ॥ १६७३ ॥
दारिद्र्यं पुत्रनाशश्च बन्धनं निगडादिभिः ।
तस्मान्निन्दा न कर्तव्या यदीच्छेदात्मनः शुभम् ॥ १६७४ ॥
स्वभाव एव देव्यास्तु प्रीतिः शक्त्यर्चनादिभिः ।
राजाज्ञेवाप्रणोद्येयं सैव ब्रूते सनातनी ॥ १६७५ ॥
मदनोन्मादिनी कामातुरा चापि भगप्रिया ।
सामरस्यपदं प्राप्तेत्येवंरूपा पदानि हि ॥ १६७६ ॥
मन्त्रमध्ये वरारोहे तिष्ठन्ति कथमन्यथा ।
अत्रास्थां महतीं वध्वा देव्याज्ञासम्भवां सदा ॥ १६७७ ॥
न कौलिकाः प्रकुर्वन्ति विचारं शक्तिषु ध्रुवम् ।
स्वीयाः सुता जनीजायाः साधकेभ्यो ददत्यपि ॥ १६७८ ॥
गृह्णन्ति स्वयमन्येषां बीजं तत्रेश्वरीवचः ।

परस्त्री समागम आदि तान्त्रिक विधि की निन्दा नहीं करनी चाहिये—हे वरानने! इस विधि को न करनेवाले जो कोई भी हों उनको इस विधि की कभी भी न तो उपेक्षा करनी चाहिये न घृणा । न निन्दा न परिवाद न द्वेष न धिक्कार । ऐसा करने पर या तो ऐसा करनेवाले का सर्वनाश हो जाता है या मृत्यु या रोग, या दरिद्रता, पुत्रनाश, कारागार होता है । इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाला इसकी निन्दा न करे । यह देवी का स्वभाव है कि वह शक्ति की पूजा आदि से प्रसन्न होती है। वह सनातनी देवी ही कहती है कि यह राजाज्ञा के समान अप्रणोद्य अर्थात् अनुपेक्ष्य अनिवार्य है । अन्यथा मन्त्रों के मध्य में 'मदनोन्मादिनी कामातुरा भगप्रिया सामरस्य' पद को प्राप्ता इत्यादि पद कैसे रहते हैं अर्थात् कहे गये हैं । इस विषय में कौलिक लोग अत्यन्त अधिक आस्था रखते हैं । यह आस्था देवी की आज्ञा से सम्भूत है । इसलिये वे शक्तियों के विषय में विचार नहीं करते । वे अपनी स्त्री पुत्री माता को अन्य साधकों के लिये देते हैं और उनसे लेते भी हैं । इस विषय में ईश्वरी अर्थात् कालिका का वचन प्रमाण है ॥ १६७२-१६७८ ॥

[स्मार्त्तस्य कृते निन्द्याशक्तिविचारः]

स्मृत्यध्वसञ्चरिष्णूनां योग्यायोग्यत्वमस्ति हि ॥ १६७९ ॥
स्नुषा सपत्नीमाता च सुता च भगिनी तथा ।
गुर्वङ्गना मातुलानी पितृव्यवनिता तथा ॥ १६८० ॥
पितृमातृष्वसा चैव श्वश्रूरथ पितामही ।

मातामही शिष्यपत्नी दीक्षिताचार्ययोरपि ॥ १६८१ ॥
रजकी चर्मकारस्त्री कैवर्ती वारुडी तथा ।
चाण्डाली पुक्कसी मेदी किराती यवनीषुधी ॥ १६८२ ॥
रजस्वला गुर्विणी च तथैवान्त्यजगामिनी ।
पतिघ्नी शरणायाता भ्रूणगर्भनिपातिनी ॥ १६८३ ॥
वृद्धा रुग्णा प्रव्रजिता याश्च निन्द्यतयोदिता ।
शक्तिकोटौ न निक्षेप्या एताः स्मृतिपथस्थितैः ॥ १६८४ ॥

स्मार्त्त के लिये निन्दनीय शक्ति विचार—स्मृतिमार्ग का अनुसरण करनेवालों के विषय में शक्ति के योग्यत्व-अयोग्यत्व का विचार करणीय होता है । पुत्रवधू सपत्नी की माता पुत्री बहन गुरुपत्नी मामी चाची फूफी मौसी सास दादी नानी शिष्य की वधू दीक्षित और आचार्य की पत्नियाँ रजस्वला गुर्विणी (= गर्भिणी) अन्त्यज के साथ समागम करनेवाली पतिघातिनी शरण में आयी हुई भ्रूणपातिनी गर्भपालिनी वृद्धा रोगिणी संन्यासिनी और अन्य जो निन्द्य मानी गयी हैं, स्मार्त्तो को चाहिये कि वे इनको शक्ति न बनायें ॥ १६७९-१६८४ ॥

[स्मार्तस्य कृते प्रशस्तशक्तिविचारः]

प्रशस्ता अथ वक्ष्यामि या ग्राह्या शक्तिपूजने ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा रण्डा कुलाङ्गना॥ १६८५ ॥
सुवासिनी कामुकी च स्वैरिणी चाभिसारिका ।
अवीरोढा सुखी (?) चापि सैरन्ध्री दूतिका तथा॥ १६८६ ॥
नृपाङ्गना वारमुख्या वन्ध्या राजसुता तथा ।
पुष्पलावी कारुयोषा कुलाली सौचिकी तथा॥ १६८७ ॥
ग्रामीणा पामरी धूर्ता काम्बरी नापिगी(?ती) नटी ।
दैवज्ञवनिता चापि साधिका प्रतिवेशिनी॥ १६८८ ॥
स्वयं रतिं याचते या विदग्धान्तःपुरस्थिताः ।
ईदृश्यः शक्तयः स्मार्तैरङ्गीकार्याः प्रपूजने॥ १६८९ ॥
ग्राह्याः पुमांसोऽपि शिवे साधिकाभिरपीदृशाः ।

स्मार्त्तों के लिये प्रशस्य शक्ति विचार—अब उन प्रशस्त स्त्रियों को बतला रहा हूँ जो शक्तिपूजा में ग्रहण करने योग्य होती हैं । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा राँड पतिव्रता सुवासिनी कामुकी स्वैरिणी (= स्वच्छन्द होकर जिस किसी पुरुष के साथ सम्भोग करने वाली) अभिसारिका (= रात्रि अथवा उचित समय को देखकर प्रिय पुरुष के पास सम्भोग के लिये जाने वाली) अवीरोढा (= निःसन्तान या कायर की व्याहता) मुखी[1] (= मुख्य अर्थात् ग्राम के मुखिया की स्त्री?), सैरन्ध्री (= अन्तःपुर

---

[1] सुखी—इति पाठान्तरम् ।

की सेविका) दूती राजरानी, नगरवधू, बन्ध्या, राजपुत्री पुष्पलावी (= मालिन) कारुयोषा (= लोहारिन) कुलाली (= कुम्भकार की स्त्री) सौचिकी (= दर्जी की स्त्री) ग्रामीणा (= गाँव की रहने वाली) पामरी (= नीच प्रवृत्ति या नीचकर्म वाली स्त्री), धूर्त्ता, काम्बरी (= शङ्ख या सीपी का व्यापार करनेवाली ?) नापिती (= नाईन) नटी (= नाटक में काम करने वाली या नट जाति की स्त्री) ज्योतिषी की स्त्री, साधिका, पड़ोसन, जो स्वयं साधक के साथ समागम की इच्छुक हो, विदग्धा तथा अन्तःपुर में रहने वाली इस प्रकार की स्त्रियाँ शक्तिपूजन में ली जानी चाहिये । साधिकायें भी इसी प्रकार के पुरुषों का ग्रहण करें ॥ १६८५-१६८९- ॥

[शक्तिकोटावनागताङ्गनाविचारः]

न न्यूनाङ्ग्यो नाधिकाङ्ग्यो न स्थूला नाधिकं कृशाः॥ १६९० ॥
न छिन्ननासाङ्गुलिका न दीर्घा न च वामनाः ।
न मुण्डिता न कुब्जाश्च मूकान्धबधिरा न च॥ १६९१ ॥
न केकरा न खञ्जाश्च भिन्नयोनिगलत्कुचा ।
बालापत्या च विभ्यत्यो न कार्याः शक्तयस्त्विमाः ॥ १६९२ ॥

शक्ति की श्रेणी में न आने वाली स्त्री का विचार—कम अङ्गों वाली, अधिक अङ्गों वाली, बहुत मोटी, बहुत दुबली, नाककटी, कटीं अँगुली वाली, बहुत लम्बी, बहुत नाटी, शिर मुंड़ाई हुई, कुबड़ी, गूँगी, अन्धी, बहरी, भैंगी, लँगड़ी, कटी योनि वाली, कटे स्तन वाली, छोटे बच्चे वाली, डरने वाली—इन स्त्रियों को शक्ति नहीं बनानी चाहिये ॥ १६९०-१६९२ ॥

[उत्तमशक्तिविचारः]

वदामि योग्यास्वाधिक्यं याभिस्तुष्यति कालिका।
गौराङ्गी युवती रम्या स्मेरास्या चारुविग्रहाः ॥ १६९३ ॥
विशाललोलनयना पीनोन्नतपयोधराः ।
आमोदितप्रतीका च नितम्बाभोगभासुराः ॥ १६९४ ॥
विशालजघनाभोगा बलित्रयविराजिता ।
सुपार्श्वा तनुमध्या च सुस्वरा कुञ्चितालका ॥ १६९५ ॥
विचित्रवेशाभरणा विचित्राम्बरधारिणी ।
विचित्रस्त्रक्समाकीर्णा विचित्ररत्नदायिका ॥ १६९६ ॥
सदा प्रसन्नवदना देव्यां भक्तिपरायणा ।
कौलिकाचरणज्ञा च साधके भक्तितत्परा ॥ १६९७ ॥
भयहीना स्मेरमुखी सर्वदा प्रियवादिनी ।

उत्तम शक्ति का विचार—मैं योग्य शक्तियों की अधिकता को बतला रहा हूँ जिनसे गुह्यकाली सन्तुष्ट होती है । गौर वर्णवाली, युवती, सुन्दर, मुस्करानेवाली,

सुन्दर शरीरवाली, बड़ी एवं चञ्चल आँखोंवाली, चौड़े और ऊँचें स्तनोंवाली, आमोदित प्रतीका (= सुगन्धित मुखवाली) बड़े नितम्बोंवाली, विशाल जाँघोंवाली, पेट के ऊपर तीन रेखावाली, सुन्दर पार्श्व एवं पतली कटिवाली, मधुर स्वरवाली, घुँघराले बालोंवाली, विचित्र वेश एवं विचित्र आभूषणों को धारण की हुई, विचित्र वस्त्र धारण करनेवाली, सदा प्रसन्न मुखवाली, देवी के प्रति भक्तिभाववाली, कुल परम्परा के आचार को जाननेवाली तथा साधक के प्रति भक्ति रखनेवाली, निर्भय मन्द मुस्कानवाली तथा प्रियवादिनी शक्ति ग्राह्य होती है ॥ १६९३-१६९७ ॥

[शक्तिपूजाप्रसङ्गे कापालिकादितान्त्रिकमतम्]

अथ कापालिकादीनां मतं ते कथयाम्यहम् ॥ १६९८ ॥
अन्वहं मदिरापेक्षा शक्त्यपेक्षाऽन्वहं तथा ।
आभ्यां विना न पूजैषां कदाचिदपि सिद्ध्यति ॥ १६९९ ॥
विरूपवेशचारित्वं नरकीकशधारिता ।
सदा श्मशानवासित्वं सर्वदाऽशुचिता तथा ॥ १७०० ॥
वेदोक्तकर्मत्यागित्वं गर्हाकृत्कार्यकारिता ।
विहाय जननीमेषां सर्वाः स्युः शक्तयः प्रिये ॥ १७०१ ॥
तत्तत्तन्त्रेष्वमीषां हि ज्ञेयाः नानाविधाः क्रियाः ।
बहुभिः किं वचोजालैः समासात्समयं शृणु ॥ १७०२ ॥
निर्दिश्यन्ते(?ते) शक्तिपूजा कौलिकानां दिने दिने ।
प्रत्यहं च सुरादानं तत्स्वीकारोऽन्वहं तथा ॥ १७०३ ॥
नित्यतोक्ततया देवि कुलमार्गरतेषु च ।
हेयाहेयविचारोऽपि विरलः शक्तिषु प्रिये ॥ १७०४ ॥
अनुकल्पप्रदातृणामपि नित्यत्वमत्र हि ।
विहाय गर्हिताः शक्तीः योग्या एव हि गृह्णते ॥ १७०५ ॥
इतरेषां शक्तिपूजा काम्या नैमित्त(?त्ति)की तथा ।
समाधिषूचितानां स्यादितरासां निराकृतिः ॥ १७०६ ॥

शक्तिपूजा के विषय में कापालिक आदि का मत—अब तुमको कापालिक आदि का मत बतला रहा हूँ । कापालिकों के लिये प्रतिदिन मदिरा और प्रतिदिन शक्ति की अपेक्षा होती है । इन दोनों के विना इसकी पूजा कभी भी सिद्ध नहीं होती । इनका वेश और रूप विकृत होता है । ये मनुष्य की हड्डी धारण करते हैं । सदा श्मशान में रहते और सर्वदा अशुद्ध रहते हैं । वेदोक्त कर्म को छोड़ देनेवाले ये सदा घृणित कार्य करते हैं । हे प्रिये! अपनी जननी के अतिरिक्त सारी स्त्रियाँ इनकी शक्ति होती हैं । भिन्न-भिन्न तन्त्रों में इनकी क्रियायें भिन्न-भिन्न होती हैं । अधिक बातें करने से क्या लाभ । संक्षेप में इनके नियमों को सुनो—कौलिकों के लिये शक्तिपूजा

को प्रतिदिन करने का निर्देश है । सुरा को देना और उसको लेना भी कुलमार्गियों के लिये नित्यकरणीय है । शक्ति के विषय में त्याज्य और ग्राह्य का विचार भी बहुत कम होता है । अनुकल्प देनेवालों के लिये भी यह नित्यकरणीय है । वे लोग निन्दनीय शक्तियों को छोड़कर योग्य शक्तियों का ही ग्रहण करते हैं । कौलों के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिये शक्ति पूजा काम्य और नैमित्तिक होती है । समाधिस्थ योगियों के लिये अन्य शक्तियों का निराकरण है (अर्थात् वे लोग अपनी शक्ति के साथ ही साधना करने के अधिकारी हैं) ॥ १६९८-१७०६ ॥

[शक्तिपूजाविधानम्]

विधानं कलयेदानीं मन्त्रानपि च पार्वति ।
स्नातां दिव्याम्बरधरां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥ १७०७ ॥
युवतीं पीनवक्षोजां तथा चाकृतभोजनाम् ।
हस्ते गृहीत्वा वामोरौ स्थापयेच्छक्तिमुत्तमाम् ॥ १७०८ ॥
अशक्नुवानो वोढुं तां देव्या वामेऽथवासने ।
ऋष्यादिकं शृण्विदानीं मे तस्याः सुरवन्दिते ॥ १७०९ ॥

शक्तिपूजा का विधान—हे पार्वति! अब शक्तिपूजा का विधान और मन्त्रों को सुनो—स्नान कर दिव्यवस्त्र को धारण की हुई, अनेक आभूषणों से अलंकृत, युवती, पीन स्तनोंवाली, भोजन न की हुई उत्तम शक्ति का हाथ पकड़कर साधक अपनी बाँयी जाँघ पर बैठाये । यदि बायीं जाँघ पर बैठाने में असमर्थ हो तो अपने बाँयें आसन पर उसे बैठाये । हे सुरवन्दिते! अब उसके ऋषि आदि को मुझसे सुनो ॥ १७०७-१७०९ ॥

[शक्तिपूजायाः ऋष्यादिनिर्देशः]

श्रीशक्तिपूजनस्यास्य गोनर्दऋषिरीरितः ।
विकृतिच्छन्द आख्यातं शक्तिरूपा पदादनु ॥ १७१० ॥
गुह्यकाली देवता च कामो बीजमुदाहृतम् ।
शक्तिर्वधूर्भौवनेशी कीलकं समुदाहृतम् ॥ १७११ ॥
शिवशक्तिसामरस्यप्रकाशे विनियोगता ।
ससर्गपञ्चदीर्घाद्यैर्वधूबीजैः षडङ्गकम् ॥ १७१२ ॥
विधायात्मनि शक्त्यङ्गन्यासं वाच्यमथाचरेत् ।
स्त्री चेच्छक्तिपदस्थाने भैरवेति पदं वदेत् ॥ १७१३ ॥
योषिल्लिङ्गपदस्थाने पुल्लिङ्गपदकल्पना ।
गुरूपदेशतो वापि स्वबुद्ध्या वा सुरेश्वरि ॥ १७१४ ॥
ऊहः सर्वत्र कर्तव्यो लिङ्गे तत्तत्पदेऽपि च ।
स नाह किन्तु गायत्र्यां सा समानोभयत्र हि ॥ १७१५ ॥

शक्तिपूजा के ऋषि आदि का निर्देश—इस शक्तिपूजा के ऋषि गोनर्द कहे गये हैं । छन्द विकृति उक्त है । शक्तिरूपा गुह्यकाली देवता तथा काम (= क्लीं) बीज कहा गया है । शक्तिवधू (= स्त्रीं) और भौवनेशी (= ह्रीं) कीलक उद्धृत हैं । इसका विनियोग शिवशक्ति के प्रकाश में होता है । सृष्टिरहित पाँच दीर्घ आदि वधू बीजों के द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये ।

(न्यास का स्वरूप—
१. छरहभ्रां स्त्रीं हृदयाय नमः । २. छरहभ्रीं स्त्रीं शिरसे स्वाहा ।
३. छरहभ्रूं स्त्रीं शिखायै वषट् । ४. छरहभ्रैं स्त्रीं कवचाय हुम् ।
५. छरहभ्रौं स्त्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ६. छरहभ्रः स्त्रीं अस्त्राय फट् ।)

इसके बाद अपने ऊपर आगे कहा जानेवाला शक्त्यङ्गन्यास करना चाहिये । यदि साधक स्त्री हो तो 'शक्ति' पद के स्थान में 'भैरव' पद कहना चाहिये । योषिल्लिङ्ग वाले पद के स्थान में पुल्लिङ्ग वाले पद की कल्पना की जाती है । हे सुरेश्वरि! या तो गुरूपदेश के द्वारा या अपनी बुद्धि से लिङ्ग और तत्तत् पदों में ऊह करना चाहिये । जहाँ तक गायत्री का प्रश्न है वह स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार के साधकों में समान लिङ्गवचन वाली प्रयोज्य होती है ॥ १७१०-१७१५ ॥

[शक्तिन्यासस्य समन्त्रो विधिः]

न्यासोद्धारमिदानीं त्वं सावधाना निशामय ।
त्रपा कामो रमा रावो योगिनी रोषयोषितौ ॥ १७१६ ॥
डाकिनी प्रलयो हारः फेत्कारी कर्णिकाऽपि च ।
प्रेतो नृसिंहः कुलिकं चिच्छक्तिः सर्वशेषगा ॥ १७१७ ॥
एकैकं पुरतो दद्यात् बीजं नाम्नां सुरार्चिते ।
तान्येवादौ कौलिकी च भगमालिन्यनन्तरम् ॥ १७१८ ॥
रतिप्रिया तथाऽनङ्गाकुला समयपालिनी ।
मदनोन्मादिनी कामावेशिनी तदनन्तरम् ॥ १७१९ ॥
चित्तोन्माथिन्यपि ततो मोहिन्याकर्षणीति च ।
स्मरातुरानन्दरूपा हृत्प्रमोदिन्यनन्तरम् ॥ १७२० ॥
संतापिनी ततः संक्षोभिणी च त्रिदशार्चिते ।
सर्वशेषे परिज्ञेया सामरस्यस्वरूपिणी ॥ १७२१ ॥
एताः षोडश वै कार्या ङेऽन्ताः पूर्वार्णसंयुताः।
स्त्रीकर्तृकत्वे पुंल्लिङ्गा भैरवार्चनकर्मणि ॥ १७२२ ॥
नमः शेषेषु सर्वत्र स्थानानि कलयाधुना ।
शिरः कपोलौढगलः स्कन्धौ वक्षः कुचौ तथा॥ १७२३ ॥
पार्श्वौ कुक्षिश्च नाभिश्च वस्तिर्वक्षण एव च ।
उरू जानू च जङ्घे च पादौ योनिश्च शेषगा ॥ १७२४ ॥

जीवनाश(?न्यास)वदेतस्याः सामरस्यमथाचरेत् ।
एतदेव हि सम्प्रोक्तं शक्तिशोधनमीश्वरि ॥ १७२५ ॥
कृत्वाग्रहस्तं तु करं दत्त्वा च हृदुरोजयोः ।
कामपीठेऽथवा देवि नाभौ
मेलेयकी(?मौलेयके)मते ॥ १७२६ ॥

शक्तिन्यास की समन्त्रविधि—अब तुम सावधान होकर न्यास के उद्धार को सुनो । त्रपा काम रमा राव योगिनी रोष योषित् डाकिनी प्रलय हार फेत्कारी कर्णिका प्रेत नृसिंह कुलिक और सबके अन्त में चिच्छक्ति हे सुरार्चिते! नामों के पहले एक-एक बीज जोड़ना चाहिये । उन (नामों) को जानो—पहले कौलिकी भगमालिनी फिर रतिप्रिया, अनङ्गाकुला, समयपालिनी मदनोन्मादिनी कामावेशिनी उसके बाद चित्तोन्माथिनी मोहिनी आकर्षिणी स्मरातुरा आनन्दरूपा हृत्प्रमोदिनी सन्तापिनी संक्षोभिणी उसके बाद हे त्रिदशार्चिते! सबके अन्त में सामरस्यस्वरूपिणी जानना चाहिये । सबके अन्त में 'नमः' जोड़ना चाहिये । पूर्व वर्णों से युक्त इनको चतुर्थ्यन्त करना चाहिये । यदि साधिका स्त्री हो तो भैरव पूजा के कर्म में इन्हें पुल्लिङ्ग कहना चाहिये । अब स्थानों को सुनो—शिर, दोनों कपोल, दोनों गण्ड, दोनों स्कन्ध, वक्ष, दोनों स्तन, दोनों पार्श्व, कुक्षि, नाभि, वस्ति, वक्षण, दोनों जाँघें, दोनों टखने, दोनों पैर और अन्त में योनि ।

(न्यास-स्वरूप—

१. ह्रीं कौलिक्यै शक्त्यै नमः शिरसि ।
२. क्लीं भगमालिन्यै शक्त्यै नमः कपोलयोः ।
३. श्रीं रतिप्रियायै शक्त्यै नमः गण्डयोः ।
४. फ्रें अनङ्गाकुलायै शक्त्यै नमः गले ।
५. छ्रीं समयपालिन्यै शक्त्यै नमः स्कन्धयोः ।
६. हूं मदनोन्मादिन्यै शक्त्यै नमः वक्षसि ।
७. स्त्रीं कामावेशिन्यै शक्त्यै नमः स्तनयोः ।
८. खफ्रें चित्तोन्माथिन्यै शक्त्यै नमः पार्श्वयोः ।
९. हसफ्रें मोहिन्यै शक्त्यै नमः कुक्षौ ।
१०. ह्क्षम्लैं आकर्षिण्यै शक्त्यै नमः नाभौ ।
११. हसखफ्रें स्मरातुरायै शक्त्यै नमः वस्तौ ।
१२. क्ष्रह्लीं आनन्दरूपायै शक्त्यै नमः वंक्षणे ।
१३. स्हौः हृत्प्रमोदिन्यै शक्त्यै नमः जङ्घयोः ।
१४. क्ष्रौं सन्तापिन्यै शक्त्यै नमः जान्वोः ।
१५. स्हौः संक्षोभिण्यै शक्त्यै नमः पादयोः ।
१६. क्रखां सामरस्य-स्वरूपिण्यै शक्त्यै नमः योनौ ।)

जीव न्यास के समान इसका सामरस्य करना चाहिये । हे ईश्वरि! यही शक्तिशोधन कहा गया है । हे देवि! मौलेयों के मत में हाथ को आगे कर और शक्ति के हृदय तथा स्तनों पर हाथ रखकर कामपीठ (= योनि) पर अथवा नाभि पर हाथ रखकर न्यास करना चाहिये ॥ १७१६-१७२६ ॥

[शक्तिशोधनमन्त्र:]

मनुं गृणन् वक्ष्यमाणं वारैकं वा त्रिवारकम् ।
जीवन्यासाकारमिदं शक्तिशोधनमाचरेत् ॥ १७२७ ॥
अनेन शुद्ध्यते शक्तिर्नान्यथा मन्त्रकोटिभि: ।
माया कामो वधूर्लक्ष्मी: कूर्च: प्रासाद एव च ॥ १७२८ ॥
शाकिनी डाकिनी चापि बीजान्यष्टौ पुर: स्मरेत् ।
भोगानन्दकलाशक्तिजीवात्मपरमात्मका: ॥ १७२९ ॥
प्रतिविम्बाद्वैतसंज्ञैकात्म्यनामलयाभिधान् ।
दशकूटान् क्रमात्प्रोच्य ब्रह्म तद्विपरीतकम् ॥ १७३० ॥
द्वयं दशान्त उच्चार्यमेवमर्द्धार्द्धसंमितम् ।
ततो ममानुहृदये तवानुहृदयं वदेत् ॥ १७३१ ॥
दधातु मम वाच्युक्त्वा ते वाचं समुदीरयेत् ।
ममेन्द्रियेषु तदनु प्रवदेत् कमलानने ॥ १७३२ ॥
त इन्द्रियाणि सम्भाष्य मम वाचं जुषस्व च ।
तत: सिद्धिकरालीति त्वां मह्यं नियुनक्तु च ॥ १७३३ ॥
यैव त्वं च स एवाहं य एवाहमितीरयेत् ।
सैव त्वं सन्धिना युक्तमुभौ तदनु कीर्तयेत् ॥ १७३४ ॥
शिवशक्तिसामरस्यमापन्नौ तदनन्तरम् ।
तदैक्यमिति सङ्कीर्त्य साधयाव इतीरयेत् ॥ १७३५ ॥
ससन्धिस्तारहृच्छीर्षमन्त्रस्तदनु सुन्दरि ।
अयं मन्त्र: समुद्दिष्ट: शक्तिशोधनकर्मणि ॥ १७३६ ॥
अष्टोत्तरशतार्णाढ्यो न न्यूनो नापि चाधिक: ।
ध्यानं पूर्वोदितं यत्ते भगवत्या मया तव ॥ १७३७ ॥
शक्तिं तां तादृशाकारां ध्यायेद् वीक्ष्याङ्गसञ्चयम् ।
नृसिंहध्यानसदृशमात्मनश्च विभावयेत् ॥ १७३८ ॥

शक्तिशोधन का मन्त्र—जीवन्यास के आकारवाले इस शक्तिशोधन को वक्ष्यमाण मन्त्र का एक बार या तीन बार उच्चारण करते हुए करना चाहिये । इस मन्त्र से शक्ति शुद्ध होती है, अन्य करोड़ों मन्त्रों से नहीं । (अब मन्त्र का उद्धार सुनो—पहले माया काम वधू लक्ष्मी कूर्च प्रासाद शाकिनी और डाकिनी इन आठ

बीजों को स्मरण करना चाहिये । इसके बाद भोग आनन्द कला शक्ति जीवात्मा परमात्मा प्रतिबिम्ब अद्वैत ऐकात्म्य नामक तथा लय इन दश कूटों को क्रम से कहकर ब्रह्म और उसके विपरीत (= जीव?) का दश कूटों के अन्त में उच्चारण कर इसी प्रकार 'अर्धार्धसम्मितम्' का उच्चारण करना चाहिये । इसके पश्चात् 'मम' के पश्चात् 'हृदये तव' के पश्चात् 'हृदयम्' कहना चाहिये । 'दधातु मम वाचि' कहकर 'ते वाचं' कहना चाहिये । हे कमलानने! इसके बाद 'ममेन्द्रियेषु' के पश्चात् 'त इन्द्रियाणि' कहकर 'मम वाचं जुषस्व' उसके अनन्तर 'सिद्धिकराली त्वां मह्यं नियुनक्तु यैव त्वं स एवाहं य एवाहं' कहना चाहिये । 'सैव त्वं' इन दोनों को सन्धियुक्त कर कहना चाहिये ! तदनन्तर 'शिवशक्तिसामरस्यमापन्नौ तदैक्यं' कहकर 'साधयाव:' कहना चाहिये । हे सुन्दरि! उसके बाद सन्धियुक्त तार हृदय शीर्षमन्त्र कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्लीं क्लीं स्त्रीं श्रीं हूं हौं फ्रें खफ्रें चरक्ष्लहमह्लूं स्हलकहक्ष्रूं सक्षलहमयव्रूं झसखग्रमऊं थलहक्षकहमव्रयीं तत्त्वमसि रत्रों ओं छरक्लव्म्रमक्षयूं जनहमरक्षयह्लीं हससक्लह्लीं साहमेवास्मि ब्रह्माहमस्मि थलहक्षकहमव्रयीं (?) अर्धार्धसम्मितं मम हृदये तव हृदयं दधातु मम वाचि ते वाचं ममेन्द्रियेषु त इन्द्रियाणि मम वाचं जुषस्व सिद्धिकराली त्वां मह्यं नियुनक्तु यैव त्वं स एवाहं य एवाहं सैव त्वं शिवशक्तिसामरस्यमापन्नौ तदैक्यं साधयाव ओं नम: स्वाहा) ।

शक्तिशोधन कर्म में यह मन्त्र बतलाया गया । (इस मन्त्र की) वर्ण संख्या एक सौ आठ है । न कम न अधिक । भगवती का जो ध्यान है, उसे मैंने पहले ही तुमको बतला दिया है । उस शक्ति के अङ्गों को देखते हुए अपना नृसिंह ध्यान के सदृश आकारवाला ध्यान करना चाहिये और उस शक्ति को भी उसी प्रकार के आकार वाली ध्यान करना चाहिये ॥ १७२७-१७३८ ॥

[शक्त्यङ्गे देव्या आवाहनम्]

तत आवाहयेद्देवीं शक्त्यङ्गे पीठसन्निभे ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण साधकोऽञ्जलिमुद्रया ॥ १७३९ ॥
मायाकामवधूरावकमलायोगिनीरुष: ।
डाकिनी चापि फेत्कारी नवैतान्यादिगानि हि ॥ १७४० ॥
एह्येहि भगवत्युक्त्वा गुह्यकालि समीरयेत् ।
शक्तिपीठेऽनु सान्निध्यमावेशय समुद्धरेत् ॥ १७४१ ॥
ततस्त्वामहमुल्लिख्य महामि परिकीर्तयेत् ।
सर्वशक्तिसमाभाष्य स्वरूपिणि ततो वदेत् ॥ १७४२ ॥
तारं प्रतिष्ठं शीर्षं च शक्तिमूलमनुं शृणु ।
माया राव: स्मरो तारो शक्तये हृदयं तत: ॥ १७४३ ॥

मन्त्रो नवाक्षर: प्रोक्त: शक्तिपूजनकर्मणि ।
ऋष्यादिर्नास्ति चैतस्य न छन्दोबीजशक्तय: ॥ १७४४ ॥
किन्तु पाद्यादिसर्वोपचाराद्यर्पणहेतुक: ।
जप्तव्यो नैव चायं हि त्रिपुरघ्नवचो यथा ॥ १७४५ ॥

शक्ति के अङ्ग में देवी का आवाहन—इसके पश्चात् साधक को पीठ के तुल्य शक्त्यङ्ग में वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करता हुआ अञ्जलि मुद्रा के द्वारा देवी का आवाहन करना चाहिये । माया काम वधू राव कमला योगिनी रोष डाकिनी फेत्कारी ये नौ बीज मन्त्र आदि में रहते हैं । उसके पश्चात् 'ऐह्येहि भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'शक्तिपीठे सान्निध्यमावेशय' को उद्धृत करना चाहिये । तत: 'त्वामहं महामि' कहना चाहिये । 'सर्वशक्ति' कहकर 'स्वरूपिणि' कहना चाहिये । तार प्रतिष्ठा और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें श्रीं छ्रीं हूं खफ्रें हसखफ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि शक्तिपीठे सान्निध्यमावेशय त्वामहं महामि सर्वशक्तिस्वरूपिणि ओं श्रां स्वाहा) ।

अब शक्ति का मूलमन्त्र सुनो—माया राव स्मर तार 'शक्तये' के बाद हृदय, शक्तिपूजा के विषय में यह नौ अक्षरोंवाला मन्त्र कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं फ्रें क्लीं ओं शक्तये नम:) ।

इस मन्त्र के न तो ऋषि आदि हैं न छन्द, बीज और शक्ति । किन्तु त्रिपुरारि का वचन है कि पाद्य आदि समस्त उपचारों के लिये इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये किन्तु इसका जप नहीं करना चाहिये ॥ १७३९-१७४५ ॥

[सर्वोपचारेण शक्तिपूजाभिधानम्]

सर्वोपचारानेतेन प्रदद्यात् किन्तु शक्तये ।
पाद्यदानादि नैवेद्यदानान्तं यद्यदिष्यते ॥ १७४६ ॥

सर्वोपचार से शक्तिपूजा—इस मन्त्र से पाद्य आदि से लेकर नैवेद्य दान आदि तक जो-जो वाञ्छित हो समस्त उपचार देने चाहिये किन्तु शक्ति के ही लिये (अन्य के लिये नहीं) ॥ १७४६ ॥

[शक्तिपूजाविधौ मौलेयेन स्वस्य मतभेदप्रदर्शनम्]

न चात्ममन्त्रो भिन्नोऽस्ति मन्मते जगदीश्वरि ।
कुर्वते यत्तु मौलेयास्तदमूलं विभाव्यताम् ॥ १७४७ ॥
शक्तिपूजावशिष्टं यत् पुष्पस्त्रगनुलेपनम् ।
यदात्मने दीयते तत् सामरस्यार्चनं भवेत् ॥ १७४८ ॥
तदमन्त्रं प्रकर्तव्यमेवमीश्वरशासनम् ।

ततो दत्त्वा करं शक्तियोनिपीठे जपं चरेत् ॥ १७४९ ॥
साधकः शक्तिगायत्र्याः शतमर्द्धार्धमेव वा ।
योनिपीठजपप्रख्यो न जपः क्वापि विद्यते ॥ १७५० ॥
सद्यःप्रभावजननमन्त्राणां पीठ उत्तमः ।
मन्त्राणां बलहीनानां प्रयोगः क्षीणतेजसाम् ॥ १७५१ ॥
अनुद्धृतानां शापेभ्यो न्यूनाधिक्यार्णताजुषाम् ।
गुरूदितानामपि च प्रदानेनौजसां तथा ॥ १७५२ ॥
अज्ञातविधिपूजानामपात्रार्पणभागिनाम् ।
त्यक्तानां विस्मृतानां च तथा चैवाप्रभाविनाम् ॥ १७५३ ॥
सन्ध्यक्षरार्थमुभयं प्रोक्तं त्रिपुरवैरिणा ।
एकं निर्वाणमन्त्रेण सम्पुटीकृत्य तज्जपः ॥ १७५४ ॥
कौलासनेनापरं च योनिपीठे जपक्रिया ।
कौलासनं योनिपीठजपः स्त्रीभ्यामनुग्रहः ॥ १७५५ ॥
गुरुस्त्रीशक्तितापि मिश्रीभूय जपो द्वयोः ।
अन्यैः समिन्धनं मन्त्रैर्वीर्याधिक्यकरं परम् ॥ १७५६ ॥

शक्तिपूजा की विधि में मौलेय से अपने मत का भेद—हे जगदीश्वरि! मेरे मत में अपना मत भिन्न नहीं है किन्तु जो मौलेय लोग करते हैं उसे अमूल समझना चाहिये । शक्ति की पूजा से बचा हुआ जो पुष्प पुष्पमाला चन्दन आदि होता है उसे जो आत्मा अर्थात् अपने लिये दिया जाता है वह सामरस्यार्चन होता है । उसको विना मन्त्रोच्चार के करना चाहिये—ऐसा शिव का आदेश है । उसको आत्मार्थ देने के पश्चात् साधक को शक्ति की योनिपीठ पर कर अर्थात् हाथ रखकर शक्तिगायत्री का एक सौ आठ या उसका आधा या आधे का आधा जप करना चाहिये । योनि पीठ जप के समान कहीं भी कोई जप नहीं है । सद्यः प्रभाव उत्पन्न करने वाले मन्त्रों के जप के लिये यह (= योनि) उत्तम पीठ है । जो मन्त्र तेजोरहित, बलहीन, शापोद्धार से रहित, न्यून अधिक वर्ण वाले गुरु से उक्त होते हुए भी शक्ति से सम्वलित करने योग्य जिसकी पूजा विधि अज्ञात हो ऐसे, जो अपात्र को दिये गये हों । त्यक्त विस्मृत और प्रभावहीन हैं—ऐसे मन्त्रों के जप के लिये (योनि उत्तम पीठ है) त्रिपुरारि ने सन्ध्यक्षर के लिये दो प्रकार बतलाये हैं । पहली विधि यह है कि उस मन्त्र का निर्वाण मन्त्र से सम्पुटित कर जप करना चाहिये । दूसरी यह है कि कौलासन से योनिपीठ पर जप करना चाहिये । कौलासन और योनिपीठ पर जप ये दोनों दोनों प्रकार की स्त्रियों के ऊपर कृपास्वरूप होते हैं । यदि दोनों को मिश्रित कर जप किया जाय तो स्त्रीशक्ति बहुत अधिक हो जाती है । साथ ही अन्य मन्त्रों से इसको दीप्त करने पर साधक के लिये बल की अधिकता हो जाती है (अथवा इस मन्त्र के संयोग से अन्य मन्त्र अधिक बलवान् हो जाते हैं) ॥ १७४६-१७५६ ॥

[शक्तिगायत्रीकथनम्]

अथातः शक्तिगायत्रीं शृणु देवि महाफलाम् ।
कामबीजाद् भगवतीं ङेऽन्तां पुरत ईरयेत् ॥ १७५७ ॥
विद्महे योनिमालिन्य(न्यै) धीमहीति ततः परम् ।
तन्नः शक्तिरि(मि)ति प्रोच्य सर्वशेषे प्रचोदयात् ॥ १७५८ ॥
एषा हि शक्तिगायत्री सर्वागमसुगोपिता ।
एतां विना न शक्त्यर्चा न शक्त्यर्चाङ्गिको जपः ॥ १७५९ ॥
यथाशक्ति जपित्वैनां तत्समर्प्य च शक्तये ।
वामोरावुपवेश्यैव कुर्यान्मूलजपं प्रिये ॥ १७६० ॥
कुलमार्गानुसारेण स्मृत्युक्तविधिनाऽपि वा ।

शक्तिगायत्री—हे देवि! अब महाफल देनेवाली शक्तिगायत्री को सुनो । काम बीज के बाद 'भगवती' को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । उसके बाद 'विद्महे योनिमालिन्यै धीमहि' फिर 'तन्नः शक्तिः' कहकर सबके अन्त में 'प्रचोदयात्' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्लीं भगवत्यै विद्महे योनिमालिन्यै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्) ।

यह शक्तिगायत्री समस्त आगमों में सुगोपित है । इसके विना न तो शक्ति की पूजा होती है और न शक्तिपूजा का अङ्गभूत जप । हे प्रिये! इस शक्तिगायत्री का यथाशक्ति जप करने के बाद उसको शक्ति के लिये समर्पित कर फिर शक्ति को अपनी बाँयीं जाँघ पर बैठाकर मूलमन्त्र का जप करना चाहिये । इस जप को कौलमार्ग के अनुसार अथवा स्मृति में वर्णित विधि से करना चाहिये ॥ १७५७-१७६०- ॥

[जपसाधनत्रैविध्याभिधानम्]

तत्साधनं त्रिधा प्रोक्तं प्रथमा जपमालिका ॥ १७६१ ॥
द्वितीयं मातृकावर्णास्तृतीयाङ्गुलिपर्व च ।

जप के तीन साधन—उसका साधक तीन प्रकार का कहा गया है—(१) जप माला, (२) मातृका वर्ण (= अ से क्ष तक को अनुलोम-विलोम क्रम से मन्त्र के साथ जपना), (३) अँगुली के पर्व ॥ १७६१-१७६१- ॥

[जपमालाप्रभेदकथनम्]

आदौ तु जपमालायाः प्रभेदान् व्याहरामि ते ॥ १७६२ ॥
नमेरुकम्बुस्फटिकमुक्तारजतविद्रुमम् ।
मणिरत्नं तथा पुष्पं पुत्रंजीवेकहाटकम् ॥ १७६३ ॥
कुशग्रन्थास्थिपद्माक्षकाष्ठमृद्गोलकादिकम् ।

जपमाला प्रभेद—अब पहले तुमको जपमाला के भेदों को बतला रहा हूँ । नमेरु (= रुद्राक्ष), कम्बु (= शङ्ख), स्फटिक, मोती, चाँदी, मूँगा, मणिरत्न, पुष्प, पुत्रजीव (= जियापोता, पितौंजिया), एकहाटक (= सोना?), कुश की गाँठ, हड्डी, कमलगट्टा, काष्ठ, मिट्टी की गोली आदि ॥ १७६२-१७६३- ॥

[कार्यविशेषे मालाविशेषोपयोगकथनम्]

तथा कार्यविशेषे च भिन्ना भिन्ना प्रकीर्तिता ॥ १७६४ ॥
प्रतिदेवं प्रिये माला पुनरन्या निरूपिता ।
मोहने शङ्खघटिता वश्यकर्मणि मौक्तिकी ॥ १७६५ ॥
उच्चाटनेऽक्षकाष्ठीया मारणे च रदोद्भवा ।
द्वेषे श्मशानमात्स्र्नीया पाद्माक्षी स्तम्भने मता ॥ १७६६ ॥
निःश्रेयसाय रौद्राक्षी स्फाटिकी सर्वसिद्धये ।

विशेष कार्य के लिये विशेष माला—विशिष्ट कार्य के लिये भिन्न-भिन्न माला कही गयी है । हे प्रिये! पुनः प्रत्येक देवता के लिये अन्य-अन्य माला होती है । सम्मोहन के लिये शङ्ख, वशीकरण में मोती, उच्चाटन में बहेड़े, मारण में दाँत, विद्वेषण में श्मशान की मिट्टी, स्तम्भन में कमलगट्टा, मोक्ष के लिये रुद्राक्ष और समस्त प्रकार की सिद्धियों के लिये स्फटिक की माला ग्राह्य होती है ॥१७६४-१७६६-॥

[देवताभेदे मालाभेदकथनम्]

इदानीं देवताभेदे मालाभेदं वदाम्यहम् ॥ १७६७ ॥
त्रिपुरायाः जपे शस्ता रक्तचन्दनदारवी ।
महाशङ्खोद्भवा श्रेष्ठा ज्ञेया काल्युग्रतारयोः ॥ १७६८ ॥
सिद्धिलक्ष्म्याः शङ्खमयी मातंग्याः राजती मताः ।
वैद्रुमी कुब्जिकायाश्च गणेशे चैभदन्तिका ॥ १७६९ ॥
फलं प्रत्येकमेतेषामधुना त्वं निशामय ।

देवता के भेद से माला भेद—अब मैं देवता के भेद में माला का भेद बतला रहा हूँ । त्रिपुरभैरवी के जप में लाल चन्दन की लकड़ी की माला प्रशस्य मानी गयी है । काली और उग्रतारा के जप में महांशख (= मनुष्य की खोपड़ी) की, सिद्धिलक्ष्मी के जप के लिये शङ्ख, मातङ्गी के जप में चाँदी की माला श्रेयस्कर मानी गयी है । कुब्जिका के जप में मूँगा की, गणेश के जप के विषय में हाथी के दाँत की माला समीचीन होती है । अब तुम प्रत्येक माला के फल को सुनो ॥ १७६७-१७६९-॥

[मालाविशेषाणां फलश्रुतिः]

मणिस्फटिकरुद्राक्षाः सर्वकामसमृद्धिदा ॥ १७७० ॥
रत्नशङ्खोद्भवा वित्तं कीर्तिं भोगांश्च यच्छति ।

सम्पत्सौभाग्यदा ज्ञेयाः पद्माक्षाः बुद्धिवर्धनाः ॥ १७७१ ॥
पुत्रजीवभवा माला पुत्रधीपशुधान्यदा ।
मौक्तिकी विजयं युद्धे तथा च महतीं श्रियम् ॥ १७७२ ॥
न सा सिद्धिर्न तद्द्रव्यं न तद्भाग्यं न तद् यशः ।
लभते यन्न रुद्राक्षस्फटिकाभ्यां वरानने ॥ १७७३ ॥
हैमी रौप्योद्भवा वापि म नोऽभीष्टं प्रयच्छतः ।
प्राबाली वश्यवित्तौघपुष्ट्यायुरमृतप्रदा ॥ १७७४ ॥
किल्विषौघक्षयकरी कुशग्रन्थिविनिर्मिता ।

विशेष माला की फलश्रुति—मणि स्फटिक और रुद्राक्ष की माला समस्त कामनाओं को सिद्ध करती है । रत्न और शङ्ख से बनी माला धन यश और भोग देती है । कमलगट्टे की माला सम्पत्, सौभाग्य देती है तथा बुद्धि को प्रखर करती है । पुत्रजीवक की माला पुत्र बुद्धि पशु और धान्य देती है । मोती की माला युद्ध में विजय और विपुल धन देती है । हे वरानने! कोई भी ऐसी सिद्धि, द्रव्य, भाग्य या यश ऐसा नहीं है जिसको साधक रुद्राक्ष अथवा स्फटिक की माला से जपने पर न प्राप्त करता हो । सोने और चाँदी की भी माला मनोवाञ्छित फल देती है । मूँगे की माला वशीकरण धन सम्पत्ति पुष्टि आयु और अमरत्व प्रदान करती है । कुश की गाँठ से बनी माला पापक्षय करती है ॥ १७७०-१७७४- ॥

[जपसंख्याफलवर्णनम्]

अनुलोमगतैर्वर्णैः पञ्चाशद्भिर्जपोऽथवा ॥ १७७५ ॥
प्रतिलोम्नाऽथवा कुर्यात् कामनाकार्यभेदतः ।
अष्टोत्तरशतं कुर्याच्छतमूर्द्ध्वार्धमेव वा ॥ १७७६ ॥
तदशक्तावभावे वा पञ्चविंशतिरेव वा ।
अत्रापि कामनाभेदा भूयांसः सन्ति पार्वति ॥ १७७७ ॥
सर्वाः स्युः सिद्धयः शीघ्रमष्टोत्तरशतेन हि ।
शतेन राजवश्यादि महती श्रीस्तदर्द्धतः ॥ १७७८ ॥
सप्तविंशतिभी राज्यं कैवल्यं ह्यूनया तया ।
अभिचारः पञ्चदश्या दशभिः पापसंक्षयः ॥ १७७९ ॥

जपसंख्या का फल—अनुलोम अथवा प्रतिलोम वर्णों का पचास बार इच्छा के भेद से जप करना चाहिये । वस्तुतः जप को एक सौ आठ बार या उससे अधिक बार (गुणित संख्या में अर्थात् २१६ = २ माला ३२४ = ३ माला या इसी प्रकार) करना चाहिये । यदि एक माला जप न कर सके तो पचीस बार ही जप करे । हे पार्वति! इसमें भी अनेक कामनाभेद हैं । किन्तु १०८ बार जप करने से समस्त सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं । एक सौ माला (अर्थात् १०८ × १०० बार) जप करने से राजवशीकरण आदि सिद्धियाँ मिलती हैं । उसका आधा (१०८ × ५०

बार) जप करने से वहुत धन-सम्पत्ति मिलती है । सत्ताईस माला जप से राज्य, छब्बीस माला से कैवल्य, पन्द्रह माला से अभिचार सिद्धि और दश माला जप से पापनाश होता है ।।। १७७५-१७७९ ॥

[अङ्गुलीभिर्जपे नियमः]

अङ्गुलीभिर्जपं कुर्वन्ननेन विधिना चरेत् ।
अनामिकामध्यपर्वारभ्याधस्तस्य च क्रमात् ॥ १७८० ॥
समाप्तिः स्याद् वरारोहे तर्जन्या आदिपर्वणि ।
कदापि नैव गृह्णेत् मध्यमामध्यपर्वणी ॥ १७८१ ॥
विपरीतक्रमेणैव जपः कार्योऽत्र साधकैः ।
अङ्गुल्यग्रे न जप्तव्यं पर्वसन्धिष्वपीदृशैः ॥ १७८२ ॥

अँगुलियों से जप के विषय में नियम—अँगुलियों से जप करनेवाले को इस विधि का आचरण करना चाहिये—अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ कर उसके नीचे से क्रमशः चलते हुए हे वरारोहे! तर्जनी के प्रथम पर्व पर समाप्त करना चाहिये। मध्यमा के मध्य पर्वों को कभी नहीं छूना चाहिये । साधक यहाँ विपरीत क्रम से जप करे । इसी प्रकार अङ्गुली के अग्रभाग तथा पर्वों के जोड़ों पर जप नहीं करना चाहिये ॥ १७८०-१७८२ ॥

[संख्याहीनजपस्याफलत्वप्रतिपादनम्]

गणना च प्रकर्तव्या संख्याहीनो जपोऽफलः ।

संख्याहीन जप निष्फल होता है—जप की गणना करनी चाहिये; क्योंकि संख्या रहित जप निष्फल होता है ॥ १७८२- ॥

[मालाया ग्रथनभेदेन श्रेष्ठत्वकथनम्]

गुरुणा ग्रथिता श्रेष्ठा स्वयं कृल्प्ता ततोऽवरा ॥ १७८३ ॥
शक्त्या च ग्रथिता श्रेष्ठा न शूद्रादिभिरीश्वरि ।

माला गूँथने में भी श्रेष्ठता—गुरु के द्वारा बनायी गयी माला सर्वोत्तम होती है । स्वयं बनायी गयी माला उससे निम्नश्रेणी की होती है । स्त्री के द्वारा गठित श्रेष्ठ होती है । हे ईश्वरि! शूद्र आदि के द्वारा बनायी गयी श्रेष्ठ नहीं होती ॥१७८३-१७८३-॥

[मालानिर्माणविधिः]

अथास्याः शोधनं वक्ष्ये समासात्परमेश्वरि ॥ १७८४ ॥
उपवासं हविष्यं वा तथैकं भक्ष्यमेव वा ।
विधाय पट्टकार्पासशनसूत्रं विनिर्ममेत् ॥ १७८५ ॥
उपवस्तदिने देवि तानि सर्वाणि पूजयेत् ।
चन्दनाक्षतधूपाद्यैः कुसुमैर्बलिदीपकैः ॥ १७८६ ॥

कर्तव्यानि समानानि न स्थूलानि कृशानि न ।
न जीर्णानि न कीटादिविद्धानि सुनवानि च ॥ १७८७ ॥
प्रातस्तत्सूत्रमानीय कामनाकार्यभेदतः ।
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णवर्णं च कारयेत् ॥ १७८८ ॥
द्विगुणं त्रिगुणं वापि तच्च त्रिगुणमाचरेत् ।
सर्पाकाराथवा कार्या गोपृ(पु)च्छसदृशी तथा ॥ १७८९ ॥
मुखं मुखेन संयोज्यं पृष्ठं पृष्ठेन च क्रमात् ।
मेरुं सर्वोपरिष्टात्तु दद्यात्साधकसत्तमः ॥ १७९० ॥
मणीनां मध्यतश्चापि ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत् ।

माला-निर्माण की विधि—हे परमेश्वरि! अब इस (= माला) का संक्षेप में शोधन बतलाऊँगा । उपवास अथवा हविष्य भक्षण अथवा एक अन्न का भक्षण कर रेशम कपास अथवा सन का सूत बनाना चाहिये । हे देवि! उपवास के ही दिन उन सबकी चन्दन अक्षत धूप आदि तथा पुष्प बलि एवं दीपक से पूजा करनी चाहिये । ये सूत्र समान होने चाहिये न मोटे न पतले न पुराने न कीड़े खाये हुए । ये नये होने चाहिये । प्रात:काल उस सूत्र को ले आकर ईप्सित कार्य के अनुसार श्वेत रक्त पीत या काले रंग से रंग देना चाहिये । वह दो गुना या तीन गुना अर्थात् दो सूत्र या तीन सूत्र से बना होता है । उस बने हुए सूत्र को तीन सूत्रवाला करना चाहिये। (इस प्रकार माला का यह सूत्र २ × ३ = ६ अथवा ३ × ३ = ९ सूत्रोंवाला हो जाता है) । माला को सर्पाकार अर्थात् गोल या गाय की पूँछ के समान बनानी चाहिये । (माला के) मुख को मुख से तथा पीठ को पीठ से क्रम से जोड़ना चाहिये। उत्तम साधक सुमेरु को सबके ऊपर बनाये । मणियों के मध्य में ब्रह्मग्रन्थि बनानी चाहिये ॥ १७८४-१७९०- ॥

[मालासंस्कारविधि:]

अथ सामान्यमालायाः संस्कारं प्रवदामि ते ॥ १७९१ ॥
विशेषमस्यामन्वर्थं वक्ष्यामि तदनन्तरम् ।
जपमालां विनिर्वर्त्य तस्याः शोधनमाचरेत् ॥ १७९२ ॥

माला का संस्कार—अब तुमको सामान्य माला का संस्कार बतला रहा हूँ । तदनन्तर इसका विशेष बतलाऊँगा । जप माला बनाकर उसका शोधन करना चाहिये ॥ १७९१-१७९२ ॥

[तान्त्रिकवैदिकभेदेन मालाशोधनस्य विधिद्वयम्]

तान्त्रिकं वैदिकं वापि सद्योजाताह्वयं मनुम् ।
पठित्वा पञ्चगव्येन स्नापयेत् मालिकां पुरः ॥ १७९३ ॥
उच्चार्य वामदेवाख्यं निषिञ्चेच्चन्दनाम्भसा ।

अघोराख्येन मन्त्रेण धूपयेत्तदनन्तरम् ॥ १७९४ ॥
दीपनैवेद्यादि दद्यात् उक्त्वा तत्पुरुषं मनुम् ।
ईशानमन्त्रं प्रपठेत् संस्पृश्यैकैकशो मणिम् ॥ १७९५ ॥
एवं तु पञ्चभिर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य वरानने ।
प्राणप्रतिष्ठामेतस्यां विश्वरूपेण चाचरेत् ॥ १७९६ ॥
एवं संस्कृत्य मालां तां गुरुहस्ते समर्पयेत् ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना गृह्णीयात् तत्करात्स्वयम् ॥ १७९७ ॥
तत्तन्मन्त्रस्य गायत्रीं पुरः पञ्च शतं जपेत् ।
ततो जपेन्मूलमन्त्रमित्येतस्य विनिश्चयः ॥ १७९८ ॥

माला शोधन की दो विधि—पहले तान्त्रिक या वैदिक सद्योजात मन्त्र[१] पढ़कर पञ्चगव्य से माला को स्नान कराना चाहिये । फिर वामदेव मन्त्र[२] का उच्चारण कर चन्दन युक्त जल से सिञ्चन करना चाहिये । तदनन्तर अघोरमन्त्र[३] से धूप तत्पुरुष मन्त्र[४] का उच्चारण कर दीप नैवेद्य आदि देना चाहिये । फिर माला की एक-एक मणि का स्पर्श करते हुए ईशान मन्त्र[५] पढ़ना चाहिये । हे वरानने ! इस प्रकार पाँच मन्त्रों से माला का अभिमन्त्रण कर इसमें विश्वरूप मन्त्र[६] से प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये । इस प्रकार उस माला का संस्कार कर उसे गुरु के हाथ में देना चाहिये । इसके बाद गुरु का अभिवादन कर उनके हाथ से अपने शिर के द्वारा उसे माला का ग्रहण करना चाहिये । तत्तत् मन्त्र की गायत्री का पाँच सौ जप पहले करना चाहिये । इसके बाद मूलमन्त्र का जप करना चाहिये । यह इसके विषय में निश्चय है ॥ १७९३-१७९८ ॥

[मालासंस्कारविधि:]

गुह्याष्टा(म्बा)नां पृथग्रूपो मालासंस्कार उच्यते।
मृत्युकालनवाक्षर्या क्षालनं पञ्चगव्यत: ॥ १७९९ ॥

---

[१] वैदिक सद्योजात मन्त्र—ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नम: । भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नम: ।

[२] ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नम: श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नम: कालाय नम: कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नम: । सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नम: ।

[३] ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य: । सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य:।

[४] ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र: प्रचोदयात् ।

[५] ओं ईशान: सर्वविद्यानामीश्वर: सर्वभूतानाम् । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।

[६] ओं विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चते कवि: प्रासावीद भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
विनाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो विराजति ॥ (ऋ.सं. ५.८१.२)

अम्बाहृदयमन्त्रेण चन्दनाद्यभिघर्षणम् ।
धूपदानं दीपदानं षोडश्याः षोडशार्णया ॥ १८०० ॥
नैवेद्यदानं वाशिष्यो (वासिष्ठ्या?)
ब्राह्मया प्राणप्रतिष्ठितिः ।
रामाराधितया मेरुमणिस्पर्श उदाहृतः ॥ १८०१ ॥
शतं शताक्षरीजापः शतं षट्त्रिंशदक्षरी ।
विंशतिर्भोगविद्या च सहस्रार्णं दश स्मृतम् ॥ १८०२ ॥
सहस्रं चापि गायत्री रीतिरेषा पृथक् स्थिता ।

माला का संस्कार—गुह्यकाली का माला संस्कार आठ प्रकार का और पृथक्-पृथक् होता है ।

१. माला का प्रक्षालन—यह मृत्युकाल के नवाक्षर मन्त्र से पञ्चगव्य के द्वारा किया जाता है ।
२. चन्दन आदि मलना—यह अम्बाहृदय मन्त्र से होता है ।
३. धूपदान—यह सोलह वर्णवाले षोडशी मन्त्र से होता है ।
४. दीपदान—यह भी सोलह वर्णवाले षोडशी मन्त्र से होता है ।
५. नैवेद्यदान—यह वासिष्ठी मन्त्र से होता है ।
६. प्राणप्रतिष्ठा—यह ब्राह्म मन्त्र से होता है ।
७. मेरुमणि स्पर्श—यह रामाराधित मन्त्र से होता है ।
८. जप—यह एक सौ शताक्षरी जप, एक सौ छत्तीस अक्षरोंवाले मन्त्र का जप, भोगविद्या का बीस बार जप, सहस्राक्षर मन्त्र का दश बार जप तथा गायत्री का एक हजार जप ।

इस प्रकार यह रीति पृथक् स्थित है ॥ १७९९-१८०२- ॥

[जपप्रकारः]

केवलं गुह्यकाल्यास्तु नान्यस्याः कमलानने ॥ १८०३ ॥
अङ्गुष्ठाग्रेणाक्षमालां चालयेज्जपकर्मणि ।
मध्यमाग्रेषु संस्थाप्य न तर्जन्यां कदाचन ॥ १८०४ ॥
द्वेषे स हि प्रशस्तः स्यान्
मारणे च कनिष्ठया ।
कैवल्येऽनामिका प्रोक्ता
न कल्पः पञ्चमः क्वचित् ॥ १८०५ ॥
एनां सन्दर्शयन्मालामपवित्रो न च स्पृशेत् ।
जपादौ च जपान्ते च पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥ १८०६ ॥

जप का प्रकार—हे कमलानने! केवल गुह्यकाली के न कि अन्य (देवता) के जप कर्म में अक्षमाला को मध्यमा के अग्रभाग में रखकर अँगूठे के अग्रभाग से चलाना चाहिये न कि कभी तर्जनी के । यह विधि विद्वेषण कार्य के विषय में उत्तम मानी गयी है । मारण कर्म में कनिष्ठा से चलाना चाहिये । कैवल्य में अनामिका (के द्वारा चालन) कहा गया है । पाँचवाँ कोई विकल्प नहीं है । इस (अनामिका) को दिखानेवाला अपवित्र हो जाता है । इसलिये वह माला को न छूये । जप के आदि और अन्त में (माला की) फूल और अक्षत से पूजा करनी चाहिये ॥ १८०३-१८०६ ॥

[मालाया अप्रदर्शनविधिः]

संस्कारानन्तरं चैनां गुरोरपि न दर्शयेत् ।
दर्शितां भूतकूष्माण्डाः हरन्त्येनां वरानने ॥ १८०७ ॥
छिन्ने सूत्रे पुनः सर्वं पूर्ववत्समुपाचरेत् ।

माला के प्रदर्शन न करने की विधि—(माला का) संस्कार करने के बाद इसे गुरु को भी नहीं दिखलाना चाहिये (अन्य लोगों की क्या बात) । हे वरानने! (किसी को भी) दिखलायी गयी इस माला का भूत-कूष्माण्ड हरण कर लेते हैं । यदि सूत्र टूट जाय या कट जाय तो पुनः पूर्व की भाँति (समस्त संस्कार) करना चाहिये ॥ १८०७-१८०७- ॥

[जपप्रकारकथनम्]

जपानामधुना भेदान् सावधाना निशामय ॥ १८०८ ॥
वाचिको मानसश्चापि जपो हि द्विविधो मतः ।
वाचोक्तौ यो जपः प्रोक्तः
श्रवणार्हः स वाचिकः ॥ १८०९ ॥
यत्राधरोष्ठौ चलतो यो जपः स हि मानसः ।
वाचिकोऽपि द्विधा ख्यातः उच्चैरेवमुपांशुकः ॥ १८१० ॥
द्विभेदो मानसश्चापि वासनो हार्द एव वा ।
समुच्चरन् स्पष्टरूपमन्यश्रवणयोग्यवत् ॥ १८११ ॥
यो जपः स शिवेनोक्तोवाचिको मध्यमो ह्यसौ ।
यत्रौष्ठचालनं किञ्चिद् बुद्ध्यते वा न बुद्ध्यते ॥ १८१२ ॥
उपांशुः स हि विज्ञेयो वाचिकाच्च चतुर्गुणः ।
वासनो वासनायोगात् नेत्राभ्यां लक्ष्य उच्यते ॥ १८१३ ॥
ज्ञेयः शतगुणस्तस्मादुपांशोरयमीश्वरि ।
तल्लक्षिविक्रिया यत्र न चौष्ठाधरयोस्तथा ॥ १८१४ ॥
स जपानां श्रेष्ठतमो हार्द इत्युच्यते बुधैः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषो डामरादिषु ॥ १८१५ ॥

यामले चानुसन्धेया ग्रन्थभीत्या न चेरितः ।
एवं हि मालाजपयोर्ज्ञात्वा क्रममनुत्तमम् ॥ १८१६ ॥
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं मालाक्षगुलिकासमम् ।
नमस्कृत्य ततो योनिमुद्रया जगदम्बिकाम् ॥ १८१७ ॥
पुष्पाञ्जलिं प्रदायामुं जपं देव्यै समर्पयेत् ।

जपों के प्रकार—अब जपों के भेदों को सावधान होकर सुनो । जप दो प्रकार का कहा गया है—वाचिक और मानस । जो दूसरों के द्वारा सुनने के योग्य होता है उसे वाचिक जप कहा जाता है । जिसमें अधर और ओष्ठ दोनों चलते हों, वह मानस जप कहलाता है । वाचिक भी दो प्रकार का कहा गया है—उच्च एवं उपांशुक । मानस भी दो प्रकार का होता है—वासनारूप एवं हृदय में चलनेवाला । जहाँ शब्दों का स्पष्ट उच्चारण हो और वह श्रवण के योग्य हो उसको शिव ने वाचिक कहा है । यह मध्यम कोटि का होता है । जिसमें ओठों का थोड़ा-सा चालन होता है जो कि जाना जा सकता है या नहीं भी जाना जा सकता उसे उपांशु जानना चाहिये । यह वाचिक की अपेक्षा चार गुना अधिक (श्रेष्ठ और प्रभावकारी) होता है । वासन जप वासना के साथ होता है । यह नेत्रों से लक्षित होता है । हे ईश्वरि! इसे उपांशु से सौ गुना अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये । जिसमें ओष्ठ और अधर में विकार अर्थात् स्पन्दन नहीं होता और आँख में भी विकार नहीं होता उसे विद्वान् लोग जपों में श्रेष्ठ हार्द जप कहते हैं । इस प्रकार सामान्यतया जप का भेद कहा गया । विशेष भेद डामर आदि में तथा यामलों में खोजना चाहिये । ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ नहीं कहा गया । इस प्रकार माला एवं जप का उत्तम क्रम जानकर (साधक) माला की अक्ष गुलिका के साथ जप करे । इसके बाद जगदम्बा के सामने योनिमुद्रा का प्रदर्शन कर पुष्पाञ्जलि देकर इस जप को देवी को समर्पित करे ॥ १८०८-१८१७- ॥

[जपसमर्पणमन्त्रः स्तोत्रञ्च]

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥ १८१८ ॥
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ।
अयं मन्त्रो निगदितो मुख्यो जपसमर्पणे ॥ १८१९ ॥
वामोरुतस्ततः शक्तिमुत्थाप्य सुरवन्दिते ।
पठेत् स्तोत्रं भावयुक्तं नम्रीकृतशिरोधरः ॥ १८२० ॥

जप समर्पण का मन्त्र और स्तोत्र—हे देवि! तुम गुह्य से भी गुह्य की रक्षक हो हमारे द्वारा किये गये जप को स्वीकार करो । हे सुरेश्वरि! आपकी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो जाय । जप के समर्पण में यह मुख्य मन्त्र है । हे सुरवन्दिते! उसके बाद शक्ति को अपनी बाँयीं जाँघ से उतार कर साधक शिर एवं गर्दन को झुकाकर भक्तिभावयुक्त होकर निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करे ॥ १८१८-१८२० ॥

या व्याप्य शक्त्या निजया जगन्ति
विष्टभ्य भूतानि तथाऽखिलानि ।
वर्वर्ति सर्वोपरि चित्प्रकाशा
सा गुह्यकाली परिपातु विश्वम् ॥ १८२१ ॥

जो अपनी शक्ति से संसार तथा समस्त प्राणियों को व्याप्त कर सब के ऊपर विराजमान है, चित् प्रकाश स्वरूपा वह गुह्यकाली विश्व की रक्षा करे ॥ १८२१ ॥

सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तुरपि क्षणेन
सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तृतया मता या ।
वेदागमाविदिततत्त्वतनुस्वरूपा
सा नः सदाऽवतु जगन्त्यपि गुह्यकाली ॥ १८२२ ॥

जो सृष्टि स्थिति संहार कर्त्ता (= व्रह्मा विष्णु और रुद्र) का भी क्षण में सृष्टि स्थिति संहारकर्त्री मानी जाती है, जिसके तत्त्व एवं तनुस्वरूप को वेद और तन्त्र नहीं जान पाते वह गुह्यकाली हमारी और जगत् की रक्षा करे ॥ १८२२ ॥

सौम्यस्वरूपमपहाय करालरूपं
या दैत्यदानववधाय बिभर्ति गुह्या ।
सा नः सदा वसतु चेतसि वाचि काये
तापत्रयप्रबलपावकवारिधारा ॥ १८२३ ॥

जो गुह्यकाली दैत्यों तथा दानवों के वध के लिये अपना सौम्य रूप छोड़कर विकराल रूप धारण करती है, तीनों ताप रूपी प्रबल अग्नि (को शान्त करने) के लिये प्रबल जलधारा स्वरूपा है; वह मेरे मन वाणी और शरीर में सदा निवास करे ॥ १८२३ ॥

योगेश्वरी हरिशिवाप्लवगर्क्षमर्त्य-
तार्क्ष्यद्विपेन्द्रमकराश्वमुखाकृतीनि ।
वक्त्राणि धारयति याऽनलचन्द्रसूर्य-
रूपेक्षणे(ण) त्रितयमण्डलभूषितानि ॥ १८२४ ॥

जो योगेश्वरी हरि (= सिंह) शिवा (= सियारिन) प्लवग (= वन्दर) ऋक्ष (= भालू) मनुष्य गरुड हाथी घड़ियाल घोड़े के मुख के समान मुख धारण करती है और वे मुख अग्नि चन्द्र एवं सूर्य रूपी तीन आँखों के समूह से विभूषित रहते हैं (उस गुह्यकाली को मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ १८२४ ॥

या वस्वर्ककलादलाम्बुजमये पीठे परिभ्राजते
बिन्दुत्र्यारशरीरकोणनवकाष्टारप्रतिष्ठापिते ।
देवेशाग्निकृतान्तनैर्ऋतजलाधीशानिलार्थेश्वरे-
शानाभ्राम्बुधिवेदशूलयुगविन्मुण्डश्मशानोज्ज्वले?॥ १८२५ ॥

जो वसु (= आठ) अर्क (= बारह) कला (= सोलह) दलों वाले कमल से अलंकृत पीठ पर विराजमान है । वह पीठ बिन्दु, त्रिकोण, शरीर कोण (= चतुष्कोण) नवकोण दशकोणवाला है तथा देवेश (= इन्द्र) अग्नि यम नैर्ऋत वरुण वायु ईशान आम्र (= आम्रकूट पर्वत) समुद्र वेद त्रिशूल युग को जानने वाले मुण्ड और श्मशान से उज्ज्वल है (उस पीठ पर विराजमान काली को प्रणाम करता हूँ) ॥ १८२५ ॥

या ध्याता कपिलादिभिः कृतयुगे श्रीचण्डयोगेश्वरी
त्रेतायां क्षितिपैश्च सिद्धिविकरालीति प्रसिद्धाख्यया।
विप्रैः सिद्धिकराल्यनाद्यभिधया या द्वापरे गीयते
सर्वैरेव जनैस्तथा कलियुगे श्रीगुह्यकालीति च ॥१८२६॥

सत्ययुग में कपिल आदि ने जिसका चण्डयोगेश्वरी के रूप से ध्यान पूजन किया। त्रेतायुग में राजाओं ने 'सिद्धिविकराली' नाम से जिसका ध्यानार्चन किया । द्वापर युग में जो ब्राह्मणों के द्वारा अनादि सिद्धिकराली नाम से आराधित हुई । उसी प्रकार कलियुग में सब लोगों के द्वारा गुह्यकाली के नाम से पूजित होती है (मैं उस गुह्यकाली को प्रणाम करता हूँ) ॥ १८२६ ॥

या मूलाधारमध्ये परशिवसहिता कुण्डलिन्यादिशक्तिः
सूक्ष्मा भूत्वा सुषुम्णापथमनुदधती ब्रह्मरन्ध्रं प्रयाति ।
तत्र द्राक्सामरस्यानुभवसुखपदं धारयन्त्यात्मबोध-
पीयूषासारसारं क्षरति तनुमिमां प्लावयन्ती तदाद्यैः ॥१८२७॥

परमशिव के साथ जो आदि शक्ति मूलाधार के मध्य में कुण्डलिनी के रूप में सूक्ष्म होकर सुषुम्ना मार्ग का अनुसरण करती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है और वहाँ झटिति (शिवशक्ति के) सामरस्य के अनुभव के सुख को धारण करती हुई आत्मसाक्षात्कार रूप अमृत की धारा की वृष्टि करती हुई इस शरीर को पीयूष आदि से आप्लावित करती है (उस गुह्यकाली को मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ १८२७ ॥

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्ररुद्रप्रभृतिसुरगणप्रार्थितेच्छाप्रदान-
प्रख्यातानन्तशक्तिक्रमभरितमहामण्डलस्वर्गलोकाम् ।
मालां पाशं करोटिं नकुलमहिमिषुं फेरुमद्रिं शतघ्नीं
खट्वाङ्गं रत्नकुम्भं धनुरपि दधतीं गुह्यकालीं नमामि ॥१८२८॥

ब्रह्मा इन्द्र विष्णु रुद्र आदि देवसमूह के द्वारा प्रार्थित होने पर उनके अभीष्ट की सिद्धि देने में विख्यात तथा अनन्त शक्ति के क्रम से महामण्डल स्वर्ग लोक को आपूरित करने वाली, माला, पाश, नरमुण्ड, नेवला, सर्प, बाण, शृगाली, वज्र, शतघ्नी, खट्वाङ्ग, रत्नपूरित घट और धनुष को धारण करने वाली गुह्यकाली को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १८२८ ॥

अरूपाऽपि प्रोद्यद्घनरुचिसमाङ्गद्युतिभरा
निराकाराप्युच्चैर्वदनदशविद्योतिततनुः ।
अवीराऽपि स्थाणुप्रलयसमयप्राणदयिता
त्रिलोकीमातेयं जयति जगदाद्या जनिहरी॥ १८२९ ॥

संसार की माता, संसार की आदि कारणभूता, भक्तों को जन्म के बन्धन से मुक्ति देनेवाली, रूपरहित होती हुई भी नवीन काले बादलों के समान अङ्गद्युति से पूरित, आकारहीन होने पर भी अपने उत्कृष्ट दश आननों से शरीर को चमत्कृत करनेवाली, वीर पुरुष की स्त्री न होती हुई भी प्रलय के समान स्थाणु की प्राणदायिता काली सबसे बढ़कर है ॥ १८२९ ॥

न ते रूपं शीलं न बलमहसी नाक्षिवपुषी
विदित्वैवं वक्तुं जननि न समर्थौ हरिहरौ।
कथङ्कारं वक्ता मृतिजननधर्मा जडमतिः
जनो मर्त्यो मादृक् प्रचुरवृजिनाज्ञानखचितः॥ १८३० ॥

हे मातः ! आपका न रूप है न शील न बल न तेज न आँखें और न शरीर— ऐसा जानकर (तुम्हारा वर्णन करने में) विष्णु और शिव भी समर्थ नहीं हैं । फिर मेरे जैसा प्रचुर पाप एवं अज्ञान से युक्त, मरण जनन धर्मवाला मूर्ख मनुष्य कैसे तुम्हारा वर्णन कर सकता है ॥ १८३० ॥

देवेशानि त्वमसि वसुधा त्वं जलं त्वं च तेजः
त्वं वै वायुस्त्वमसि गगनं त्वं दिशस्त्वं च कालः ।
आत्मापि त्वं त्वमसि च मनश्चेन्द्रियाणि त्वमेव
प्राणास्त्वं च क्षितिधरसुते तन्न किं नासि यत्त्वम् ॥ १८३१ ॥

हे देवेशि! तुम्ही धरती तुम्हीं जल तुम्हीं तेज तुम्हीं वायु तुम्हीं आकाश तुम्हीं दिशा तुम्हीं काल हो । आत्मा भी तुम्हीं हो । मन और इन्द्रियाँ भी तुम हो । प्राण भी तुम्हीं हो । हे हिमालय की पुत्रि! ऐसा कुछ भी नहीं है जो तुम नहीं हो ॥ १८३१॥

निस्त्रैगुण्या विकृतिरहिता निर्विकारा निरीहा
नित्या शुद्धा चिदमलतनुर्निःप्रपञ्चादिशक्तिः ।
मायातीतामृतपदमयी वेदवेदान्तवेद्या
कालव्यापिन्यपि परशिवावासनानन्दरूपा॥ १८३२ ॥

करालि करुणानिधे विकचरूपिणि भ्रामरि
त्रिलोकजननि क्षमाऽमृतमयाम्बुनिस्यन्दिनि ।
भयानकमुखि स्फुरन्मणिभुजङ्गसंदीपित
प्रतीपनि(किनि)वरे शिवे गिरिशगेहिनि त्राहि माम्॥ १८३३ ॥

तुम त्रिगुणरहित, विकृतिरहित, निर्विकार, इच्छारहित, नित्य, शुद्ध, चित्, निर्मल शरीरवाली, प्रपञ्चरहित आदिशक्ति हो । माया से परे, अमृतपदवाली, वेदोपनिषद् से ज्ञेय, कालव्यापिनी तथा परशिववासना की आनन्दस्वरूपा हो । हे करालि ! करुणानिधे ! विकचरूपिणि ! भ्रामरि! त्रिलोक की जननि ! क्षमारूपी अमृतमय जल का क्षरण करनेवाली ! भयानक मुखवाली! लहराते हुए मणिमय सर्प से सन्दीप्त प्रतीक (= मुख) वाली ! वरदायिनि ! शिवे! गिरिश की पत्नी ! मेरी रक्षा करो ॥ १८३२-१८३३ ॥

भवानि परमे शिवे भवविमोहिके चण्डिके
मृडानि वितते वरे सुरभि भैरवे कालिके।
महेशिमहिते परे सुदति पूजिते देविके
वरोरु सकले खरे लयिनि वन्दिते रक्ष माम्॥ १८३४ ॥

हे भवानि! परमशिवे! भव अर्थात् संसार को सम्मोहित करनेवाली ! चण्डिके ! मृडानि ! विस्तृत (स्वरूपवाली), श्रेष्ठे ! सुरभि ! भैरव अर्थात् भीषण रववाली ! कालिके ! महेश के द्वारा पूजित ! परतत्त्वरूपिणि ! सुन्दर दाँतों वाली, पूजिते देवि ! श्रेष्ठ जाँघोंवाली ! सर्वस्वरूपिणी ! खरे अर्थात् तेजस्विनि ! प्रलय करने वाली या लीन होने वाली ! वन्दना की जाती हुई मेरी रक्षा करो ॥ १८३४ ॥

उपनिषदि पुराणे न्यायमीमांसयोश्च
क्रमपदनिगमादौ यज्ञ(योग)सांख्यागमेषु।
तव खलु महिमानं वक्ति देवेशि शम्भुः
जडमतिरहमेनं नैव वक्तुं समर्थः॥ १८३५ ॥

हे देवेशि! उपनिषत् पुराण न्याय मीमांसा क्रमशास्त्र पद अर्थात् व्याकरण शास्त्र, निगम अर्थात् वेद, योग सांख्य तथा तन्त्रशास्त्र में भगवान् शिव आपकी महिमा का वर्णन करते हैं । जड़बुद्धि मैं उस महिमा का वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ ॥ १८३५ ॥

सुरनरमुनिसङ्घैः(घैः) सेवितं पादपद्मं
सकलकलुषवृन्दध्वंसकं भाग्यदायि।
हृदयसरसि नित्यं रोहतां मामकीने
त्रिभुवनतलमध्ये त्वामृतेऽन्यां न जाने॥ १८३६ ॥

(हे ईश्वरि!) सुर नर और मुनि आपके चरण-कमल की सेवा करते रहते हैं । वह चरण-कमल समस्त पापसमूह का नाश करनेवाला तथा भाग्योदय करनेवाला है। (मेरी प्रार्थना है कि वह) चरण-कमल मेरे हृदयरूपी तालाब में नित्य खिला रहे। सम्पूर्ण त्रैलोक्य में मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य (देवता) को नहीं जानता ॥ १८३६ ॥

उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररूपे भगप्रिये ।
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ॥ १८३७ ॥
अरण्यचारिणि शिवे कुलद्रव्यमयीश्वरि ।
शिवारूपधरे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ॥ १८३८ ॥

हे उल्कामुखि! लपलपाती जिह्वावाली! घोररूपे! भगप्रिये! श्मशान में रहने वाली, प्रेतस्वरूपे, शव के मांस का रुचिपूर्वक भोजन करने वाली, पापरहित, जङ्गल में रहने वाली, शिवे, कुलद्रव्य (= मद्य) मयी अर्थात् मद्यमत्त, ईश्वरि, शिवा अर्थात् शृगाली का रूप धारण करने वाली देवि गुह्यकालि ! आपको नमस्कार है ॥ १८३७-१८३८ ॥

दश(नव)वक्त्रे महाघोरे सप्तविंशतिलोचने ।
चतुः पञ्चाशद्भुजे च गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ॥ १८३९ ॥
नमस्तुभ्यं महारावे जगत्तारिणि कालिके ।
सर्वसिद्धिप्रदे सिद्धिविकरालि नमोऽस्तु ते ॥ १८४० ॥

हे नवमुखों वाली! महाघोरे! सत्ताईस नेत्रों वाली! चौवन भुजाओं वाली! गुह्यकाली! आपको नमस्कार है । हे महाशब्द करने वाली! संसार को मुक्ति देने वाली, समस्त सिद्धियों को देने वाली सिद्धिविकराली कालि ! आपको नमस्कार है ॥ १८३९-१८४० ॥

मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि फेरुभैरववाहिनि ।
ज्ञानानन्दमये भीमे भयङ्करि भयापहे ॥ १८४१ ॥
संसारतारिणि जये जयसर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे मुण्डमालाविभूषिते ॥ १८४२ ॥
गुह्यकालि महाचण्डयोगेश्वरि परापरे ।
चण्डकापालिनि क्रुद्धे त्राहि मां शरणागतम् ॥ १८४३ ॥

हे मातङ्गि! कुक्कुटे! रौद्रि! फेरु अर्थात् शृगाल एवं भैरववाहनवाली! ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण! भीम एवं भयङ्कर! भय को दूर करनेवाली ! संसार से उद्धार करनेवाली ! जयशील! जयशील सबका शुभ करने वाली ! बिखरे बालोंवाली ! चण्डे मुण्डमाला से विभूषित ! महाचण्डयोगेश्वरि ! परापरे ! चण्डकापालिनि ! क्रुद्ध गुह्यकालि! शरणागत मेरी रक्षा करें ॥ १८४१-१८४३ ॥

गुह्ये किराति शबरि प्रेतकालहृदिस्थिते ।
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ॥ १८४४ ॥
नवपञ्चमहाचक्रनिलये फेरुरूपिणि ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥ १८४५ ॥

हे गुह्ये! किराति! शबरि! प्रेत काल के हृदय में रहने वाली! मेरे ऊपर सदा कृपा करो । कृपापूर्ण दृष्टि से मुझे देखो । हे नव पञ्चमहाचक्र में रहनेवाली! फेरुरूपिणि! आपको नमस्कार है । आपको नमस्कार है । आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है ॥ १८४४-१८४५ ॥

[सिद्धितत्त्वस्तोत्रस्य फलश्रुतिः]

सिद्धितत्त्वाभिधं स्तोत्रमेतत्तव मयोदितम् ।
जपं समर्प्य पठतः सिद्धयः पुरतः स्थिताः ॥ १८४६ ॥
सिद्धितत्त्वं पठन् देवि साधको भक्तितत्परः ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरञ्जीवी निरामयः ॥ १८४७ ॥
धार्मिको विजयी दक्षो यशस्वी भूपवल्लभः ।
ज्ञातिश्रेष्ठः पुत्रवांश्च सर्वयोषित्प्रियः सुखी ॥ १८४८ ॥
रूपवान् वित्तवान् धीरो विक्रमो विश्वपूजितः ।
सिद्धिभाक् सर्वविच्चैव भवत्यत्र न संशयः ॥ १८४९ ॥
यं यं कामयते कामंयां यां सिद्धिं चिकीर्षति ।
ते सर्वे तस्य वशगाः शम्भोरिव जगत्त्रयम् ॥ १८५० ॥
पञ्चविंशतिभिः श्लोकैः गुह्यकालीरिता यदि ।
कृतकृत्यस्तदा जात आरिराधयिषुर्हि ताम् ॥ १८५१ ॥
पठितव्यः प्रयत्नेन तस्मादेव स्तवोत्तमः ।
स्तवोऽयं त्रिपुरघ्नेन लोकानां हितकाम्यया ॥ १८५२ ॥
प्रकाशितो वरारोहे तस्मात् पाठ्यः प्रयत्नतः ।
विद्यां प्राप्नोति विद्यार्थी धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ १८५३ ॥
मुक्तिकामस्तु लभते मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः ।
आवश्यकमिदं स्तोत्रं गुह्यकाल्यर्पितात्मनाम् ॥ १८५४ ॥
एतत्स्तोत्रान्विता पूजा सहस्रगुणिता भवेत् ।

सिद्धितत्त्वस्तोत्र का फल—मैंने तुमको सिद्धितत्त्व नामक इस स्तोत्र को बतलाया । जप को (गुह्यकाली के लिये) समर्पित कर (इस स्तोत्र को) पढ़नेवाले के सामने सिद्धियाँ स्थित हो जाती हैं । हे देवि! सिद्धितत्त्वस्तोत्र को पढ़नेवाला भक्तितत्पर साधक विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरञ्जीवी नीरोग धार्मिक विजयी दक्ष यशस्वी राजाओं का प्रिय जाति में श्रेष्ठ, पुत्रवान् समस्त स्त्रियों का प्रिय सुखी रूपवान् धनवान् धीर पराक्रमवाला विश्व में पूजित सिद्धिवाला और सर्ववेत्ता हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं है । वह जो-जो कामना करता है जिस-जिस सिद्धि को करना चाहता है वे सब उसी प्रकार उसके वश में हो जाते हैं जैसे शिव के वश में विश्व । यदि उपर्युक्त पचीस श्लोकों से गुह्यकाली की प्रार्थना की जाती है तो उनकी आराधना का इच्छुक भक्त कृतकृत्य हो जाता है । इस कारण इस उत्तम स्तोत्र का

प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये । हे वरारोहे! त्रिपुरारि ने इस स्तोत्र को लोगों के हित की कामना से प्रकाशित किया इसलिये प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये । (इसको पढ़नेवाला) विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, धनार्थी धन लाभ करता है एवं मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं । गुह्यकाली के लिये समर्पित लोगों के लिय यह स्तोत्र (पाठ) आवश्यक है । इस स्तोत्र से युक्त पूजा हजार गुना अधिक फलवती होती है ॥ १८४६-१८५४- ॥

[गुह्यकाल्या: सहस्रनामस्तोत्रम्]

देव्युवाच—

यदुक्तं भवता पूर्णं प्राणेश करुणावशात् ॥ १८५५ ॥
नाम्नां सहस्रं देव्यास्तु तदिदानीं वद प्रभो ।

गुह्यकाली का सहस्रनाम स्तोत्र—देवी ने कहा—हे प्राणेश! आपने करुणावश पहले जो देवी के सहस्रनाम की चर्चा की थी । हे प्रभो! अब उसको कहिये ।

श्रीमहाकाल उवाच—

अतिप्रीतोऽस्मि देवेशि तवाहं वचसामुना ॥ १८५६ ॥
सहस्रनामस्तोत्रं यत् सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
सुगोपितं यद्यपि स्यात् कथयिष्ये तथापि ते ॥ १८५७ ॥
देव्या: सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं पापौघमर्दनम् ।
मह्यं पुरा भुव: कल्पे त्रिपुरघ्नेन कीर्तितम् ॥ १८५८ ॥
आज्ञप्तश्च तथा देव्या प्रत्यक्षङ्गतया तया ।
त्वयैतत् प्रत्यहं पाठ्यं स्तोत्रं परमदुर्लभम् ॥ १८५९ ॥
महापातकविध्वंसि सर्वसिद्धिविधायकम् ।
महाभाग्यप्रदं दिव्यं सङ्ग्रामे जयकारकम् ॥ १८६० ॥
विपक्षदर्पदलनं विपदम्भोधितारकम् ।
कृत्याभिचारशमनं महाविभवदायकम् ॥ १८६१ ॥
मनश्चिन्तितकार्यैकसाधकं वाग्मिताकरम् ।
आयुरारोग्यजनकं बलपुष्टिप्रदं परम् ॥ १८६२ ॥
नृपतस्करभीतिघ्नं विवादे जयवर्द्धनम् ।
परशत्रुक्षयकरं कैवल्यामृतहैतुकम् ॥ १८६३ ॥
सिद्धिरत्नाकरं श्रेष्ठं सद्य: प्रत्ययकारकम् ।
नात: परतरं देव्या: अस्त्यन्यत् तुष्टिदं परम् ॥ १८६४ ॥
नाम्नां सहस्रं गुह्याया: कथयिष्यामि ते प्रिये ।
यत्पूर्वं सर्वदेवानां मन्त्ररूपतया स्थितम् ॥ १८६५ ॥
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
प्राणवत् कण्ठदेशस्थं यत्स्वप्नेऽप्यपरिच्युतम् ॥ १८६६ ॥

देवर्षीणां मुनीनां च वेदवद् रसनागतम् ।
सार्वभौममहीपालैः प्रत्यहं यच्च पठ्यते ॥ १८६७ ॥
मया च त्रिपुरघ्नेन जप्यते यद्दिने दिने ।
यस्मात् परं नो भविता स्तोत्रं त्रिजगतीतले ॥ १८६८ ॥
वेदवन्मन्त्रवद् यच्च शिववक्त्रविनिर्गतम् ।
यन्नान्यतन्त्रागमेषु यामले डामरे न च ॥ १८६९ ॥
न चान्यसंहिताग्रन्थे नैव ब्रह्माण्डगोलके ।
संसारसागरं तर्तुमेतत् पोतवदिष्यते ॥ १८७० ॥

श्रीमहाकाल ने कहा—हे देवि! मैं इस समय तुम्हारे इस वचन से बहुत प्रसन्न हूँ। सभी स्तोत्रों में जो उत्तमोत्तम है और यद्यपि यह सुगोपित है तथापि इस सहस्रनामस्तोत्र को मैं तुमको बतलाऊँगा । देवी का यह सहस्रनाम संज्ञावाला स्तोत्र पापसमूह को नष्ट करनेवाला है । इस स्तोत्र को पहले त्रिपुरारि ने मुझको बतलाया और उस देवी ने प्रत्यक्ष होकर मुझसे कहा—तुम इस पल दुर्लभ स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करो । यह स्तोत्र महापातक का नाशक, सर्वसिद्धिदायक, महाभाग्यप्रद, दिव्य, सङ्ग्राम में विजय दिलानेवाला, शत्रु के दर्प को चूर करनेवाला, विपत्तिरूपी समुद्र के पार ले जानेवाला, कृत्या के अभिचार को शान्त करनेवाला, महावैभवदायक, मन में सोचे गये कार्य का साधक, वाग्मी बनानेवाला, आयु और आरोग्य देनेवाला, परम बलपुष्टिदायक, राजभय एवं चौरभय का निवारक, मुकदमे में विजय दिलानेवाला, परशत्रु को नष्ट करनेवाला, कैवल्य एवं अमृतत्व का कारण, सिद्धिरूपी रत्नों का भण्डार, श्रेष्ठ तथा तत्काल विश्वास दिलानेवाला है । इससे बढ़कर देवी को सन्तुष्ट करनेवाला दूसरा कुछ नहीं है । हे प्रिये! मैं तुमको गुह्यकाली का सहस्रनाम बतलाऊँगा । यह सहस्रनाम पूर्वकाल में समस्त देवताओं के बीज मन्त्र रूप में स्थित था । दैत्यों दानवों यक्षों गन्धर्वों सर्पों राक्षसों के कण्ठ देश में यह प्राण के समान रहता है । स्वप्न में भी यह उनसे पृथक् नहीं होता । देवताओं ऋषियों और मुनियों की जिह्वा पर यह वेद की भाँति विराजमान है । सार्वभौम राजाओं के द्वारा प्रतिदिन इसका पाठ किया जा रहा है । मैं और त्रिपुरारि इसका प्रतिदिन जप करते हैं। इस धरती पर इससे बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है । यह शिव के मुख से वेद अथवा मन्त्र के समान बाहर आया । यह अन्य तन्त्रागम यामल डामर अथवा अन्य संहिता ग्रन्थ या ब्रह्माण्डगोलक में कहीं नहीं है । संसार-सागर से पार होने के लिये इसे लोग पोत के समान मानते हैं । यह अनेक प्रकार की सिद्धि का कोष तथा महान् उदयकारक है ॥ १८५५-१८७० ॥

नानाविधमहासिद्धिकोषरूपं महोदयम् ।
या देवी सर्वदेवानां या माता जगदोकसाम् ॥ १८७१ ॥
या सृष्टिकर्त्री देवानां विश्वावित्री च या स्मृता ।

या च त्रिलोक्याः संहर्त्री या दात्री सर्वसम्पदाम् ॥ १८७२ ॥
ब्रह्माण्डं या च विष्टभ्य तिष्ठत्यमरपूजिता ।
पुराणोपनिषद्वेद्या या चैका जगदम्बिका ॥ १८७३ ॥
यस्याः परं नान्यदस्ति किमपीह जगत्त्रये ।
सा गुह्यास्य प्रसादेन वशीभूतेव तिष्ठति ॥ १८७४ ॥
अत एव महत्स्तोत्रमेतज्जगति दुर्लभम् ।
पठनीयं प्रयत्नेन परं पदमभीप्सुभिः ॥ १८७५ ॥
किमन्यैः स्तोत्रविस्तारैर्नायं चेत् पठितोऽभवत् ।
किमन्यैः स्तोत्रविस्तारैरयं चेत् पठितो भवेत् ॥ १८७६ ॥
दुर्वाससे नारदाय कपिलायात्रये तथा ।
दक्षाय च वसिष्ठाय संवर्ताय च विष्णवे ॥ १८७७ ॥
अन्येभ्योऽपि देवेभ्योऽवदं स्तोत्रमिदं पुरा ।
इदानीं कथयिष्यामि तव त्रिदशवन्दिते ॥ १८७८ ॥
इदं शृणुष्व यत्नेन श्रुत्वा चैवावधारय ।
धृत्वाऽन्येभ्योऽपि देहि त्वं यान् वै कृपयसे सदा ॥ १८७९ ॥

जो समस्त देवताओं की देवी हैं, जो संसारी जनों की माता हैं, जो देवताओं की सृष्टि करती हैं, जो विश्व की रक्षक मानी गयी हैं जो त्रिलोक का संहार करनेवाली हैं, जो समस्त सम्पत्तियों को देने वाली हैं, देवताओं से पूजित जो ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर स्थित हैं, जो एक अर्थात् प्रधान जगदम्बा पुराणों एवं उपनिषदों से वेद्य हैं, इस जगती तल पर जिससे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है, वह गुह्यकाली इस स्तोत्र की कृपा से वश में होकर रहती हैं । इसलिये यह महास्तोत्र जो कि जगत् में दुर्लभ है, परपद को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक पढ़ा जाना चाहिये । यदि इस स्तोत्र का पाठ नहीं किया गया तो अन्य स्तोत्र पाठ के विस्तार से क्या लाभ (अर्थात् अन्य स्तोत्रों का पाठ व्यर्थ है) और यदि इसका पाठ कर लिया गया तो भी अन्य स्तोत्रों के विस्तृत पाठ से क्या लाभ (क्योंकि अन्य स्तोत्रों के पाठ से मिलनेवाला लाभ इसी स्तोत्र के पाठ से मिल जायगा) । मैंने इस स्तोत्र को प्राचीन काल में दुर्वासा नारद कपिल अत्रि दक्ष वसिष्ठ संवर्त्त विष्णु और अन्य देवों को बतलाया । हे त्रिदशवन्दिते! अब तुमको बतलाऊँगा । इसको यत्न से सुनो और सुनकर समझो एवं धारण करो । धारणकर इसको अन्य लोगों, जिनके ऊपर कृपा करती हो, उनको दो ॥ १८७१-१८७९ ॥

ओमस्य श्रीगुह्यकालीसहस्रनामस्तोत्रस्य श्रीत्रिपुरघ्न ऋषिरनुष्टुप् छन्द एकवक्त्रादिशतवक्त्रान्ता श्रीगुह्यकालीदेवता फ्रूं बीजं ख्रैं ख्रैं शक्तिः छ्रीं ख्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसाधनपूर्वकश्रीचण्डयोगेश्वरीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः । ओं तत्सत् ।

विनियोग—इस गुह्यकाली सहस्रनाम स्तोत्र के ऋषि त्रिपुरारि, छन्द अनुष्टुप्, देवता एकमुखी से लेकर शतमुखी तक की गुह्यकाली, बीज फ्रूं, शक्ति ख्रैं ख्रैं, कीलक छ्रीं ख्रीं है । पुरुषार्थचतुष्टय के साथ श्रीचण्डयोगेश्वरी की प्रसन्नता के लिये इसका विनियोग होता है ।

ओं फ्रें कराली चामुण्डा चण्डयोगेश्वरी शिवा।
दुर्गा कात्यायनी सिद्धिविकराली मनोजवा ॥ १८८० ॥
उल्कामुखी फेरुरावा भीषणा भैरवासना ।
कपालिनी कालरात्रिर्गौरी कङ्कालधारिणी ॥ १८८१ ॥
श्मशानवासिनी प्रेतासना रक्तोदधिप्रिया ।
योगमाता महारात्रिः पञ्चकालानलस्थिता ॥ १८८२ ॥
रुद्राणी रौद्ररूपा च रुधिरद्वीपचारिरिणी ।
मुण्डमालाधरा चण्डी बलवर्वरकुन्तला ॥ १८८३ ॥
मेधा महाडाकिनी च योगिनी योगिवन्दिता ।
कौलिनी कुरुकुल्ला च घोरा पिङ्गजटा जया ॥ १८८४ ॥
सावित्री वेदजननी गायत्री गगनालया ।
नवपञ्चमहाचक्रनिलया दारुणस्वना ॥ १८८५ ॥
उग्रा कपर्दिगृहिणी जगदाद्या जनाश्रया ।
कालकर्णी कुण्डलिनी भूतप्रेतगणाधिपा ॥ १८८६ ॥
जालन्धरी मसीदेहा पूर्णानन्दपतङ्गिनी ।
पालिनी पावकाभासा प्रसन्ना परमेश्वरी ॥ १८८७ ॥
रतिप्रिया रोगहरी नागहारा नगात्मजा ।
अव्यया वीतरागा च भवानी भूतधारिणी ॥ १८८८ ॥
कादम्बिनी नीलदेहा काली कादम्बरीप्रिया ।
माननीया महादेवी महामण्डलवर्तिनी ॥ १८८९ ॥
महामांसाशनीशानी चिद्रूपा वागगोचरा ।
यज्ञाम्बुजासनादेवी दर्वीकरविभूषिता ॥ १८९० ॥
चण्डमुण्डप्रमथनी खेचरी खेचरोदिता ।
तमालश्यामला तीव्रा तापिनी तापनाशिनी ॥ १८९१ ॥
महामाया महादंष्ट्रा महोरगविराजिता ।
लम्बोदरी लोलजटा लक्ष्म्यालक्ष्मीप्रदायिनी ॥ १८९२ ॥
धात्री धाराधराकारा धोरणी धावनप्रिया ।
हरजाया हराराध्या हरिवक्त्रा हरीश्वरी ॥ १८९३ ॥
विश्वेश्वरी वज्रनखी स्वरारोहा बलप्रदा ।

घोणकी घर्घरारावा घोराघौघप्रणाशिनी ॥ १८९४ ॥
कल्पान्तकारिणी भीमा ज्वालामालिन्यवामया(?)।
सृष्टिः स्थितिः क्षोभणा च कराला चापराजिता ॥ १८९५ ॥
वज्रहस्तानन्तशक्तिर्विरूपा च परापरा ।
ब्रह्माण्डमर्दिनी प्रध्वंसिनी लक्षभुजा सती ॥ १८९६ ॥
विद्युज्जिह्वा महादंष्ट्रा छायाध्वरसुताद्यहृत् ।
महाकालाग्निमूर्तिश्च मेघनादा कटङ्कटा ॥ १८९७ ॥
प्रदीप्ता विश्वरूपा च जीवदात्री जनेश्वरी ।
साक्षिणी शर्वरी शान्ता शममार्गप्रकाशिका ॥ १८९८ ॥
क्षेत्रज्ञा क्षेपणी क्षम्याऽक्षता क्षामोदरी क्षितिः ।
अप्रमेया कुलाचारकर्त्री कौलिकपालिनी ॥ १८९९ ॥
माननीया मनोगम्या मेनानन्दप्रदायिनी ।
सिद्धान्तखनिरध्यक्षा मुण्डिनी मण्डलप्रिया ॥ १९०० ॥
बाला च युवती वृद्धा वयोतीता बलप्रदा ।
रत्नमालाधरा दान्ता दर्वीकरविराजिता ॥ १९०१ ॥
धर्ममूर्तिर्ध्वान्तरुचिर्धरित्री धावनप्रिया ।
सङ्कल्पिनी कल्पकरी कलातीता कलस्वना ॥ १९०२ ॥
वसुन्धरा बोधदात्री वर्णिनी वानरानरा(ना ?) ।
विद्या विद्यात्मिका वन्या बन्धनी बन्धनाशिनी ॥ १९०३ ॥
गेया जटाजूटरम्या जरती जाह्नवी जड़ा ।
तारिणी तीर्थरूपा च तपनीया तनूदरी ॥ १९०४ ॥
तापत्रयहरा तापी तपस्या तापसप्रिया ।
भोगिभूष्या भोगवती भगिनी भगमालिनी ॥ १९०५ ॥
भक्तिलभ्या भावगम्या भूतिदा भववल्लभा ।
स्वाहारूपा स्वधारूपा वषट्कारस्वरूपिणी ॥ १९०६ ॥
हन्ता(?सा) कृतिर्नमोरूपा यज्ञादिर्यज्ञसम्भवा ।
स्फ्यसूर्पचमसाकारा स्रक्स्रुवाकृतिधारिणी ॥ १९०७ ॥
उद्गीथहिङ्कारदेहा नमः स्वस्तिप्रकाशिनी ।
ऋग्यजुःसामरूपा च मन्त्रब्राह्मणरूपिणी ॥ १९०८ ॥
सर्वशाखामयी खर्वा पीवर्युपनिषद्बुधा ।
रौद्री मृत्युञ्जयाचिन्तामणिर्वैहायसी धृतिः ॥ १९०९ ॥
तार्तीया हंसिनी चान्द्री तारा त्रैविक्रमी स्थितिः ।
योगिनी डाकिनी धारा वैद्युती विनयप्रदा ॥ १९१० ॥

उपांशुर्मानसी वाच्या रोचना रुचिदायिनी ।
सत्त्वाकृतिस्तमोरूपा राजसी गुणवर्जिता ॥ १९११ ॥
आदिसर्गादिकालीनभानवी नाभसी तथा ।
मूलाधारा कुण्डलिनी स्वाधिष्ठानपरायणा ॥ १९१२ ॥
मणिपूरकवासा च विशुद्धानाहता तथा ।
आज्ञा प्रज्ञा महासंज्ञा वर्वरा व्योमचारिणी ॥ १९१३ ॥
बृहद्रथन्तराकारा ज्येष्ठा चाथर्वणी तथा ।
प्राजापत्या महाब्राह्मी हूंहूङ्कारा पतङ्गिनी ॥ १९१४ ॥
राक्षसी दानवी भूतिः पिशाची प्रत्यनीकरा ।
उदात्ताप्यनुदात्ता च स्वरिता निःस्वराप्यजा ॥ १९१५ ॥
निष्कला पुष्कला साध्वी सा नुता खण्डरूपिणी ।
गूढा पुराणा चरमा प्राग्भवी वामनी ध्रुवा ॥ १९१६ ॥
काकीमुखी साकला च स्थावरा जङ्गमेश्वरी ।
ईडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा ध्यानगोचरा ॥ १९१७ ॥
सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी बन्धनी हिता ।
सङ्कोचिनी भासुरा च निम्ना दृप्ता प्रकाशिनी ॥ १९१८ ॥
प्रबुद्धा क्षेपणी क्षिप्ता पूर्णालस्या विलम्बिता ।
आवेशिनी घर्घरा च रूक्षा क्लिन्ना सरस्वती ॥ १९१९ ॥
स्निग्धा चण्डा कुहूःपूषा वारणा च यशस्विनी ।
गान्धारी शङ्खिनी चैव हस्तिजिह्वा पयस्विनी ॥ १९२० ॥
विश्वोदरालम्बुषा च बिभ्रा तेजस्विनी सती ।
अव्यक्ता गालनी मन्दा मुदिता चेतनापि च ॥ १९२१ ॥
द्रावणी चपला लम्बा भ्रामरी मधुमत्यपि ।
धर्मा रसवहा चण्डी सौवीरी कपिला तथा ॥ १९२२ ॥
रण्डोत्तरा कर्षिणी च रेवती सुमुखी नटी ।
रजन्याप्यायनी विश्वदूता चन्द्रा कपर्दिनी ॥ १९२३ ॥
नन्दा चन्द्रावती मैत्री विशालापि च माण्डवी ।
विचित्रा लोहिनीकल्पा सुकल्पा पूतनापि च ॥ १९२४ ॥
धोरणी धारणी हेला धीरा वेगवती जटा ।
अग्निज्वाला च सुरभी विवर्णा कृन्तनी तथा ॥ १९२५ ॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
तपस्विनी स्वप्नवहा सम्मोहा कोटरा चला ॥ १९२६ ॥
विकल्पा लम्बिका मूला तन्द्रावत्यपि घण्टिका ।

अविग्रहा च कैवल्या तुरीया चापुनर्भवा ॥ १९२७ ॥
विभ्रान्तिश्च प्रशान्ता च योगिनिःश्रेण्यलक्षिता ।
निर्वाणा स्वस्तिका वृद्धिर्निवृत्तिश्च महोदया ॥ १९२८ ॥
बोध्याऽविद्या च तामिस्रा वासना योगमेदिनी ।
निरञ्जना च प्रकृतिः सत्ताख्या पारमार्थिकी ॥ १९२९ ॥
प्रतिविम्बनिराभासा सदसद्रूपधारिणी ।
उपशान्ता च चैतन्या कूटा विज्ञानमय्यपि ॥ १९३० ॥
शक्तिविद्या वासिता च मोदिनी मुदितानना ।
अनया प्रवहा व्याडी सर्वज्ञा शरणप्रदा ॥ १९३१ ॥
वारुणी मार्जनीभाषा प्रतिमा बृहती खला ।
प्रतीच्छा प्रमितिः प्रीतिः कुहिका तर्पणप्रिया ॥ १९३२ ॥
स्वस्तिका सर्वतोभद्रा गायत्री प्रणवात्मिका ।
सावित्री वेदजननी निगमाचारबोधिनी ॥ १९३३ ॥
विकराला कराला च ज्वालाजालैकमालिनी ।
भीमा च क्षोभणानन्ता वीरा वज्रायुधा तथा ॥ १९३४ ॥
प्रध्वंसिनी च मालङ्का विश्वमर्दिन्यवीक्षिता ।
मृत्युः सहस्रबाहुश्च घोरदंष्ट्रा वलाहकी ॥ १९३५ ॥
पिङ्गा पिङ्गशता दीप्ता प्रचण्डा सर्वतोमुखी ।
विदारिणी विश्वरूपा विक्रान्ता भूतभावनी ॥ १९३६ ॥
विद्राविणी मोक्षदात्री कालचक्रेश्वरी नटी ।
तप्तहाटकवर्णा च कृतान्ता भ्रान्तिभञ्जिनी ॥ १९३७ ॥
सर्वतेजोमयी भव्या दितिशोककरी कृतिः ।
महाक्रुद्धा श्मशानस्था कपालस्रगलंकृता ॥ १९३८ ॥
कालातिकाला कालान्तत्करीतिः करुणानिधिः ।
महाघोरा घोरतरा संहारकारिणी तथा ॥ १९३९ ॥
अनादिश्च महोन्मत्ता भूतधात्र्यसितेक्षणा ।
भीष्माकारा च वक्राङ्गी बहुपादैकपादिका ॥ १९४० ॥
कुलाङ्गना कुलाराध्या कुलमार्गरतेश्वरी ।
दिगम्बरा मुक्तकेशी वज्रमुष्टिर्निरिन्धनी ॥ १९४१ ॥
सम्मोहिनी क्षोभकरी स्तम्भिनी वश्यकारिणी ।
दुर्द्धर्षा दर्पदलनी त्रैलोक्यजननी जया ॥ १९४२ ॥
उन्मादोच्चाटनकरी कृत्या कृत्याविघातिनी ।
विरूपा कालरात्रिश्च महारात्रिर्मनोन्मनी ॥ १९४३ ॥

महावीर्या गूढनिद्रा चण्डदोर्दण्डमण्डिता ।
निर्मला शूलिनी तन्त्रा वज्रिणी चापधारिणी ॥ १९४४ ॥
स्थूलोदरी च कुमुदा कामुका लिङ्गधारिणी ।
घटोदरी फेरवी च प्रवीणा कालसुन्दरी ॥ १९४५ ॥
तारावती डमरुका भानुमण्डलमालिनी ।
एकानङ्गा पिङ्गलाक्षी प्रचण्डाक्षी शुभङ्करी ॥ १९४६ ॥
विद्युत्केशी महामारी सूची तूण्डी च जृम्भका ।
प्रस्वापिनी महातीव्रा वरणीया वरप्रदा ॥ १९४७ ॥
चण्डचण्डा ज्वलद्देहा लम्बोदर्यग्निमर्दिनी ।
महादन्तोल्कादृगम्बा ज्वालाजालजलन्धरी ॥ १९४८ ॥
माया कृशा प्रभा रामा महाविभवदायिनी ।
पौरन्दरी विष्णुमाया कीर्तिः पुष्टिस्तनूदरी ॥ १९४९ ॥
योगज्ञा योगदात्री च योगिनी योगिवल्लभा ।
सहस्रशीर्षपादा च सहस्रनयनोज्ज्वला ॥ १९५० ॥
पानकर्त्री पावकाभा परामृतपरायणा ।
जगद्गतिर्जगज्जेत्री जन्मकालविमोचिनी ॥ १९५१ ॥
मूलावतंसिनी मूला मौनव्रतपराङ्मुखी ।
ललिता लोलुपा लोला लक्षणीया ललामधृक् ॥ १९५२ ॥
मातङ्गिनी भवानी च सर्वलोकेश्वरेश्वरी ।
पार्वती शम्भुदयिता महिषासुरमर्दिनी ॥ १९५३ ॥
चण्डमुण्डापहर्त्री च रक्तबीजनिकृन्तनी ।
निशुम्भशुम्भमथनी देवराजवरप्रदा ॥ १९५४ ॥
कल्याणकारिणी काली कोलमांसास्रपायिनी ।
खड्गहस्ता चर्मिणी च पाशिनी शक्तिधारिणी॥ १९५५ ॥
खट्वाङ्गिनी मुण्डधरा भुशुण्डी धनुरन्विता ।
चक्रघण्टान्विता बालप्रेतशैलप्रधारिणी ॥ १९५६ ॥
नरकङ्कालनकुलसर्पहस्ता समुद्गरा ।
मुरलीधारिणी बलिकुण्डिनी डमरुप्रिया ॥ १९५७ ॥
भिन्दिपालास्त्रिणी पूज्या साध्या परिघिणी तथा ।
पट्टिशप्रासिनी रम्या शतघ्नी मुसलिन्यपि ॥ १९५८ ॥
शिवापोतधरा दण्डाङ्कुशहस्ता त्रिशूलिनी ।
रत्नकुम्भधरा दान्ता छुरिकाकुन्तदोर्युता ॥ १९५९ ॥
कमण्डलुकरा क्षामा गृध्राढ्या पुष्पमालिनी ।

मांसखण्डकरा बीजपूरवत्यक्षरा क्षरा ॥ १९६० ॥
गदापरशुयष्ट्यङ्का मुष्टिनानलधारिणी ।
प्रभूता च पवित्रा च श्रेष्ठा पुण्यविवर्द्धनी ॥ १९६१ ॥
प्रसन्नानन्दितमुखी विशिष्टा शिष्टपालिनी ।
कामरूपा कामगवी कमनीयकलावती ॥ १९६२ ॥
गङ्गा कलिङ्गतनया सिप्रा गोदावरी मही ।
रेवा सरस्वती चन्द्रभागा कृष्णा दृषद्वती ॥ १९६३ ॥
वाराणसी गयावन्ती काञ्ची मलयवासिनी ।
सर्वदेवीस्वरूपा च नानारूपधरामला ॥ १९६४ ॥
लक्ष्मीगौरी महालक्ष्मी रत्न(न्न)पूर्णा कृपामयी ।
दुर्गा च विजया घोरा पद्मावत्यमरेश्वरी ॥ १९६५ ॥
वगला राजमातङ्गी चण्डी महिषमर्दिनी ।
त्रिपुटोच्छिष्टचाण्डाली भारुण्डा भुवनेश्वरी ॥ १९६६ ॥
राजराजेश्वरी नित्यक्लिन्ना च जयभैरवी ।
चण्डयोगेश्वरी राज्यलक्ष्मी रुद्राण्यरुन्धती ॥ १९६७ ॥
अश्वारूढा महागुह्या यन्त्रप्रमथनी तथा ।
धनलक्ष्मीर्विश्वलक्ष्मीर्वश्यकारिण्यकल्मषा ॥ १९६८ ॥
त्वरिता च महाचण्डभैरवी परमेश्वरी ।
त्रैलोक्यविजया ज्वालामुखी दिक्करवासिनी ॥ १९६९ ॥
महामन्त्रेश्वरी वज्रप्रस्तारिण्यजनावती ।
चण्डकापालेश्वरी च स्वर्णकोटेश्वरी तथा ॥ १९७० ॥
उग्रचण्डा श्मशानोग्रचण्डा वार्ताल्यजेश्वरी ।
चण्डोग्रा च प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ॥ १९७१ ॥
वाग्वादिनी मधुमती वारुणी तुम्बुरेश्वरी ।
वागीश्वरी च पूर्णेशी सौम्योग्रा कालभैरवी ॥ १९७२ ॥
दिगम्बरा च धनदा कालरात्रिश्च कुब्जिका ।
किराटी शिवदूती च कालसङ्कर्षणी तथा ॥ १९७३ ॥
कुक्कुटी सङ्कटा देवी चपलभ्रमराम्बिका ।
महार्णवेश्वरी नित्या जयझङ्केश्वरी तथा ॥ १९७४ ॥
शबरी पिङ्गला बुद्धिप्रदा संसारतारिणी ।
विज्ञा महामोहिनी च बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥ १९७५ ॥
उग्रतारा चैकजटा तथा नीलसरस्वती ।
त्रिकण्टकी छिन्नमस्ता बोधिसत्त्वा रणेश्वरी ॥ १९७६ ॥

ब्रह्माणी वैष्णवी माहेश्वरी कौमार्यलम्बुषा ।
वाराही नारसिंही च चामुण्डेन्द्राण्ययोनिजा ॥ १९७७ ॥
चण्डेश्वरी चण्डघण्टा नाकुली मृत्युहारिणी ।
हंसेश्वरी मोक्षदा च शातकर्णी जलन्धरी ॥ १९७८ ॥
स्वरकर्णी ऋक्षकर्णी सूर्पकर्णा बलाबला ।
महानीलेश्वरी जातवेतसी कोकतुण्डिका ॥ १९७९ ॥
गुह्येश्वरी वज्रचण्डी महाविद्या च बाभ्रवी ।
शाकम्भरी दानवेशी डामरी चर्चिका तथा ॥ १९८० ॥
एकवीरा जयन्ती च एकानंशा पताकिनी ।
नीललोहितरूपा च ब्रह्मवादिन्ययन्त्रिता ॥ १९८१ ॥
त्रिकालवेदिनी नीलकोरङ्गी रक्तदन्तिका ।
भूतभैरव्यनालम्बा कामाख्या कुलकुटट्नी ॥ १९८२ ॥
क्षेमङ्करी विश्वरूपा मायूर्यावेशिनी तथा ।
कामाङ्कुशा कालचण्डी भीमादेव्यर्धमस्तका ॥ १९८३ ॥
धूमावती योगनिद्रा ब्रह्मविष्णुनिकृन्तनी ।
चण्डोग्रकापालिनी च बोधिका हाटकेश्वरी ॥ १९८४ ॥
महामङ्गलचण्डी च तोमरा चण्डखेचरी ।
विशाला शक्तिसौपर्णी फेरुचण्डी मदोद्धता ॥ १९८५ ॥
कापालिका चञ्चरीका महाकामधुवापि च ।
विक्षेपणी भूततुण्डी मानस्तोका सुदामिनी ॥ १९८६ ॥
निर्मूलिनी राङ्कविणी सद्योजाता मदोत्कटा ।
वामदेवी महाघोरा महातत्पुरुषी तथा ॥ १९८७ ॥
ईशानी शाङ्करी भर्गी महादेवी कपर्दिनी ।
त्र्यम्बकी व्योमकेशी च मारी पाशुपती तथा ॥ १९८८ ॥
जयकाली धूमकालीज्वालाकाल्युग्रकालिका ।
धनकाली घोरनादकाली कल्पान्तकालिका ॥ १९८९ ॥
वेतालकाली कङ्कालकाली श्रीनग्नकालिका ।
रौद्रकाली घोरघोरतरकाली तथैव च ॥ १९९० ॥
ततो दुर्जयकाली च महामन्थानकालिका ।
आज्ञाकाली च संहारकाली सङ्ग्रामकालिका ॥ १९९१ ॥
कृतान्तकाली तदनु तिग्मकाली ततः परम् ।
ततो महारात्रिकाली महारुधिरकालिका ॥ १९९२ ॥
शवकाली भीमकाली चण्डकाली तथैव च ।

सन्त्रासकाली च ततः श्रीभयङ्करकालिका ॥ १९९३ ॥
विकरालकाली श्रीघोरकाली विकटकालिका ।
करालकाली तदनु भोगकाली ततः परम् ॥ १९९४ ॥
विभूतिकाली श्रीकालकाली दक्षिणकालिका ।
विद्याकाली वज्रकाली महाकाली भवेत्ततः ॥ १९९५ ॥
ततः कामकलाकाली भद्रकाली तथैव च ।
श्मशानकालिकोन्मत्तकालिका मुण्डकालिका ॥ १९९६ ॥
कुलकाली नादकाली सिद्धिकाली ततः परम्।
उदारकाली सन्तापकाली चञ्चलकालिका ॥ १९९७ ॥
डामरी कालिका भावकाली कुणपकालिका ।
कपालकाली च दिगम्बरकाली तथैव च ॥ १९९८ ॥
उद्दामकाली प्रपञ्चकाली विजयकालिका ।
क्रतुकाली योगकाली तपःकाली तथैव च ॥ १९९९ ॥
आनन्दकाली च ततः प्रभाकाली ततः परम् ।
सूर्यकाली चन्द्रकाली कौमुदीकालिका ततः ॥ २००० ॥
स्फुलिङ्गकाल्यग्निकाली वीरकाली तथैव च ।
रणकाली हूंहूङ्कारनादकाली ततः परम् ॥ २००१ ॥
जयकाली विघ्नकाली महामार्तण्डकालिका ।
चिताकाली भस्मकाली ज्वलदङ्गारकालिका ॥ २००२ ॥
पिशाचकाली तदनु ततो लोहितकालिका ।
खरकाली नागकाली ततो राक्षसकालिका ॥ २००३ ॥
महागगनकाली च विश्वकाली भवेदनु ।
मायाकाली मोहकाली ततो जङ्गमकालिका ॥ २००४ ॥
पुनः स्थावरकाली च ततो ब्रह्माण्डकालिका ।
सृष्टिकाली स्थितिकाली पुनः संहारकालिका ॥ २००५ ॥
अनाख्याकालिका चापि भासाकाली ततोऽप्यनु।
व्योमकाली पीठकाली शक्तिकाली तथैव च ॥ २००६ ॥
ऊर्ध्वकाली अधःकाली तथा चोत्तरकालिका ।
तथा समयकाली च कौलिकक्रमकालिका ॥ २००७ ॥
ज्ञानविज्ञानकाली च चित्सत्ताकालिकापि च ।
अद्वैतकाली परमानन्दकाली तथैव च ॥ २००८ ॥
वासनाकालिका योगभूमिकाली ततः परम् ।
उपाधिकाली च महोदयकाली ततोऽप्यनु ॥ २००९ ॥

निवृत्तिकाली चैतन्यकाली वैराग्यकालिका ।
समाधिकाली प्रकृतिकाली प्रत्ययकालिका ॥ २०१० ॥
सत्ताकाली च परमार्थकाली नित्यकालिका ।
जीवात्मकाली परमात्मकाली बन्धकालिका ॥ २०११ ॥
आभासकालिका सूक्ष्मकालिका शेषकालिका।
लयकाली साक्षिकाली ततश्च स्मृतिकालिका ॥ २०१२ ॥
पृथिवीकालिका वापि एककाली ततः परम् ।
कैवल्यकाली सायुज्यकाली च ब्रह्मकालिका ॥ २०१३ ॥
ततश्च पुनरावृत्तिकाली याऽमृतकालिका ।
मोक्षकाली च विज्ञानमयकाली ततः परम् ॥ २०१४ ॥
प्रतिबिम्बकालिका चापि एककाली ततः परम् ।
एकात्म्यकालिकानन्दमयकाली तथैव च ॥ २०१५ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेया निर्वाणमयकालिका ।
इति नाम्नां सहस्रं ते प्रोक्तमेकाधिकं प्रिये ॥ २०१६ ॥

[इस प्रकार उपरोक्त (श्लोक १८८० के—'ओं फ्रें कराली से लेकर श्लोक २०१६ के पूर्वार्द्ध निर्वाणमयकालिका' तक) गुह्यकाली के सहस्रनामों का वर्णन किया गया है ।]

हे प्रिये! इस प्रकार मैंने तुमको (गुह्यकाली के) एक हजार एक नाम बतलाये ॥ १८८०-२०१६ ॥

[सहस्रनाम्नः स्तोत्रस्य फलश्रुतिः]

पठतः स्तोत्रमेतद्धि सर्वं करतले स्थितम् ।
नैतेन सदृशं स्तोत्रं भूतं वापि भविष्यति ॥ २०१७ ॥
यः पठेत् प्रत्यहमदस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।
पापानि विलयं यान्ति मन्दराद्रिनिभान्यपि ॥ २०१८ ॥
उपद्रवाः विनश्यन्ति रोगाग्निनृपचौरजाः ।
आपदश्च विलीयन्ते ग्रहपीडाः स्पृशन्ति न ॥ २०१९ ॥
दारिद्र्यं नाभिभवति शोको नैव प्रबाधते ।
नाशं गच्छन्ति रिपवः क्षीयन्ते विघ्नकोटयः ॥ २०२० ॥
उपसर्गाः पलायन्ते बाधन्ते न विषाण्यपि ।
नाकालमृत्युर्भवति न जाड्यं नैव मूकता ॥ २०२१ ॥
इन्द्रियाणां न दौर्बल्यं विषादो नैव जायते ।
अथा(?र्था)दौ नास्य हानिः स्यात्
न कुत्रापि पराभवः ॥ २०२२ ॥

यान् यान् मनोरथानिच्छेत्
तांस्तान् साधयति द्रुतम् ।
सहस्रनाम पूजान्ते यः पठेद् भक्तिभावितः ॥ २०२३ ॥
पात्रं स सर्वसिद्धीनां भवेत्संवत्सरादनु ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी रूपवान् रूपवल्लभः ॥ २०२४ ॥
अधृष्यः सर्वसत्त्वानां सर्वदा जयवान् रणे ।
कामिनीनां प्रियो नित्यं मित्राणां प्राणसन्निभः ॥ २०२५ ॥
रिपूणामशनिः साक्षाद्दाता भोक्ता प्रियंवदः ।
आकरः स हि भाग्यानां रत्नानामिव सागरः ॥ २०२६ ॥

सहस्रनामस्तोत्र का फल—इस स्तोत्र का पाठ करनेवाले के हाथ में सब कुछ आ जाता है । इसके सदृश स्तोत्र न हुआ और न होगा । जो प्रतिदिन इसका पाठ करता है उसके पुण्यफल को सुनो—इसका पाठ करनेवाले के मन्दराचल जितने बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं । रोग अग्नि राजा एवं चोरों के कारण होने वाले उपद्रव शान्त हो जाते है । उसकी आपत्तियाँ विलीन हो जाती हैं । ग्रहजन्य पीडायें उसका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं । दरिद्रता उसको अभिभूत नहीं करती; शोक उसको बाधित नहीं करता । शत्रु नष्ट हो जाते हैं तथा विघ्नसमूह क्षीण हो जाते हैं । उपसर्ग (= रोग या रोगजन्य कृशता) दूर भाग जाते हैं और विष उसको बाधित नहीं करते । उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती, जड़ता और मूकता नहीं होती । इन्द्रियों की दुर्बलता और विषाद नहीं होते । इसके धन आदि की हानि नहीं होती । इसका कहीं पराभव नहीं होता । जिन-जिन मनोरथों की कामना करता है, उन-उन की शीघ्र सिद्धि कर लेता है । पूजा के अन्त में जो भक्त भक्तिभाव के साथ इसका पाठ करता है, एक वर्ष के अन्दर वह समस्त सिद्धियों का पात्र बन जाता है । वह भक्त विद्यावान्, बलवान्, वाग्मी, रूपवान्, रूपवानों का प्रिय, समस्त प्राणियों से अजेय और युद्ध में सदा विजयी होता है । वह कामिनियों का नित्य प्रिय, मित्रों के लिये प्राण के समान, शत्रुओं के लिये साक्षात् वज्र, दाता भोक्ता प्रियंवद जिस प्रकार समुद्र रत्नों का उसी प्रकार वह भाग्यों का भण्डार होता है ॥ २०१७-२०२६ ॥

मन्त्ररूपमिदं ज्ञेयं स्तोत्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
एतस्य बहवः सन्ति प्रयोगाः सिद्धिदायिनः ॥ २०२७ ॥
तान् विधाय सुरेशानि ततः सिद्धीः परीक्षयेत् ।
ताररावौ पुरा दत्त्वा नाम चैकैकमन्तरा ॥ २०२८ ॥
तच्च ङेऽन्तं विनिर्दिश्य शेषे हार्दमनुं न्यसेत् ।
उपरागे भास्करस्येन्दोर्वाप्यथान्यपर्वणि ॥ २०२९ ॥
मालतीकुसुमैर्बिल्वपत्रैर्वा पायसेन वा ।
मधूक्षितद्राक्षया वा पक्वमोचाफलेन वा ॥ २०३० ॥

प्रत्येकं जुहुयात् नाम पूर्वप्रोक्तक्रमेण हि ।
एवं त्रिवारं निष्पाद्य ततः स्तोत्रं परीक्षयेत् ॥ २०३१ ॥
यावत्यः सिद्धयः सन्ति कथिता यामलादिषु ।
भवन्त्येतेन तावन्त्यो दृढविश्वासशालिनाम् ॥ २०३२ ॥

त्रैलोक्यदुर्लभ इस स्तोत्र को मन्त्ररूप समझना चाहिये । हे सुरेशानि! इसके बहुत से प्रयोग हैं, उनको सम्पादित कर पुनः सिद्धियों की परीक्षा करनी चाहिये । (प्रयोग इस प्रकार हैं—) पहले तार और राव बीजों का उच्चारण कर फिर बीच में एक-एक नाम जो कि चतुर्थ्यन्त हो, देना चाहिये । अन्त में हृदय मन्त्र कहना चाहिये। (उदाहरण के लिये ओं फ्रें करात्यै नमः । ओं फ्रें चामुण्डायै नमः...... इत्यादि) । यह प्रयोग सूर्य अथवा चन्द्रमा के ग्रहण अथवा अन्य पर्वों पर करणीय होता है । (इसके हवनीय द्रव्य के प्रयोग निम्नलिखित हैं—) मालती के पुष्प, बिल्व पत्र, खीर, मधुलिप्त छुहारा या मुनक्का, पका हुआ मोचाफल (= केला का फल) इनमें से प्रत्येक का पूर्वोक्त क्रम से हवन करना चाहिये । इस प्रकार तीन बार के (अर्थात् तीन हजार तीन आहुतियाँ देने के) बाद स्तोत्र की परीक्षा करनी चाहिये कि यामल आदि में जितनी सिद्धियाँ कही गयी हैं इससे दृढ़ विश्वास करनेवालों को उतनी मिलती हैं या नहीं ॥ २०२७-२०३२ ॥

[एतत्स्तोत्रस्य प्रयोगविधिवर्णनम्]

परचक्रे समायाते मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
रात्रौ तदाशाभिमुखः पञ्चविंशतिधा पठेत् ॥ २०३३ ॥
परचक्रं सदा घोरं स्वयमेव पलायते ।
महारोगोपशमने त्रिंशद्वारमुदीरयेत् ॥ २०३४ ॥
विवादे राजजनितोपद्रवे दशधा जपेत् ।
महादुर्भिक्षपीडासु महामारीभयेषु च ॥ २०३५ ॥
षष्टिवारं स्तोत्रमिदं पठन्नाशयति द्रुतम् ।
भूतप्रेतपिशाचादिकृताभिभवकर्मणि ॥ २०३६ ॥
प्रजपेत् पञ्चदशधा क्षिप्रं तदभिधी(भू)यते ।
तथा निगडबद्धानां मोचने पञ्चधा जपेत् ॥ २०३७ ॥
बध्यानां प्राणरक्षार्थं शतवारमुदीरयेत् ।
दुःस्वप्नदर्शने वारत्रयं स्तोत्रमिदं पठेत् ॥ २०३८ ॥
एवं विज्ञाय देवेशि महिमानममुष्य हि ।
यस्मिन् कस्मिन्नपि प्राप्ते सङ्कटे योजयेदिदम्॥ २०३९ ॥
शमयित्वा तु तत्सर्वं शुभमुत्पादयत्यपि ।
रणे विवादे कलहे भूतावेशे महाभये ॥ २०४० ॥
उत्पातराजपीडायां बन्धुविच्छेद एव वा ।

सर्पाग्निदस्युनृपतिशत्रुरोगभये तथा ॥ २०४१ ॥
जप्यमेतन्महास्तोत्रं समस्तं नाशमिच्छता ।

इस स्तोत्र के प्रयोग की विधि—परचक्र (= दूसरे के द्वारा किया गया अभिचार) के आने पर खुले बालोंवाला और नग्न होकर, जिस दिशा से अभिचार किया गया हो उस दिश में मुख कर उक्त स्तोत्र का पचीस बार पाठ करना चाहिये । ऐसा करने पर घोरपरचक्र सदा दूर भाग जाता है । महारोग के उपशमन के लिये इसका तीन बार पाठ करना चाहिये । मुकदमे और प्रशासन के द्वारा जनित उपद्रव के समय इसका दश बार पाठ करना चाहिये । महाअकाल की पीड़ा एवं महामारी का भय होने पर इस स्तोत्र का साठ बार पाठ करने पर पीड़ा और भय नष्ट हो जाता है । भूतप्रेत पिशाच आदि के द्वारा किये गये अभिभव कर्म अर्थात् उसके द्वारा किसी व्यक्ति के आविष्ट होने पर पन्द्रह बार पाठ करना चाहिये । वैसा करने पर वह आवेश शीघ्र शान्त एवं दूर हो जाता है । कारागार में गये बद्ध व्यक्ति को मुक्त कराने के लिये पाँच बार पाठ करना चाहिये । फाँसी की सजा पाये व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिये इसका सौ बार उच्चारण करना चाहिये । दुःस्वप्न देखने पर (उसके प्रभाव को शान्त करने के लिये) इस स्तोत्र का तीन बार पाठ करना चाहिये । हे देवेशि! इस स्तोत्र की ऐसी महिमा जानकर जिस किसी सङ्कट के आने पर इसका प्रयोग करना चाहिए । यह स्तोत्र उस संकट को दूर कर शुभ को भी उत्पन्न करता है । युद्ध, विवाद, कलह, भूतों का आवेश, महान् भय, उत्पात, राजपीडा, बन्धु-विच्छेद, सर्प, अग्नि, डाकू, राजा, शत्रु और रोग से भय होने पर उनके सम्पूर्ण नाश को चाहनेवाले को इस महास्तोत्र का जप करना चाहिये ॥ २०३३-२०४१- ॥

ध्यात्वा देवीं गुह्यकालीं नग्नां शक्तिं विधाय च॥ २०४२ ॥
तद् योनौ यन्त्रमालिख्य त्रिकोणं बिन्दुमत् प्रिये ।
पूर्वोदितक्रमेणैव मन्त्रमुच्चार्य साधकः ॥ २०४३ ॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्नित्यं प्रत्येकं परिपूजयेत् ।
बलिं च प्रत्यहं दद्यात् चतुर्विंशतिवासरान् ॥ २०४४ ॥
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सिद्ध्यन्त्येतावताप्यदः ।
स्तम्भने मोहने चैव वशीकरण एव च ॥ २०४५ ॥
उच्चाटने मारणे च तथा द्वेषाभिचारयोः ।
गुटिकाधातुवादादियक्षिणीपादुकादिषु ॥ २०४६ ॥
कृपाणाञ्जनवेतालान्यदेहादिप्रवेशने ।
प्रयुञ्ज्यादिदमीशानि ततः सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥ २०४७ ॥
सर्वे मनोरथास्तस्य वशीभूता करे स्थिताः ।
आरोग्यं विजयं सौख्यं विभूतिमतुलामपि ॥ २०४८ ॥
त्रिविधोत्पातशान्तिञ्च शत्रुनाशं पदे पदे ।

ददाति पठितं स्तोत्रमिदं सत्यं सुरेश्वरि ॥ २०४९ ॥
स्तोत्राण्यन्यानि भूयांसि गुह्यायाः सन्ति पार्वति ।
तानि नैतस्य तुल्यानि ज्ञातव्यानि सुनिश्चितम् ॥ २०५० ॥
इदमेव तस्य तुल्यं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
नाम्नां सहस्रं यद्येतत् पठितुं नालमन्वहम् ॥ २०५१ ॥
तदैतानि पठेन्नित्यं नामानि स्तोत्रपाठकः ।

हे प्रिये! इस क्रम में देवी गुह्यकाली का ध्यान कर तथा शक्ति (= अनुष्ठान के लिये प्रयोज्य स्त्री) को नग्न कर उसकी योनि पर बिन्दुवाला त्रिकोण लिखकर साधक पूर्वोक्त क्रम से मन्त्र का उच्चारण कर गन्ध पुष्प अक्षत से प्रतिदिन प्रत्येक की पूजा करे तथा बलि दे । ऐसा अनुष्ठान चौबीस दिनों तक करना चाहिये । यह स्तोत्र अन्य स्तोत्रों में उत्तम स्तोत्र है । स्तम्भन मोहय वशीकरण उच्चाटन मारण द्वेष अभिचार गुटिका सिद्धि धातुवाद यक्षिणी पादुका आदि की सिद्धि कृपाण अञ्जन वेताल अन्य देह में प्रवेश आदि के लिये हे ईशानि! इसका प्रयोग करना चाहिये । इससे सब सिद्ध हो जाता है । सारे मनोरथ उसके वशीभूत होकर हाथ में स्थित रहते हैं । यह स्तोत्र पढ़ा गया हो तो पाठक को आरोग्य, विजय, सुख, अतुल विभूति, त्रिविध उत्पात की शान्ति पग-पग पर शत्रुनाश देता है । हे सुरेश्वरि! यह सत्य है । हे पार्वति! गुह्यकाली के अन्य स्तोत्र भी हैं किन्तु उनको इसके तुल्य नहीं समझना चाहिये । यह निश्चित है । यही (= अव्यवहितोत्तरवक्ष्यमाण स्तोत्र) उसके तुल्य है— यह मैंने सत्य कहा है । इस सहस्रनाम को प्रतिदिन पढ़ने में कोई समर्थ नहीं है तो स्तोत्रपाठक इन नामों का पाठ करे ॥ २०४२-२०५१- ॥

[सहस्रनाम्नः पाठाशक्तौ वक्ष्यमाणपाठस्य निदेशः]

चण्डयोगेश्वरी चण्डी चण्डकापालिनी शिवा ॥ २०५२ ॥
चामुण्डा चण्डिका सिद्धिकराली मुण्डमालिनी ।
कालचक्रेश्वरी फेरुहस्ता घोराट्टहासिनी ॥ २०५३ ॥
डामरी चर्चिका सिद्धिविकराली भगप्रिया ।
उल्कामुखी ऋक्षकर्णी बलप्रमथिनी परा ॥ २०५४ ॥
महामाया योगनिद्रा त्रैलोक्यजननीश्वरी ।
कात्यायनी घोररूपा जयन्ती सर्वमङ्गला ॥ २०५५ ॥
कामातुरा मदोन्मत्ता देवदेवीवरप्रदा ।
मातङ्गी कुब्जिका रौद्री रुद्राणी जगदम्बिका ॥ २०५६ ॥
चिदानन्दमयी मेधा ब्रह्मरूपा जगन्मयी ।
संहारिणी वेदमाता सिद्धिदात्री बलाहका ॥ २०५७ ॥
वारुणी जगतामाद्या कलातीता चिदात्मिका ।
नामान्येतानि पठता सर्वं तत् परिपठ्यते ॥ २०५८ ॥

इत्येतत् कथितं नाम्नां सहस्रं तव पार्वति ।
उदीरितं फलं चास्य पठनाद् यत् प्रजायते ॥ २०५९ ॥
नि:शेषमवधार्यं त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ।
पठनीयं न च स्त्रीभिरेतत् स्तोत्रं कदाचन ॥ २०६० ॥

सहस्रनाम पढ़ने में असमर्थ व्यक्ति वक्ष्यमाण का पाठ करे—'चण्डयोगेश्वरी, चण्डी, चण्डकापालिनी, शिवा, चामुण्डा, चण्डिका, सिद्धिकराली, मुण्डमालिनी, कालचक्रेश्वरी, फेरुहस्ता, घोराट्टहासिनी, डामरी, चर्चिका, सिद्धिविकराली, भगप्रिया, उल्कामुखी, ऋक्षकर्णी, बलप्रमथिनी, परा, महामाया, योगनिद्रा, त्रैलोक्यजननीश्वरी, कात्यायनी, घोररूपा, जयन्ती, सर्वमङ्गला, कामातुरा, मदोन्मत्ता, देवदेवीवरप्रदा, मातङ्गी, कुब्जिका, रौद्री, रुद्राणी, जगदम्बिका, चिदानन्दमयी, मेधा, ब्रह्मरूपा, जगन्मयी, संहारिणी, वेदमाता, सिद्धिदात्री, बलाहका, वारुणी. जगतामाद्या, कलातीता, चिदात्मिका ।'

इन नामों को पढ़नेवाला सम्पूर्ण उस (= पूर्वोक्त सहस्रनाम) का पाठ कर लेता है । हे पार्वति! इस प्रकार मैंने तुमको सहस्रनामों को बतलाया और इसके पढ़ने से जो फल होता है वह भी कह दिया गया । इन सबको समझकर जैसा चाहती हो वैसा करो । इस स्तोत्र का स्त्रियों के द्वारा पाठ नहीं किया जाना चाहिये ॥२०५२-२०६०॥

[गद्यसञ्जीवनस्तोत्रम्]

महाकाल उवाच—

इदं स्तोत्रं पुरा देव्या त्रिपुरघ्नाय कीर्तितम् ।
त्रिपुरघ्नोऽपि मां प्रादादुपदिश्य मनुं प्रिये ॥ २०६१ ॥
गद्याकारं च स विभुः स्तोत्रं तस्यै चकार ह ।
ततः प्रभृति गद्यं तत् जीवन्यासाभिधं मतम् ॥ २०६२ ॥
नाम्नां सहस्रं पठता पाठ्यं तदपि पार्वति ।
एतस्या:(स्या) कीर्तनाद्देवि
तस्यापि न भवेत् फलम् ॥ २०६३ ॥
आख्यातव्यमतो यत्नादेतत् गद्यमपि प्रिये ।
तस्य स्तोत्रस्य हि यतो जीवन्यासोऽयमीरितः ॥ २०६४ ॥

गद्यसञ्जीवनी स्तोत्र—महाकाल ने कहा—पहले इस स्तोत्र को देवी ने त्रिपुरारि को बताया है । हे प्रिये! त्रिपुरघ्न ने भी मुझको इसका उपदेश किया । इस मन्त्र का उपदेश कर ईश्वर ने उस देवी के लिये इसे गद्य का रूप दे दिया । तब से इस गद्य स्तोत्र का नाम जीवन्यास हो गया । हे पार्वति! सहस्रनाम का पाठ करनेवालों को इसका भी पाठ करना चाहिये । हे देवि! इसका पाठ न करने पर उस (= सहस्रनामस्तोत्र) का भी फल नहीं मिलता । हे प्रिये! इसलिये इस गद्यस्तोत्र का भी

प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये क्योंकि यह गद्यस्तोत्र उस सहस्रनामस्तोत्र का जीवन्यास (= प्राणस्वरूप) कहा गया है ॥ २०६१-२०६४ ॥

त्रिपुरघ्न उवाच—

ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं ख्फ्रें नमो भगवत्यै गुह्यकाल्यै जय जय जय महाचण्डयोगेश्वरि चण्डकापालिनि सिद्धिकरालि विकरालि कालिकापालिनि त्रिजगतीपालिनि सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासाभिपञ्चरूपधारिणि ब्रह्मविष्णुरुद्रावतारिणि प्रलयकारिणि महामारीमारिणि महाघोरतरपञ्चकालानलवासिनि अट्टाट्टहासिनि ब्रह्मविद्याप्रकाशिनि नवपञ्चचक्रलयिनि महाभीषणभुजङ्गवलयिनि त्रिभुवनजयिनि अध्यासितश्मशानज्वालजाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले परेतसुरासुरनिकरकीकशरचितग्रैवेयकभाले प्रविस्रस्तमहापिङ्गलजटाभारे मृतब्रह्मकपालहारे त्रिभुवनसारे प्रदीपकेशरि गोमायुप्लवगसिंहभल्लूकमनुजसुपर्णमातङ्गमकरतुरगाननाकारदशवदने कटकटायमानशितदीर्घवदने कृतदितिजदनुजकदने सप्तविंशतिलोचने महावितितसंहारे पाशप्रमोचने कृतपरमसदाशिवमन:प्ररोचने शोणितोदशायिनि हालापायिनि महामायिनि रुधिरार्णवे द्वीपकृतावासे विहितपरमसदाशिवविलासे जयजनकमहादारुणहासे चतुर्वेद्य(द?)वेद्यानुभावे अध्यासितमहादावे घोरतररावे प्रज्वलत्पावकशिखान्तश्चारिणि महादु:खपापौघहारिणि भवभयतारिणि बृहल्लम्बमानोदरि तापत्रयहरि विश्वेश्वरि नवकोटिकुलाकुलचक्रप्रवर्तिनि निखिलरिपुकुलकर्तिनि महप्रलयकालनर्तिनि चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डोत्पत्तिप्रतिपालसंहारशालिनि ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमुण्डमालिनि महाचर्चरीकरतालिनि परापरसामरस्यरसमोहिनि भक्तजनमनोरथदोहिनि कालिकाकुलसमयसन्दोहिनि वामकर्कशदोर्दण्डविधृतरक्तमालाकपालचर्मपाशशक्तिखट्वाङ्गमुण्डभुशुण्डीचापचक्रघण्टावाणप्रेतशिखरिणि मनुजकङ्कालबभ्रुदर्वीङ्करोन्मादमुरलीमुद्गरवह्निकुण्डडमरुपरिघभिन्दिपालमुशलपट्टिशप्राशशतघ्नीशिवापोते दक्षिणभुजावलम्बितरत्नमालाकर्तृङ्काकृपाणतर्जनीसृणिदण्डे रत्नकुम्भत्रिशूलपञ्चपाशुपतवाणकुन्तपारिजातछुरिकातोमरकुसुममालाडिण्डिमगृध्रकमण्डलुपललखण्डश्रुवबीजपूरसूचीपरशुगदायष्टिमुष्टिकुणपलालने नरमुण्डनक्षत्रमालालंकृते चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मे दिगम्बरि सकलमन्त्रयन्त्रतन्त्राधिदैवते गुह्यातिगुह्यपरमशक्तितत्त्वावतारे अष्टनागराजभूषितसमस्तदोर्मण्डले वागगोचरे प्रपञ्चातीतनिष्कलतुरीयाकारे महाखेचरीसिद्धिदायिनि त्रिलोकीग्रासिनि वेदोपवेदाष्टदिक्पालपञ्चप्रेतमयसिंहासनाधिरूढ़े नवकोटिमालामन्त्रमयकलेवरे महाविकरालतरे महाप्रलयकालप्रकटिततमोगुणे परसदाशिवसंक्रामितनिजवैभवे समून्मूलितप्रणत नानाभवे ब्रह्मरन्ध्रविनिविष्टनिजकान्तसामरस्यसिन्धुमज्जनोन्मज्जनप्रिये वीरघण्टाकिङ्किणीडमरुनिनादिते अपरिमिते बलपराक्रमे शुद्धविद्यासम्प्रदायसंसिद्धशुद्धचैतन्यस्वरूपे प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणसाक्षिणि चण्डातिचण्डकाण्डखण्डितासुरसमूहे भगमालिनि

भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते भगरूपिणि भगलिङ्गद्राविणि कालचक्रनरसिंहाकारधारिपरममहारुद्रसुरतरसलोलुपे महापिङ्गलकेशि व्योमकेशि नियुतवक्त्रकरचरणे त्रिलोकीशरणे देहप्रभाजितमेघजाले त्रयस्त्रिंशत्कोटिमहादिव्यास्त्रसन्धानकारिणि महाशङ्खसमाकुले खर्परविह(स्त्र)स्तहस्ते विद्युत्कोटिदुर्निरीक्ष्ये शवमांसवसाकवलिनि वमदग्निमुखे फेरुकोटिपरिवृते नृत्यनिहितपादाघातपरिवर्तितभूवलयधरेण भग्नीकृतकूर्मशेषनागभोगे मांसशोणितभोजिनि कुरुकुल्ले कृष्णतुण्डि रक्तमुखि चण्डे शवरि पीवरे रक्षिके यमघण्टे चर्चिके सकलमहोपद्रवप्रभञ्जिनि सकलजनमनोरञ्जिनि महाभिचारकृत्यागञ्जिनि भक्तजनहृदयाधिनिर्दलिनि कोटिप्रचण्डदोर्वलिनि कैवल्यनिर्वाणनलिनि गुह्यकालि अरूपे विरूपे विश्वरूपे सिद्धिविद्ये महाविद्ये अजिते अलक्षिते अमिते अद्वैते अपराजिते अप्रतिहते अगोचरे अव्यक्ते भद्रे सुभद्रे मातङ्गि किराति चाण्डालि द्राविणि भ्रामरि भ्रमरि उल्कापुञ्जिनि वेतण्डभण्डिनि प्रलयताण्डवमण्डिनि इन्द्रोपेन्द्रजननि मृत्युञ्जयगृहिणि सावित्रि गायत्रि महित्रि सवित्रि सरस्वति मेधे लक्ष्मीविभूतिप्रदे कुमारियुवतिवृद्धे सन्ध्ये महारात्रि मायूरि कुक्कुटि शान्तिकरि पुष्टिवर्द्धनि गङ्गे यमुने गोदावरि नर्मदे सदाशिवसहधर्मचारिणि महानिरयतारिणि कौलाचारव्रतिनि कौलाचारकुट्टिनि कुलधर्मरक्षिके अवीजे नानाबीजे जगद्बीजे बीजार्णवे अमूर्ते विमूर्ते नानामूर्ते मूर्त्यतीते सकलमूर्तिधरे ब्रह्माण्डेश्वरि ब्रह्माण्डकलेवरे कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि सर्वेश्वरि सर्वेश्वरैकगम्ये सर्वैश्वर्यदायिनि सर्वसर्वेश्वरि प्रसीद प्रसीद प्रसीद फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें हूं फट् हूं फट् हूं फट् नमः स्वाहा ओं ।

त्रिपुरघ्न ने कहा—ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं ख्फ्रें नमो भगवत्यै गुह्यकाल्यै जय जय जय महाचण्डयोगेश्वरि चण्डकापालिनि सिद्धिकरालि विकरालि कालिकापालिनि त्रिजगतीपालिनि सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासाभिपञ्चरूपधारिणि ब्रह्मविष्णुरुद्रावतारिणि प्रलयकारिणि महामारीमारिणि महाघोरतरपञ्चकालानलवासिनि अट्टाट्टहासिनि ब्रह्मविद्याप्रकाशिनि नवपञ्चचक्रलयिनि महाभीषणभुजङ्गवलयिनि त्रिभुवनजयिनि अध्यासितश्मशानज्वालजाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले परेतसुरासुरनिकरकीकशरचितग्रैवेयकभाले प्रविस्रस्तमहापिङ्गलजटाभारे मृतब्रह्मकपालहारे त्रिभुवनसारे प्रदीपकेशरि गोभायुप्लवगसिंहभल्लूकमनुजसुपर्णमातङ्गमकरतुरगाननाकारदशवदने कटकटायमानशितदीर्घवदने कृतदितिजदनुजकदने सप्तविंशतिलोचने महःविततसंहारे पाशप्रमोचने कृतपरमसदाशिवमनःप्ररोचने शोणितोदशायिनि हालापायिनि महामायिनि रुधिरार्णवे द्वीपकृतावासे विहितपरमसदाशिवविलासे जयजनकमहादारुणहासे चतुर्वेद्य(द?)वेद्यानुभावे अध्यासितमहादावे घोरतररावे प्रज्वलत्पावकशिखान्तश्चारिणि महादुःखपापौघहारिणि भवभयतारिणि बृहल्लम्बमानोदरि तापत्रयहरि विश्वेश्वरि नवकोटिकुलाकुलचक्रप्रवर्तिनि निखिलरिपुकुलकर्तिनि महप्रलयकालनर्तिनि चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डोत्पत्तिप्रतिपालसंहारशालिनि ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमुण्डमालिनि महाचर्चरीकरतालिनि परापरसामरस्यरसमोहिनि

भक्तजनमनोरथदोहिनि कालिकाकुलसमयसन्दोहिनि वामकर्कशदोर्दण्डविधृतरक्तमालाकपालचर्मपाशशक्तिखट्वाङ्गमुण्डभुशुण्डीचापचक्रघण्टावाणप्रेतशिखरिणिमनुजकङ्कालबभ्रुदर्वीङ्करोन्मादमुरलीमुद्गरवह्निकुण्डडमरुपरिघभिन्दिपालमुशलपट्टिशप्राशशतघ्नीशिवापोते दक्षिणभुजावलम्बितरत्नमालाकर्तृङ्काकृपाणतर्जनीसृणिदण्डे रत्नकुम्भत्रिशूलपञ्चपाशुपतवाणकुन्तपारिजातछुरिकातोमरकुसुममालाडिण्डिमगृध्र कमण्डलुपललखण्डश्रुवबीजपूरसूचीपरशुगदायष्टिमुष्टिकुणपलालने नरमुण्डनक्षत्रमालालंकृते चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मे दिगम्बरि सकलमन्त्रयन्त्रतन्त्राधिदैवते गुह्यातिगुह्यपरमशक्तितत्त्वावतारे अष्टनागराजभूषितसमस्तदोर्मण्डले वागगोचरे प्रपञ्चातीतनिष्कलतुरीयाकारे महाखेचरीसिद्धिदायिनि त्रिलोकीग्रासिनि वेदोपवेदाष्टदिक्पालपञ्चप्रेतमयसिंहासनाधिरूढे नवकोटिमालामन्त्रमयकलेवरे महाविकरालतरे महाप्रलयकालप्रकटिततमोगुणे परसदाशिवसंक्रामितनिजवैभवे समून्मूलितप्रणत नानाभवे ब्रह्मरन्ध्रविनिविष्टनिजकान्तसामरस्यसिन्धुमज्जनोन्मज्जनप्रिये वीरघण्टाकिङ्किणीडमरुनिनादिते अपरिमिते बलपराक्रमे शुद्धविद्यासम्प्रदायसंसिद्धशुद्धचैतन्यस्वरूपे प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणसाक्षिणि चण्डातिचण्डकाण्डखण्डितासुरसमूहे भगमालिनि भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते भगरूपिणि भगलिङ्गद्राविणि कालचक्रनरसिंहाकारधारिपरममहारुद्रसुरतरसलोलुपे महापिङ्गलकेशि व्योमकेशि नियुतवक्त्रकरचरणे त्रिलोकीशरणे देहप्रभाजितमेघजाले त्रयस्त्रिंशत्कोटिमहादिव्यास्त्रसन्धानकारिणि महाशङ्खसमाकुले खर्परविह(स्र)स्तहस्ते विद्युत्कोटिदुर्निरीक्ष्ये शवमांसवसाकवलिनि क्मदग्निमुखे फेरुकोटिपरिवृते नृत्यनिहितपादाघातपरिवर्तितभूवलयधरेण भग्नीकृतकूर्मशेषनागभोगे मांसशोणितभोजिनि कुरुकुल्ले कृष्णतुण्डि रक्तमुखि चण्डे शवरि पीवरे रक्षिके यमघण्टे चर्चिके सकलमहोपद्रवप्रभञ्जिनि सकलजनमनोरञ्जिनि महाभिचारकृत्यागञ्जिनि भक्तजनहृदयाधिनिर्दलिनि कोटिप्रचण्डदोर्वलिनि कैवल्यनिर्वाण नलिनि गुह्यकालि अरूपे विरूपे विश्वरूपे सिद्धिविद्ये महाविद्ये अजिते अलक्षिते अमिते अद्वैते अपराजिते अप्रतिहते अगोचरे अव्यक्ते भद्रे सुभद्रे मातङ्गि किराति चाण्डालि द्राविणि भ्रामरि भ्रमरि उल्कापुञ्जिनि वेतण्डभण्डिनि प्रलयताण्डवमण्डिनि इन्द्रोपेन्द्रजननि मृत्युञ्जयगृहिणि सावित्रि गायत्रि महित्रि सवित्रि सरस्वति मेधे लक्ष्मीविभूतिप्रदे कुमारियुवतिवृद्धे सन्ध्ये महारात्रि मायूरि कुक्कुटि शान्तिकरि पुष्टिवर्द्धिनि गङ्गे यमुने गोदावरि नर्मदे सदाशिवसहधर्मचारिणि महानिरयतारिणि कौलाचारव्रतिनि कौलाचारकुट्टिनि कुलधर्मरक्षिके अबीजे नानाबीजे जगद्बीजे बीजार्णवे अमूर्तें विमूर्तें नानामूर्ते मूर्त्यतीते सकलमूर्तिधरे ब्रह्माण्डेश्वरि ब्रह्माण्डकलेवरे कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि सर्वेश्वरि सर्वेश्वरैकगम्ये सर्वैश्वर्यदायिनि सर्वसर्वेश्वरि प्रसीद प्रसीद प्रसीद फ्रें ख्फ्रें हस्ख्फ्रें हूं फट् हूं फट् हूं फट् नमः स्वाहा ओं ।

इति ते कथितं गद्यं त्रिपुरघ्नमुखोद्गतम् ।
पूर्वस्तवस्य ज्ञातव्यमिदं प्राणसमं प्रिये ॥ २०६५ ॥
तत्पाठानन्तरं पाठ्यमेतद् यत्नेन पार्वति ।

तदैव लभते तस्य फलं झटिति नान्यथा ॥ २०६६ ॥
गद्यस्योत्कीर्तनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
सर्वांश्च कामानाप्नोति सर्वाः सिद्धीश्च विन्दति ॥ २०६७ ॥
मङ्गलानि च सर्वाणि लभते पाठमात्रतः ।
जगद्वशयति क्षिप्रं मोहयत्यपि पार्थिवान् ॥ २०६८ ॥
यान् यान् कामानभिध्यायन् पठत्युभयमीश्वरि ।
करामलकवत्तं तं कुरुते नात्र संशयः ॥ २०६९ ॥
चराचरमिदं विश्वं यत्किञ्चित् परिदृश्यते ।
नाकलोके च याः ख्याताःसमस्ता देवयोनयः ॥ २०७० ॥
पाताले सन्ति यावत्यो नागसर्पादिसृष्टयः ।
अधीश्वरी समस्तानां गुह्यकाली प्रकीर्तिता ॥ २०७१ ॥
सा देव्येतत्पाठकस्य वशीभूतेव तिष्ठति ।
इतः परं को महिमा किं फलं चास्य वर्ण्यताम् ॥ २०७२ ॥
पठितव्यमवश्यं ते पाठनीयाश्च बान्धवाः ।
भक्तेभ्यश्च प्रदातव्यमावयोः सुरवन्दिते ॥ २०७३ ॥
गोपनीयं नन्दिकेभ्यः (निन्दकेभ्यः)
सत्यं सत्यं वचो मम ।

इस प्रकार तुमको त्रिपुरारि के मुख से निकला हुआ गद्यस्तोत्र बतलाया गया । हे प्रिये! इसको पहलेवाले स्तोत्र के प्राण के समान समझना चाहिये । हे पार्वति! उस (= सहस्रनामस्तोत्र) के पाठ के बाद इसका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये । तभी उसका फल शीघ्र मिलता है अन्यथा नहीं । हे देवि! गद्यस्तोत्र का पाठ करने से पाठक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और समस्त वाञ्छित तथा समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता है । इसके पाठ मात्र से भक्त सारे मङ्गलों को प्राप्त करता है, संसार को शीघ्र वश में करता तथा राजाओं को मुग्ध कर लेता है । हे ईश्वरि! जिन-जिन अभिलाषाओं का ध्यान करता हुआ साधक इन दोनों का पाठ करता है उनको वह करामलकवत् (= हाथ में रखे आँवले के फल के समान) प्राप्त कर लेता है इसमें सन्देह नहीं है । यह चराचरात्मक विश्व जिस किसी रूप में दिखलायी पड़ता है, स्वर्गलोक में जो समस्त देवयोनियाँ कही गयी हैं, पाताललोक में नाग सर्प आदि की जितनी सृष्टियाँ हैं गुह्यकाली उन सबकी अधीश्वरी कही गयी है । वह देवी इसका पाठ करनेवाले के वशीभूत सदृश होकर रहती है । (इस स्तोत्र की) इससे बढ़कर क्या महिमा और क्या फल कहा जाय । साधक को चाहिये कि वह इसे अवश्य पढ़े और बन्धु-बान्धवों को भी पढ़ाये । हे सुरवन्दिते! इसे हम दोनों के भक्तों के लिये देना चाहिये तथा इसकी निन्दा करनेवालों से इसे गुप्त रखना चाहिये । मेरा यह वचन सत्य है, सत्य है ॥ २०६५-२०७३ ॥

[विश्वमङ्गलकवचम्]

देव्युवाच—

त्रिपुरघ्नेन यत्तुभ्यमुपदिष्टं पुरा प्रभो ॥ २०७४ ॥
त्वया दुर्वाससे चापि तेनापि भरताय च ।
गुह्यातिगुह्यं कवचं नाम्ना यद्विश्वमङ्गलम् ॥ २०७५ ॥
तन्मामुपदिशेदानीं नाथ त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
विश्वमङ्गलतुल्यं हि कवचं न भविष्यति ॥ २०७६ ॥
यदारभ्य त्वया प्रोक्तं तव वद्ध्येव मे मनः ।
समुत्सुकं तच्छ्रवणेऽप्युपदेशेऽपि सत्वरम् ॥ २०७७ ॥
प्राणेश्वर महाकाल न चिरायितुमर्हसि ।

विश्वमङ्गलकवच—देवी ने कहा—हे प्रभो! त्रिपुरारि ने पहले आपको जिसका उपदेश दिया; आपने दुर्वासा को और उन्होंने भरत को उसका उपदेश किया । जो गोपनीय अतिगोपनीय है; जिसका नाम विश्वमङ्गलकवच है, त्रैलोक्यदुर्लभ उसका मुझे उपदेश दीजिये । विश्वमङ्गल के समान दूसरा कवच नहीं होगा । जबसे आपने इसको कहा है तभी से मेरा मन उसको सुनने के लिय लालायित है । हे प्राणेश्वर! हे महाकाल! शीघ्रता कीजिये, विलम्ब मत कीजिये ॥ २०७४-२०७७- ॥

महाकाल उवाच—

साधु धन्यासि देवेशि साधु साधु पुनः पुनः ॥ २०७८ ॥
यत्ते मनो निविशते कवचे विश्वमङ्गले ।
यदवोचमहं पूर्वं त्वयि स्निग्धेन चेतसा ॥ २०७९ ॥
विश्वमङ्गलतुल्यं हि कवचं न भविष्यति ।
तत्सत्यं नात्र सन्देहः कर्तव्यः कमलानने ॥ २०८० ॥
एकतो मनवः सर्वे कवचं चैतदेकतः ।
तुलया विधृतं पूर्वमिदं तत्रातिरिच्यते ॥ २०८१ ॥
कवचानि तु भूयांसि गुह्यायाः सन्ति पार्वति ।
तानि नैतस्य तुल्यानि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ २०८२ ॥
पठनीयं प्रयत्नेन धारणीयं स्वविग्रहे ।
गोपनीयं सुतेभ्योऽपि न दातव्यं कथञ्चन ॥ २०८३ ॥
नैकोऽपि मन्त्रो येषां स्यादुपदिष्टो वरानने ।
तेन नेदं पाठ्यमिति त्रिपुरघ्नानुशासनम् ॥ २०८४ ॥
अतस्तदाज्ञामुल्लङ्घ्य यःपठेत् सिद्धिवाञ्छया ।
स आशु निधनं याति गुह्यकालीप्रकोपतः ॥ २०८५ ॥
सावधाना शृण्विदानीं कवचं विश्वमङ्गलम् ।

महाकाल ने कहा—हे देवेशि! बहुत ठीक । तुम धन्य हो । तुम बार-बार साधुवाद की पात्र हो; क्योंकि तुम्हारा मन विश्वमङ्गलकवच में लगा हुआ है । पहले जो मैंने तुमको स्निग्ध चित्त से कहा कि विश्वमङ्गल के समान दूसरा कोई कवच नहीं है, वह (कथन) सत्य है । हे कमलानने! इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । एक ओर सारे मन्त्र, दूसरी ओर कवच को यदि तराजू पर रखा जाय तो यह उनसे बढ़कर होगा । हे पार्वति! गुह्यकाली के बहुत से कवच हैं किन्तु वे इसके तुल्य नहीं है यह मैं सत्य कह रहा हूँ । (इस कवच का) प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये और अपने शरीर में इसे धारण करना चाहिये । पुत्रों से भी इसे गोपनीय रखना चाहिये । (अयोग्य एवं अपात्र पुत्रों को) कभी भी नहीं देना चाहिये । हे वरानने! जिसको एक भी मन्त्र का उपदेश नहीं किया गया उसके द्वारा इसका पाठ नहीं किया जाना चाहिये—ऐसा त्रिपुरघ्न का अनुशासन है । इसलिये उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन कर जो सिद्धि की इच्छा से इसका पाठ करता है वह गुह्यकाली के क्रोध से शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । अब सावधान होकर विश्वमङ्गलकवच को सुनो ॥ २०७८-२०८५- ॥

ओं अस्य श्रीविश्वमङ्गलनाम्नो गुह्यकालीमहावज्रकवचस्य संवर्तऋषिरनुष्टुप्छन्द एकवक्त्रादिशतवक्त्रान्ता गुह्यकाली देवता फ्रें बीजं ख्फ्रें शक्तिः छ्रीं कीलकं सर्वाभीष्टसिद्धिपूर्वकात्मरक्षणे जपे विनियोगः ।

ओं फ्रें पातु शिरः सिद्धिकराली कालिका मम।
ह्रीं छ्रीं ललाटं मे सिद्धिविकरालि सदावतु॥ २०८६ ॥
श्रीं क्लीं मुखं चण्डयोगेश्वरी रक्षतु सर्वदा।
हूं स्त्रीं कर्णौ वज्रकापालिनी मे कालिकाऽवतु॥ २०८७ ॥
ऐं क्रौं हनू कालसङ्कर्षणा मे पातु कालिका।
क्रीं क्रौं भ्रुवावुग्रचण्डा कालिका मे सदावतु॥ २०८८ ॥
हां क्षौं नेत्रे सिद्धिलक्ष्मीरवतु प्रत्यहं मम।
हूं ह्रौं नासां चण्डकापालिनी मे सर्वदावतु॥ २०८९ ॥
आं ईं ओष्ठाधरौ पातु सदा समयकुब्जिका।
ग्लूं ग्लौं दन्तान् राजराजेश्वरी मे रक्षतात् सदा॥ २०९० ॥
जूं सः सदा मे रसनां पातु श्रीजयभैरवी।
स्फ्रें स्फ्रें पातु स्वर्णकूटेश्वरी मे चिबुकं सदा॥ २०९१ ॥
ब्लूं ब्लौं कण्ठं रक्षतु मे सर्वदा तुम्बुरेश्वरी।
क्ष्रूं क्ष्रौं मे राजमातङ्गी स्कन्धौ रक्षतु सर्वदा॥ २०९२ ॥
फ्रों फ्रौं भुजौ वज्रचण्डेश्वरी रक्षतु मे सदा।
स्त्रैं स्त्रौं वक्षःस्थलं पातु जयझङ्केश्वरी मम॥ २०९३ ॥
फिं फां करौ रक्षतु मे शिवदूती च सर्वदा।

छ्रैं छ्रौं मे जठरं पातु फेत्कारी घोरराविणी॥ २०९४ ॥
स्त्रैं स्त्रौं गुह्येश्वरी नाभिं मम रक्षतु सर्वदा।
क्षुं क्षौं पार्श्वौ सदा पातु बाभ्रवी घोररूपिणी॥ २०९५ ॥
ग्रूं ग्रौं कुलेश्वरी पातु मम पृष्ठं च सर्वदा।
क्लूं क्लौं कटिं रक्षतु मे भीमादेवी भयानका॥ २०९६ ॥
हैं हौं मे रक्षतादूरू सर्वदा चण्डखेचरी।
स्क्रों स्क्रौं मे जानुनी पातु कोरङ्गी भीषणानना॥ २०९७ ॥
त्रीं थ्रीं जङ्घायुगं पातु तामसी सर्वदा मम्।
ज्रैं ज्रौं पादौ महाविद्या सर्वदा मम रक्षतु॥ २०९८ ॥
ड्रीं ठ्रीं वागीश्वरी सर्वान् सन्धीन् देहस्य मेऽवतु।
ख्रैं ख्रौं शरीरधातून्मे कामाख्या सर्वदावतु॥ २०९९ ॥
ब्रीं ब्रूं कात्यायनी पातु दशवायूंस्तनूद्भवान्।
ज्लूं ज्लौं पातु महालक्ष्मीः खान्येकादश सर्वदा॥ २१०० ॥
ऐं औं अनुक्तं यत्स्थानं शरीरेऽन्तर्बहिश्च मे।
तत्सर्वं सर्वदा पातु हरसिद्धा हरिप्रया॥ २१०१ ॥
फ्रें छ्रीं ह्लीं स्त्रीं हूं शरीरसकलं सर्वदा मम।
गुह्यकाली दिवारात्रौ सन्ध्यासु परिरक्षतु॥ २१०२ ॥
इति ते कवचं प्रोक्तं नाम्ना च विश्वमङ्गलम्।
सर्वेभ्यः कवचेभ्यस्तु श्रेष्ठं सारतरं परम्॥ २१०३ ॥

कवच के विनियोग के बाद कवच का पाठ वणित है । इसमें तीन विषय हैं—(१) बीजाक्षर (२) अङ्ग नाम (३) देवी का नाम । उसकी तालिका निम्नलिखित है—

क्रम सं.	बीजाक्षर	अङ्गनाम	देवीनाम
१.	ओं फ्रें	शिर	सिद्धिकरालीकालिका
२.	ह्लीं छ्रीं	ललाट	सिद्धिविकरालीकालिका
३.	श्रीं क्लीं	मुख	चण्डयोगेश्वरीकालिका
४.	हूं स्त्रीं	दोनों कर्ण	वज्रकापालिनीकालिका
५.	ऐं क्रों	दोनों हनु	कालसङ्कर्षणाकालिका
६.	क्रीं क्रौं	दोनों भौंह	उग्रचण्डाकालिका
७.	हां क्षौं	दोनों नेत्र	सिद्धिलक्ष्मी
८.	हूं ह्लौं	नासिका	चण्डकापालिनी

क्रम सं.	बीजाक्षर	अङ्गनाम	देवीनाम
९.	आं ईं	ओष्ठ और अधर	समयकुब्जिका
१०.	ग्लूं ग्लौं	दाँत	राजराजेश्वरी
११.	जूं स:	रसना	जय भैरवी
१२.	स्फ्रें स्फ्रें	चिबुक	स्वर्णकूटेश्वरी
१३.	ब्लूं ब्लौं	कण्ठ	तुम्बुरेश्वरी
१४.	क्ष्रूं क्ष्रौं	दोनों स्कन्ध	राजमातङ्गी
१५.	फ्रैं फ्रौं	दोनों भुजायें	वज्रचण्डेश्वरी
१६.	स्रैं स्रौं	वक्ष:स्थल	जय झङ्केश्वरी
१७.	फिं फां	दोनों हाथ	शिवदूती
१८.	छ्रैं छ्रौं	जठर	फेत्कारी
१९.	स्त्रैं स्त्रौं	नाभि	गुह्येश्वरी
२०.	क्षुं क्षौं	दोनों पार्श्व	बाभ्रवी
२१.	ग्रूं ग्रौं	पीठ	कुलेश्वरी
२२.	क्लूं क्लौं	कटि	भीमादेवी
२३.	हैं हौं	दोनों जाँघें	चण्डखेचरी
२४.	स्फ्रों स्फ्रौं	दोनों जानु	कोरङ्गी
२५.	त्रीं थ्रीं	दोनों जङ्घायें	तामसी
२६.	ज्रैं ज्रौं	दोनों पैर	महाविद्या
२७.	ड्रीं ट्रीं	देह की समस्त सन्धियाँ	वागीश्वरी
२८.	खैं ख्रौं	शरीर की धातुयें	कामाख्या
२९.	ब्रीं ब्रूं	शरीर के दश वायु	कात्यायनी
३०.	ज्लूं ज्लौं	एकादश इन्द्रियाँ	महालक्ष्मी
३१.	ऐं औं	शरीर के अन्दर और बाहर अनुक्त स्थान	हरसिद्धा
३२.	फ्रें छ्रीं ह्लीं स्त्रीं हूं	सम्पूर्ण शरीर दिन-रात्रि, सन्ध्यायें	हरप्रिया गुह्यकाली

इस प्रकार तुमको विश्वमङ्गल नामक कवच बतलाया गया। यह समस्त कवचों में श्रेष्ठ और अन्तिम तत्त्व है ॥ २०८६-२१०३ ॥

[कवचप्रयोगस्य फलम्]

इदं पठित्वा स्वं देहं भस्मनैवावगुण्ठ्य च ।
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्य वद्ध्वादः कवचं दृढम् ॥ २१०४ ॥
दशवारान् मनुं जप्त्वा यत्र कुत्रापि गच्छतु ।
समरे निपतच्छस्त्रेऽरण्ये स्वापदसङ्कुले ॥ २१०५ ॥
श्मशाने प्रेतभूताढ्यकान्तारे दस्युसङ्कुले ।
राजद्वारे सपिशुने सिन्धौ वातोर्मिचञ्चले ॥ २१०६ ॥
गिरौ दावाग्निसंदीप्ते गह्वरे सर्पवेष्टिते ।
तस्य भीतिर्न कुत्रापि चरतः पृथिवीमिमाम् ॥ २१०७ ॥
न च व्याधिभयं तस्य नैव तस्करजं भयम् ।
भीतिश्च ग्रहजा नास्य विषजं च भयं नहि ॥ २१०८ ॥
नाग्न्युत्पातो नैव भूतप्रेतजः सङ्कटस्तथा ।
विद्युद्वर्षोपलभयं न कदापि प्रबाधते ॥ २१०९ ॥
न दुर्भिक्षभयं चास्य न च मारिभयं तथा ।
कृत्याभिचारजा दोषाः स्पृशन्त्येनं कदापि न ॥ २११० ॥
सहस्रं जपतश्चास्य पुरश्चरणमुच्यते ।
तत्कृत्वा तु प्रयुञ्जीत सर्वस्मिन्नपि कर्मणि ॥ २१११ ॥
वश्यकार्ये मोहने च मारणोच्चाटने तथा ।
स्तम्भने च तथा द्वेषे तथा कृत्याभिचारयोः ॥ २११२ ॥
दुर्गभङ्गे तथा युद्धे परचक्रनिवारणे ।
एतत्प्रयोगात् सर्वाणि कार्याणि परिसाधयेत् ॥ २११३ ॥
भूतावेशं नाशयति विवादे जयति द्विषः ।
सङ्कटं तरति क्षिप्रं कलहे जयमाप्नुयात् ॥ २११४ ॥
यदीच्छेत् महतीं लक्ष्मीं तनयानायुरेव च ।
विद्यां कान्तिं तथौन्नत्यं यश आरोग्यमेव च ॥ २११५ ॥
भोगान् सौख्यं विघ्नहानिमनालस्यं महोदयम् ।
अधीहि कवचं नित्यममुनामुञ्च च प्रिये ॥ २११६ ॥

कवचप्रयोग का फल—इस कवच का पाठ और अपने शरीर में भस्म पोत कर, तत्तत् शरीर स्थान में न्यास करने के बाद इस कवच का दृढ बन्धन कर मन्त्र का दश बार जप करने के अनन्तर साधक शस्त्रों की बौछारवाले युद्ध में, हिंस्र जानवरों से व्याप्त जङ्गल में, भूतप्रेत से भरे श्मशान में, डाकुओं से व्याप्त घने जङ्गल में, चुगलखोरोंवाले राजद्वार में, झंझावात के कारण भयङ्कर लहरोंवाले समुद्र में, दावानल से सन्दीप्त पर्वत में, सर्पवेष्टित गुफा में जहाँ कहीं भी जाय, इस पृथिवी

पर विचरण करनेवाले उस साधक को कहीं भी भय नहीं रहता । उसको न तो व्याधि से न चोरों से भय होता है । ग्रहों से उत्पन्न विष से उत्पन्न भय नहीं रहता । अग्नि का उत्पात और भूत-प्रेत का सङ्कट भी उसे नहीं होता । विजली वर्षा और पत्थर का भय उसे कभी भी बाधित नहीं कर सकता । उस साधक को दुर्भिक्ष और महामारी का भी भय नहीं होता । कृत्या एवं अभिचारजन्य दोष उसका स्पर्श तक नहीं कर सकते । इस कवच का एक सहस्र जप पुरश्चरण कहा जाता है । उसको करने के वाद इसका समस्त कार्यों में प्रयोग करना चाहिये । वशीकरण, सम्मोहन, मारण, उच्चाटन, स्तम्भन तथा विद्वेषण, कृत्या, अभिचार, दुर्गभङ्ग, युद्ध, परचक्र निवारण में इसका प्रयोग करना चाहिये । इसका प्रयोग करनेवाला साधक इसके प्रयोग से भूतावेश को नष्ट कर देता है । विवाद में शत्रुओं को जीत लेता है । सङ्कट को शीघ्र पार कर जाता है । झगड़े में विजयी होता है । यदि साधक प्रचुर धन, पुत्र, आयु, विद्या, कान्ति, उन्नति, आरोग्य, भोग, सुख, विघ्नहानि, अनालस्य, महान् उदय आदि समस्त कार्यों को सिद्ध करता है । हे प्रिये! इस क़वच को नित्य पढ़ो और धारण करो ॥ २१०४-२११६ ॥

कवचेनामुना सर्वं संसाधयति साधकः ।
यद् यद् ध्यायति चित्तेन सिद्धं तत्तत्पुरः स्थितम् ॥ २११७ ॥
दुर्घटं घटयत्येतत् कवचं विश्वमङ्गलम् ।
विश्वस्य मङ्गलं यस्मादतो वै विश्वमङ्गलम् ॥ २११८ ॥
सान्निध्यकारकं गुह्यकाल्या एतत् प्रकीर्तितम् ।
लिखितं चेद् गृहे तिष्ठेत् तथापि फलमश्नुते ॥ २११९ ॥
यदीच्छसि सुरेशानि सर्वत्र जयमङ्गलम् ।
पठ बन्धून् पाठयस्व कवचं विश्वमङ्गलम् ॥ २१२० ॥
सम्प्राप्स्यसि परां सिद्धिं गुह्यायां भक्तिमेव च ।
त्रिसन्ध्यं पठनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१२१ ॥
यस्मै कस्मैचिदप्येतन्न दद्याद्वै जिजीविषुः ।
दत्त्वा मरणमाप्नोति ससुतज्ञातिबान्धवः ॥ २१२२ ॥
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय हिताय च ।
विधिपूर्वं प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥ २१२३ ॥
षडाम्नायस्थिता देव्यः सर्वा अत्र प्रतिष्ठिताः ।
अतः सर्वात्मना गोप्यं सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥ २१२४ ॥
यस्मिन् कस्मिन्नपि मनावुपदेशो यदि प्रिये ।
तदैवात्राधिकारः स्यात् कवचे विश्वमङ्गले ॥ २१२५ ॥
गुह्यकाल्यां सदा भक्तिः षोडशाक्षरिको जपः ।
इदं च कवचं देवि त्रय्येषा कथिता मया ॥ २१२६ ॥

अभ्यस्यन्तस्त्रयीमेतां चतुर्वर्णा द्विजातयः ।
भुक्त्वा भोगानघं हत्वा देहान्ते मोक्षमाप्नुयात् ॥ २१२७ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशत्साहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां
विश्वमङ्गलकवचान्तं पूजापद्धतिप्रभृतिकथनं नाम
दशमः पटलः ॥ १० ॥

* * *

साधक इस प्रयोग से सब सिद्ध कर लेता है । वह मन में जिस-जिस का ध्यान करता है वह-वह उसके सामने उपस्थित हो जाता है । यह विश्वमङ्गलकवच दुर्घट को भी घटित कर देता है । यह गुह्यकाली का सान्निध्यकारक कहा गया है । यदि इसको लिखकर घर में रखा जाय तो भी साधक इसका फल भोगता है । हे सुरेशानि! यदि सर्वत्र जय और मङ्गल चाहती हो तो इस विश्वमङ्गलकवच को पढ़ो और बन्धुओं को पढ़ाओ । इससे तुम परासिद्धि और गुह्यकाली की पराभक्ति को प्राप्त करोगी । हे देवि! तीनों सन्ध्याओं में इसके पाठ से पाठक सब पापों से मुक्त हो जाता है । यदि जीवित रहने की इच्छा हो तो इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिये । यदि कोई देता है तो पुत्र भाई विरादरी एवं जाति के सहित मृत्यु को प्राप्त होता है । भक्तियुक्त शिष्य भक्तियुक्त साधक मित्र को यह विधिपूर्वक देना चाहिये । अभक्त को कभी भी नहीं देना चाहिये । षडाम्नाय में स्थित सारी देवियाँ इसमें प्रतिष्ठित हैं । इसलिये हे सुरेश्वरि! सब प्रकार से इसको गोपनीय रखना चाहिये । हे प्रिये! यदि किसी एक भी मन्त्र में किसी का अधिकार है तब भी इस विश्वमङ्गलकवच में उसका अधिकार होता है । हे देवि! मैंने गुह्यकाली में सदा भक्ति, षोडश अक्षरवाले मन्त्रों का जप और यह कवच तुमको बतलाया । इस त्रयी का अभ्यास करनेवाले ब्राह्मण आदि भोगों को भोगकर पापों को नष्टकर देहान्त में मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥ २११७-२१२७ ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली महाकालसंहिता
के 'विश्वमङ्गलकवचपर्यन्त पूजापद्धतिप्रभृतिकथन' नामक दशम
पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १० ॥

* * *

एकादशतमः पटलः

महाकाल उवाच—

एवं कवचपाठान्तं स्तोत्रपाठं समाप्य हि ।
बलिं च वैश्वदेवं च स्मृतिवत् साधकश्चरेत् ॥ १ ॥
रीत्या तन्त्रोक्तया देवि मन्त्रैस्तन्त्रोदितैरपि ।
बलेरनल आधार इतरस्य क्षितिस्तथा ॥ २ ॥
पूर्वस्य तदभावेऽपि जलं भूरुत्तरस्य हि ।

महाकाल ने कहा—इस प्रकार कवचपाठपर्यन्त स्तोत्रपाठ को समाप्त कर साधक स्मृतियों के समान बलि और वैश्वदेव करे किन्तु हे देवि! यहाँ तन्त्रोक्त रीति से और तन्त्रशास्त्र में कथित मन्त्रों के द्वारा ही (बलि एवं वैश्वदेव करना चाहिये) । यहाँ बलि का आधार अग्नि है (अर्थात् बलि को अग्नि में आहुति के द्वारा देना होता है) और अन्य अर्थात् वैश्वदेव का आधार पृथिवी है (अर्थात् वैश्वदेव को पृथ्वी पर करना होता है)। पूर्व अर्थात् बलि के लिए अग्नि न मिलने पर जल आधार बनता है, वैश्वदेव के लिए पृथिवी ही आधार रहती है ॥ १-२- ॥

[बलिद्रव्यनिर्णयः]

द्रव्यं वैखानसानां तु शालयस्तण्डुला यवाः ॥ ३ ॥
गृहिणामोदनाः स्विन्नमाषास्तिलजमोदकाः ।
कौलिकानां तु पललं सुराक्तं प्रथमं मतम् ॥ ४ ॥
मध्वक्ताः दग्धमीनाश्च द्वितीयं समुदाहृतम् ।
द्वयोरभावे वटिका गुडानां परिकीर्तिता ॥ ५ ॥
न जलाग्निधरित्रीणां शुद्धिरत्र विधीयते ।
अथाद्यस्य मनून् वक्ष्ये समुद्धरणपूर्वकम् ॥ ६ ॥

बलि के लिये द्रव्य का निर्णय—वैखानसों अर्थात् वानप्रस्थों के लिये शालि तण्डुल और यव बलिद्रव्य होते हैं । गृहस्थों के लिये चावल, भिगोया हुआ उड़द और तिल के लड्डू बलिद्रव्य कहे गये हैं । कौलमार्गियों के लिये मद्य से सिक्त मांस सर्वोत्तम द्रव्य माना गया है । दूसरे क्रम में मधु से उपलिप्त भुनी हुई मछली है । उक्त दोनों के अभाव में गुड की ढेली (बलि के लिये) कही गयी है । इस

अनुष्ठान में जल अग्नि और पृथ्वी की शुद्धि करने का विधान नहीं है । अब उद्धारपूर्वक आद्य (= वैखानसों) के द्वारा प्रयोज्य मन्त्रों को बतलाऊँगा ॥ ३-६ ॥

[बलेराहुतिमन्त्र:]

प्रत्येकं तमुदीर्यैव तत्तद्द्रव्यं विगृह्य च ।
क्रमेण जुहुयादग्नौ जले वा तदभावत: ॥ ७ ॥
योगिनी शाकिनी चैव काकिनी डाकिनी तथा ।
हाकिनी भैरवी चापि चामुण्डा पूतना तथा ॥ ८ ॥
माता च यातुधानी च यक्षिणी खेचरी तत: ।
पिशाचिनी भूतिनी च सिद्धाश्चाप्सरसोऽपि च ॥ ९ ॥
भारुण्डा चापि कूष्माण्डी घोणकी शक्तिरेव च ।
एता विंशतिरुद्दिष्टा: सदा देव्यनुगा: प्रिये ॥ १० ॥
तत्तद्बीजं पुरोभूतं तदन्वेता भ्यसन्निमा:(न्तिमा:?) ।
शिरोमन्त्रोऽन्तिमे चापि बलेर्मन्त्रा: मयेरिता: ॥ ११ ॥

बलि की आहुति के लिये मन्त्र—उस प्रत्येक (मन्त्र) का उच्चारण कर (हाथ में) तत्तद् द्रव्य लेकर क्रम से अग्नि में आहुति देनी चाहिये । यदि अग्नि का अभाव हो तो जल में आहुति देनी चाहिये । १. योगिनी, २. शाकिनी, ३. काकिनी, ४. डाकिनी, ५. हाकिनी, ६. भैरवी, ७. चामुण्डा, ८. पूतना, ९. माता, १०. यातुधानी, ११. यक्षिणी, १२. खेचरी, १३. पिशाचिनी, १४. भूतिनी, १५. सिद्धा, १६. अप्सरायें, १७. भारुण्डा, १८. कूष्माण्डी, १९. घोणकी एवं २०. शक्ति— हे प्रिये! ये बीस सदा देवी की अनुगामिनी कही गयी हैं । पहले तत्तद् बीज उसके बाद इनको अन्त में 'भ्यस्' प्रत्ययान्त कहकर अन्त में शिरोमन्त्र कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. छ्रीं योगिनीभ्य: स्वाहा ।
२. फ्रें शाकिनीभ्य: स्वाहा ।
३. फ्रीं काकिनीभ्य: स्वाहा ।
४. खफ्रें डाकिनीभ्य: स्वाहा ।
५. रक्षश्रीं हाकिनीभ्य: स्वाहा ।
६. सौ: भैरवीभ्य: स्वाहा ।
७. क्रैं चामुण्डाभ्य: स्वाहा ।
८. फ्यूं पूतनाभ्य: स्वाहा ।
९. पौं मातृकाभ्य: स्वाहा ।
१०. श्रीं यातुधानीभ्य: स्वाहा ।
११. क्ष्लौं यक्षिणीभ्य: स्वाहा ।
१२. ख्रौं खेचरीभ्य: स्वाहा ।
१३. ठ: पिशाचिनीभ्य: स्वाहा ।
१४. खफ्रीं भूतिनीभ्य: स्वाहा ।
१५. क्रां सिद्धाभ्य: स्वाहा ।
१६. गां अप्सरायोभ्य: स्वाहा ।
१७. प्रीं भारुण्डाभ्य: स्वाहा ।
१८. क्रौं कूष्माण्डीभ्य: स्वाहा ।
१९. हूं घोणकीभ्य: स्वाहा ।
२०. ब्लूं शक्तिभ्य: स्वाहा ।)

इस प्रकार मैंने बलि के मन्त्रों को बतलाया ॥ ७-११ ॥

[बलिपात्रनिर्णयः]

वैश्वदेवाग्रतः पात्रे तैजसे मार्तिकेऽपि च ।
द्वयोरभावे पत्राणां पुटके वा विधीयते ॥ १२ ॥

बलिपात्र का निर्णय—वैश्वदेव के आगेवाला बलिपात्र तैजस (= सोना, चाँदी का) अथवा मार्त्तिक (= मिट्टी का) होना चाहिये । दोनों प्रकार के बर्त्तनों के अनुपलब्ध होने पर पत्तों के दोनों में बलि देनी चहिये ॥ १२ ॥

[बलिवैश्वदेवघटकवैश्वदेवपदार्थनिर्वचनम्]

वैश्वदेवक्रममतः शृणु देवि समाहिता ।
वैश्वदेव इतीयं या संज्ञा प्रासिद्ध्यमागता ॥ १३ ॥
सा न श्राद्धाद्यधिष्ठात्री देवता परिकीर्त्यते ।
विश्वं समस्तमुद्दिष्टं देवा चैतादृशा इह ॥ १४ ॥
पूज्यन्तेऽतः कारणाद्धि वैश्वदेवो निगद्यते ।

'वैश्वदेव' पद का अर्थ-निर्वचन—हे देवि! अब समाहित होकर वैश्वदेव क्रम को सुनो । वैश्वदेव नाम जो प्रसिद्ध हुआ उससे श्राद्ध आदि की अधिष्ठात्री देवता का कथन नहीं किया जाता । 'विश्व' शब्द 'समस्त' अर्थ को बतलाता है और देवता भी ऐसी ही पूजी जाती हैं । समस्त देवताओं के पूजित होने के कारण इस का नाम वैश्वदेव है ॥ १३-१४- ॥

[मण्डलप्रकारपरिचयः]

इदानीं मण्डलश्चास्य भूमौ यादृगपेक्षितः ॥ १५ ॥
स पुरो बध्यतां देवि ततो मन्त्रक्रमावपि ।
सामान्यार्घं स्थापितं यत् पूजायां कालिकापुरः ॥ १६ ॥
तदेवात्राग्रतः कृत्वा वैश्वदेवं समाचरेत् ।
द्वात्रिंशदङ्गुलमितो गर्भो यत्राभिजायते ॥ १७ ॥
एतादृशो मण्डलस्तु चक्राकारः सुवर्तुलः ।
दक्षहस्तानामिकया कुर्यादर्घ्यस्थवारिणा ॥ १८ ॥
तन्मण्डलं द्विरावृत्त्या कार्यं त्रिदशवन्दिते ।
तथा दिग्विदिशोर्द्वे द्वे रेखे कार्ये क्रमेण हि ॥ १९ ॥
ते मण्डलं विनिर्भिद्य किञ्चिदूर्ध्वगते तथा ।
चन्द्ररेखाप्रकारेण कार्ये ते चावगुठिते ॥ २० ॥
एवं गृहाणि रेखाश्च जायन्ते षोडशैव हि ।
सर्वत्रानामिकाङ्गुष्ठजलेन स्पर्शमाचरेत् ॥ २१ ॥
द्वयोरधस्ताद् गृहयोः प्रत्येकं चाष्ट संस्पृशेत् ।
एवमष्टस्वपि पुनरारम्भस्तु तयोरधः ॥ २२ ॥

सर्वादिस्थितयोर्गेहयुगयोर्मध्यमध्यतः ।
मध्यमण्डलमागत्य सर्वेषामवसानिका ॥ २३ ॥

मण्डल-परिचय—अब इसकी भूमि में जिस प्रकार का मण्डल अपेक्षित होता है, हे देवि! पहले उसको बाँधना चाहिये । इसके बाद मन्त्र और क्रम का भी बन्धन करना चाहिये । पूजा में काली के आगे जो सामान्य अर्घ स्थापित किया गया उसी को यहाँ आगे रखकर वैश्वदेव करना चाहिये । जहाँ पर बत्तीस अँगुल परिमाणवाला गर्भ हो जाये ऐसा गोल चक्राकार मण्डल दायें हाथ की अनामिका से अर्घ्यपात्र में स्थित जल के द्वारा बनाना चाहिये । हे त्रिदशवन्दिते! उस मण्डल की दो आवृत्ति करनी चाहिये अर्थात् एक बार रेखा खींचकर फिर उससे सटी हुई दूसरी रेखा खींचनी चाहिये । इसके बाद दिशाओं और विदिशाओं में दो-दो रेखायें क्रम से बनानी चाहिये । वे रेखायें मण्डल को भेदती हुई कुछ दूर तक ऊपर जानी चाहिये । चन्द्र रेखा (= एक रेखा) के प्राकार से उन दोनों रेखाओं को अवगुण्ठित करना चाहिये । इस प्रकार सोलह रेखायें और सोलह गृह बन जाते हैं । सर्वत्र अनामिका और अँगुष्ठ जल से स्पर्श करना चाहिये । दो घर के नीचे प्रत्येक आठ का स्पर्श करना चाहिये । इसी प्रकार दोनों के नीचे के आठ का भी स्पर्श करना चाहिये । सबसे पहले स्थित दो-दो घरों के मध्य मध्य से मध्य मण्डल में आकर सबका अवसान हो जाता है ॥ १५-२३ ॥

[बल्युत्सर्गविधि:]

तदधस्तात् संस्थितयोश्चक्रमध्यगयोरपि ।
युगं युगं स्पृशेद् देवि तयोरेकमधः स्थितम् ॥ २४ ॥
सर्वमध्ये स्पृशेदेकं देव्यष्टपथगं स्थलम् ।
एवं समभिजायन्त एकविंशोत्तरं शतम् ॥ २५ ॥
तत्तन्मन्त्रं समुच्चार्य तत्तद्द्रव्यं प्रगृह्य च ।
तं तं देवमभिध्यायेत् तत्तत्स्थाने बलिं न्यसेत् ॥ २६ ॥
बलिं दत्त्वा ततोऽर्घस्थवारिणानामिकाजुषा ।
अविहाय क्रमं सेकं सर्वत्रैव समाचरेत् ॥ २७ ॥

बलिदान-विधि—उस (= मण्डल) के नीचे स्थित तथा चक्र के मध्य में स्थित का दो-दो बार स्पर्श करना चाहिये । उन दोनों में से एक नीचे रहता है । सबके मध्य में देवी के अष्टपथगामी एक स्थल का स्पर्श करना चाहिये । इस प्रकार १२१ स्थलों का स्पर्श होता है । तत्तत् मन्त्र का उच्चारण कर और तत्तत् द्रव्य लेकर तत्तत् देव का ध्यान कर तत्तत् स्थान में बलि देनी चाहिये । बलि देने के बाद अनामिका से अर्घस्थ जल लेकर क्रमशः सर्वत्र सिञ्चन करना चाहिये ॥ २४-२७ ॥

[बल्युत्सर्गमन्त्रः]

आदौ तारो हृदन्ते च देवानां नाममध्यतः ।
तच्चतुर्थीविभक्त्यन्तं कार्यं सर्वत्र पार्वति ॥ २८ ॥
तत्रैकत्वं बहुत्वं च वक्ष्ये नामग्रहादनु ।
यत्तदभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ॥ २९ ॥
एवं ज्ञात्वा बलिर्देयस्तत्र दिक्षु विदिक्ष्वपि ।
इन्द्रश्च वरुणश्चापि कुबेरोऽपि यमादनु ॥ ३० ॥
अग्निर्निर्ऋृतवायू च शेष ईशाननामकः ।
प्राच्यादिहरितो ज्ञेया बलियागार्चनादिषु ॥ ३१ ॥
एतानेकवाचोरूपान् स्थानेष्वेषां प्रपूजयेत् ।
क्षेत्रपालः पुरो विघ्नविनायक इतः परम् ॥ ३२ ॥
तृतीयो भैरवः प्रोक्तस्ततो वटुकनाथयुक् ।
भूतः पिशाचो रक्षश्च यक्षश्चेति क्रमाद्दिशेत् ॥ ३३ ॥
पौल(र?)स्त्यबल्यधोभागे बहुत्ववचनैर्युताः ।
महामाया कालरात्रिरग्निजिह्वा प्रभञ्जना ॥ ३४ ॥
संहारिणी ततो जालन्धरी लम्बोदरी तथा ।
फेरुराविण्यपि ततः सर्वशेषे मयेरिता ॥ ३५ ॥
प्राच्यां दिशि समभ्यर्च्यासनीरबलिदानतः ।
अथापराजिता लक्ष्मीः शान्ता गौरी तथैव च ॥ ३६ ॥
श्रद्धा च विजया सर्वमङ्गला मेधयान्विता ।
प्रतीच्यामुदिता एता बलिदानाय पार्वति ॥ ३७ ॥
कुम्भोदरी डमरुका विरूपोल्कामुखी तथा ।
पूतना खरकर्णी च विकराली कपालिनी ॥ ३८ ॥
दक्षिणस्यामिमाः पूज्याः सतोयैर्बलिभिः प्रिये ।
गायत्री चापि सावित्री सरस्वत्यप्यतः शिवा ॥ ३९ ॥
जया पद्मा बला भद्रा उदीच्यामीरिता इमाः ।
रौद्रा कात्यायनी दुर्गा चण्डकोपा च शूलिनी ॥ ४० ॥
भीमा च कालिकाग्नेय्यां विदिश्येता मयोदिताः ।

बलिदान का मन्त्र—पहले तार अन्त में हृदयमन्त्र मध्य में देवों का नाम होता है । हे पार्वति! सर्वत्र चतुर्थ्यन्त करना चाहिये । (उदाहरण के लिये—ओं इन्द्राय नमः, ओं वरुणाय नमः इत्यादि) नाम ग्रहण के बाद एक संख्या और बहु संख्या बतलाऊँगा । उस (प्रधान देवता ?) के सामने जो देवतायें हैं उनके सामने दश-दश बलि देनी चाहिये । यह बलि दिशाओं और विदिशाओं में देनी चाहिये । १. इन्द्र, २. वरुण, ३. कुबेर, ४. यम के बाद ५. अग्नि, ६. निर्ऋृति, ७. वायु

और अन्त में ८. ईशान नामक बलि याग और पूजा आदि में इनकी क्रमशः पूर्व आदि दिशायें और विदिशायें जाननी चाहिये । इनकी एकवचन करके तत्तत् स्थानों में पूजा करनी चाहिये । (इसके बाद आठ विदिशाओं में) १. क्षेत्रपाल, २. विघ्नविनायक, ३. भैरव, ४. वटुकभैरव, ५. भूत, ६. पिशाच, ७. राक्षस और ८. यक्ष—इनकी पूजा करनी चाहिये । पूर्व दिशा में स्थित बलि के अधोभाग में इसे बहुवचनों से युक्त रखना चाहिए । पूर्वोक्त बलि के अधोभाग में बहुवचन से युक्त महामाया कालरात्रि अग्निजिह्वा प्रभञ्जना संहारिणी जालन्धरी लम्बोदरी और सबके अन्त में मेरे द्वारा फेरुराविणी कही गयी । पूर्व दिशा में जल एवं बलिदान से इनकी पूजा करनी चाहिये । (पूजा का मन्त्र इस प्रकार होगा—ओं महामायाकालरात्रिअग्निजिह्वाप्रभञ्जनासंहारिणीजालन्धरीलम्बोदरीफेरुराविणीभ्यो नमः । इसी प्रकार अन्य दिशाओं में भी बलि के लिये मन्त्र का ऊह कर लेना चाहिये) इसके बाद १. अपराजिता, २. लक्ष्मी, ३. शान्ता, ४. गौरी, ५. श्रद्धा, ६. विजया, ७. सर्वमङ्गला और ८. मेधा, हे पार्वति! ये पश्चिम दिशा में बलिदान के लिये कही गयी हैं । १. कुम्भोदरी, २. डमरुका, ३. विरूपा, ४. उल्कामुखी, ५. पूतना, ६. खरकर्णी, ७. विकराली, ८. कपालिनी, हे प्रिये! जलसहित बलि के द्वारा इनकी दक्षिण दिशा में पूजा करनी चाहिये । १. गायत्री, २. सावित्री, ३. सरस्वती, ४. शिवा, ५. जया, ६. पद्मा, ७. बला, ८. भद्रा—ये उत्तर दिशा में पूज्य कही गयी हैं । १. रौद्रा, २. कात्यायनी, ३. दुर्गा, ४. चण्डकोपा, ५. शूलिनी, ६. भीमा और ७. कालिका[1]—ये मेरे द्वारा आग्नेयी विदिशा में पूज्य कही गयी हैं ॥ २८-४०- ॥

प्रदीप्ता मेघनादा च क्षोभणा तामसी तथा ॥ ४१ ॥
जयन्ती विश्वरूपा च कराला तदनन्तरम् ।
विकराली च चरमे वायव्यां विदिशीरिताः ॥ ४२ ॥
ब्रह्माणी वैष्णवी माहेश्वरी कौमार्यनन्तरम् ।
चण्डेश्वरी च मातङ्गी ततोऽनु भुवनेश्वरी ॥ ४३ ॥
कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
हरसिद्धा च फेत्कारिण्यैशान्यां विदिशीरिताः ॥ ४४ ॥
चतुःषष्टिरिमा देव्यः स्युरेकवचनान्विताः ।
वाराही नारसिंहैन्द्री शिवदूती तथैव च ॥ ४५ ॥
अमूर्विदिशि नैर्ऋत्यां बलिदानाय कीर्तिताः ।
प्राच्या दिशस्तथाग्नेय्या विदिशो मध्य एव हि ॥ ४६ ॥
द्वौ द्वौ प्रपूजनीयौ हि तद्रीतिमवधारय ।
प्राची ततोन्ववाचीति प्रतीची तदनन्तरम् ॥ ४७ ॥
उदीची च चतस्रोऽमूर्हरितोऽभिहिताः क्रमात् ।

---

[1] यहाँ आठवाँ नाम अज्ञात है ।

आग्नेयी नैर्ऋती चापि वायव्यैशान्यपि प्रिये ॥ ४८ ॥
विदिशोऽमूश्चतस्रश्च कीर्त्यन्तैतत्तदाह्वया ।
सूर्यः शुक्रस्तथाङ्गारो राहुः शनिरतः परम् ॥ ४९ ॥
सोमस्ततोऽनु च बुधः सर्वशेषे बृहस्पतिः ।
एते तत्तद्दिग्विदिशोः क्रमेणाधीश्वराः मताः ॥ ५० ॥
पदं दिग्विदिशोस्तत्तत् सा सा दिग्विदिगेव च ।
तदधीशपदं चापि चतुर्थ्येकवचोऽन्वितम् ॥ ५१ ॥
कृत्वा तत्तत्स्थले पूज्या बलिदानेन पार्वति ।
पृथग् वाक्यं प्रकर्तव्यं देवि दिग्दिगधीशयोः ॥ ५२ ॥
पदद्वयं पूर्ववाक्ये मध्ये तारहृदोः स्थितम् ।
शेषवाक्ये पदं चैकं पूर्वमेवोदितं स्थलम् ॥ ५३ ॥

१. प्रदीप्ता, २. मेघनादा, ३. क्षोभणा, ४. तामसी, ५. जयन्ती, ६. विश्वरूपा, उसके बाद ७. कराला और अन्त में ८. विकराली—ये वायव्यकोण में (पूज्य) कही गयी हैं । १. ब्रह्माणी, २. वैष्णवी, ३. माहेश्वरी उसके बाद ४. कौमारी, ५. चण्डेश्वरी, ६. मातङ्गी फिर ७. भुवनेश्वरी, ८. कुब्जिका—ये ईशान दिशा में (पूज्य) वर्णित है । ये चौंसठ देवियाँ एकवचनान्त होनी चाहिये । १. सिद्धिलक्ष्मी, २. त्रिपुरसुन्दरी, ३. हरसिद्धा, ४. फेत्कारिणी, ५. वाराही, ६. नारसिंही, ७. ऐन्द्री और ८. शिवदूती—ये नैर्ऋत्य कोण में बलिदान के लिये कही गयी हैं । पूर्व दिशा और आग्नेयी दिशा के मध्य में दो-दो देवों की पूजा करनी चाहिये । उसकी विधि को समझो । पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर—ये चार दिशायें क्रम से कही गयी हैं । हे प्रिये! आग्नेयी नैर्ऋती वायव्या ऐशानी—ये चार विदिशायें तत्तद् नाम से कही गयी हैं । सूर्य शुक्र मङ्गल राहु उसके बाद शनि सोम (= चन्द्रमा) उसके बाद बुध और सबके अन्त में बृहस्पति ये क्रमशः तत्तद् दिशाओं और विदिशाओं के स्वामी माने गये हैं । तत्तत् दिशा और विदिशा का जो पद (= नाम) है, वही-वही दिशा और विदिशा है । उसके स्वामी का शब्द भी वही है किन्तु हे पार्वति! उसे चतुर्थी एकवचनान्त कर तत्तत् स्थल में बलिदान से उनकी पूजा करनी चाहिये । हे देवि! दिशा और दिशा के स्वामी के लिये पृथक् वाक्य का प्रयोग करना चाहिये । पूर्व वाक्यमें दो पद और इनको तार और हृदय के मध्य में रखना चाहिये । शेष वाक्य में एक पद होता है वह पहले ही कहा गया । (उदाहरण के लिये—ओं प्राचीदिगधिपतये सूर्याय नमः ओं प्राच्यै नमः ओ अवाचीदिगधिपतये शुक्राय नमः ओं अवाच्यै नमः..................इत्यादि) ॥ ४१-५३ ॥

चक्रारमध्ये तदनु द्वौ द्वौ देवौ प्रपूजयेत् ।
ब्रह्मविष्णू तु पूर्वस्यामेतेनैव क्रमेण हि ॥ ५४ ॥
पूज्यौ दिग्विदिशोर्देवि नामान्याकलयाधुना ।

कालाकाशौ रुद्रमृत्यू षडेकवचनान्विताः ॥ ५५ ॥
वक्ष्यमाणा दश पुनर्बहुत्वेन व्यवस्थिताः ।
युगानि वेदाः क्रतवः पर्जन्या निधयस्तथा ॥ ५६ ॥
वनस्पतय औषध्यो नक्षत्राणि ततः परम् ।
यज्ञाश्च पितरश्चेति द्वौ द्वावष्टसु कीर्तितौ ॥ ५७ ॥
द्विषष्टिमासानु पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ॥ ५८ ॥
मृत्युर्विलयतां क्षिप्रं वाञ्छितं सिद्धिमेतु मे ।
युद्धे जयो मे (भवतु?) कुर्याद् मूर्ध्न्यभिषेचनम्॥ ५९ ॥
कुशैर्वा कुसुमैर्वापि कराङ्गुलिभिरेव च ।
द्वयोरधस्तादेकैकं चक्रमध्ये पुनर्न्यसेत् ।
समुद्राः पर्वताश्चैव नागा ऋषय एव च ॥ ६० ॥
छन्दांस्यब्दास्तथा द्वीपास्तीर्थानि तदनन्तरम् ।
बहुत्ववचनेनैव चतुर्थ्या परिकीर्तिताः ॥ ६१ ॥
अथावधेहि देवेशि सर्वमध्यगतं बलिम् ।
गृहीत्वा दक्षहस्तेन बालेयं द्रव्यमुत्तमम् ॥ ६२ ॥
वक्ष्यमाणान् मनूनेतानुच्चरेत् साधकः शनैः ।

उसके बाद इसी क्रम से चक्रार के मध्य में दो-दो देवों की पूजा करनी चाहिये। (उनका क्रम इस प्रकार है—) पूर्व दिशा में ब्रह्मा और विष्णु पूज्य हैं । हे देवि! इसी क्रम से दिशाओं और विदिशाओं में काल आकाश रुद्र मृत्यु इस प्रकार उपर्युक्त ये छह एकवचनान्त होते हैं । उसके अनन्तर वक्ष्यमाण दश बहुवचनान्त होते हैं । वे हैं—युगानि, वेदाः, क्रतवः, पर्जन्या, निधयः, वनस्पतयः, औषध्यः, नक्षत्राणि यज्ञाः पितरः । (इस प्रकार पूर्वोक्त छह और दश कुल मिलाकर सोलह हुये)। इनमें से आठ दिशाओं में दो-दो की पूजा करनी चाहिये । (उदाहरण के लिये—ओं प्राच्यां ब्रह्मणे नमः, ओं प्राच्यां विष्णवे नमः, ओं प्राच्यै नमः । ओं अवाच्यां कालाय नमः, ओं अवाच्यां आकाशाय नमः ओं अवाच्यै नमः........... इत्यादि (?) । पूजन के बाद कुशों पुष्पों अथवा हाथ की अँगुलियों से अपने (या यजमान के) शिर पर अभिषेक करना चाहिये । मन्त्र—द्विषष्टिमासं पुत्रपौत्रादि-सन्ततिर्भवतु । मृत्युर्विलयतां क्षिप्रं वाञ्छितं सिद्धिमेतु मे । युद्धे जयो मे भवतु (दो साठ अर्थात् २ × ६० =१२० वर्षों तक पुत्र-पौत्र आदि जीवित रहें । मृत्यु शीघ्र विलीन हो जाय । मेरी मनोकामना पूर्ण हो । युद्ध में मेरी जय हो) । दोनों के नीचे चक्र के मध्य में एक-एक का न्यास करना चाहिये । (न्यस्य तत्त्व ये हैं—) समुद्र पर्वत नाग ऋषि छन्द अब्द द्वीप और तीर्थ । इनका चतुर्थी बहुवचन में प्रयोग करना चाहिये । हे देवेशि! इसके बाद सबके मध्य में स्थित बलि को जानो । दायें हाथ में बलियोग्य द्रव्य को लेकर साधक धीरे-धीरे वक्ष्यमाण मन्त्रों का उच्चारण करे ॥ ५४-६२- ॥

[सर्वमध्यगतबल्युत्सर्गमन्त्रः]

सुरासुरा नरा नागाः पितरश्चाप्सरोगणाः ॥ ६३ ॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च यक्षा रक्षोगणास्तथा ।
विश्वेदेवास्तथा साध्याः सिद्धाः वसव एव च ॥ ६४ ॥
आदित्याश्च तथा रुद्रा मरुतो मनवो ग्रहाः ।
वृक्षाः पशव ओषध्यः पक्षिणो वारिभूचराः ॥ ६५ ॥
पङ्गवोऽन्धाश्च कुब्जाश्च वामनाः क्षुत्प्रपीडिताः ।
मूका महारोगवन्तस्तिर्यग्योनिगतास्तथा ॥ ६६ ॥
शृङ्गिणो दंष्ट्रिणश्चापि दंशकीटपिपीलकाः ।
स्वकर्मभोगतो ये च नानायोनिसमुद्भवाः ॥ ६७ ॥
ये चारण्योद्भवाः सत्त्वास्तथा निरयगामिनः ।
जाताश्च जायमानाश्च भुञ्जाना ये च यातनाः ॥ ६८ ॥
येषामुपायो नास्त्येव क्षुधातृष्णानिवृत्तये ।
प्राणिनो ये गर्भगता वेदनापरिपीडिताः ॥ ६९ ॥
जङ्गमाः स्थावरा ये च प्राणिनोऽप्राणिनोऽपि च ।
चराचरं त्रिभुवनं कीर्तितं यन्न कीर्तितम् ॥ ७० ॥
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वेभ्यः क्षुन्निवृत्तये ।
एतन्मन्त्रान् समुच्चार्य सर्वमध्ये बलिं न्यसेत् ॥ ७१ ॥

सर्वमध्यगत बलि के उत्सर्ग का मन्त्र—(सुरासुराः.........सर्वेभ्यः क्षुन्निवृत्तये) ।

सुर असुर नर नाग पितृगण अप्सरायें भूत प्रेत पिशाच यक्ष राक्षससमूह, विश्वेदेव साध्य सिद्ध (आठ) वसु (बारह) आदित्य, (ग्यारह) रुद्र (उञ्चास) मरुत्, चौदह मनु, नव ग्रह, वृक्ष पशु औषधियाँ पक्षिसमूह जलचर भूचर पङ्गु अन्धे, कुबड़े, वामन, भूखे, गूँगे, महारोगी, पक्षी की योनिवाले, सींगवाले, दाँतवाले डँस कीड़े, चींटी, अपने कर्म फल के भोग के कारण अनेक योनियों में उत्पन्न, जङ्गल में उत्पन्न होनेवाले प्राणी, नरकवासी, उत्पन्न हुए, उत्पन्न हो रहे, जो यातनाओं को भोग रहे हैं वे, भूख एवं प्यास मिटाने के लिये जिनके पास उपाय नहीं हैं वे, जो गर्भ में स्थित होकर वेदना से पीड़ित हो रहे हैं वे प्राणी, तथा जङ्गम, स्थावर प्राणी, जड़ पदार्थ, चराचर त्रिभुवन जिसका वर्णन किया गया और जिसका नहीं किया गया उन सबको उनकी भूख मिटाने के लिये बलि दे रहा हूँ । इन मन्त्रों का उच्चारण कर सबके मध्य में बलि देनी चाहिये ॥ ६३-७१ ॥

[आत्माभिषेकविधिः]

ततोऽर्घ्यमध्यसंस्थेन जलेन स्वस्य मूर्धनि ।
अभिषेकं चरेद्देवि मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ७२ ॥

अपने अभिषेक की विधि—हे देवि! इसके बाद अर्घ्य के मध्य में स्थित जल से अपने शिर पर अभिषेक करना चाहिये और इन निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये ॥ ७२ ॥

[आत्माभिषेकमन्त्र:]

ओं सम्पदः सन्तु मम विपदो यान्तु च क्षयम् ।
प्रसन्ना कालिका भूयान्नश्यन्तु व्याधयोऽखिलाः ॥ ७३ ॥
पापानि नाशमायान्तु सह शत्रुगणैर्मम ।
विघ्नाः विनश्यन्त्वखिलाः मोदन्तां मित्रबान्धवाः ॥ ७४ ॥
शश्वद् विवृद्धिमायातु पुत्रपौत्रादिसन्ततिः ।
मृत्युर्विलीयतां क्षिप्रं वाञ्छितं सिद्धिमेतु मे ॥ ७५ ॥
युद्धे जयो मे भवतु विवादे कलहे तथा ।
भक्तिः सदा मे भवतु गुह्यकालीपदद्वये ॥ ७६ ॥
चतुर्भिरेतैः पद्यैस्तु कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् ।
कुशैर्वा कुसुमैर्वाऽपि कराङ्गुलिभिरेव वा ॥ ७७ ॥
इति ते कथितो देवि वैश्वदेवो बलिस्तव ।

आत्माभिषेक मन्त्र—(ओं सम्पदः..........गुह्यकालीपदद्वये) ।

मुझे सम्पत्तियाँ प्राप्त हों, विपत्तियाँ नष्ट हो जायँ । काली प्रसन्न हो, समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जायँ । शत्रुओं के साथ मेरे समस्त पाप नाश को प्राप्त हों । सारे विघ्न विनष्ट हों और मित्र बन्धु प्रसन्न रहें । पुत्र-पौत्र आदि की परम्परा वृद्धि को प्राप्त हो । मृत्यु शीघ्र विलीन हो और वाञ्छित की सिद्धि हो । युद्ध अभियोग और झगड़े में विजय हो तथा गुह्यकाली के दोनों चरणों में मेरी भक्ति सदा रहे । इन चार पद्यों का पाठ करते हुए शिर पर अभिषेक करना चाहिये । यह अभिषेक कुशों पुष्पों या (दायें) हाथ की अँगुलियों से करना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार तुमको वैश्वदेव की बलि बतलायी गयी ॥ ७३-७७- ॥

[बलिवैश्वदेवविधेर्नित्यकृत्यता]

कार्योऽयं प्रत्यहं भक्त्या कालिकातुष्टिमिच्छता ॥ ७८ ॥
करणात् फलबाहुल्यं भवेदकरणाद् भयम् ।
ज्ञात्वेत्थमस्य नित्यत्वं कर्तव्यं साधकैः सदा ॥ ७९ ॥

बलिवैश्वदेव नित्यकरणीय है—कालिका को सन्तुष्ट करने की इच्छावाले साधक को चाहिये कि वह प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस बलि को करे । करने से अनेक उत्तम फल मिलते हैं और न करने से भय होता है—ऐसा जानकर साधकों के द्वारा यह नित्य किया जाना चाहिये ॥ ७८-७९ ॥

[बलिवैश्वदेवस्यावश्यकता]

पात्राणां शुद्धिरेतेन सुराया मीनमांसयोः ।
देहस्य शक्तेर्देव्याश्च सिद्धान्नस्याखिलस्य च ॥ ८० ॥
अकृत्वेमं वैश्वदेवं श्रीपात्रं स्वीकरोति यः ।
भुंक्ते स केवलं मद्यं दुर्गन्धपूयशोणितम् ॥ ८१ ॥
नीचो मद्यं यथा भुंक्ते मांसं चोदरपूर्तये ।
अवैश्वदेवोऽपि तथा साधकोऽत्ति सुरामिषे ॥ ८२ ॥

बलिवैश्वदेव की आवश्यकता—इस बलिवैश्वदेव से सुरा, मीन, मांस, देह, शक्ति, देवी, समस्त सिद्ध अन्न की शुद्धि होती है । इस वैश्वदेव को विना किये जो श्रीपात्र का ग्रहण करता है वह केवल दुर्गन्धयुक्त मवाद और खून से मिश्रित मद्य को खाता है । जिस प्रकार नीच पुरुष पेट भरने के लिये मद्य-मांस का भक्षण करता है, बलिवैश्वदेव न करनेवाला साधक भी उसी प्रकार का सुरा और मांस खाता है ॥ ८०-८२ ॥

[बलिवैश्वदेवस्य निदर्शनम्]

अन्यन्निदर्शनं तेऽहं कथयामि वरानने ।
भूपालो हि यथा भृत्यान्
सर्वान् दत्त्वा ततः स्वयम् ॥ ८३ ॥
अदनीयं समश्नाति दत्ते वाश्वासनादनु ।
तथा त्रैलोक्यभरणकारिणी गुह्यकालिका ॥ ८४ ॥
चराचरेभ्यो विश्वेभ्योऽदत्त्वैव कथमीश्वरि ।
ग्रहीष्यति स्वयं पूजां वैश्वदेवो ह्यतः स्मृतः ॥ ८५ ॥
अत एवाखिलं विश्वं पूज्यतेऽत्र शुचिस्मिते ।
समाप्येत्थं वैश्वदेवं सशान्तिकमितः परम् ॥ ८६ ॥

बलिवैश्वदेव का उदाहरण—हे वरानने! तुमको (बलिवैश्वदेव के विषय में) दूसरा उदाहरण दे रहा हूँ । जिस प्रकार राजा समस्त भृत्यों को भोजन कराकर या भोजन कराने का आश्वासन देने के बाद स्वयं भोजन करता है, हे ईश्वरि! उसी प्रकार त्रैलोक्य का भरण करनेवाली कालिका चर-अचर सबको विना दिये स्वयं कैसे पूजा ग्रहण करेगी? इसलिये वैश्वदेव की व्यवस्था है । हे शुचिस्मिते! इसलिये यहाँ सम्पूर्ण विश्व की पूजा की जाती है । इस प्रकार वैश्वदेव समाप्त कर इसके बाद शान्तिकर्म करना चाहिये ॥ ८३-८६ ॥

[पात्रतर्पणक्रमविषये तान्त्रिकमतभेदनिरूपणम्]

षड्भिः पात्रस्थितैर्द्रव्यैः सर्वानेव प्रतर्पयेत् ।
भूयांसोऽत्र विकल्पास्तत्तत्पात्राध्वचारिणाम् ॥ ८७ ॥

सृष्टिक्रमेण मौलेया स्थित्या कापालिकादयः ।
संहारक्रमतः कुर्युर्मदीयमतवर्तिनः ॥ ८८ ॥
भूयस्यो युक्तयः सन्ति मतभेदेन वादिनाम् ।
मूलभूतस्य सन्तोषः प्रथमं हि विधीयते ॥ ८९ ॥
सन्तोषणीयास्तदनु परिवारगणाः पृथक् ।
एवं युक्तिं विवृण्वानाः श्रीपात्रादि प्रकुर्वते ॥ ९० ॥
परिवारगणो ह्यादौ कर्तव्यः स्ववशस्थितः ।
मूलभूतस्ततस्तोष्य इति रीतिर्व्यवस्थिता ॥ ९१ ॥
व्याचक्षाणा इमां रीतिं भोगादिं विदधत्वतः ।
त्वा(?स्व)स्थानादौ ततो मूलं तत्पश्चादनुजीविनः ॥ ९२ ॥
सन्तोषणीया इत्यूचुर्देवि कापालिकादयः ।
मनः प्रवृत्तो यो यस्य स तस्याज्ञां करोति हि ॥ ९३ ॥

पात्र के तर्पण में मतभेद—छह पात्रों में स्थित द्रव्यों से सबका तर्पण करना चाहिये । तत्तत् पात्रों को देनेवालों के मध्य अनेक विकल्प हैं—मौलेय सृष्टिक्रम से तर्पण करते हैं; कापालिक आदि स्थितिक्रम से और मेरे मत के अनुसार चलनेवाले संहार क्रम से तर्पण करते हैं । तत्तत् मतवादियों के मतभेद से (अर्थात् अपने-अपने मत की पुष्टि के लिये) बहुत सी युक्तियाँ (= तर्क) हैं । पहले मूलभूत देवता को सन्तुष्ट किया जाता है, बाद में परिवारगणों को तृप्त करना चाहिये—इस तर्क का कथन करते हुए लोग पहले श्रीपात्र का अनुष्ठान करते हैं । पहले (भोजन आदि के द्वारा) परिवारगण को अपने वश में करना चाहिये बाद में मूल को सन्तुष्ट करना चाहिये यह प्रणाली व्यवस्थित है—ऐसी रीति को कहनेवाले पहले भोग का विधान करें । पहले अपने पास स्थित को (तृप्त कर) फिर मूल उसके बाद अनुजीवियों को तृप्त करना चाहिये हे देवि! ऐसा कापालिक आदि कहते हैं । जिसका मन जिसमें प्रवृत्त होता है वह उसकी आज्ञा का अनुसरण करता है ॥ ८७-९३ ॥

[पात्रतर्पणविषये स्वमतस्थापनम्]

विन्द्वर्चनादनु यथा नान्या पूजा प्रवर्त्तते ।
श्रीपात्रतर्पणस्यान्ते नान्येषां तर्पणं चरेत् ॥ ९४ ॥
मतं मदीयं कथितं सकलं परमेश्वरि ।

पात्रतर्पण के विषय में अपना मत—जिस प्रकार बिन्दु पूजा के बाद कोई भी पूजा नहीं की जाती, उसी प्रकार श्रीपात्र के तर्पण के अन्त में दूसरों का तर्पण नहीं किया जाता । हे परमेश्वरि! मैंने अपना सम्पूर्ण मत व्यक्त कर दिया ॥९४-९४-॥

[पात्रतर्पणाधारनिर्णयः]

रीतिमन्यां शृणु पुनस्तत् किमाधारकं भवेत् ॥ ९५ ॥

प्रतिमायन्त्रयोः केचिद् वदन्ति खलु तर्पणम् ।
केचिद् भूमौ प्रकुर्वन्ति केचिदग्नौ जलेऽपि वा ॥ ९६ ॥
अविदित्वैव सिद्धान्तं भ्रमात्सर्वे प्रकुर्वते ।
सर्वत्र युक्तिं क्रमतः कथयाम्यवधारय ॥ ९७ ॥
उच्छिष्टं दासदासीनां प्रभोरङ्गेषु दीयते ।
नैतत्तुल्यं हि वृजिनः कारकं किञ्चिदस्ति वै ॥ ९८ ॥
श्रीपात्रात्तर्पणं यत्तु तद्देव्यङ्गे प्रदीयते ।
नान्यत्पात्रस्थितं दद्यादेवं देव्यनुशासनम् ॥ ९९ ॥
राक्षसेभ्यः पिशाचेभ्यः कूष्माण्डेभ्यः प्रदीयते ।
भूमौ तदशनं जातहारिणीभ्यस्तथैव च ॥ १०० ॥
अग्निपक्षः समीचीनः प्रायशः सुरवन्दिते ।
यतोऽग्निः सर्वदेवानां मुखमित्यभिधीयते ॥ १०१ ॥
वेताललम्बोदरयोः किन्तु तत्र न तर्पणम् ।
यतोऽमू किल भालूकमतङ्गजमुखौ मतौ ॥ १०२ ॥
बिभ्यतस्तौ तु दहनादिति पौरातनी स्थितिः ।
जले ये कुर्वते देवि तर्पणं कौलिकद्रवैः ॥ १०३ ॥
तेऽशुद्धमेव कुर्वन्ति तत्त्वातत्त्वविवेकिनः ।
तर्पणं होमरूपं स्यात् छुङ्मुद्रा(?) तार्पणी मता ॥ १०४ ॥
हविरुक्तं कुलद्रव्यं साधकश्रेष्ठिकारकः ।
समस्तास्तान्त्रिका मन्त्रा ऋग्यजूरूपधारिणः ॥ १०५ ॥
एवं प्रसिद्धं देवेशि त्रिपुरघ्नानुशासनम् ।
कथं जले भवेद्धोमस्त्वयैवैतद् विचार्यताम् ॥ १०६ ॥

तर्पणपात्र के आधार का निर्णय—पुनः एक दूसरी रीति सुनो कि वह (= तर्पण) किस आधारवाला होता है (अर्थात् तर्पण का आधार क्या होता है) । कुछ लोग प्रतिमा और यन्त्र को तर्पण का आधार मानते हैं । कुछ लोग भूमि पर तर्पण करते हैं । कुछ लोग अग्नि अथवा जल में तर्पण करते हैं । ये सब तर्पक सिद्धान्त को न जानकर भ्रम से तर्पण करते हैं । मैं सबके विषय में क्रमशः युक्ति बतला रहा हूँ, समझो । स्वामी का उच्छिष्ट (= उपयोग किया हुआ वस्त्र आदि) दास-दासी के अङ्गों में रखा जाता है । यह तुल्य (= उचित ?) नहीं है; क्योंकि इससे थोड़ा पाप होता है । जो तर्पण श्रीपात्र से किया जाता है वह देवी के अङ्ग में दिया जाता है । (देवी के अङ्ग में) अन्य पात्रों में स्थित द्रव्य को नहीं देना चाहिये—देवी की ऐसी आज्ञा है । वह द्रव्य राक्षसों पिशाचों कूष्माण्डों और जातहारिणियों के लिये भूमि पर दिया जाता है । हे सुरवन्दिते! (यहाँ) अग्निपक्ष (अर्थात् अग्नि में द्रव्य का दान) प्रायः समीचीन होता है; क्योंकि अग्नि सब

देवताओं का मुख कहा जाता है । वेताल एवं गणेश के लिये वहाँ (= अग्नि में) तर्पण नहीं किया जाता; क्योंकि इन दोनों के मुख भालू और हाथी के हैं । वे दोनों आग से डरते हैं—यह प्राचीन काल से मान्यता है । हे देवि! जो लोग कौलिक द्रव्यों से जल में तर्पण करते हैं तत्त्व और अतत्त्व को न जाननेवाले वे अशुद्ध ही करते हैं । तर्पण को होमरूप माना गया है। छुङ्मुद्रा को तर्पण मुद्रा माना गया है । कुलद्रव्य (= मद्य) को हवि और साधक को यज्ञकर्त्ता कहा गया है । समस्त तान्त्रिक मन्त्र ऋग्यजुर्वेद रूप हैं । हे देवेशि! इस प्रकार त्रिपुरारि का आदेश है । ऐसे में जल में होम कैसे होगा? तुम्हीं इसका विचार करो ॥ ९४-१०६ ॥

[तर्पणीयाधारविषये स्वमतस्थापनम्]

मामकीनमथो पक्षमवधारय युक्तितः ।
उपदिष्टोऽस्मि रुद्रेण पुरैवैतत् प्रसङ्गतः ॥ १०७ ॥
त्रिकोणं मण्डलं कुर्यादादावेवाम्बुना क्षितौ ।
वर्तुलं तद्बहिः कुर्यादर्धचन्द्रं च तद्बहिः ॥ १०८ ॥
अर्धचन्द्रोपरिष्टात् स्यादमाबीजं चतुर्दिशि ।
दक्षिणाग्नेः पूर्वकोणं गार्हपत्यस्य नैर्ऋतम् ॥ १०९ ॥
तथा चाहवनीयस्य वायव्यं परिकीर्तितम् ।
कुण्डत्रयमिदं प्रोक्तमत्रामत्रं स्थितं हि यत् ॥ ११० ॥
तत्रैतदुच्यते विज्ञैस्तत्तत्तर्पणकर्मणि ।
नेदं हि यन्त्रप्रतिमे न भूम्यग्निजलानि च ॥ १११ ॥
नात्र दोषलवोऽप्यस्ति सार्वसैद्धान्तिकोऽह्यसौ ।
तदमत्रं तैजसं वा पात्रिकं मार्तिकं तथा ॥ ११२ ॥
शैलेयं वा दरीयं वा सर्वाभावे तदैधसम् ।
यदीयं वा तदीयं वा तद्भवत्वमलानने ॥ ११३ ॥
अग्निरूपं समुद्दिष्टमित्येतस्य निदर्शनम् ।

तर्पणीय आधार के विषय में स्वमत की स्थापना—अब मेरे मत को युक्ति के साथ समझो । प्रसङ्गवश रुद्र ने इसका पहले ही मुझे उपदेश कर दिया था । पहले जल से पृथ्वी पर त्रिकोण मण्डल बनाना चाहिये । उस (= त्रिकोण) के बाहर एक गोलाईवाली रेखा खींचनी चाहिए । उस रेखा के बाहर अर्धचन्द्र बनाये । अर्धचन्द्र के ऊपर चारों दिशाओं में अमाबीज (= ब्लूं) लिखना चाहिये । पूर्वकोण दक्षिण अग्नि का, नैर्ऋत्य कोण गार्हपत्य अग्नि का और वायव्य कोण आहवनीय अग्नि का कहा गया है । यह तीन कुण्ड कहा गया है; क्योंकि यहाँ अमत्र (= बर्त्तन, पात्र) रहता है । तत्तत् तर्पण कार्य में विद्वान् लोग उसको यहाँ कहते हैं। यह न यन्त्र या प्रतिमा है न भूमि अग्नि और जल । यहाँ रञ्चमात्र दोष भी नहीं है; क्योंकि यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है । वह पात्र तैजस (= सोने-चाँदी का बना)

पत्ते से बना या मिट्टी का होना चाहिये । यह पत्थर का या दरीय (= शङ्ख का) होता है । उपर्युक्त सबके अभाव में एकस् (= अन्न आँटा इत्यादि) का होता है । हे अमलानने! वह जिस किसी भी वस्तु का हो उसे अग्निरूप कहा गया है ॥ १०७-११३- ॥

[तर्पणप्रकार एव तार्पणीमुद्रापरिचयः]

एतत्प्रकारमधुना मत्तः कलय सादरा ॥ ११४ ॥
विधाय मण्डलं पूर्वोक्तरीत्या पात्रमेव वा ।
वामहस्तानामिकयाङ्गुष्ठं समभियोजयेत् ॥ ११५ ॥
इयं हि तार्पणी मुद्रा शुश्रूषा परिकीर्तिता ।
एतया मुद्रया देवि संहारक्रमतोऽखिलान् ॥ ११६ ॥
पात्रात्तद्द्रव्यमादाय तर्पयेदुदितक्रमैः ।

तर्पण का प्रकार एवं तार्पणी मुद्रा—अब मुझसे आदर के साथ इसके करने की विधि सुनो । पूर्वोक्त रीति से मण्डल अथवा पात्र की रचनाकर बायें हाथ की अनामिका से अँगुष्ठ को जोड़ना चाहिये । यह सेवा करनेवाली तार्पणी मुद्रा कही गयी है । हे देवि! पात्र से द्रव्य को लेकर इस मुद्रा के द्वारा संहारक्रम से समस्त देवों का उक्त क्रम से तर्पण करना चाहिये ॥ ११४-११६- ॥

[तर्पणस्य समन्त्रो विधिः]

सप्तैतांस्तर्पयेद्देवि तत्रादौ भोगपात्रतः ॥ ११७ ॥
गणेशानथ वेतालान् सिद्धांस्तदनु योगिनीः ।
डाकिनीर्भैरवीश्चापि चामुण्डाश्चेति सप्त ताः ॥ ११८ ॥
तत्तद्बीजं पुरोधाय द्वितीयायाः बहुत्वतः ।
तत्तन्नाम समुच्चार्य तर्पयामि हृदन्तिमे ॥ ११९ ॥
अँगुष्ठस्यानामिकायामथो
यावत् प्रतिभ्यतः (?ग्रहः) ।
तावन्निवेशनीया हि मुद्रां(द्रा) वै कौलिकद्रवे ॥ १२० ॥

तर्पण की समन्त्र विधि—हे देवि! भोगपात्र से निम्नलिखित सात का तर्पण करना चाहिये—गणेश वेताल सिद्ध योगिनी डाकिनी भैरवी और चामुण्डा ये सात हैं। (मन्त्र का उद्धार निम्नलिखित है—) पहले तत्तद् बीजों को कहकर फिर द्वितीया विभक्ति के बहुवचन से युक्त तत्तत् नाम का उच्चारणकर 'तर्पयामि' और अन्त में हृदय कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—गं गणेश्वरेभ्यः तर्पयामि नमः । वं वेतालेभ्यः तर्पयामि नमः..... ...इत्यादि) ।

इसके बाद जब तक प्रतिग्रह (= बलिदान) होता है (अर्थात् बलि को देने के लिये मन्त्र आदि का पाठ होता है) तब तक अँगूठे को अनामिका में सन्निविष्ट कर कौलिक द्रव (= मद्य) में मुद्रा का निवेश करना चाहिये ॥ ११७-१२० ॥

[वीरपात्रस्य मुद्राष्टकपरिचयः]

अथ पात्राद्वीरनाम्नो मुद्रा अष्टौ प्रतर्पयेत् ।
मन्त्रः कलासिद्धिमात्रामायाचक्रकुलानि हि ॥ १२१ ॥
गुह्यं चेत्यष्ट विख्यातं मुद्रावृन्दं वरानने ।

वीरपात्र की आठ मुद्रायें—इसके बाद वीर नामक पात्र को आठ मुद्राओं का तर्पण करना चाहिये । हे वरानने! मन्त्र कला सिद्धि मात्रा माया चक्र कुल और गुह्य यह आठ मुद्रासमूह है ॥ १२१-१२१- ॥

[वीरपात्रतर्पणमन्त्रः]

तारात्तत्तन्नामपुरोऽमन्तं मुद्रापदं ततः ॥ १२२ ॥
पूर्वोक्ते द्वे पदे शेषे वीरपात्रक्रियास्त्विमाः ।

वीरपात्रतर्पण का मन्त्र—तार के बाद तत्तत् नाम के बाद द्वितीया एकवचनान्त 'मुद्रा' पद अन्त में पूर्वोक्त दो पद ये वीरपात्र की क्रियाएँ हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ मन्त्रमुद्रां तर्पयामि नमः । ॐ कलामुद्रां तर्पयामि नमः..... ....इत्यादि) ॥ १२२-१२२- ॥

[कुलपात्रतर्पणविधिः]

कुलपात्रात्तृतीया (ये) तु तर्पयेत् क्षेत्रपालकान् ॥ १२३ ॥
आदौ तु हेतुकः प्रोक्तस्त्रिपुरान्तक इत्यतः ।
वेतालोन्नस्य (च) हुताशजिह्वस्तदनन्तरम् (?) ॥ १२४ ॥
महाकालः कपाली च एकपादस्ततः परम् ।
भीषणाश्चाष्ट ते प्रोक्ताः क्षेत्रपालाः वरानने ॥ १२५ ॥
क्षेत्रपालाह्वयं बीजं पुरस्तात् समुदाहरेत् ।
ततस्तत्तन्नाम वदेत् क्षेत्रपालपदं ततः ॥ १२६ ॥
विगृह्य द्वयमेवाथ तममन्तमुदीरयेत् ।
चिरन्तनीयं चरमे पदयुग्मं विभावयेत् ॥ १२७ ॥
अथ पात्रे चतुर्थे तु तर्पयेत् षोडशैव हि ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्पदम् ॥ १२८ ॥
नञ्पूर्वमेतदेवात्र पुनश्चत्वारि कीर्तयेत् ।
माया त अष्टपद्व्यास्तु (मायान्त-
अष्टपद्व्या तु) वक्ष्यमाणस्य पार्वति (?) ॥ १२९ ॥

आनन्दनाथशब्दस्य विग्रहोऽमन्त उच्यते ।
सर्वत्रैव समाज्ञेया चरमीया पदद्वयी ॥ १३० ॥

कुलपात्रतर्पण की विधि—गणेश आदि तथा मन्त्र आदि दो का तर्पण करने के बाद तीसरे क्रम में क्षेत्रपालों का तर्पण करना चाहिये । (क्षेत्रपालों की संख्या आठ है—) पहला क्षेत्रपाल हेतुक दूसरा त्रिपुरान्तक, वेतालोऽन्त्रस्य उसके बाद हुताशजिह्व महाकाल कपाली उसके बाद एकपाद फिर भीषण । हे वरानने! ये आठ क्षेत्रपाल कहे गये हैं । पहले क्षेत्रपाल नामक बीज को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद तत्तत् नाम कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'क्षेत्रपाल' पद को समस्तकर दोनों को अमन्त (अर्थात् द्वितीया एकवचनान्त) कहना चाहिये । अन्त में पूर्वोक्त दो पद की भावना करनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्षौं हेतुकक्षेत्रपालं तर्पयामि नमः । क्षौं त्रिपुरान्तकक्षेत्रपालं तर्पयामि नमः..........इत्यादि) ।

इसके अनन्तर चतुर्थ पात्र में धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य इन चार तथा नञ पूर्वक पुनः इन चार का सङ्कीर्त्तन करना चाहिये । हे पार्वति! माया बीज के बाद उपर्युक्त आठ पदों के साथ वक्ष्यमाण 'आनन्दनाथ' शब्द का समास होता है और वह अमन्त होता है । सर्वत्र अन्त में दो पदों को देना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. धर्मं तर्पयामि नमः । २. ज्ञानं तर्पयामि नमः । ३. वैराग्यं तर्पयामि नमः । ४. ऐश्वर्यं तर्पयामि नमः । ५. अधर्मं तर्पयामि नमः । ६. अज्ञानं तर्पयामि नमः । ७. अवैराग्यं तर्पयामि नमः । ८. अनैश्वर्यं तर्पयामि नमः । ९. ह्रीं धर्मानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १०. ह्रीं ज्ञानानन्दनाथं तर्पयामि नमः । ११. ह्रीं वैराग्यानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १२. ह्रीं ऐश्वर्यानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १३. ह्रीं अधर्मानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १४. ह्रीं अज्ञानानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १५. ह्रीं अवैराग्यानन्दनाथं तर्पयामि नमः । १६. ह्रीं अनैश्वर्यानन्दनाथं तर्पयामि नमः ।)॥ १२३-१३० ॥

[गुरुपंक्तिपूजाक्रमः]

एतस्मादेव पात्रात्तु गुरूणां पंक्तिमर्चयेत् ।
चैतन्यं पुरतो दत्त्वा शेषे तां च पदद्वयीम् ॥ १३१ ॥
मध्येऽमन्तं गुरुपदं सर्वाद्यं परिकीर्तयेत् ।
ततः पदेभ्यः सप्तभ्यो वक्ष्यमाणेभ्य ईश्वरि ॥ १३२ ॥
गुरुशब्दं तदाकारं समभिव्याहरेत् प्रिये ।
परमः परमेष्ठी च परापर इतः परम् ॥ १३३ ॥
परमात् परमेष्ठी च परमाच्च परापरः ।
परमेष्ठिनश्च परमः परमश्च परापरात् ॥ १३४ ॥

गुरुपंक्ति की पूजा का क्रम—इसी पात्र से गुरुओं की पंक्ति की पूजा करनी चाहिये । आदि में चैतन्य और अन्त में उन दोनों पदों (= तर्पयामि नमः) को कहना चाहिये । मध्य में सबसे पहले 'गुरु' पद को द्वितीया एकवचनान्त कहना चाहिये । हे ईश्वरि! इसके बाद वक्ष्यमाण सात पदों के बाद 'गुरु' शब्द को उसी आकारवाला (अर्थात् अमन्त) कहना चाहिये । हे प्रिये! (वे सात पद हैं—) परम, परमेष्ठी, परमपरमेष्ठी, परापर, परापरपरमेष्ठी, परमपरापर, परमपरापरपरमेष्ठी ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ गुरुं परमगुरुं तर्पयामि नमः । २. ॐ गुरुं परमेष्ठीगुरुं तर्पयामि नमः । ३. ॐ गुरुं परमपरमेष्ठीगुरुं तर्पयामि नमः । ४. ॐ गुरुं परापरगुरुं तर्पयामि नमः । ५. ॐ गुरुं परापरपरमेष्ठीगुरुं तर्पयामि नमः । ६. ॐ गुरुं परमपरापरगुरुं तर्पयामि नमः । ७. ॐ गुरुं परमपरापरपरमेष्ठीगुरुं तर्पयामि नमः।)॥ १३१-१३४॥

[शक्तिपूजाक्रमः]

शक्तिपात्रात् ततः कुर्याच्छक्तीनामपि तर्पणम् ।
तद्बीजं पुरतो दत्त्वा पृथङ्नामानि तत्परम् ॥ १३५ ॥
तैर्नामभिः शक्तिपदस्यापि विग्रह इष्यते ।
श्रीपादुकां तर्पयामि नमोऽन्ते च व्यवस्थितम् ॥ १३६ ॥
नामान्यादिर्विश्वगुप्तभावकामाः क्रमेण हि ।
मोहो हर्षस्तथा प्राण इत्यष्टौ परिकीर्तिताः ॥ १३७ ॥
श्रीपात्रस्याथ षष्ठस्य कर्तव्यमवधारय ।
या पूर्वमुदिता चक्रपूजा तव सुरेश्वरि ॥ १३८ ॥
साद्य त्रिबीजरहिता शाकिन्याद्या तु केवलम् ।
तुर्यां विभक्तिं सन्त्यज्य द्वितीयामुभयोर्न्यसेत् ॥ १३९ ॥
पूर्ववत् सर्वशेषस्थं पदयुग्मं विभावयेत् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारानाख्याभासा पदादनु ॥ १४० ॥
काली शेषपदद्वन्द्वं रावादिश्चापि पूर्ववत् ।
एवं हि पञ्चदशभिर्मन्त्रैस्तर्पणमाचरेत् ॥ १४१ ॥
सर्वशेषे मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुचिस्मिते ।
साङ्गां सवाहनामुक्त्वा सायुधां परिकीर्तयेत् ॥ १४२ ॥
पुनः सपरिवारांश्च गुह्यकालीं ततः परम् ।
तर्पयामि नमोऽन्ते चेत्येवं षोडशजल्पिताः ॥ १४३ ॥

शक्तिपूजा का क्रम—इसके बाद शक्तिपात्र से शक्तियों का भी तर्पण करना चाहिये। उस (= शक्ति) के बीज को पहले लिखकर उसके बाद अलग-अलग नामों को देना चाहिये । उन नामों के साथ 'शक्ति' पद का समास भी माना जाता है । तत्पश्चात् 'श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' अन्त में स्थित होता है । आदि, विश्व, गुप्त, भाव, काम, मोह, हर्ष तथा प्राण ये आठ नाम क्रम से कहे गये हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ब्लूं आदिशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । २. ब्लूं विश्वशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ३. ब्लूं गुप्तशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ४. ब्लूं भावशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ५. ब्लूं कामशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ६. ब्लूं मोहशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ७. ब्लूं हर्षशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । ८. ब्लूं प्राणशक्ति श्रीपादुकां तर्पयामि नमः ।)

अब छठें श्रीपात्र के विषय में कर्त्तव्य को समझो । हे सुरेश्वरि! पहले जो तुमको चक्र पूजा बतलायी गयी वह तीन बीजों (= माया रमा डाकिनी ?) से रहित होती है। उसके आदि में केवल शाकिनी (कही जाती है) चतुर्थी विभक्ति को छोड़कर दोनों में द्वितीया विभक्ति का न्यास करना चाहिये । पूर्व की भाँति सबके अन्त में दो पदों की भावना करनी चाहिये । सृष्टि, स्थिति संहार अनाख्या और भासा पद के बाद 'काली' कहना चाहिये । राव आदि पूर्व की भाँति कहने चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. फ्रें सृष्टिकालीं तर्पयामि नमः । २. फ्रें स्थितिकालीं तर्पयामि नमः । ३. फ्रें संहारकालीं तर्पयामि नमः । ४. फ्रें अनाख्याकालीं तर्पयामि नमः । ५. फ्रें भासाकालीं तर्पयामि नमः ।)

इस प्रकार पन्द्रह मन्त्रों के द्वारा तर्पण करना चाहिये । हे शुचिस्मिते! सबके अन्त में मूलमन्त्र का उच्चारणकर 'साङ्गां सवाहनां' कहकर 'सायुधां' कहना चाहिये। पुनः 'सपरिवारां गुह्यकालीं' के बाद अन्त में 'तर्पयामि नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—(मूलमन्त्र)[1] साङ्गां सवाहनां सायुधां सपरिवारां गुह्यकालीं तर्पयामि नमः) ।

इस प्रकार सोलह[2] मन्त्र कहे गये ॥ १३५-१४३ ॥

[कापालिकादितान्त्रिकमतेन प्रकारान्तरेण मूलपात्रतर्पणस्य समन्त्रो विधिः]

भाण्डिकेराश्च मौलेयाः देवि कापालिकास्तथा ।
पुनरन्यन्मूलपात्रात्तर्पणं विदधत्यपि ॥ १४४ ॥
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा तर्पयामि नमोऽन्तिमे ।
आत्मा ततोऽनु जीवात्मा परमात्मा तथैव च ॥ १४५ ॥
देहः कुलं च ज्ञानं च मनोबुद्धिरहङ्कृतिः ।
प्रकृतिर्विकृतिश्चापि विद्या सूक्ष्मं च वासना ॥ १४६ ॥
कैवल्यमन्तरात्मा च षोडशैवमुदीरिता ।
आवश्यकं तत्त्वपदमेषामनु सविग्रहम् ॥ १४७ ॥
इत्येकः क्रम उद्दिष्टो मतान्तरकृतात्मनाम् ।

---

[1] इसे गुह्यकाली के प्रथम खण्ड से जानना चाहिये ।

[2] यहाँ केवल चौदह मन्त्रों का वर्णन है। शेष दो मन्त्र दशम पटल से लेने चाहिए।

कापालिक आदि के मत से मूलपात्र से तर्पण की समन्त्रक विधि—हे देवि! भाण्डिकेर मौलेय और कापालिक मूलपात्र से अन्य प्रकार का तर्पण करते हैं। (मन्त्र—) पहले प्रणव देकर अन्त में 'तर्पयामि नमः' कहते हैं। (मध्य में) आत्मा जीवात्मा परमात्मा देह कुल ज्ञान मनः बुद्धि अहङ्कृति प्रकृति विकृति विद्या सूक्ष्म वासना कैवल्य और अन्तरात्मा ये सोलह पद कहे जाते हैं। इनके साथ इनके बाद 'तत्त्व' पद का सर्वदा समास रहता है।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ॐ आत्मतत्त्वं तर्पयामि नमः। २. ॐ जीवात्मतत्त्वं तर्पयामि नमः।
३. ॐ परमात्मतत्त्वं तर्पयामि नमः। ४. ॐ देहतत्त्वं तर्पयामि नमः।
५. ॐ कुलतत्त्वं तर्पयामि नमः। ६. ॐ ज्ञानतत्त्वं तर्पयामि नमः।
७. ॐ मनस्तत्त्वं तर्पयामि नमः। ८. ॐ बुद्धितत्त्वं तर्पयामि नमः।
९. ॐ अहङ्कृतितत्त्वं तर्पयामि नमः। १०. ॐ प्रकृतितत्त्वं तर्पयामि नमः।
११. ॐ विकृतितत्त्वं तर्पयामि नमः। १२. ॐ विद्यातत्त्वं तर्पयामि नमः।
१३. ॐ सूक्ष्मतत्त्वं तर्पयामि नमः। १४. ॐ वासनातत्त्वं तर्पयामि नमः।
१५. ॐ कैवल्यतत्त्वं तर्पयामि नमः। १६. ॐ अन्तरात्मतत्त्वं तर्पयामि नमः।)

मतान्तर को माननेवालों का यह एक क्रम बतलाया गया ॥ १४४-१४७- ॥

[अत्रैव मतान्तरस्य प्रदर्शनम्]

पुनर्मतान्तरं वक्ष्ये नानागमविदां प्रिये ॥ १४८ ॥
आदौ पृथिव्यप्तेजांसि वाय्वाकाशौ ततः परम्।
मात्रापूर्वं गन्धरसरूपस्पर्शाश्च शब्दवत् ॥ १४९ ॥
घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रं तदनन्तरम्।
प्रकृतिश्च महांश्चैव ततोऽहङ्कार उच्यते ॥ १५० ॥
मनोबुद्धिरविद्या च ततोऽद्वैतमुपाधियुक्।
प्रमाणप्रत्ययप्रज्ञा बिम्बं च प्रतिबिम्बवत् ॥ १५१ ॥
निमित्ताभाससत्ताश्च परमार्थलयाशयाः।
चैतन्यमथ कैवल्यं षट्त्रिंशदिति कीर्तिताः ॥ १५२ ॥
पूर्ववत् प्रणवाद्यं हि तर्पयामि हृदन्तिमे।
मध्येऽमीभ्यः पदेभ्यस्तु तत्त्वमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १५३ ॥
एवं नानाप्रकारेण साधकाः कुर्वते क्रियाम्।

दूसरे मत का वर्णन—हे प्रिये! अब अनेक आगमों को जाननेवालों का मतान्तर बतलाऊँगा। पहले पृथिवी जल तेज फिर वायु आकाश उसके बाद गन्ध रस रूप स्पर्श और शब्द मात्रायें, तदनन्तर घ्राण रसना चक्षु त्वक् और श्रोत्र प्रकृति महान् उसके बाद अहङ्कार कहा जाता है। मन बुद्धि अविद्या उसके पश्चात् अद्वैत

उपाधि प्रमाण प्रत्यय प्रज्ञा बिम्ब और प्रतिबिम्ब निमित्त आभास सत्ता परमार्थ लय आशय चैतन्य फिर कैवल्य ये छत्तीस कहे गये हैं । पूर्व की भाँति पहले प्रणव और अन्त में 'तर्पयामि' और हृदय मन्त्र कहना चाहिये । मध्य में इन पदों के बाद 'तत्त्वम्' का निर्देश करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ॐ पृथिवीतत्त्वं तर्पयामि नमः । २. ॐ जलतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
३. ॐ तेजस्तत्त्वं तर्पयामि नमः । ४. ॐ वायुतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
५. ॐ आकाशतत्त्वं तर्पयामि नमः । ६. ॐ गन्धतन्मात्रातत्त्वं तर्पयामि नमः ।
७. ॐ रसतन्मात्रातत्त्वं तर्पयामि नमः । ८. ॐ रूपतन्मात्रातत्त्वं तर्पयामि नमः ।
९. ॐ स्पर्शतन्मात्रातत्त्वं तर्पयामि नमः । १०. ॐ शब्दतन्मात्रातत्त्वं तर्पयामि नमः ।
११. ॐ घ्राणतत्त्वं तर्पयामि नमः । १२. ॐ रसनातत्त्वं तर्पयामि नमः ।
१३. ॐ चक्षुस्तत्त्वं तर्पयामि नमः । १४. ॐ त्वक्तत्त्वं तर्पयामि नमः ।
१५. ॐ श्रोत्रतत्त्वं तर्पयामि नमः । १६. ॐ प्रकृतितत्त्वं तर्पयामि नमः ।
१७. ॐ महत्तत्त्वं तर्पयामि नमः । १८. ॐ अहङ्कारतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
१९. ॐ मनस्तत्त्वं तर्पयामि नमः । २०. ॐ बुद्धितत्त्वं तर्पयामि नमः ।
२१. ॐ अविद्यातत्त्वं तर्पयामि नमः । २२. ॐ अद्वैततत्त्वं तर्पयामि नमः ।
२३. ॐ उपाधितत्त्वं तर्पयामि नमः । २४. ॐ प्रमाणतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
२५. ॐ प्रत्ययतत्त्वं तर्पयामि नमः । २६. ॐ प्रज्ञातत्त्वं तर्पयामि नमः ।
२७. ॐ बिम्बतत्त्वं तर्पयामि नमः । २८. ॐ प्रतिबिम्बतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
२९. ॐ निमित्ततत्त्वं तर्पयामि नमः । ३०. ॐ आभासतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
३१. ॐ सत्तातत्त्वं तर्पयामि नमः । ३२. ॐ परमार्थतत्त्वं तर्पयामि नमः :
३३. ॐ लयतत्त्वं तर्पयामि नमः । ३४. ॐ आशयतत्त्वं तर्पयामि नमः ।
३५. ॐ चैतन्यतत्त्वं तर्पयामि नमः । ३६. ॐ कैवल्यतत्त्वं तर्पयामि नमः ।)

इस प्रकार साधक लोग नाना प्रकार से क्रिया करते हैं ॥ १४८-१५३- ॥

[अत्र स्वमतस्थापनम्]

अथ येन प्रकारेण स्वीकुर्युः पात्रमुत्तमम् ॥ १५४ ॥
तत्तेऽहं व्याहरिष्यामि यथा रुद्रेण भाषितम् ।

अपने मत की स्थापना—अब जैसा रुद्र ने कहा और जिस प्रकार से साधकों को उत्तम पात्र का स्वीकार करना चाहिये, उसे मैं तुमको बतलाऊँगा ॥१५४-१५४-॥

[पात्रसंस्कारस्य समन्त्रो विधिः]

गृहीत्वाञ्जलिना पात्रं भूमौ संस्थापयेत् पुरः ॥ १५५ ॥
प्राणायामं विधायानु तत्तन्मन्त्रं षडङ्गकम् ।
कुर्वीत भक्तिभावेन शक्त्या ऋष्यादिकं तथा ॥ १५६ ॥

तत आघ्राय तत्पात्रं वामहस्ते निवेशयेत् ।
तन्मध्ये निक्षिपेन्मांसखण्डं दक्षकरेण तु ॥ १५७ ॥
तेनैव पाणिनाच्छाद्य मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।
ओं न त्वं सुरा किन्तु सुधा न नरोऽहं सुरः परम् ॥ १५८ ॥
नेदं पापं किन्तु पुण्यमित्येवं मे विनिश्चयः ।
शुक्रशापविनिर्मुक्ते त्वं देव्यास्वादिता सुरे ॥ १५९ ॥
गृह्णतस्त्वां तदुच्छिष्टां नैनो मे जायतेऽण्वपि ।
ततः पुनर्वक्ष्यमाणं तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चरन् ॥ १६० ॥
कराभ्यां पात्रमुत्तोल्य स्पर्शयेत् स्वस्य मूर्धनि ।
तारमैधसुधारावयोगिनीह्लीवधूस्मरः ॥ १६१ ॥
सुधे देवि समाभाष्य गन्धान् द्विः संहरोच्चरेत् ।
विकारान्नाशय द्वन्द्वं ज्ञानं द्विश्च प्रकाशय ॥ १६२ ॥
कूर्चास्त्रशिरसामुक्तिः सर्वशेषे प्रकीर्तिता ।
ततः पुनर्वामकरे संस्थाप्य तदमत्रकम् ॥ १६३ ॥
निमील्य चक्षुषी ध्यायेदेतद्रूपेण कालिकाम् ।
ममान्तर्हृदयाम्भोजप्रविष्टां सिद्धिदायिनीम् ॥ १६४ ॥
स्थापयित्वा पुनर्दक्षे वामानामिकया प्रिये ।
मूलमन्त्रं पठन् कुर्यात् ललाटे बिन्दुचित्रकम् ॥ १६५ ॥
पुनर्वामे परिस्थाप्य तत्स्थं द्रव्यं विगृह्य च ।
पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यात् कर्षन्मांसलवं रदैः ॥ १६६ ॥
आदौ तारः शिरः शेषे मध्ये तुर्यविभक्तिगान् ।
प्राणापानसमानोदानव्यानानेकरूपिणः ॥ १६७ ॥
मन्त्रं पठन् वक्ष्यमाणं निःशब्दं तत् पिबेद् द्रवम् ।
इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभैषजम् ॥ १६८ ॥
पशुपाशसमुच्छेदकारणं भैरवोदितम् ।
अन्यं मन्त्रं पठन्त्यत्र मौलेया जगदीश्वरि ॥ १६९ ॥
धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुवा ।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ॥ १७० ॥

पात्र-संस्कार की समन्त्रक विधि—(साधक) अञ्जलि के द्वारा पात्र को उठाकर अपने सामने भूमि पर रखे । उसके पश्चात् प्राणायाम कर तत्तत् मन्त्रों के साथ भक्तिभावपूर्वक शक्ति के द्वारा ऋषि आदि षडङ्गन्यास करे । तत्पश्चात् उस पात्र को सूँघकर बायें हाथ पर रखे । फिर उस पात्र के मध्य में दायें हाथ से मांसखण्ड को रखे और उसी अर्थात् दायें ही हाथ से पात्र को ढँककर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करे—

मन्त्र—'ॐ न त्वं सुरा.......................जायतेऽण्वपि ।'

(तुम सुरा नहीं सुधा हो । मैं मनुष्य नहीं उच्चकोटि का देवता हूँ । इसलिये (सुरा आदि का) यह ग्रहण पाप नहीं है किन्तु पुण्य है ऐसा मेरा निश्चित मत है । हे सुरे! तुम शुक्राचार्य के शाप से विनिर्मुक्त होती हुई देवी के द्वारा आस्वादित की गयी। उसके जूठन का ग्रहण करनेवाले मुझे रञ्चमात्र भी पाप न लगे ।) इसके पश्चात् पुन: वक्ष्यमाण तान्त्रिक मन्त्र का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों से पात्र को उठाकर अपने मस्तक से उसका स्पर्श कराये । (मन्त्र—तार मैध सुधा राव योगिनी ह्रीं वधू स्मर के बाद 'सुधे देवि' कहकर 'गन्धान्' के पश्चात् 'संहर' को दो बार कहना चाहिये । 'विकारान्' के बाद दो बार 'नाशय' 'ज्ञानं' कहकर 'प्रकाशय' को दो बार फिर सबके अन्त में कूर्च अस्त्र शिर का कथन करना चाहिये ।)

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ग्लूं फ्रें छ्रीं ह्रीं स्त्रीं क्लीं सुधे देवि गन्धान् संहर संहर विकारान् नाशय नाशय ज्ञानं प्रकाशय प्रकाशय हूं फट् स्वाहा) ।

पुन: उस अमन्त्रक अर्थात् पात्र को बायें हाथ पर रखकर आँखों को बन्द कर पात्र के रूप में कालिका का ध्यान करना चाहिये कि वह अन्दर स्थित हृदय-कमल में सिद्धिदायिनी होकर प्रविष्ट हो गयी । हे प्रिये! तदनन्तर उस पात्र को पुन: दायें हाथ पर रखकर मूलमन्त्र का पाठ करते हुए बायें हाथ की अनामिका से अपने ललाट पर बिन्दु बनाये । पुन: बायें हाथ पर कलश को रखकर उसमें स्थित द्रव्य (= मांस खण्ड) को लेकर दाँतों से मांस के टुकड़ों को खींचते हुए पाँच प्राण के लिये आहुति देनी चाहिये । (मन्त्र का उद्धार निम्नलिखित है—) पहले तार अन्त में शिर और मध्य में प्राण अपान समान उदांन और व्यान को एकवचन पढ़ते हुए चतुर्थी विभक्त्यन्त कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ प्राणाय स्वाहा । २. ॐ अपानाय स्वाहा । ३. ॐ समानाय स्वाहा। ४. ॐ उदानाय स्वाहा । ५. ॐ व्यानाय स्वाहा ।)

इसके बाद वक्ष्यमाण मन्त्र पढ़ते हुए उस द्रव का नि:शब्द पान करना चाहिये ।

मन्त्र—'इदं पवित्रं.............भैरवोदितम् ।'

(मैं इस पवित्र अमृत का पान कर रहा हूँ जो कि संसाररूपी रोग की औषधी है। भैरव के द्वारा उक्त यह पशु एवं पाश के उच्छेद का कारण है) । हे जगदीश्वरि! मौलेय इस विषय में अन्य मन्त्र का पाठ करते हैं । मन्त्र है—'धर्माधर्म.......... जुहोम्यहम्' । धर्म-अधर्म हवि के द्वारा दीप्त आत्मारूपी अग्नि में मनरूपी स्रुवा से सुषुम्ना के रास्ते प्रतिदिन मैं इन्द्रियों के व्यापार का होम करता हूँ ॥ १५४-१७० ॥

[अत्र कापालिकस्य मन्त्रान्तरनिवेश:]

कापालिकानां मन्त्रोऽन्यस्तमपि व्याहरामि ते ।
हृदम्भोजगतां देवीं स्नापयामि सुधारसै: ॥ १७१ ॥

तेनायं भवबन्धो मे विनाशमुपगच्छतु ।
एवं मन्त्रत्रयं प्रोक्तं पात्रस्वीकारकर्मणि ॥ १७२ ॥
ततः पात्रगतं हालाबिन्दुं भूमौ प्रपातयेत् ।
उच्छिष्टभैरवायामुं दद्यान्मन्त्रममुं पठन् ॥ १७३ ॥
मैधमायारमाबीजमेह्येह्युच्छिष्ट भैरव ।
विसन्धिं च बलिं गृह्ण युग्मं स्वाहा च पश्चिमे ॥ १७४ ॥
निघृष्य तद्भूमितले पूर्ववच्चित्रकं चरेत् ।
येऽन्येऽपि पात्रं स्वीकुर्युस्तेषामप्येष हि क्रमः ॥ १७५ ॥
एषा पात्रक्रिया तुभ्यं विशेषेणोपवर्णिता ।

इस विषय में कापालिक मत—इस विषय में कापालिक का मत भिन्न है । उसको भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । मन्त्र—'हृदम्भोजगतां..............मुपगच्छतु ।' (हृदय-कमल में बैठी देवी को मैं सुधारसों से स्नान करा रहा हूँ । इससे मेरा यह संसार-बन्धन विनाश को प्राप्त हो) । इस प्रकार पात्र स्वीकार कर्म के विषय में तीन मन्त्र कहे गये । इसके बाद पात्र में स्थित मद्य के बिन्दु को भूमि पर गिराना चाहिये। उस समय यह पढ़ना चाहिये—(यह भूमि पर गिराना) उच्छिष्ट भैरव को सुरादान करना होता है । सुरादान के समय पठनीय मन्त्र का उद्धार—मैध माया रमा बीजों के बाद सन्धिरहित 'एह्येह्युच्छिष्टभैरवबलिं' के बाद 'गृह्ण' को दो बार फिर अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं एहि एहि उच्छिष्टभैरव (इमं) बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा) ।

इसके अनन्तर उस मद्य को भूतल पर घिसकर पूर्व की भाँति मस्तक पर चित्रवत् तिलक लगाना चाहिये । जो अन्य लोग भी उक्त अर्घ्यपात्र का ग्रहण करते हैं, उनके लिये भी यही क्रम है । इस प्रकार तुमको पात्र-प्रक्रिया का विशेष रूप से वर्णन किया गया ॥ १७१-१७५- ॥

[देयपात्राधिकारिनिर्णयः]

इदानीं शृणु देवेशि यस्मै यद्यत् प्रदीयते ॥ १७६ ॥
गुरवे गुरुपात्रं तु शक्तिपात्रं च शक्तये ।
कुलपात्रं कौलिकेभ्यो दत्त्वा बन्धुभ्य एव च ॥ १७७ ॥
स्वयं समुपयुञ्जीत त्रीणि पात्राणि साधकः ।
श्रीवीरभोगसंज्ञानि गृह्णीयात् क्रमशः स्वयम् ॥ १७८ ॥
कुलकुम्भावशिष्टं हि स्वीकुर्युः सर्व एव ते ।
यच्चान्यदपि नैवेद्यमुपाहारतयार्पितम् ॥ १७९ ॥

देयपात्र के अधिकारी का निर्णय—हे देवेशि! अब जिसको जो-जो दिया जाता है उसे सुनो । गुरु के लिये गुरुपात्र, शक्ति के लिये शक्तिपात्र, कौलिकों तथा साधक

बन्धुओं के लिये कुलपात्र देकर साधक श्रीपात्र वीरपात्र और भोगपात्र नामक तीन पात्रों का क्रमशः स्वयं ग्रहण करे। कुलकुम्भ में अवशिष्ट (कुलद्रव्य) को सब लोगों को लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु जो देवी के लिये उपाहार (नैवेद्य) के रूप में अर्पित की गयी है, उसे भी सब लोगों को लेना चाहिये ॥ १७६-१७९ ॥

[नैवेद्योपयोगविषये निर्णयकथनम्]

मध्वादिमीनमांसान्तं फलाद्यन्तरमीश्वरि।
सर्व एवोपयुञ्जीरन् मिलिताः सर्वमेव तत् ॥ १८० ॥
निर्माल्यभूतं यद्देव्याः पुष्पस्रगनुलेपनम्।
विभज्य तत्प्रदातव्यं शक्तिभ्यः कौलिकाय च ॥ १८१ ॥

नैवेद्य के उपयोग के विषय में निर्णय—हे ईश्वरि! मद्य आदि (= मुद्रा अर्थात् भुना हुआ अन्न) मछली, मांस, अन्य फल आदि सबको सब लोग मिलकर खायें। देवी को अर्पित करने के बाद उतारा गया पुष्प माला चन्दन आदि शक्तियों एवं कौलिकों को बाँटकर देना चाहिये ॥ १८०-१८१ ॥

[अर्घ्यपात्रस्थ जलाभिषेकविधिस्तन्माहात्म्यं च]

स्थापितो यो विशेषोऽर्घो यत्रार्चा भूयसीरिता।
तज्जलेनाभिषिञ्चेत कौलान् बन्धून् स्वमङ्गनाः ॥ १८२ ॥
देवपूजावशिष्टं यच्छङ्खमध्यगतं जलम्।
तदङ्गलग्नं सर्वेषां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ १८३ ॥
कुशैः दूर्वाङ्कुरैः पुष्पैर्दलैरङ्गुलिभिस्तथा।
तज्जलेन वपुः सिञ्चेत् शान्तिकं समुदीरयेत् ॥ १८४ ॥

अर्घ्यपात्रस्थ जल का अभिषेक एवं उसका माहात्म्य—जिस विशेष अर्घ्यपात्र की स्थापना की गयी है और जिसमें विशेष रूप से तत्तद् देवताओं की पूजा की गयी है, उस जल से कौलगण बन्धुगण स्वयं तथा शक्तियों का अभिषेक करना चाहिये। देवपूजा से अवशिष्ट जो शङ्ख का जल है वह अङ्ग में लगने पर ब्रह्महत्या तक (के पापों) को दूर करता है। कुशों दूर्वा के अङ्कुरों पुष्पों दलों (आम आदि के पत्तों) तथा अँगुलियों के द्वारा उस जल से शरीर का अभिषेक करना चाहिये एवं निम्नलिखित शान्तिपाठ करना चाहिये ॥ १८२-१८४ ॥

[शान्तिपाठः]

कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि।
धर्ममोक्षप्रदे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ॥ १८५ ॥
संग्रामे विजयं देहि धनं देहि सदा गृहे।
धर्मकामार्थसम्पत्तिं देहि कालि नमोऽस्तु ते ॥ १८६ ॥

उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे भगप्रिये ।
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ॥ १८७ ॥
अरण्यचारिणि शिवे कुलद्रव्यमयीश्वरि ।
प्रसन्ना भव देवेशि भक्तस्य मम कालिके ॥ १८८ ॥

शान्तिपाठ—'कालि कालि............यस्य त्वं मस्तकोपरि ॥ १८५-२१९- ॥

हे कालि! हे महाकालि! हे कालिके! हे पापहारिणि! हे धर्म और मोक्ष को देनेवाली गुह्यकालि! आपको नमस्कार है । संग्राम में मुझे सदा विजय दो, घर में सदा धन दो । हे कालि! धर्म काम अर्थ लाभ दो, आपको नमस्कार है । हे उल्कामुखि (= जिसके मुख से आग की लपटें निकलती हैं), लपलपाती जीभवाली, भयानक शब्द करनेवाली, भगप्रिये, श्मशान में रहनेवाली, प्रेतस्वरूपे, शव के मांस को खानेवाली, निष्पाप, जङ्गल में रहनेवाली, शिवे, कुलद्रव्यमयी (= मद्य का सेवन करनेवाली) देवेशि ! ईश्वरि ! कालिके ! मुझ भक्त के ऊपर प्रसन हो जाओ ॥ १८५-१८८ ॥

(शुभानि सन्तु कौलानां नश्यन्तु द्वेषकारकाः ।
निन्दाकराः क्षयं यान्तु ये च हास्यं प्रकुर्वते ।
कौलिकान् कुलमार्गं च कुलद्रव्यं कुलाङ्गनाः ॥)१८८ ॥
ये द्विषन्ति जुगुप्सन्ते ये निन्दन्ति हसन्ति ये ।
येऽसूयन्ते च शङ्कन्ते मिथ्येति प्रवदन्ति ये ॥ १८९ ॥
ते डाकिनीमुखे यान्तु सदारसुतबान्धवाः ।
पिब त्वं शोणितं तस्य चामुण्डा मांसमत्तु च ॥ १९० ॥
अस्थीनि चर्वयन्त्वस्य योगिनीभैरवीगणाः ।
या निन्दागमतन्त्रादौ या शक्तिषु कुलेषु या ॥ १९१ ॥
कुलमार्गेषु या निन्दा सा निन्दा तव कालिके ।
त्वन्निन्दाकारिणां शास्त्री त्वमेव परमेश्वरि ॥ १९२ ॥

कौलमार्गी लोगों का कल्याण हो । उनसे द्वेष करनेवाले नष्ट हो जाँय । (आपकी तथा आपके भक्तों की) जो लोग निन्दा करते हैं अथवा उनकी हँसी उड़ाते हैं, वे नष्ट हो जाँय । जो कौलिकों की, कुलमार्ग की, कुलद्रव्य एवं कुलस्त्री से द्वेष करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं या जो लोग उपहास करते हैं, जो असूया करते हैं, (औचित्य को लेकर) शङ्का करते हैं, (यह सब पूजन-अर्चन) व्यर्थ है—ऐसा जो कहते हैं, वे अपनी स्त्री पुत्र और भाई-बन्धुओं के साथ डाकिनी के मुख में चले जायँ । आप उनका रक्तपान कीजिये; चामुण्डा उनका मांस खायें, योगिनियाँ एवं भैरवगण उनकी हड्डियों को चबा जायँ । हे कालिके! आगमतन्त्र आदि के विषय में जो निन्दा है, जो शक्ति एवं कुलद्रव्य की निन्दा है, जो कौलमार्ग की निन्दा

है । हे कालिके! वह आपकी निन्दा है । हे परमेश्वरि! इस प्रकार तुम्हारी निन्दा करनेवालों का तुम्हीं शासन करनेवाली हो ॥ १८९-१९२ ॥

न वेदं न तपो दानं नोपवासादिकं व्रतम् ।
चान्द्रायणादि कृच्छ्रं च न किञ्चिन्मानयाम्यहम् ॥ १९३ ॥
किन्तु त्वच्चरणाम्भोजसेवां जाने शिवाज्ञया ।
त्वदर्चां कुर्वतो देवि निन्दापि सफला मम ॥ १९४ ॥
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ।
तस्य प्रभुत्वं सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ॥ १९५ ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम ।
यस्य त्वच्चरणद्वन्द्वे मनो निविशते सदा ॥ १९६ ॥

मैं वेद, तप, दान, उपवास आदि, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत को कुछ नहीं समझता । शिव की आज्ञा से आपके चरणकमल की सेवा को ही जानता हूँ । हे देवि! आपकी पूजा करनेवाले मेरी निन्दा भी सार्थक है । जिसके मस्तक पर तुम हो (अर्थात् जिसके ऊपर तुम्हारी कृपा है) राज्य प्रतिष्ठा लक्ष्मी उसके पास सदा स्थायी रूप से रहती है । वह सबका स्वामी और सर्वसामर्थ्यवान् है । मैं धन्य और कृतकृत्य हूँ मेरा जीवन सफल है; क्योंकि मेरा मन आपके चरणयुगल में सदा लगा हुआ है ॥ १९३-१९६ ॥

दैत्याः विनाशमायान्तु क्षयं यान्तु च दानवाः ।
नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा असुरास्तथा ॥ १९७ ॥
पिशाचभूतवेतालाः क्षेत्रपाला विनायकाः ।
गुह्यकाः घोणकाश्चैव विलीयन्तां सहस्रधा ॥ १९८ ॥
भारुण्डा जम्भकाः स्कान्दाः प्रमथाः पितरस्तथा।
योगिन्यो मातरश्चापि डाकिन्यः पूतनास्तथा ॥ १९९ ॥
भस्मीभवन्तु सपदि त्वत् प्रसादात् सुरेश्वरि ।
दिवाचरा रात्रिचरा ये च सन्ध्याचरा अपि ॥ २०० ॥
द्वेष्टारो ये जलचरा गुहाबिलचरा अपि ।
शाखाचरा वनचराः कन्दराशैलचारिणः ॥ २०१ ॥
स्मरणादेव ते सर्वे खण्डखण्डा भवन्तु ते ।
सर्पा नागा यातुधाना दस्युमायाविनस्तथा ॥ २०२ ॥
हिंसका विद्विषो निन्दाकरा ये कुलदूषकाः ।
मारणोच्चाटनोन्मूलद्वेषमोहनकारकाः ॥ २०३ ॥
कृत्याभिचारकर्तारः कौलविश्वासघातकाः ।
त्वत्प्रसादाज्जगद्धात्रि निधनं यान्तु तेऽखिलाः ॥ २०४ ॥

(मेरे अपघातक) दैत्य नष्ट हो जायँ; दानव क्षय को प्राप्त हों; प्रेत कूष्माण्ड राक्षस असुर ये सब नाश को प्राप्त हों; पिशाच भूत वेताल क्षेत्रपाल विनायक गुह्यक घोणक ये सब हजारों बार विलीन हो जाँय । हे सुरेश्वरि! भारुण्ड जम्भक स्कान्द प्रमथ पितृगण योगिनी मातायें डाकिनियाँ पूतनायें ये सब आपकी कृपा से शीघ्र भस्म हो जायँ । जो दिन में चलनेवाले, रात्रि में चलनेवाले और सायङ्काल सञ्चरण करनेवाले हैं; जो द्वेषी हैं; जो जलचर (= मगरमच्छ आदि) गुहाचर (= सिंह आदि) बिल में रहनेवाले (= सर्प आदि) शाखाचर (= बन्दर भालू आदि) वनचर (= हिंस्र मनुष्य आदि) कन्दराओं एवं पर्वतों में रहनेवाले हैं, वे सब आपके स्मरण मात्र से खण्ड-खण्ड हो जाँय । सर्प नाग (= बड़े विषधर सर्प या मत्त हाथी) यातुधान, डाकू मायावी, हिंसक, विद्वेष करनेवाले, निन्दा करनेवाले, कौलमार्ग के प्रति द्वेष रखनेवाले या निन्दा करनेवाले, मारण उच्चाटन उन्मूलन विद्वेषण सम्मोहन करनेवाले, कृत्याभिचार करनेवाले, कौलसाधकों के साथ विश्वासघात करनेवाले हैं, हे जगद्धात्रि! आपकी कृपा से वे सब के सब मृत्यु को प्राप्त हो जायँ ॥१९७-२०४॥

नवग्रहाः सतिथयो नक्षत्राणि च राशयः ।
संक्रान्तयोऽब्दा मासाश्च ऋतवो द्वे तथायने ॥ २०५ ॥
कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रयस्तथा ।
मन्वन्तराणि कल्पाश्च युगानि युगसन्धयः ॥ २०६ ॥
निर्घातोल्कापातवज्रवर्षवाताभ्रविद्युतः ।
स्तनितेन्द्रधनुर्भूमिकम्पोत्पाताशनिस्वनाः ॥ २०७ ॥
देवलोकाः लोकपालाः पितरो वह्नयस्तथा ।
अध्वरा निधयो वेदाः पुराणागमसंहिता ॥ २०८ ॥
एते मया कीर्तिता ये ये चान्ये नानुकीर्तिताः ।
आज्ञया गुह्यकाल्यास्ते मम कुर्वन्तु मङ्गलम् ॥ २०९ ॥

नवग्रह, (पन्द्रह) तिथियाँ, (सत्ताईस) नक्षत्र, (द्वादश) राशियाँ, सूर्य की द्वादश संक्रान्तियाँ, वर्ष, द्वादश मास, छह ऋतुयें, दो अयन, कला काष्ठा मुहूर्त, पक्ष, दिनरात्रि, मन्वन्तर, कल्प, युग, युगसन्धियाँ, निर्घात (= वज्रपात) उल्कापात, वज्र, वर्षा, वायु, बादल, विद्युत्, बादलों की गर्जन, इन्द्रधनुष, भूमिक़म्प, उत्पात, बिजली की कड़क, देवलोक, लोकपाल, पितर, अग्नियाँ, यज्ञ, (नव) निधियाँ, (चार) वेद, (अट्ठारह) पुराण (चौंसठ) आगम, अनेक संहितायें—ये सब जिनका वर्णन मैंने किया और जिनका नहीं कर सका—वे सब गुह्यकाली की आज्ञा से मेरा मङ्गल करें ॥ २०५-२०९ ॥

भवन्तु सर्वदा सौम्याः सर्वकालं सुखावहाः ।
आरोग्यं सर्वदा मेऽस्तु युद्धे चैवापराजयः ॥ २१० ॥

दु:खहानि: सदैवास्तां विघ्ननाश: पदे पदे ।
अकालमृत्युदारिद्र्यं बन्धनं नृपतेर्भयम् ॥ २११ ॥
गुह्यकाल्या: प्रसादेन न कदापि भवेन्मम ।
सन्त्विन्द्रियाणि सुस्थानि शान्ति: कुशलमस्तु मे ॥ २१२ ॥
वाञ्छाप्तिर्मनस: सौख्यं कल्याणं सुप्रजास्तथा ।
बलं वित्तं यश: कान्तिर्वृद्धिर्विद्या महोदय: ॥ २१३ ॥
दीर्घायुरप्रधृष्यत्वं वीर्यं सामर्थ्यमेव च ।
विनाशो द्वेषकर्तॄणां कौलिकानां महोन्नति: ॥ २१४ ॥
जायतां शान्तिपाठेन कुलवर्त्म धृताऽत्मनाम् ।
दुर्गोत्तारिणि दुर्गे त्वं सर्वाशुभनिसूदनि ॥ २१५ ॥
विपत्तिनाशिनि शिवे त्राहि मां शरणागतम् ।
आयुर्ददातु मे काली पुत्रान् यच्छतु कालिका ॥ २१६ ॥
धनं सिद्धिकराली मे गुह्यकाली सदावतु ।
शिरो मे चण्डिका पातु कण्ठं पातु महेश्वरि ॥ २१७ ॥
हृदयं पातु चामुण्डा सर्वत: पातु कालिका ।
आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगं शोकं च दारुणम् ॥ २१८ ॥
बन्धुस्वजनवैराग्यं दुर्गे त्वं हर दुर्गतिम् ।
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ॥ २१९ ॥
प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ।
एष ते कथितो देवि शान्तिपाठो महाफल: ॥ २२० ॥
स्वीकारादनु पात्राणां पठेयु: सर्व एव हि ।
अशक्नुवानो नि:शेषं पठितुं शान्तिकक्रमम् ॥ २२१ ॥
पुरुषो वाप्यथवा नारी द्वित्रान् श्लोकानुदीरयेत् ।
शान्तिपाठानध्ययनाद् वृथापाठीति कथ्यते ॥ २२२ ॥

वे सर्वदा सब समय मेरे लिये सुखदायी हो । मैं सदा निरोग रहूँ । युद्ध में कभी मेरी पराजय न हो । मेरे दु:खों की सदा हानि हो । पग-पग पर विघ्ननाश हो । अकालमृत्यु, दरिद्रता, कारागार मे जाना, राजभय, ये सब गुह्यकाली की कृपा से मुझे कभी भी न हो । मेरी इन्द्रियाँ स्वस्थ रहें । शान्ति और कुशल मुझे मिले । मन की कामना सिद्ध हो । सुख, कल्याण, सुन्दर सच्चरित्र सन्तान, बल, धन, यश, कान्ति, विद्या, वृद्धि, महान् उदय, दीर्घायुष्ट्व, अजेयता, वीर्य, सामर्थ्य मुझे प्राप्त हो । इस शान्तिपाठ से मुझसे द्वेष करनेवालों का नाश कुलमार्ग में कौलिकों की उन्नति हो । हे दुर्गोत्तरिणि दुर्गे! हे समस्त अशुभ को नष्ट करनेवाली विपत्तिनाशिनि शिवे! शरणागत मेरी रक्षा करो । काली मुझे आयु दें । कालिका मुझे पुत्र दें । सिद्धिकराली धन दे । गुह्यकाली सदा रक्षा करें । चण्डिका मेरे शिर की

महेश्वरी मेरे कण्ठ की रक्षा करें । चामुण्डा हृदय की रक्षा करे। अङ्गकाली सब प्रकार से रक्षा करे । हे दुर्गे! तुम अन्धता, कुष्ठ, दरिद्रता, दारुण, रोग, दारुण, शोक, बन्धु एवं स्वजन के प्रति वैराग्य एवं दुर्गति को दूर करो। जिसके मस्तक पर तुम्हारा हाथ रहता है राज्य और उसका स्थायित्व, लक्ष्मी और उसकी स्थिरता, प्रभुत्व और उसका निर्वाह करने का सामर्थ्य, सब कुछ उसका होता है ।

हे देवि! यह तुमको महाफलदायी शान्तिपाठ बतलाया गया । पात्रों का ग्रहण करने के बाद सबको इसका पाठ करना चाहिये । यदि कोई पुरुष या स्त्री सम्पूर्ण पाठ करने में असमर्थ हो तो वह इस शान्तिपाठ के दो-तीन श्लोकों को ही पढ़े । शान्तिपाठ का अध्ययन न करने से साधक वृथापाठी कहा जाता है ॥ २१०-२२२॥

[शाबरोत्सवपरिचयः]

शक्तीनामिच्छयास्यानु कुर्युः केलिकलारसम् ।
शाबरोत्सवमित्याहुरेतन्नाम मनीषिणः ॥ २२३ ॥
अयं हि जगदम्बायाः ज्ञेयः प्रीतिकरो महान् ।
अतोऽवश्यं विधातव्यः सकलं फलमिच्छता ॥ २२४ ॥

शाबरोत्सव का परिचय—शक्तियों की इच्छा के अनुसार शान्तिपाठ के बाद साधक लोग रतिक्रीड़ा का आनन्द उठाते हैं । विद्वान् लोग इसको शाबरोत्सव कहते हैं । यह शाबरोत्सव जगदाम्बा को बहुत आनन्द देनेवाला होता है । इसलिये पूर्ण फल की प्राप्ति चाहनेवालों को यह उत्सव अवश्य करना चाहिये ॥२२३-२२४॥

[कुम्भसम्भारक्रियाचर्चा]

अस्मिन्नेव ह्यवसरे कुम्भसम्भारनामिकाम् ।
भाण्डिकेराः प्रकुर्वन्ति देवीप्रीतिकरीं क्रियाम् ॥ २२५ ॥
प्रायोगिकप्रकरणे प्रवक्ष्ये ते तदप्यहम् ।
निर्गत्य पूजागृहतो विहरेत् स्वेच्छया ततः ॥ २२६ ॥

कुम्भसम्भार क्रिया—इसी अवसर पर भाण्डिकेर लोग देवी को प्रसन्न करनेवाली कुम्भसम्भार नामक क्रिया को करते हैं । इसको भी मैं तुमको प्रयोग के प्रकरण में बतलाऊँगा । शाबरोत्सव के पश्चात् पूजागृह से निकलकर साधक स्वच्छन्द विचरण करे ॥ २२५-२२६ ॥

[भोजनकालिककर्त्तव्यनिर्देशः]

शृणु भोजनकालीयं कर्तव्यमधुना प्रिये ।
भुञ्जीत प्राच्यभिमुखश्चिरकालं जिजीविषुः ॥ २२७ ॥
याम्यदिग्वदनो देवि यशः कामः समश्नुते ।
पश्चिमाभिमुखो भुंक्ते ईहमानोऽधिकां श्रियम् ॥ २२८ ॥

सिद्धिमुक्ती ह्यभिलषद् भक्षयेदुत्तरामुखः ।
एवं स्थिते धर्मपथे विशेषाच्छक्त्युपासकः ॥ २२९ ॥
सदोत्तराशाभिमुखोऽन्नमद्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ।
बलिदानं तत्र हेतुरित्याह भगवांच्छिवः ॥ २३० ॥
येन केनाप्यासनेन यस्मिन् कस्मिंस्तथासने ।
उपविश्यान्नमश्नीयात् न तु भूमौ कदाचन ॥ २३१ ॥
आदावाचमनं कृत्वा दक्षे संस्थाप्य चोदकम् ।
वाम आचमनीयामत्रमत्र निदधीत वै ॥ २३२ ॥
रात्रौ पुरः प्रदीपं च दिवाग्निं च सुरेश्वरि ।
तेनास्य जाठरो वह्निर्नित्यसिद्धो भवत्यहो ॥ २३३ ॥
भूतप्रेतपिशाचानां सान्निध्यं न च जायते ।
रक्षांसि नावलुम्पन्ति तदन्नं तद् हविस्तथा ॥ २३४ ॥
नैर्ऋत्याग्रां मारुतान्तां रेखामुदकधारया ।
रोषरावास्त्रमुच्चार्य कुर्याद्दक्षिणपाणिना ॥ २३५ ॥
वायव्याग्रां तथैशानावसानां तदनन्तरम् ।
ऐशानकोणादारभ्याग्नेयान्तां तदनन्तरम् ।
आग्नेयाग्रां नैर्ऋत्यन्तां सर्वशेषे विभावयेत् ॥ २३६ ॥
मण्डलं मध्यविन्द्वाद्यं रक्षःकोणे बहिर्लिखेत् ।
वज्रं वायव्यकोणे च चन्द्ररेखां सबिन्दुकाम् ॥ २३७ ॥
ईशानकोणे विलिखेदङ्कुशं वह्निकोणगम् ।
अवाच्युदीच्यगां रेखा मध्ये कुर्यात् ततः परम् ॥ २३८ ॥
प्रतीचीप्राच्यनुगतां पुनस्तदुपरि न्यसेत् ।
रेखाग्रं चन्द्ररेखाभिः सबिन्दुभिरुपस्पृशेत् ॥ २३९ ॥

भोजनकालिककर्त्तव्य—हे प्रिये! अब भोजनकालिककर्त्तव्य को सुनो । अधिककाल तक जीवित रहने का इच्छुक साधक पूर्व दिशा में मुँहकर भोजन ग्रहण करे । हे देवि! दक्षिण दिशा की ओर मुँहकर भोजन ग्रहण करनेवाला यश और काम का उपभोग करता है । जो अधिक धन चाहता है वह पश्चिमाभिमुख होकर भोजन ग्रहण करता है । सिद्धि और मोक्ष चाहनेवाला उत्तर मुख होकर भोजन ग्रहण करे ।[1] ऐसा धर्म का नियम होने पर शक्ति का विशिष्ट उपासक दोनों सन्ध्याओं में सर्वदा उत्तर दिशा की ओर मुँहकर भोजन करे । इस विषय में बलिदान हेतु है—ऐसा भगवान् शिव ने कहा है । जिस किसी भी आसन पर जिस किसी भी

---

[1] तुलनीय— आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥ (मनुस्मृति २।५२)

प्रकार से बैठकर अन्न ग्रहण करना चाहिये किन्तु भूमि पर बैठकर (भोजन) नहीं करना चाहिये । पहले आचमन करे फिर जल पात्र को अपने दायें रखे । आचमन का पात्र (= छोटा गिलास आदि) अपने बायें रखे । हे सुरेश्वरि! रात्रि में दीपक के सामने और दिन में अग्नि के सामने भोजन करना चाहिये । इससे इस भोजन कर्त्ता की जठराग्नि नित्यसिद्ध रहती है । साथ ही भूतप्रेत पिशाच भोजनकर्त्ता के पास नहीं आते । उस अन्न और उस हवि को राक्षस लोग नहीं चुराते । भोजनपात्र रखने के स्थान पर पहले नैर्ऋत्यकोण से प्रारम्भ कर वायव्यकोण तक दायें हाथ से जलधारा गिरानी चाहिये । जलधारा गिराते समय क्रोध राव और अस्त्र (= हूं फ्रें फट्) का उच्चारण करना चाहिये । उक्त जलधारा के बाद वायव्यकोण से लेकर ईशानकोण तक धारा गिरानी चाहिये । पुनः ऐशान कोण से अग्निकोण तक और सबके अन्त में अग्निकोण से नैर्ऋत्यकोण तक जलधारा गिराये । उसके बाद नैर्ऋत्यकोण में एक गोल मण्डल बनाये । उसके बीच में बिन्दु लिखे । वायव्यकोण में वज्र और ईशानकोण में बिन्दुयुक्त अर्धचन्द्र बनायें। वह्निकोण में अङ्कुश लिखे । इसके बाद मध्य में दक्षिण से उत्तर की ओर रेखा खींचे । उसके ऊपर पश्चिम से पूरब की ओर रेखा खींचे । रेखाओं के अग्रभाग को बिन्दुयुक्त चन्द्र से जोड़े ॥ २२७-२३९ ॥

निर्मिते मण्डले वारिधारयैवं वरानने ।
स्वयं वान्योऽथवा तत्र न्यसेद् भोजनभाजनम् ॥ २४० ॥
तदुपस्करवस्तूनि यावन्ति रचितानि हि ।
पृथक् पृथक्तया तत्र विन्यसेद् भाजनाग्रतः ॥ २४१ ॥
ततो दक्षिणहस्तेन तदन्नं वारिणोक्षितम् ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रणमेदिष्टरूपि हि ॥ २४२ ॥
हविराक्तं विधायादौ तेमनालोडितं ततः ।
गृहीत्वा दक्षहस्तेन किञ्चिदन्नं जलान्वितम् ॥ २४३ ॥
घनबीजं समुच्चार्य पर्जन्यं च भ्यसन्तिमम् ।
नमस्तस्यानु नैर्ऋत्यकोणे पूर्वोदिते न्यसेत् ॥ २४४ ॥
तारात् प्रजापतिभ्योऽनु हृदुच्चार्यानिलाह्वये ।
दद्यादन्नं तोययुतं तत ऐशानमण्डले ॥ २४५ ॥
क्षुद्भ्यो नमस्तस्य बीजं पुर उक्त्वा बलिं न्यसेत् ।
तद्वत् तृड्भ्यो नमः प्रोच्य तद्बीजाद्यं सुरार्चिते ॥ २४६ ॥
दद्यात् सृण्युपरिष्टात्तु सतोयान्नं च साधकः ।
ततः स्वदक्षे पूर्वस्यां कुर्याद् वर्तुलमण्डलम् ॥ २४७ ॥
आरभ्य पूर्वहरितो यावत् स्यात् विदिगीश्वरि ।
तात्रद् दद्यात् सतोयान्नं पठन् मन्त्रं पृथक् पृथक् ॥ २४८ ॥

चैतन्यं प्रणवो माया पाशः कामश्च शाकिनी ।
योगिनी कमला चेति बीजान्यष्टौ पृथक् पृथक् ॥ २४९ ॥
पुष्टिः कान्तिर्बलं बुद्धिः वीर्यं ज्ञानं तथैव च ।
वृद्धिः सिद्धिरिति ह्यष्टौ भिन्नभिन्नपदानि हि ॥ २५० ॥
दायै नमश्च सर्वेभ्यः क्रमेण परिकीर्तयेत् ।
एतास्तु कालिकादेव्याः शक्तिरूपास्तु मूर्तयः ॥ २५१ ॥
परिवारतया ख्याता अन्नाधिष्ठात्र्य ईरिताः ।
एतास्तत्तत्प्रदायिन्यः स्युरन्नेन प्रपूजिताः ॥ २५२ ॥

हे वरानने! इस प्रकार जलधारा के द्वारा मण्डल बनाये जाने के बाद स्वयं या कोई अन्य व्यक्ति उस मण्डल पर भोजनपात्र रखे । उपस्कर (= भोजन को स्वादिष्ट बनानेवाली) वस्तुयें जो भी बनायी गयी हैं, वे पात्र के आगे अलग-अलग रखनी चाहिये । इसके बाद दायें हाथ से जल के द्वारा उक्षित उस अन्न को शिर पर अञ्जलि रखकर इष्टरूप में उसको प्रणाम करे । पहले हवि को बनाकर उसको तेमन (= कढ़ी) में डुबोकर दायें हाथ से थोड़ा अन्न और जल लेकर धन बीज का तथा 'पर्जन्य' शब्द का भ्यसन्त उच्चारण करने के बाद 'नमः' कहकर (उस कारस्थ अन्न को) नैर्ऋत्यकोण में छोड़ दे । (मन्त्र—वभं (?) पर्जन्येभ्यो नमः) । इसके बाद तार के पश्चात् 'प्रजापतिभ्यः' के पश्चात् हृदय का उच्चारण कर जल सहित अन्न को वायव्यकोण में देना चाहिये (मन्त्र—ॐ प्रजापतिभ्यो नमः) । इसके बाद ईशान मण्डल पर उसके (= क्षुधा) के बीज को पहले कहकर 'क्षुद्भ्यो नमः' कहकर बलि दे (मन्त्र—म्लीं क्षुद्भ्यो नमः) । इसी प्रकार हे सुरार्चिते! पहले उसके (तृषा के) बीज का उच्चारण कर 'तृड्भ्यो नमः' कहकर साधक जल सहित अन्न को सृणि (= अङ्कुश) के ऊपर दे दे (मन्त्र—छीं तृड्भ्यो नमः) । इसके बाद अपने दायीं ओर पूर्व दिशा में गोलमण्डल बनाये । हे ईश्वरि! पूर्व दिशा से आरम्भकर कोण तक अर्थात् ईशानकोण तक आठों दिशाओं-विदिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़ते हुए जल सहित अन्न को पृथक्-पृथक् देना चाहिये । (वे मन्त्र हैं—) चैतन्य प्रणव माया पाश काम शाकिनी योगिनी कमला ये आठ बीज पृथक्-पृथक् कहने चाहिये । फिर पुष्टि कान्ति बल बुद्धि वीर्य ज्ञान वृद्धि और सिद्धि ये भिन्न-भिन्न पद हैं । इस सबके अन्त मं 'दायै नमः' क्रमशः कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ पुष्टिदायै नमः । २. ॐ कान्तिदायै नमः । ३. ह्लीं बलदायै नमः । ४. आं बुद्धिदायै नमः । ५. क्लीं वीर्यदायै नमः । ६. फ्रें ज्ञानदायै नमः । ७. छ्रीं वृद्धिदायै नमः । ८. श्रीं सिद्धिदायै नमः ।)

उपर्युक्त पुष्टि आदि कालिका देवी की शक्तिरूपी मूर्त्तियाँ हैं । ये उसकी परिवार के रूप कही गयी तथा अन्न की अधिष्ठात्री हैं । अन्न के द्वारा पूजित होने पर ये तत्तत् पुष्टि, कान्ति आदि देनेवाली हैं ॥ २४०-२५२ ॥

ततो भोजनपात्राग्रे वितस्तिमित ईश्वरि ।
षण्मण्डलानि कुर्वीत वारिणां चुल्लकानि हि ॥ २५३ ॥
तेषामधस्तात् क्रमतो बिन्दूंस्तावत आचरेत् ।
यावद् हस्तेनोत्पतति पिण्डीकर्तुं च शक्यते ॥ २५४ ॥
तावत् तत्र पुरोऽङ्गं दत्त्वा वारिणि तत उत्सृजेत् ।
अधोऽङ्गबिन्दूपरि तु तदष्टामल(?त्र)वत्ततः ॥ २५५ ॥

इसके बाद भोजनपात्र के आगे एक-एक बलिश्त के छह मण्डल बनाये । (उन मण्डलों पर) एक-एक चुल्लू पानी डाले । उन मण्डलों के नीचे क्रम से उतने ही ऐसे बिन्दु बनायें ताकि वे बिन्दु हाथ से उठाये और पिण्ड बनायें जा सकें । वहाँ (= पिण्ड पर) सामने अङ्ग (= हाथ) रखकर फिर (उन पिण्डों को) जल में छोड़ दें (?)। अधो अङ्ग के बिन्दुओं के ऊपर आठ पात्रों वाला अन्न देना चाहिए ॥ २५३-२५५ ॥

[भोजनोत्सर्गस्य द्वादश मन्त्राभिधानम्]

अतः परं क्रमेणैव मन्त्रान् द्वादश तान्त्रिकान् ।
वक्ष्यमाणान् मया देवि सावधाना निशामय ॥ २५६ ॥
तारो माया च रावश्च कूर्चकुण्डे सकर्णिके ।
सुरसश्चापि फेत्कारी घटी चेति नवैव हि ॥ २५७ ॥
बीजानि पुरतो दत्त्वा संहारादित्रिकूटकम् ।
एह्येहि सम्भाष्य ततो भगवत्यपि कीर्तयेत् ॥ २५८ ॥
गुह्यकाली(लि) ततः प्रोच्य सर्वाप्यायनकारिणि ।
इदमन्नं विसन्ध्युक्त्वा गृह्ण खाहि युगं युगम् ॥ २५९ ॥
बलबुद्धिमेधेन्द्रियाणि ततोऽनन्तरमीरयेत् ।
मयि धेहि द्वयं चापि सर्वान्तर्यामिनीति च ॥ २६० ॥
ततः सर्वमिदं ते च स्वदतां तदनन्तरम् ।
प्रसीदद्वितयस्यानु रोषास्त्रे शिर एव च ॥ २६१ ॥
मन्त्रेणानेन देव्यै तु बल्यन्नं विनिवेदयेत् ।
अन्नपिण्डं पुनश्चान्यत् संपरिस्थाप्य मण्डले ॥ २६२ ॥
उदीर्यमाणमनुना समुत्सृज्य निवेदयेत् ।
सारस्वतरमाकामप्रसादाङ्कुशकालिकाः ॥ २६३ ॥
डाकिनीप्रेतभैरव्यः पुरो बीजानि वै नव ।
कूटत्रयं च तदनु पैशाचखेचरीकुलम् ॥ २६४ ॥
योगिनीडाकिनीभ्यो नु इममन्नबलिं वदेत् ।
निवेदयामि च ततः सौम्या उक्ता भवन्तु च ॥ २६५ ॥

सिद्धिं ददत्वनु मयि कृपां दधतु कीर्तयेत् ।
प्रभञ्जनादिबीजालीं ततः सप्त समुल्लिखेत् ॥ २६६ ॥
अडाकिनीं महारात्रिं रोषमस्त्रत्रयं शिरः ।

भोजन दान के बारह मन्त्र—हे देवि! इसके बाद सावधान होकर मेरे द्वारा आगे कहे जानेवाले बारह तान्त्रिक मन्त्रों को सुनो । तार माया राव कूर्च कुण्ड कर्णिका सुरस फेत्कारी और घटी इन नव बीजों को पहले कहने के बाद संहार आदि तीन कूट कहना चाहिये । उसके बाद 'एह्येहि' कहकर फिर 'भगवति' कहना चाहिये । उसके बाद 'गुह्यकालि' कहकर 'सर्वाप्यायनकारिणि' फिर सन्धिरहित 'इदमन्नं' कहे । 'गृह्ण खाहि' को दो-दो बार कहने के बाद 'बलबुद्धिमेधेन्द्रियाणि मयि' का उच्चारण करे । 'धेहि' को दो बार फिर 'सर्वान्तर्यामिनि' उसके पश्चात् 'सर्वमिदं ते स्वदताम्' । फिर दो बार 'प्रसीद' कहने के पश्चात् रोष अस्त्र और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं फ्रें हूं रक्ष्रूं क्ष्रह्रीं रकक्ष्रीं हसखफ्रें रक्षफ्रछ्रौं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं एह्येहि भगवति गुह्यकालि सर्वाप्यायनकारिणि इदमन्नं गृह्ण गृह्ण खाहि खाहि बलबुद्धिमेधेन्द्रियाणि मयि धेहि धेहि सर्वान्तर्यामिनि सर्वमिदं ते स्वदतां प्रसीद प्रसीद हूं फट् स्वाहा) ।

इस मन्त्र से देवी के लिये बलि का निवेदन करना चाहिये । पुनः एक दूसरा अन्नपिण्ड लेकर मण्डल पर रखकर वक्ष्यमाण मन्त्र से उसका उत्सर्जन करे । मन्त्र—सारस्वत् रमा काम प्रासाद अङ्कुश कालिका डाकिनी प्रेत एवं भैरवी इन नौ बीजों को पहले कहकर बाद में पैशाच खेचरी और कुल कूटों को कहकर 'योगिनी डाकिनीभ्यो नु इममन्नबलिं' कहना चाहिये । उसके पश्चात् 'निवेदयामि' उसके बाद 'सौम्या उक्ता भवन्तु, सिद्धिं ददतु, मयि कृपां दधतु' कहना चाहिये । इसके बाद प्रभञ्जन आदि सात बीजों का उल्लेख करना चाहिये । अडाकिनी महारात्रि रोष तीन अस्त्र और शिर यह मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं श्रीं क्लीं हौं क्रों क्रीं खफ्रें स्हौः सौः कमहलचहलक्षरहज्रीं सखक्ल क्ष्मध्रयब्लीं ज्रम्लक्षह्लछ्रीं योगिनीडाकिनीभ्यो नु इममन्नबलिं निवेदयामि सौम्या उक्ता भवन्तु, सिद्धिं ददतु मयि कृपां दधतु, खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रौं खफ्रं खफ्रः डूं (?) खफ्रों हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ २५६-२६६- ॥

इदानीमवधेहि त्वं विनायकबलिं शुभम् ॥ २६७ ॥
पूर्ववन्मण्डले दत्त्वा बल्यन्नं तेमनैर्युतम् ।
जल्पिष्यमाणमन्त्रेण गणाधिपतयेऽर्पयेत् ॥ २६८ ॥
वेदादिपाशगरुडयोगिनीचण्डदक्षिणाः ।
बलिः पद्मश्च तन्द्रा च कूटाः सिद्धोग्रभावनाः ॥ २६९ ॥
महागणाधिपतये विघ्नराजाय चेत्यपि ।

इमं सोपस्करबलिं ददे गृह्लयुगं ततः ॥ २७० ॥
भक्षयद्वितयं चापि सर्वान् विघ्नानितः परम् ।
विनाशयद्वयं चानु ममारिष्टं दहद्वयम् ॥ २७१ ॥
बीजमाप्सरसं चैव मात्सर्यं वैश्वदेवकम् ।
ऋषभं च प्रयाजं च पञ्चैतानीरयेत् क्रमात् ॥ २७२ ॥
अस्त्रत्रयानु स्वाहा च तार्तीयो मनुरीरितः ।

अब तुम विनायक की शुभ बलि को जानो । पूर्व की भाँति मण्डल पर कढ़ी से युक्त बलि अन्न को देकर वक्ष्यमाण मन्त्र से गणाधिपति के लिये बलि देनी चाहिये । मन्त्र—वेदादि पाश गरुड योगिनी चण्ड दक्षिणा बलि पद्म और तन्द्रा के बाद सिद्ध उग्र और भावना नामक तीन कूटों को कहना चाहिये । 'महागणाधिपतये विघ्नराजाय' के पश्चात् 'इमं सोपस्कर बलिं ददे' कहना चाहिये । 'गृह्ल' को दो बार 'भक्षय' को दो बार 'सर्वान् विघ्नान्' इसके बाद दो 'विनाशय' के पश्चात् 'ममादिष्टं' दो 'दह' कहने के अनन्तर अप्सरस् मात्सर्य वैश्वदेव ऋषभ प्रयाज इन पाँच बीजों को क्रम से कहना चाहिये । तीन अस्त्र और 'स्वाहा' यह तीसरा मन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं क्रौं छ्रीं फ्रों रफ्रें रछ्रीं रह्लछ्र रक्षहूं वलखफ्रां खलह्लवनगक्षरछ्रीं अखमसहक्षवळ्रीं (भावनाकूट) महागणाधिपतये विघ्नराजाय इमं सोपस्करबलिं ददे । गृह्ल गृह्ल, भक्षय भक्षय, सर्वान् विघ्नान् विनाशय विनाशय, ममारिष्टं दह दह गां गीं गूं गैं गौं फट् फट् फट् स्वाहा) ।

यह तीसरा मन्त्र कहा गया ॥ २६७-२७२- ॥

तुर्यं वटुकनाथस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ॥ २७३ ॥
पुरोक्तवत् पिण्डितान्नं मण्डले विनिधाय हि ।
समुच्चरन् इमं मन्त्रं वटुकाय समर्पयेत् ॥ २७४ ॥
तारचैतन्यपाशह्री भारुण्डाकूर्चकाकिनीः ।
कालादित्यौ नवैतानि बीजानि प्रोच्चरेत् पुनः ॥ २७५ ॥
रौद्रानन्ताचलाख्यातान् कूटांस्त्रींस्तदनन्तरम् ।
एह्येहि तदनु प्रोच्य महावटुकनाथ च ॥ २७६ ॥
इमं बलिं गृहाणानु सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ।
मम शत्रून् नाशय द्विर्दह द्विर्मारयद्वयम् ॥ २७७ ॥
सर्वैश्वर्यं देहियुग्मं दापयद्वितयं तथा ।
ससौरङ्गं चर्पटादिचतुष्कं तदनन्तरम् ॥ २७८ ॥

हे प्रिये! अब चौथा मन्त्र जो कि वटुकनाथ का है, सुनो । पूर्व कथित की भाँति यहाँ भी मण्डल पर पिण्डित अन्न को रखकर अधोलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए वटुक के लिये बल्यर्पण करना चाहिये । मन्त्र—तार चैतन्य पाश लज्जा भारुण्डा कूर्च काकिनी काल और आदित्य इन नौ बीजों को पहले कहना चाहिये ।

उसके बाद रौद्र अनन्त अचल नामक तीन कूटों को कहना चाहिये । उसके पश्चात् 'ऐह्येहि' कहकर 'महावटुकनाथ इमं बलिं गृहाण सर्वसिद्धिं' के अनन्तर 'दद' को दो बार कहे । 'मम शत्रून्' कहने के पश्चात् 'नाशय, दह, मारय' को दो-दो बार, फिर 'सर्वैश्वर्यं' कहे । 'देहि' और 'दापय' को दो-दो बार कहे । तदनन्तर सौरङ्ग के सहित चर्पट आदि चार के बाद तीन रोष तीन अस्त्र कहकर सबके अन्त में शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं आं ह्रीं प्रीं हूं फ्रीं जूं स: जमरब्लह्रयूं रक्षक्रीं यमहलक्षखफ्रग्लैं एह्येहि महावटुकनाथ इमं बलिं गृहाण सर्वसिद्धिं दद, मम शत्रून् नाशय नाशय दह दह मारय मारय सर्वैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय रजझ्रक्ष्रां (?) रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ २७३-२७८ ॥

रोषास्त्रयोस्त्रिस्त्रिरुक्त्वा सर्वशेषे शिरो वदेत् ।
अधुना क्षेत्रपालस्य शृण्वन्नबलिमुत्तमम् ॥ २७९ ॥
पुरोवत् सकलं दत्त्वा मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ।
चैतन्यमायाकमला जम्भसानू समेखलौ ॥ २८० ॥
ताटङ्कमन्दस्वार्णाश्च बीजानि पुरतो नव ।
कूटत्रयं ततो ब्रूयान्मायामन्दारगह्वरम् ॥ २८१ ॥
हेतुकादिपदं प्रोच्य भीषणान्तेभ्य इत्यपि ।
सर्वेभ्य क्षेत्रपालेभ्य: इमं बलिमितीरयेत् ॥ २८२ ॥
ददे सौम्या भवन्तूक्त्वा मम सिद्धिं समुल्लिखेत् ।
प्रयच्छन्तु तत: शत्रून्नाशयन्तु च कीर्तयेत् ॥ २८३ ॥
हूं फट् स्वाहा भवे(त्) शेष
इत्युक्त्वा वारिणोत्सृजेत् ।

अब क्षेत्रपाल की उत्तम अन्न बलि को सुनो । पूर्व की भाँति सब कुछ निवेदन कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । मन्त्रोद्धार—चैतन्य माया कमला जम्भ सानु मेखला ताटङ्क मन्द स्वार्ण इन नव बीजों को पहले कहना चाहिये । इसके बाद माया मन्दार और गह्वर इन तीन कूटों को कहकर 'हेतुकादि' पद को कहकर 'भीषणान्तेभ्य: सर्वेभ्य: क्षेत्रपालेभ्य इमं बलिं' कहना चाहिये । 'ददे सौम्या भवन्तु' कहकर 'मम सिद्धिं' का उल्लेख करना चाहिये । 'प्रयच्छन्तु' फिर 'शत्रून् नाशयन्तु' कहना चाहिये । अन्त में 'हूं फट् स्वाहा' कहकर जल से उस बलि का उत्सर्ग करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं श्रीं स्क्रीं रह्रीं रक्ष्रीं रस्त्रीं हसफ्रीं (स्वार्ण) जख्म्रसहक्षभ्रीं रक्षफ्रसमहह्लब्म्रऊं (गह्वरकूट) हेतुकादिभीषणान्तेभ्य: सर्वेभ्य: क्षेत्रपालेभ्य इमं बलिं ददे, सौम्या भवन्तु, मम सिद्धिं प्रयच्छन्तु, शत्रून् नाशयन्तु हूं फट् स्वाहा) ॥ २७९-२८३- ॥

अथ षष्ठबलेर्मन्त्रं कथयामि शुचिस्मिते ॥ २८४ ॥
दीयते परिवारेभ्यो यमुच्चार्य फलार्थिभिः ।
चैतन्यतारकमलापाशरोषवधूस्मराः ॥ २८५ ॥
ततः प्रासादशाकिन्यौ पुरो बीजानि वै नव ।
भगमालिकलामालिवेदवत्यस्ततः परम् ॥ २८६ ॥
रत्नकुम्भः पुष्पमाला चूडाकूटं ततः परम् ।
एकावलीं ततो वज्रकवचं ब्रह्मखर्परम् ॥ २८७ ॥
जगदावृत्तिबीजं च दशमं परिकीर्तितम् ।
महाकल्पस्थायिनाम ज्ञेयमेकादशैव हि ॥ २८८ ॥
पारिजाताह्वयं कूटं तद्द्वादशतमं भवेत् ।
एकविंशतिरेवं स्यात् संख्या वै बीजकूटयोः ॥ २८९ ॥
गुह्यकालीसहचरं यावदेकपदादनु ।
परिवारपदं चापि द्वयमेव भ्यसन्तिमम् ॥ २९० ॥
ततः सन्धानसहितमिममन्त्रं बलिं वदेत् ।
गृह्णद्वयं भक्षयद्विः खाहि द्वितयमेव च ॥ २९१ ॥
उक्त्वा कृत्याभिचारांश्च दहद्विर्नाशयद्वयम् ।
सर्वसम्पदमाभाष्य दद देहि द्वयं द्वयम् ॥ २९२ ॥
शत्रून् द्विः संहरोच्चार्य शेषे कूर्चास्त्रकानि च ।
बलिमन्त्राः षडेवं ते कथिता जगदीश्वरि ॥ २९३ ॥

हे शुचिस्मिते! अब छठीं बलि का मन्त्र कह रहा हूँ जिसका फलार्थियों के द्वारा उच्चारण कर परिवारों के लिये बलि दी जाती है । मन्त्रोद्धार—चैतन्य तार कमला पाश रोष वधू स्मर इसके बाद प्रासाद, शाकिनी फिर नव बीजों को पहले कहना चाहिये । इसके बाद भगमालि कलामालि वेदवती रत्नकुम्भ पुष्पमाला चूडाकूट इसके पश्चात् एकावली फिर वज्रकवच ब्रह्मखर्पर और दशवाँ जगदावृत्ति बीज कहा गया है । महाकल्पस्थायि नामक ग्यारहवाँ कूट जानना चाहिये । पारिजात नामक बारहवाँ कूट है । इस प्रकार बीजों और कूटों की कुल संख्या (९ + १२ =) इक्कीस होती है । इसके बाद 'गुह्यकाली सहचर' तथा 'परिवार' पदों को भ्यसन्त कहना चाहिये । इसके बाद सन्धिरहित 'इममन्त्रं बलिं' (ददे) कहना चाहिये । दो 'गृह्ण' 'भक्षय' को दो बार दो 'खाहि' कहकर 'कृत्याभिचारान्' के बाद 'दह' और 'नाशय' को दो-दो बार कहना चाहिये । 'सर्वसम्पदं' कहकर 'दद' 'देहि' को दो-दो बार फिर 'शत्रून्' के अनन्तर 'संहर' को दो बार कहकर अन्त में कूर्च अस्त्र और क (= शिर) कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ओं श्रीं आं हूं स्त्रीं क्लीं सौः फ्रें सहखफ्रक्ष्रां, ह्लक्ष्रां रक्रीं रग्रैं (पुष्पमाला) (चूडाकूट) (एकावली) (वज्रकवच) (ब्रह्मखर्पर) (जगदावृत्ति) (महाकल्प-

स्थायि) (पारिजात) गुह्यकाली सहचरेभ्य: परिवारेभ्य: इममन्नं बलिं ददे । गृह्ण गृह्ण भक्षय भक्षय खाहि खाहि, कृत्याभिचारान् दह दह नाशय नाशय सर्वसम्पदं दद दद देहि देहि शत्रून् संहर संहर हूं फट् स्वाहा) ।

हे जगदीश्वरि! इस प्रकार तुमको छह बलि मन्त्र कहे गये ॥ २८४-२९३ ॥

ऊर्ध्वस्थमण्डलेष्वेतैरुत्सृजेत् साधको बलीन् ।
एषामधस्ताद् ये प्रोक्ता बिन्दवः षड्पुरा मया ॥ २९४ ॥
तद्देवास्तस्य मन्त्राश्च कथयाम्यधुना तव ।
जातवेदा वाडवश्च शन्यगस्त्यौ ततः परम् ॥ २९५ ॥
कालाग्निरुद्रस्तदनु पञ्चमः परिकीर्तितः ।
कल्पान्तकाली षष्ठी तु विज्ञेया तदनन्तरम् ॥ २९६ ॥
तुर्यैक्ये षडिमे शब्दाः कर्तव्याः सुरवन्दिते ।
निधेयः क्रमशः किन्तु वेदादिहृदयान्तरे ॥ २९७ ॥
एतैर्मनुभिरुत्सृज्य तत्तद्देवेभ्य ओदनम् ।
मूलदेव्यै सर्वमनुमुत्सृजेत्तदनन्तरम् ॥ २९८ ॥
उक्तं मन्त्रद्वयं तत्र वैदिकं तान्त्रिकं तथा ।
दद्यादुभयमुच्चार्य क्रम एष शिवोदितः ॥ २९९ ॥
तत्रादौ वैदिकं वच्मि वक्ष्ये तदनु तान्त्रिकम् ।

साधक ऊर्ध्वस्थ मण्डलों में इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए बलि दे । इन मण्डलों के नीचे जिन छह बिन्दुओं की चर्चा मैंने पहले की थी उन बिन्दुओं की देवतायें और उनके मन्त्रों को अब मैं बतला रहा हूँ । जातवेदा वाडव शनि अगस्त्य इसके बाद कालाग्नि रुद्र पाँचवें देव कहे गये हैं । इसके बाद कल्पान्तकाली को छठीं देवता समझना चाहिये । हे सुरवन्दिते! इन छह शब्दों को चतुर्थी एकवचनान्त कहना चाहिये । किन्तु इन शब्दों के आदि में वेद और अन्त में हृदय कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ जातवेदसे नमः । २. ॐ वाडवाय नमः । ३. ॐ शनैश्चराय नमः । ४. ॐ अगस्त्याय नमः । ५. ॐ कालाग्निरुद्राय नमः । ६. ॐ कल्पान्तकाल्यै नमः ।)

इन मन्त्रों के द्वारा तत्तद् देवताओं के लिये ओदन का उत्सर्ग कर मूल (अर्थात् प्रधान) देवता के लिये समस्त मन्त्रों का उत्सर्ग करना चाहिये । वह मन्त्र दो प्रकार का कहा गया है—वैदिक और तान्त्रिक । दोनों का उच्चारण कर बलि देनी चाहिये । यह क्रम शिव के द्वारा कहा गया है । उनमें से पहले वैदिक मन्त्र बतला रहा हूँ । उसके बाद तान्त्रिक को बतलाऊँगा ॥ २९४-२९९- ॥

इदमन्नं प्राणतनुधारणकारणं सदा ॥ ३०० ॥
यथाविभवसम्भारसम्भावितमुरीकुरु ।

त्वमेवान्नं त्वमेवात्री त्वं दात्री च ग्रहीत्र्यपि ॥ ३०१ ॥
त्वं भोक्त्री च जवित्री च संहर्त्र्यपि जनित्र्यपि ।
कल्पान्तकालनर्तव्यमहासंहारमूर्तये ॥ ३०२ ॥
त्रिलोकीग्रासकारिण्यै किमन्वन्ते प्रदीयते ।
तथापि भक्तिभावेन यत्ते देवि निवेदितम् ॥ ३०३ ॥
तदन्नं मयि वात्सल्यात् सादरा भुङ्क्ष्व कालिके ।
निवेद्यानेन मन्त्रेण तान्त्रिकं समुदीरयेत् ॥ ३०४ ॥
तारो मैधश्च माया च प्रासादा सैव योगिनी ।
प्रेत: परा डाकिनी च फेत्कारी हारकर्णिके ॥ ३०५ ॥
संहारादित्रयं भोगकूटाद्यं तदनन्तरम् ।
पदं सिद्धिकरालीति सिद्धितो विकरालि च ॥ ३०६ ॥
भगवत्यथ सङ्कीर्त्य गुह्यकालि ततो वदेत् ।
इदमन्नं विसन्ध्युक्त्वा भुञ्ज खाहि युगं युगम् ॥ ३०७ ॥
भक्षयद्वितयं चापि मां रक्ष युगलं तत: ।
लज्जा महाचण्डयोगेश्वरीति तदनन्तरम् ॥ ३०८ ॥
वज्रकापालिनि तत: खेचरीचक्रनायिके ।
हसद्वयं बल्लयुगं यष्टिडिण्डिमदारुणा: ॥ ३०९ ॥
रोषस्यास्त्रस्य च त्रिस्त्रि: स्वाहाशेषे व्यवस्थितम् ।

(मन्त्र—'इदमन्नं......................भुङ्क्ष्व कालिके ।')

यह अन्न सदा प्राण एवं शरीर के धारण का कारण है । अपने सामर्थ्य के अनुसार एकत्रित किये गये इस अन्न का स्वीकार करो । तुम्हीं अन्न हो तुम्हीं खानेवाली हो । तुम देनेवाली और तुम्हीं लेनेवाली हो । तुम भोक्त्री तुम्हीं जवित्री (= वेगवती) संहारकर्त्री और उत्पन्न करनेवाली हो । कल्पान्त काल में नृत्य करनेवाले महाकाल की मूर्त्तिरूपे, त्रिलोक को ग्रास बनानेवाली के लिये अन्त में क्या दिया जा सकता है (अर्थात् देने के लिये कुछ भी शेष नहीं बचता) तो भी हे देवि! भक्तिभाव से जो तुम्हारे लिये अर्पित किया गया उस अन्न का, हे कालिके! मेरे ऊपर अपने वात्सल्य के कारण तुम आदरपूर्वक ग्रहण करो ।

इस मन्त्र से अन्न को निवेदित कर तान्त्रिक मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । मन्त्रोद्धार—तार मैध माया प्रासाद योगिनी प्रेत परा डाकिनी फेत्कारी हार कर्णिका संहार आदि तीन कूट भोगकूट तदनन्तर 'सिद्धिकरालि' पद पुन: 'सिद्धिविकरालि' पद उसके बाद 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' कहना चाहिये । सन्धिरहित 'इदमन्नं' कहकर 'भुञ्ज खाहि' को दो-दो बार 'भक्षय' को दो बार 'मां' के बाद 'रक्ष' को दो बार उसके पश्चात् लज्जा बीज तदनन्तर 'महाचण्डयोगेश्वरि वज्रकापालिनि' उसके

बाद 'खेचरीचक्रनायिके' दो 'हस' दो 'बल्ल' उसके अनन्तर यष्टि डिण्डिम दारुण फिर रोष और अस्त्र को तीन-तीन बार अन्त में 'स्वाहा' स्थित होता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्लीं आं छ्रीं स्हौः गुं खफ्रें हसखफ्रें ह्लक्षम्लैं क्ष्ह्लीं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं चरक्ष्लहमह्लूं सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि भगवति गुह्यकालि इदमन्नं भुङ्क्ष भुङ्क्ष खाहि खाहि भक्षय भक्षय मां रक्ष रक्ष ह्लीं महाचण्डयोगेश्वरि वज्रकापालिनि खेचरीचक्रनायिके हस हस बल्ल बल्ल (यष्टि?) (डिण्डिम?) (दारुण?) हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ ३००-३०९- ॥

पठित्वेमं मनुं क्षिपेदम्बूनि मूर्धनि ॥ ३१० ॥
निमील्य नयने तिष्ठेत् क्षणं तदनु पार्वति ।
आपोऽशनं ततः कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ३११ ॥
इदमन्नं हव्यशेषं देव्युच्छिष्टं रसान्वितम् ।
अश्नामि स्वर्गकैवल्यधर्मकामार्थसिद्धये ॥ ३१२ ॥
इत्युच्चार्य मनुं नम्रशिरा वामकनिष्ठया ।
गण्डूषं ब्राह्मतीर्थेन स्पृशन् स्थालीं चरेद् बुधः ॥ ३१३ ॥
ततो दक्षकराङ्गुष्ठानामिके योचि(जि)ते चरन् ।
हविराक्तं स्तोकमन्नं गृहीत्वा वदने क्षिपेत् ॥ ३१४ ॥
प्राणाहुतीभिर्जुहुयादन्याभिरपि पार्वति ।
नानामतीयान्नप्रीतिं कथयाम्यवधारय ॥ ३१५ ॥
ताराग्निजाययोर्मध्ये विभक्त्या तुर्ययान्विताः ।
क्रमेण वायवः पञ्च तेषां नामानि वै शृणु ॥ ३१६ ॥
प्राणापानसमानोदानव्यानाः परमेश्वरि ।
रीत्यानया भाण्डिकेराः जुह्वत्यन्यानपि प्रिये ॥ ३१७ ॥
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
एतस्मादधिकं किञ्चित् कुर्युः कापालिकाः क्रमम् ॥ ३१८ ॥
युक्तियुक्तं तमपि ते कथयामि वरानने ।
तयोरेवान्तरे शब्दौ द्वौ द्वौ भ्यामन्तिमे सदा ॥ ३१९ ॥
कृत्वा विग्रहितौ पूर्वोक्तरीत्या जुहुयाच्छनैः ।
क्षुत्तृषौ च समालस्यं निद्रातन्द्रे तथैव च ॥ ३२० ॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ ततः परम् ।
रोगशोकौ जन्ममृत्यू धर्माधर्मौ कृताकृते ॥ ३२१ ॥
पुण्यपापे दिवारात्री ज्ञानाज्ञाने शुभाशुभे ।
जाग्रत्स्वप्नौ खलु सुषुप्तितुरीये ततोऽनु च ॥ ३२२ ॥
भावाभावौ स्वर्गमर्त्यौ ततः सत्यानृते प्रिये ।
तस्यानु प्रकृतिपुरुषौ तन्मात्रेन्द्रिय इत्यपि ॥ ३२३ ॥

जीवात्मपरमात्मानौ बन्धमोक्षौ तथैव च ।
..................सुरीये च ततोऽनु च ॥ ३२४ ॥
चतुर्विंशतमौ बिम्बप्रतिबिम्बौ वरानने ।
सर्वशेषे परिज्ञेये शिवशक्ती च साधकैः ॥ ३२५ ॥
पञ्चविंशतिसंख्याकमेतत्तत्त्वमुदीरितम् ।

हे शर्वे! इस मन्त्र को पढ़कर शिर पर जल छिड़कना चाहिये । हे पार्वति! उसके बाद एक क्षण के लिये आँख बन्द कर बैठना चाहिये । इसके अनन्तर अधोलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए आपोशन (= जलपान) करना चाहिये । (मन्त्र—इदमन्नं...........कामार्थसिद्धये) ।

हव्य शेष देवी के जूठे तथा रसयुक्त इस अन्न को स्वर्ग कैवल्य (= मोक्ष) धर्म काम और अर्थ की सिद्धि के लिये मैं खा रहा हूँ । इस मन्त्र का उच्चारण कर शिर झुका कर बायें हाथ की कनिष्ठा से गण्डूष और ब्राह्मतीर्थ से स्थाली का स्पर्श करते हुए व्यवहार करना चाहिये । इसके बाद दायें हाथ के अँगूठे और अनामिका को जोड़कर हवि (= घी) से परिप्लुत थोड़ा सा अन्न लेकर अपने मुँह में डाले । हे पार्वति! अन्य प्राणाहुतियों से भी हवन करना चाहिये । अब भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार अन्न प्रीति को बतला रहा हूँ, समझो । (मन्त्रोद्धार—) तार एवं अग्निजाया के मध्य चतुर्थी विभक्ति से युक्त पाँच वायुओं को कहना चाहिये । उनके नामों को सुनो । हे परमेश्वरि! वे नाम हैं—प्राण अपान समान उदान और व्यान ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ प्राणाय स्वाहा । २. ॐ अपानाय स्वाहा । ३. ॐ समानाय स्वाहा । ४. ॐ उदानाय स्वाहा । ५. ॐ व्यानाय स्वाहा ।)

हे प्रिये! इसी रीति से अर्थात् (तार और वह्निजाया के मध्य में रखकर) भाण्डिकेर लोग अन्य वायुओं के लिये हवन करते हैं । (उन वायुओं के नाम हैं—) नाग कूर्म कृकर देवदत्त और धनञ्जय ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ नागाय स्वाहा । २. ॐ कूर्माय स्वाहा । ३. ॐ कृकराय स्वाहा । ४. ॐ देवदत्ताय स्वाहा । ५. ॐ धनञ्जयाय स्वाहा ।)

कापालिक लोग इससे कुछ अधिक क्रम करते हैं । हे वरानने! युक्तियुक्त उसको भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । उन्हीं दोनों (अर्थात् तार एवं वह्निजाया) के भीतर दो-दो शब्द, जिनके अन्त में 'भ्याम्' रहता है कहे जाते हैं । वे दोनों शब्द समासयुक्त होते हैं । पूर्वोक्त रीति से उनका उच्चारण करते हुए धीरे-धीरे आहुति देनी चाहिये । वे दो-दो शब्द हैं—क्षुत्तृषा निद्रातन्द्रा कामक्रोधलोभमोहमदमान-रोगशोकजन्ममृत्युधर्माधर्मकृताकृतपुण्यपापदिवारात्रिज्ञानाज्ञानशुभाशुभजाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-तुरीयभावाभावस्वर्गमर्त्यसत्यानृत हे प्रिये! उसके बाद प्रकृतिपुरुष तन्मात्रेन्द्रिय जीवात्म परमात्मा बन्धमोक्ष.......(?) सुरीय बिम्बप्रतिबिम्ब और हे वरानने! सबके अन्त में साधकों को शिवशक्ति जानना चाहिये । यह पचीस संख्यावाला तत्त्व कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. ॐ क्षुत्तृड्भ्यां स्वाहा । २. ॐ निद्रातन्द्राभ्यां स्वाहा । ३. ॐ कामक्रोधाभ्यां स्वाहा । ४. ॐ लोभमोहाभ्यां स्वाहा । ५. ॐ मदमानाभ्यां स्वाहा । ६. ॐ रोगशोकाभ्यां स्वाहा । ७. ॐ जन्ममृत्युभ्यां स्वाहा । ८. ॐ धर्माधर्माभ्यां स्वाहा । ९. ॐ कृताकृताभ्यां स्वाहा । १०. ॐ पुण्यपापाभ्यां स्वाहा । ११. ॐ दिवारात्रिभ्यां स्वाहा । १२. ॐ ज्ञानाज्ञानाभ्यां स्वाहा । १३. ॐ शुभाशुभाभ्यां स्वाहा । १४. ॐ जाग्रत्स्वप्नाभ्यां स्वाहा । १५. ॐ सुषुप्तितुरीयाभ्यां स्वाहा । १६. ॐ भावाभावाभ्यां स्वाहा । १७. ॐ स्वर्गमर्त्त्याभ्यां स्वाहा । १८. ॐ सत्यानृताभ्यां स्वाहा । १९. ॐ प्रकृतिपुरुषाभ्यां स्वाहा । २०. ॐ तन्मात्रेन्द्रियाभ्यां स्वाहा । २१. ॐ जीवात्मपरमात्मभ्यां स्वाहा । २२. ॐ बन्धमोक्षाभ्यां स्वाहा । २३. ॐ ....(?)सुरीयाभ्यां स्वाहा । २४. ॐ बिम्बप्रतिबिम्बाभ्यां स्वाहा । २५. ॐ शिवशक्तिभ्यां स्वाहा) ॥ ३१०-३२५- ॥

तत्त्वाहुतिरियं प्रोक्ता यामलादिषु शम्भुना ॥ ३२६ ॥
अनित्यत्वेन वेदाध्वचारिणां सम्मता त्वियम् ।
कौलाचारवतां किन्तु नित्यत्वेन प्रकीर्तिता ॥ ३२७ ॥
पञ्चविंशाहुतिः श्रेष्ठा दशमध्याधमा ततः ।
एवं तिष्ठति सिद्धान्ते प्राणाहुत्या मतान्तरे ॥ ३२८ ॥
यावद् यस्य भवेच्छक्यं तावत्तेन विधीयते ।
यावत् प्राणहुतीः कुर्यात् तावत् भोजनभाजने ॥ ३२९ ॥
कनिष्ठा तिष्ठति तथा मौनं चापि विधीयते ।
ततस्तदन्नं भुञ्जीत यद्देव्यै विनिवेदितम् ॥ ३३० ॥
न हसन् ग्रासमश्नीयात् नातिरिक्तं न वा य(चा?)मन् ।
तमशब्दं पिबेत्तोयं नाधिकं भोजनान्तरे ॥ ३३१ ॥
न्यूनाधिक्ये रसानां हि न निन्द्यात् किं च पूजयेत् ।
नैवेद्यसम्भृतौ देव्यै यद्यद्द्रव्यं निवेदितम् ॥ ३३२ ॥
महाप्रसादभूतं तत् सर्वं भुञ्जीत तत्क्षणे ।
नैकाक्यद्यात् साधकस्तु कौलान् बालांश्च बान्धवान् ॥ ३३३ ॥
सहोपवेशयेत् तत्र यत्र भुंक्ते स्वयं रहः ।
एषामभावे कौलिक्यो भवेयुः स्थापिता अपि ॥ ३३४ ॥
भागत्रयं पूरयीत जठरस्य शनैः शनैः ।
एको भागोऽवशेषः स्यात् सञ्चारायानिलाम्बुनोः ॥ ३३५ ॥
तिक्ताद्यमम्लमध्यं मधुरान्तञ्च भोजनम् ।
आयुर्वेदादिषु प्रोक्तमात्रेयादिमहर्षिभिः ॥ ३३६ ॥
एवं निर्वर्त्य सकलं भोजनं साधकः स्वयम् ।
उत्क्षिप्य भोजनामत्रमन्यत्र स्थापयेच्छनैः ॥ ३३७ ॥

अवशिष्टं किञ्चिदन्नंयमवश्यं भाजने न्यसेत् ।
तदन्नं पिण्डितं कृत्वा सकलं दक्षपाणिना ॥ ३३८ ॥
स्थाल्यधो बलिमादध्यात् उभयत्र वरानने ।
उच्छिष्टभैरवायादौ पश्चिमायां दिशि न्यसेत् ॥ ३३९ ॥
तथैवोच्छिष्टचाण्डालिन्यै पूर्वस्यामपि क्रमात् ।
एतयोर्मन्त्रयुगलमिदानीमवधारय ॥ ३४० ॥
मैधं माया योगिनी च रावरामास्मराश्च रुट् ।
कुण्यापो दोमुत्तला (?) च बीजान्येतानि वै दश ॥ ३४१ ॥
उच्छिष्टभैरवायोक्त्वा तथोच्छिष्टबलिं वदेत् ।
गृह्णद्वयं भुञ्जयुग्मं हूं फट् स्वाहा च पश्चिमे ॥ ३४२ ॥

यह तत्त्वाहुति यामल आदि (ग्रन्थों) में शिव के द्वारा कही गयी है । वैदिक मतावलम्बी इसको अनित्य मानते हैं किन्तु कौलमार्गी लोगों के मत में यह नित्य करणीय है । पचीस आहुतियाँ श्रेष्ठ अर्थात् सर्वोत्तम होती हैं । दश मध्यकोटि की होती हैं । इससे कम अधम मानी गयी हैं । प्राणाहुति के मतमतान्तर में यह सिद्धान्त है । जिससे जितना सम्भव हो वह उतना करे—ऐसा विधान है । जब तक प्राणाहुतियाँ दी जाती हैं तब तक भोजनपात्र में बायें हाथ की कनिष्ठा रखी रहती है और होता मौन रहता है । इसके बाद जो अन्न देवी के लिये निवेदित है उसका भोजन करना चाहिये । हँसते हुए ग्रास नहीं खाना चाहिये । संख्या से अधिक (अथवा मुँह में जितना समाये उससे बड़ा) अथवा भूख से अधिक ग्रास नहीं खाना चाहिये । पानी पीते समय नहीं खाना चाहिये । जल को विना शब्द के पीना चाहिये । (अर्थात् जलपान के समय शब्द नहीं होना चाहिये) । भोजन के बीच में अधिक जल नहीं पीना चाहिये (अर्थात् बहुत आवश्यक हो तभी भोजन के बीच पीना चाहिये) रस अर्थात् नमक आदि यदि कम या अधिक हों तो भोजन की निन्दा नहीं करनी चाहिये किन्तु आदर करना चाहिये । नैवेद्य को एकत्रित करने के सन्दर्भ में जो-जो द्रव्य देवी के लिये अर्पित किया गया वह महाप्रसाद हो जाता है । उस सब को उसी समय खा लेना चाहिये । साधक उस महाप्रसाद को अकेले न खाये किन्तु वह एकान्त में जहाँ बैठा है वहाँ कौलों बालकों और बान्धवों को बैठा लेना चाहिये । इनके अनुपलब्ध होने पर कौलिकी स्त्रियाँ भी बैठायी जा सकती हैं । साधक अपने पेट के तीन भाग को (महाप्रसाद से) पूरित करे । एक भाग को उसमें जल और वायु के लिये छोड़ दे । भोजन के प्रारम्भ में तिक्त, मध्य में खट्टा एवं अन्त में मधुर पदार्थ खाना चाहिये—ऐसा आयुर्वेद आदि शास्त्रों में आत्रेय आदि ऋषियों के द्वारा कहा गया है । इस प्रकार साधक भोजन करने के बाद स्वयं भोजनपात्र को उठाकर धीरे से अन्यत्र रख दे । हे वरानने! भोजनपात्र में कुछ अन्न अवश्य छोड़ देना चाहिये । भोजन के बाद उस अवशिष्ट अन्न का दायें हाथ से पिण्ड बनाकर दो जगह (अर्थात् पाकपात्र और भोजनपात्र) के नीचे बलि

देनी चाहिये । पहले पश्चिम दिशा में उच्छिष्टभैरव के लिये बलि दे । उसके बाद उसी प्रकार पूर्व दिशा में उच्छिष्टचाण्डालिनी के लिये बलि दे । अब इन दोनों के दो मन्त्रों को जानो । (मन्त्रोद्धार—) मैध माया योगिनी राव रामा स्मर शेष कुण्याप (कुणप) दो मुत्तला (मूर्वला ?) इन दश बीजों को कहने के बाद 'उच्छिष्टभैरवाय' कहकर फिर 'उच्छिष्टबलिं' कहना चाहिये । दो 'गृह्ण' दो 'भुज' के बाद अन्त में 'हूँ फट् स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं क्लीं हूं कं (ल्क्षीं ल्क्षीं ?) उच्छिष्टभैरवाय उच्छिष्टबलिं गृह्ण गृह्ण भुज भुज हूं फट् स्वाहा) ॥ ३२६-३४२ ॥

अथापरं शृणु मनुं पूर्वस्यां येन दीयते ।
मैधं पाशः स्मरो रावः कूर्चः क्षेत्रपडाकिनीः ॥ ३४३ ॥
पूतनाशक्तिलिङ्गाश्च वारी(टी) चेति दशोद्धरेत् ।
एह्येह्युच्छिष्टचाण्डालि मनूक्तं सन्धिवर्जितम् ॥ ३४४ ॥
विरूपवेश उद्धृत्य सुमुख्युक्त्वा पिशाचिनि ।
इममुच्छिष्ट सम्भाष्य बलिं गृह्णयुगं ततः ॥ ३४५ ॥
खादद्वितयमस्यानु मुद्रां खेचर्यनन्तरम् ।
युगं प्रकटय प्रोच्य सन्ध्यूनमभिचारिणम् ॥ ३४६ ॥
सामर्थ्यं देहि युग्मं च पिशाचिन्यास्त्रयं ततः ।
अत्रापि चरमे ज्ञेया पूर्ववच्चतुरक्षरी ॥ ३४७ ॥
एवं मनुभ्यामेताभ्यां दत्त्वा बलियुगं प्रिये ।
तत्रैवाचमनं कुर्यात् षडङ्गं तदनन्तरम् ॥ ३४८ ॥
प्रसादभूतं देव्या यत्ताम्बूलाद्यास्यवासनम् ।
तद् गृहीत्वा वरारोहे स्वेच्छया विहरेत् ततः ॥ ३४९ ॥

अब दूसरे मन्त्र को सुनो जिससे पूर्व दिशा में बलि प्रदान की जाती है । (मन्त्रोद्धार—) मैध पाश स्मर राव कूर्च क्षेत्रपाल डाकिनी पूतना शक्ति लिङ्ग और (वाटी) इन दश को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद 'एह्येहि उच्छिष्टचाण्डालिनि' को सन्धिरहित कर कहना चाहिये । 'विरूपवेशे' को उद्धृतकर 'सुमुखि' कहकर 'पिशाचिनि इममुच्छिष्ट' कहकर 'बलिं' फिर दो 'गृह्ण' दो 'खाद' के बाद 'खेचरीमुद्रां' के अनन्तर दो 'प्रकटय' कहकर सन्धिरहित 'अभिचारिणां सामर्थ्यं' दो 'देहि' तीन 'पिशाचिनी' के पश्चात् अन्त में पूर्व की भाँति चार अक्षरों का समूह कहा जाना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं क्लीं फ्रें हूं क्षौं खफ्रें फ्यूं ब्लूं हलक्षैं फ्रश्रौं एहि एहि उच्छिष्टचाण्डालि विरूपवेशे सुमुखि पिशाचिनि इममुच्छिष्टबलिं गृह्ण गृह्ण खाद खाद खेचरीमुद्रां प्रकटय प्रकटय अभिचारिणां सामर्थ्यं देहि देहि ठः ठः हूं फट् स्वाहा) ।

हे प्रिये! इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों से दो बलि देकर वहीं पर आचमन एवं षडङ्गन्यास करना चाहिये । देवी का जो प्रसाद स्वरूप ताम्बूल आदि मुखशोधन है उसको लेकर हे वरारोहे! स्वेच्छया विहार करना चाहिये ॥ ३४३-३४९ ॥

[सायन्तनकृत्यनिर्देश:]

अथ सायन्तनभवं कृत्यं समवधारय ।
मध्याह्नकालवत् सन्ध्यां वैदिकीं समुपास्य हि ॥ ३५० ॥
तान्त्रिकीमाचरेद्देवि त्रिवर्णस्थो न चेतरः ।
तुर्यस्तु तान्त्रिकीमेव लोभादप्यबलाजनः ॥ ३५१ ॥
अस्तङ्गमनवेलायां मार्तण्डस्य निशासु च ।
कृतशौचस्तथाचान्तः पुनः पूजालयं विशेत् ॥ ३५२ ॥
पुष्पस्त्रग्धूपनैवेद्यबलिदीपादिसम्भृतिम् ।
पूजाकालीनतत्कुर्यात् सायन्तनसमर्चने ॥ ३५३ ॥
आरात्रिकविभवतो दीपवृक्षानपि प्रिये ।
क्षणं निमील्य नयने ध्यानं पूर्वोक्तवच्चरेत् ॥ ३५४ ॥

इसके बाद सायङ्काल होनेवाले कार्य को जानो । मध्याह्नकाल की भाँति वैदिक सन्ध्या कर हे देवि! तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये । उक्त दोनों सन्ध्याएँ त्रिवर्ण (अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) को ही करनी चाहिये दूसरे (अर्थात् स्त्री शूद्र आदि) को नहीं । चतुर्थ अर्थात् शूद्र केवल तान्त्रिकी सन्ध्या करे । स्त्री भी लोभ के कारण तान्त्रिकी सन्ध्या करे । सूर्य के अस्त होने की वेला में और (अर्ध) रात्रि में शौच स्नान कर साधक पुनः पूजागृह में प्रवेश करे । सायंपूजा के समय पूजाकालीन पुष्प माला धूप दीप नैवेद्य बलि आदि कृत्य करना चाहिये । आरतीवाला दीपवृक्ष (अर्थात् नीचे से ऊपर तक दीपों को दीपपात्र में इस प्रकार रखना कि वे वृक्ष के समान दिखलायी दें) को देने के बाद एक क्षण के लिये आँख बन्दकर पूर्वोक्त की भाँति ध्यान करना चाहिये ॥ ३५०-३५४ ॥

[सान्निध्यकरणाय श्लोकयुगपाठविधि:]

ततो बद्धाञ्जलिः पद्ययुगलं समुदीरयेत् ।
योगिन्यो मातरः सिद्धाःक्षेत्रपाला विनायकाः ॥ ३५५ ॥
तथा वटुकनाथाश्च चामुण्डाभैरवीगणाः ।
वेतालभूतकूष्माण्डा ये चान्ये कालिकानुगाः ॥ ३५६ ॥
इह कुर्वन्तु सान्निध्यं कुर्वेऽहं नैशिकार्चनम् ।
पठित्वेत्थं ततः कुर्यादृष्यादिं द्विषडङ्गकम् ॥ ३५७ ॥
वक्त्रन्यासं ततः कुर्यादावश्यकतया प्रिये ।
अन्यानपि स्वेच्छयैव यावच्छक्यान् समाचरेत् ॥ ३५८ ॥

वक्त्रन्यासस्य नित्यत्वमितरेषां च काम्यता ।
इत्थं न्यासादिकं कृत्वा स्वेच्छया सुरवन्दिते ॥ ३५९ ॥
बद्धाञ्जलिः पुनरपि श्लोकमेकं समुच्चरेत् ।
हे गुह्यकालि जगदीश्वरि विश्वमात-
श्चैतन्यरूपिणि सदाशिवजीवतुल्ये ।
दैनन्दिनप्रचितपापचयापहत्यै
सायन्तनं स्मरणमेव करोमि तेऽहम् ॥ ३६० ॥
पठित्वेमं ततः पुष्पं गृहीत्वाञ्जलिना प्रिये ।
त्रिखण्डामुद्रया चापि ध्यानं मीलितदृक् चरेत् ॥ ३६१ ॥
पूर्वस्तोत्रोक्तपद्याभ्यां न तु ध्यायेदितिक्रमैः(मः) ।
या वस्वर्ककलेत्येकं ब्रह्मेन्द्रेति द्वितीयकम् ॥ ३६२ ॥
शक्तौ पूर्वोक्तवत् कुर्यादावाहनपुरःसरान् ।

सान्निध्य के लिये श्लोकद्वय का पाठ—इसके बाद हाथ जोड़कर निम्नलिखित दो श्लोकों का उच्चारण करना चाहिये—'योगिन्यो............... नैशिकार्चनम् ।'

(योगिनियाँ, मातायें, सिद्धगण, क्षेत्रपाल, विनायकशब्द, वटुकनाथ लोग, चामुण्डा एवं भैरवीगण, वेतालभूत कूष्माण्ड और अन्य वे सब जो कालिका के अनुचर हैं, यहाँ उपस्थित हों । मैं कालीपूजा कर रहा हूँ ।)

इस प्रकार पाठ कर ऋषि आदि का दो षडङ्गन्यास (= करन्यास एवं हृदयादि न्यास) करना चाहिये । हे प्रिये! इसके बाद आवश्यक रूप से वक्त्रन्यास करना चाहिये । जितना सम्भव हो उतने अन्य न्यासों को भी करना चाहिये । वक्त्रन्यास नित्यकरणीय है । अन्य न्यासों का अनुष्ठान साधक की इच्छा पर निर्भर करता है वह करे या न करे । हे सुरवन्दिते! इस प्रकार स्वेच्छया न्यास आदि कर के हाथ जोड़कर पुनः एक श्लोक का उच्चारण करें—

'हे गुह्यकालि!.....................करोमि तेऽहम् ॥'

(हे गुह्यकालि! हे जगदीश्वरि! हे विश्व की माता! चैतन्यरूपिणी! सदाशिव के जीव के समान! मैं प्रतिदिन एकत्रित होनेवाले पापसमूह के नाश के लिये आपका सायन्तन स्मरण कर रहा हूँ ।)

हे प्रिये! साधक इस श्लोक को पढ़कर फिर अञ्जलि में पुष्प लेकर त्रिखण्डा मुद्रा के द्वारा आँख बन्द कर ध्यान करे । पूर्वोक्त दो स्तोत्रपद्यों से ध्यान नहीं करना चाहिये—यह क्रम है । शक्ति के विषय में (अथवा सामर्थ्य रहने पर) आवाहनपूर्वक पूर्वोक्त की भाँति 'या वस्वर्ककला..............' तथा 'ब्रह्मेन्द्र...........' इन दोनों श्लोकों का पाठ (कर ध्यान) करना चाहिये ॥ ३५५-३६२- ॥

[सायमपि षोडशोपचारविधानम्]

उपचारान् षोडशापि मन्त्रैरेव पुरोदितैः ॥ ३६३ ॥
अशक्तौ कुसुमैः स्रग्भिर्धूपदीपैरत्रात्रिकैः ।
नैवेद्यैर्बलिभिः स्तोत्रैः पाठैरपि जपैस्तथा ॥ ३६४ ॥
सर्वत्र पूजाकालीना मन्त्रा एव प्रकीर्तिताः ।
किन्तु पीठार्चने भिन्नः क्रम उक्तः पुरारिणा ॥ ३६५ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि दत्तचित्तावधारय ।
तारात् रावं पुरो दत्त्वा शेषे नम इतीरयेत् ॥ ३६६ ॥
मध्ये शब्दाच्च(श्च)तुर्थ्यन्ता बहुत्वे चैक्यमेव च ।
उल्लेखक्रमतो बोध्याः किमाधिक्येन पार्वति ॥ ३६७ ॥
योगिन्यश्चापि डाकिन्यः सिद्धा मातर एव च ।
विनायकाः क्षेत्रपालाः दैत्यास्तदनु दानवाः ॥ ३६८ ॥
असुरा यातुधानाश्च यक्षिण्योऽप्सरसस्तथा ।
ततो वटुकनाथाश्च भूता भैरव्य एव च ॥ ३६९ ॥
चामुण्डा अथ वेतालाः कूष्माण्डाः किन्नरास्तथा ।
गुह्यकाश्च तथा प्रेतास्ततोऽनु ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३७० ॥
गन्धर्वाश्च पिशाचाश्च चतुर्विंशतिरीरिताः ।
पीठाधस्तादिमे पूज्याः कुसुमैरथवाक्षतैः ॥ ३७१ ॥
पूर्वादिभ्यो हरिद्भ्यस्तु त्रिवारं क्रमशः प्रिये ।
एताः सम्पूजिता रात्रौ दद्युः पीडां न काञ्चन ॥ ३७२ ॥
न दर्शयेयुः दुःस्वप्नं सुखनिद्रां ददत्यपि ।

सायङ्काल में भी षोडशोपचार पूजा का विधान—(सायङ्काल में भी) (देवी के लिये) पूर्वोक्त मन्त्रों से षोडशोपचार (समर्पित करना चाहिये) इसका सामर्थ्य न रहने पर पुष्प माला धूप दीप आरती नैवेद्य बलि स्तुति पाठ जप से पूजा करनी चाहिये । सर्वत्र पूजाकाल में प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र ही कहे गये हैं । किन्तु पीठार्चन में त्रिपुरारि ने भिन्न क्रम कहा है । उसको मैं तुमको बतलाऊँगा । मन लगाकर सुनो । पहले तार के बाद राव को कहकर अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । मध्य में चतुर्थ्यन्त शब्द होते हैं । वे उल्लेख के क्रम से समान रूप से बहुवचन होते हैं । हे पार्वति! अधिक क्या कहना । योगिनियाँ डाकिनियाँ सिद्धायें मातायें दैत्य दानव असुर यातुधान यक्षिणियाँ अप्सरायें वटुकनाथ भूत भैरवियाँ चामुण्डाएँ वेताल कूष्माण्ड किन्नर गुह्यक प्रेत उसके बाद ब्रह्मराक्षस गन्धर्व और पिशाच ये चौबीस कहे गये हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ओं फ्रें योगिनीभ्यो नमः ।
२. ओं फ्रें डाकिनीभ्यो नमः ।
३. ओं फ्रें सिद्धाभ्यो नमः ।
४. ओं फ्रें मातृभ्यो नमः ।
५. ओं फ्रें विनायकेभ्यो नमः ।
६. ओं फ्रें क्षेत्रपालेभ्यो नमः ।
७. ओं फ्रें दैत्येभ्यो नमः ।
८. ओं फ्रें दानवेभ्यो नमः ।
९. ओं फ्रें असुरेभ्यो नमः ।
१०. ओं फ्रें यातुधानेभ्यो नमः ।
११. ओं फ्रें यक्षिणीभ्यो नमः ।
१२. ओं फ्रें अप्सरोभ्यो नमः ।
१३. ओं फ्रें वटुकनाथेभ्यो नमः ।
१४. ओं फ्रें भूतेभ्यो नमः ।
१५. ओं फ्रें भैरवीभ्यो नमः ।
१६. ओं फ्रें चामुण्डाभ्यो नमः ।
१७. ओं फ्रें वेतालेभ्यो नमः ।
१८. ओं फ्रें कूष्माण्डेभ्यो नमः ।
१९. ओं फ्रें किन्नरेभ्यो नमः ।
२०. ओं फ्रें गुह्यकेभ्यो नमः ।
२१. ओं फ्रें प्रेतेभ्यो नमः ।
२२. ओं फ्रें ब्रह्मराक्षसेभ्यो नमः ।
२३. ओं फ्रें गन्धर्वेभ्यो नमः ।
२४. ओं फ्रें पिशाचेभ्यो नमः ।)

इस सबों की पीठ के नीचे पुष्पों अथवा अक्षतों से पूजा करनी चाहिये । हे प्रिये! पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से इनकी तीन बार पूजा करने पर ये रात्रि में किसी को कष्ट नहीं देतीं । ये दुःस्वप्न नहीं दिखलातीं और सुख की नींद सुलाती हैं ॥ ३६३-३७२- ॥

देव्यास्ततः पीठगतान् सर्वानिव प्रपूजयेत् ॥ ३७३ ॥
गणरूपान्नपूजावद्भिन्नरूपतयार्चयेत् ।
आचतुर्विंशतिदलाम्भोजं त्रिदशवन्दिते ॥ ३७४ ॥
प्रत्येकन्तु तदारभ्य शास्त्रस्यैवं विनिश्चयः ।
सर्वत्र तारहृदये पूर्वपश्चिमयोर्मते ॥ ३७५ ॥
रक्तार्णवास्ततो रक्तद्वीपा रक्तानु बालुकाः ।
चामुण्डा भैरवाभैरवीप्रकारास्ततः परम् ॥ ३७६ ॥
महाश्मशनानि ततो मुण्डमालास्ततोऽप्यनु ।
कल्पवृक्षा रत्नवेद्यो रत्नसिंहासनानि च ॥ ३७७ ॥
आयुर्वेदो युगं वेदा दिक्पालास्तदनन्तरम् ।
पञ्चप्रेता अष्टभैरवाष्टशक्तिसविग्रहाः ॥ ३७८ ॥
ततः षोडशयज्ञाश्च पुनरष्टशिवा अपि ।
ततो धर्माद्यष्टदलपद्मं कामादिकेशरम् ॥ ३७९ ॥
द्वात्रिंशद्देव्य इति च मह(हा)भैरव एव च ।
पुनः परमशब्दानु सदाशिव इति प्रिये ॥ ३८० ॥
चतुर्विंशतिसंख्याका मध्ये तुर्यविभक्तिभिः ।
योजनीया बहुत्वैक्ये रीत्या पूर्वोक्तयैव हि ॥ ३८१ ॥

इसके बाद देवी के पीठ में स्थित सब देवताओं की पूजा करनी चाहिये । हे त्रिदशवन्दिते! गणरूप अन्न पूजा की भाँति इनकी भिन्न रूप में चौबीस दलवाले कमल तक एक-एक दल में प्रत्येक की पूजा करनी चाहिये—ऐसा शास्त्र का निश्चय है । पूजा में सर्वत्र पहले तार और अन्त में हृदय रहते हैं । जिन चौबीस तत्त्वों की पूजा करनी है उनके नाम निम्नलिखित हैं—

रक्तार्णव, रक्तद्वीप, रक्तबालुका, चामुण्डा, भैरवभैरवीप्रकार उसके बाद महाश्मशान उसके अनन्तर मुण्डमाला, फिर कल्पवृक्ष, रत्नवेद्य, रत्नसिंहासन, आयुर्वेद, युग, वेद, दिक्पाल, तदनन्तर पञ्चप्रेत, अष्टभैरव, अष्टशक्ति, षोडशयज्ञ, अष्टशिव, तत्पश्चात् धर्म आदि वाला अष्टदलपद्म, काम आदि केशर, बत्तीस देवियाँ, महाभैरव पुनः परमशिव । चे चौबीस हैं । इनका पूर्वोक्त रीति के अनुसार चतुर्थी विभक्त्यन्त बहुवचन एकवचन कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. ॐ रक्तार्णवेभ्यो नमः ।
२. ॐ रक्तद्वीपेभ्यो नमः ।
३. ॐ रक्तबालुकाभ्यो नमः ।
४. ॐ चामुण्डायै नमः ।
५. ॐ भैरवभैरवीप्रकारेभ्यो नमः ।
६. ॐ महाश्मशानेभ्यो नमः ।
७. ॐ मुण्डमालाभ्यो नमः ।
८. ॐ कल्पवृक्षेभ्यो नमः ।
९. ॐ रत्नवेद्याय नमः ।
१०. ॐ रत्नसिंहासनेभ्यो नमः ।
११. ॐ आयुर्वेदाय नमः ।
१२. ॐ युगाय नमः ।
१३. ॐ वेदेभ्यो नमः ।
१४. ॐ दिक्पालेभ्यो नमः ।
१५. ॐ पञ्चप्रेतेभ्यो नमः ।
१६ ॐ अष्टभैरवेभ्यो नमः ।
१७. ॐ अष्टशक्तिभ्यो नमः ।
१८. ॐ षोडशयज्ञेभ्यो नमः ।
१९. ॐ अष्टशिवेभ्यो नमः ।
२०. ॐ धर्माद्यष्टदलपद्माय नमः ।
२१. ॐ कामादिकेशराय नमः ।
२२. ॐ द्वात्रिंशद्देवीभ्यो नमः ।
२३. ॐ महाभैरवाय नमः ।
२४. ॐ परसदाशिवाय नमः ।)

॥ ३७३-३८१ ॥

षड्त्रिंशच्च दलाम्भोजे न चतुर्विंशतिस्तथा ।
षोडशार्णमनोः पीठे यद्यपि प्राणवल्लभे ॥ ३८२ ॥
तथापि सङ्कल्प्य हृदा तस्मिन्नेव प्रपूजयेत् ।
न षोडशद्वादशाख्ये यत्र वा भवतः प्रिये ॥ ३८३ ॥
वसुच्छदे केवलेऽपि चतुर्णामपि कल्पना ।
तत्रापि महतः कार्योऽनुबन्धः पीठपूजने ॥ ३८४ ॥
न तत्र कल्पना कार्या यत्र स्याद् विद्यमानता ।
वेदितव्यं तुरीयाया निर्वाणस्यापि मण्डले ॥ ३८५ ॥

हे प्राणवल्लभे! यद्यपि छत्तीस दलोंवाले कमल पर चौबीस तत्त्व की कल्पना और षोडशवर्णवाले पीठ पर भी (चौबीस तत्त्व की कल्पना) नहीं की जाती तो भी मन में सङ्कल्प कर उसी पर पूजा करनी चाहिये । हे प्रिये! जहाँ षोडश और द्वादश (दलोंवाले कमलों की रचना नहीं है वहाँ) केवल अष्टदलवाले कमल पर ही चारो (= छत्तीस चौबीस षोडश द्वादश) की कल्पना कर लेनी चाहिये । वहाँ भी पीठ की पूजा में अधिक से अधिक द्रव्य-संग्रह करना चाहिये । जहाँ संख्यायुक्त दल की विद्यमानता हो वहाँ कल्पना नहीं करनी चाहिये । मण्डल में तुरीय के निर्वाण को भी जानना चाहिये ॥ ३८२-३८५ ॥

[देव्या मन्त्रोद्धार:]

मनूद्धारमथो वच्मि देवि देव्यभिधान्वितम् ।
अन्तरं रावतर्जन्योस्तुर्यैक्येन प्रपूरयेत् ॥ ३८६ ॥
षष्टि ता: कथयाम्यंशो बुद्ध्या संबुध्यतां त्वया।
कराली क्षोभणानन्ता विरूपाऽप्यपरा परा ॥ ३८७ ॥
भद्रोग्रा मेघनादा च विकटा पिङ्गला तथा ।
भ्रामिका विश्वरूपा च प्रदीप्ता कालमर्दिनी ॥ ३८८ ॥
प्रमोदिन्यथ हुङ्कारनादिनी वज्रदन्त्यपि ।
कोकामुख्यर्क्षकर्णी च विदारी फेरुतुण्डिनी ॥ ३८९ ॥
विद्युज्जिह्वा महाग्रासा वातवेगा तनूदरी ।
जम्बुकी मोहिनी चापि द्राविण्याकर्षिणी तथा ॥ ३९० ॥
काकाङ्गी लेलिहाना च कुक्कुटी भोगवत्यपि।
मायामयी पिङ्गकेशी चपला रक्तपायिनी ॥ ३९१ ॥
वर्वरा कौणपचरी बहुपादा दिगम्बरी ।
लाङ्गूलिनी सूर्यजिह्वा श्यामा कुणपकुण्डला ॥ ३९२ ॥
उन्मादिनी पिङ्गलाक्षी दीर्घजिह्वा पिशाचिनी ।
प्रस्वापिनी चण्डघण्टा शवासिन्यञ्जनप्रभा ॥ ३९३ ॥
जालन्धरी शाम्बरी च गजवक्त्राट्टहासिनी ।
कटङ्कटा महाघोरा सर्वशेषे मनोन्मनी ॥ ३९४ ॥
षोडशद्वादशाष्टाङ्गदलाम्बुजसमर्हणम् ।
प्रवक्ष्यमाणमधुना समाकलय भामिनि ॥ ३९५ ॥

देवी के मन्त्र का उद्धार—हे देवि! इसके बाद देवी की अभिध अर्थात् नाम से युक्त मन्त्रोद्धार कह रहा हूँ । राव और तर्जनी के बीच को चतुर्थी एकवचन से भरना चाहिये । मैं उन भरे जानेवाले साठ नामों को अंशत: कह रहा हूँ । अपनी बुद्धि से उसको पूर्णरूप से जानो । वे नाम हैं—कराली क्षोभणा अनन्ता विरूपा अपरा परा

भद्रोग्रा मेघनादा विकटा पिङ्गला भ्रामिका विश्वरूपा प्रदीप्ता कालमर्दिनी प्रमोदिनी हुङ्कारनादिनी वज्रदन्ती कोकामुखी ऋक्षकर्णी विदारी फेरुतुण्डिनी विद्युज्जिह्वा महाग्रासा वातवेगा तनूदरी जम्वुकी मोहिनी द्राविणी आकर्षिणी काकाङ्गी लेलिहाना कुक्कुटी भोगवती मायामयी पिङ्गकेशी चपला रक्तपायिनी वर्वरा कोणपचरी बहुपादा दिगम्बरी लाङ्गूलिनी सूर्यजिह्वा श्यामा कुणपकुण्डला उन्मादिनी पिङ्गलाक्षी दीर्घजिह्वा पिशाचिनी प्रस्वापिनी चण्डघण्टा शवासिनी अञ्जनप्रभा जालन्धरी शाम्बरी गजवक्त्रा अट्टहासिनी कटङ्कटा महाघोरा और सबके अन्त में मनोन्मनी हैं । इनकी पूजा क्रमशः षोडश द्वादश और अष्टाङ्ग दलोंवाले कमलों पर की जाती है । इस पूजा को मैं आगे कहूँगा । हे भामिनि! उसको सुनो ॥ ३८६-३९५ ॥

पूर्वोक्तयोर्मन्त्रयोस्तु शेषे हृदयमिष्यते ।
आदिभूतस्यादिभूतो वेदादिरपि पार्वति ॥ ३९६ ॥
अथ क्रमेण षट्त्रिंशन्नामानि ब्रुवतः शृणु !
महारात्रिः कालरात्रिः विरूपा तदनन्तरम् ॥ ३९७ ॥
महोत्सवा गुह्यनिद्रा वज्रिणी विमला तथा ।
अष्टमी परिविज्ञेया कौलिनी जगदीश्वरि ॥ ३९८ ॥
कुम्भोदरी डमरुका भीमद्रंष्ट्रा ततः परम् ।
तारावती भानुमती ज्वालिनी च चतुर्दशी ॥ ३९९ ॥
एकानंशा पञ्चदशी षोडशच्छदपूजने ।
कबन्धकन्धरा चैव जया च विजया ततः ॥ ४०० ॥
प्रभाऽथ सुप्रभा चापि माया चैवाजिता ततः ।
ततोऽपराजिता श्रद्धा मेधा दीप्ता क्रियापि च ॥ ४०१ ॥
भद्रा चाष्टदलाम्भोजार्चनं कलय पार्वति ।
आदौ भगवती ज्ञेया भगमालिन्यनन्तरम् ॥ ४०२ ॥
भगप्रिया चापि भगातुरा चापि भगाङ्कुशा ।
षष्ठी तथा सप्तमी च भगकामा भगाकुला ॥ ४०३ ॥
भगलिङ्गद्राविणी चेत्यष्टौ सम्परिकीर्तिताः ।
वृत्तं (? त्ते) महाचण्डतरवज्रकापालिनी प्रिये ॥ ४०४ ॥
अथाष्टारगता देवीः कीर्त्यमाना निशामय ।
श्मशानवासिन्याद्योक्ता हूंहूंहूङ्कारविनादिनी ॥ ४०५ ॥
प्रचण्डा प्रेतमालिन्यनु महाभीषणापि च ।
कृतान्तकाला तदनु भवेच्चर्माम्बरा परा ॥ ४०६ ॥
सर्वशेषे च विज्ञेया देवता फेरुमालिनी ।
पुनर्वृत्ते महाचण्डयोगेश्वर्यभिधीयते ॥ ४०७ ॥

पूर्वोक्त दो मन्त्रों के अन्त में हृदय कहा जाता है । हे पार्वति! आदिभूत का आदिभूत वेदादि (= ओं) भी कहा जाता है । अब क्रम से कहे जानेवाले छत्तीस नामों को सुनो—महारात्रि कालरात्रि विरूपा उसके बाद महोत्सवा गुह्यनिद्रा वज्रिणी विमला । हे जगदीश्वरि! आठवीं कौलिनी जाननी चाहिये । कुम्भोदरी डमरुका भीमदंष्ट्रा उसके बाद तारावती भानुमती के बाद ज्वालिनी चौदहवीं है । षोडश दल कमल (स्थ देवियाँ) के पूजा में एकानंशा पन्द्रहवीं है । कबन्धकन्धरा जया विजया प्रभा सुप्रभा माया अजिता फिर अपराजिता श्रद्धा मेधा दीप्ता क्रिया और भद्रा । हे पार्वति! अब अष्टदल कमल की पूजा को सुनो—पहले भगवती फिर भगमालिनी भगप्रिया भगातुरा भगाङ्कुशा (यह पाँचवीं है) छठी और सातवीं क्रमशः भगकामा और भगाकुला है । भगलिङ्गद्राविणी को लेकर आठ देवियाँ कही गयी हैं (जिनका अष्टदल कमल पर पूजन होता है) । यहाँ तक १६ + १२ + ८ = ३६ देवियाँ बतलायी गयीं । हे प्रिये! वृत्त में महाचण्डतर वज्रकापालिनी (की पूजा की जाती है) । अब अष्टकोण में रहनेवाली (तथा पूजित होनेवाली) देवियों का कथन किया जा रहा है, सुनो—श्मशानवासिनी प्रथम देवी कही गयी है । उसके बाद हूंहूकार-विनादिनी प्रचण्डा प्रेतमालिनी महाभीषणा कृतान्तकाला चर्माम्बरा और सबके अन्त में फेरुमालिनी देवता समझी जानी चाहिये । इसके बाद वृत्त में महाचण्डयोगेश्वरी (पूज्या) कही जाती है ॥ ३९६-४०७ ॥

नवारगामिनीर्वक्ष्य इदानीं परमेश्वरीः ।
आदिभूता परिज्ञेया सर्वासां भुवनेश्वरी ॥ ४०८ ॥
राजराजेश्वरी पश्चात् कात्यायन्युच्यते बुधैः ।
चतुर्थी शिवदूती च ततो महिषमर्दिनी ॥ ४०९ ॥
उग्रतारा ततो ज्ञेया हरसिद्धा ततः परम् ॥ ४१० ॥
(..)।
अथ पञ्चारगा वक्ष्ये देवताः सुरवन्दिते ।[१]
सृष्टिकाली स्थितिकाली पुनः संहारकाल्यपि ॥ ४११ ॥
अनाख्याकाल्यपिततो भासाकाली च शेषगा ।
अथ त्रिकोणाधिष्ठात्री देवीस्त्वामुपवर्णये ॥ ४१२ ॥
कप्यृक्षनरवक्त्राणां या अधिष्ठात्र्य ईरिताः ।
वक्त्रन्यासेऽथवार्चायां ताः क्रमेण नियोजयेत् ॥ ४१३ ॥
अथ बिन्दौ समभ्यर्च्याः प्रवक्ष्यामि चिदात्मिका ।
तथा कैवल्यात्मिका च निर्वाणात्मिकयान्विता ॥ ४१४ ॥
इत्येवं संहिताप्रोक्तं ज्ञेयं नैशं ततोऽर्चनम् ।

अब नवचक्र में स्थित देवियों को बतलाऊँगा । सबसे पहली भुवनेश्वरी है ।

---

१. इतः पूर्वं एका पंक्तिर्लुप्ता प्रतीयते द्वयोदेव्योश्चर्चाया अप्राप्तत्वात् ।

उसके पश्चात् विद्वान् लोग राजराजेश्वरी और कात्यायनी को कहते हैं । चौथी शिवदूती फिर महिषमर्दिनी उसके बाद उग्रतारा तत्पश्चात् हरसिद्धा समझी जानी चाहिये । (यहाँ दो देवियों की चर्चा नहीं है । लगता है एक पंक्तिलुप्त है) । हे सुरवन्दिते! इसके बाद पञ्चार में स्थित देवताओं को बतलाऊँगा । सृष्टिकाली स्थितिकाली संहारकाली अनाख्याकाली और अन्त में भासाकाली पूज्य होती है । अब त्रिकोण की अधिष्ठात्री देवियों को तुमको बतला रहा हूँ । कपिवक्त्र भालूमुख और नरवक्त्रों की जो अधिष्ठात्री देवियाँ कही गयी हैं वक्त्रन्यास अथवा त्रिकोणपूजा में उन्हीं का नियोजन करना होता है । अब बिन्दु में अभ्यर्च्य देवियों को कहूँगा । उसमें चिदात्मिका कैवल्यात्मिका और निर्वाणात्मिका ये तीन देवियाँ अभ्यर्च्य होती हैं । (साठ देदियों के अर्चामन्त्र—

१. फ्रें कराल्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२. फ्रें क्षोभणायै हसखफ्रें (नमः ?)।
३. फ्रें अनन्तायै हसखफ्रें (नमः ?)।
४. फ्रें विरूपायै हसखफ्रें (नमः ?)।
५. फ्रें अपरायै हसखफ्रें (नमः ?)।
६. फ्रें परायै हसखफ्रें (नमः ?)।
७. फ्रें मदोग्रायै हसखफ्रें (नमः ?)।
८. फ्रें मेघनादायै हसखफ्रें (नमः ?)।
९. फ्रें विकटायै हसखफ्रें (नमः ?)।
१०. फ्रें पिङ्गलायै हसखफ्रें (नमः ?)।
११. फ्रें भ्रामिकायै हसखफ्रें (नमः ?)।
१२. फ्रें विश्वरूपायै हसखफ्रें (नमः ?)।
१३. फ्रें प्रदीप्तायै हसखफ्रें (नमः ?)।
१४. फ्रें कालमर्दिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
१५. फ्रें प्रमोदिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
१६. फ्रें हूङ्कारनादिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
१७. फ्रें वज्रदन्त्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
१८. फ्रें कोकामुख्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
१९. फ्रें ऋक्षकर्ण्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२०. फ्रें विदार्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२१. फ्रें फेरुतुण्डिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२२. फ्रें विद्युज्जिह्वायै हसखफ्रें (नमः ?)।
२३. फ्रें महाग्रासायै हसखफ्रें (नमः ?)।
२४. फ्रें वातवेगायै हसखफ्रें (नमः ?)।
२५. फ्रें तनूदर्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२६. फ्रें जम्बुक्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२७. फ्रें मोहिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२८. फ्रें द्राविण्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
२९. फ्रें आकर्षिण्यै हसखफ्रें (नमः?)।
३०. फ्रें काकाङ्ग्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३१. फ्रें लेलिहानायै हसखफ्रें (नमः?)।
३२. फ्रें कुक्कुट्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३३. फ्रें भोगवत्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३४. फ्रें मायामय्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३५. फ्रें पिङ्गकेश्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३६. फ्रें चपलायै हसखफ्रें (नमः ?)।
३७. फ्रें रक्तपायिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
३८. फ्रें वर्वरायै हसखफ्रें (नमः ?)।
३९. फ्रें कौणपचर्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
४०. फ्रें बहुपादायै हसखफ्रें (नमः ?)।
४१. फ्रें दिगम्बर्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
४२. फ्रें लाङ्गूलिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
४३. फ्रें सूर्यजिह्वायै हसखफ्रें (नमः ?)।
४४. फ्रें श्यामायै हसखफ्रें (नमः ?)।
४५. फ्रें कुणपकुण्डलायै हसखफ्रें (नमः?)।
४६. फ्रें उन्मादिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
४७. फ्रें पिङ्गलाक्ष्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
४८. फ्रें दीर्घजिह्वायै हसखफ्रें (नमः ?)।

४९. फ्रें पिशाचिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)। ५०. फ्रें प्रस्वापिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
५१. फ्रें चण्डघण्टायै हसखफ्रें (नमः ?)। ५२. फ्रें शवासिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
५३. फ्रें अञ्जनप्रभायै हसखफ्रें (नमः ?)। ५४. फ्रें जालन्धर्यै हसखफ्रें (नमः ?)।
५५. फ्रें शाम्बर्यै हसखफ्रें (नमः ?)। ५६. फ्रें गजवक्त्रायै हसखफ्रें (नमः ?)।
५७. फ्रें अट्टहासिन्यै हसखफ्रें (नमः ?)। ५८. फ्रें कटङ्कटायै हसखफ्रें (नमः ?)।
५९. फ्रें महाघोरायै हसखफ्रें (नमः ?)। ६०. फ्रें मनोन्मन्यै हसखफ्रें (नमः ?)।)

षोडशदल द्वादशदल और अष्टदलस्थ देवियों का अर्चामन्त्र—

१. फ्रें महारात्र्यै हसखफ्रें नमः । २. फ्रें कालरात्र्यै हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें विरूपायै हसखफ्रें नमः । ४. फ्रें महोत्सवायै हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें गुह्यनिद्रायै हसखफ्रें नमः । ६. फ्रें वज्रिण्यै हसखफ्रें नमः ।
७. फ्रें विमलायै हसखफ्रें नमः । ८. फ्रें कौलिन्यै हसखफ्रें नमः ।
९. फ्रें कुम्भोदर्यै हसखफ्रें नमः । १०. फ्रें डमरुकायै हसखफ्रें नमः ।
११. फ्रें भीमद्रंष्ट्रायै हसखफ्रें नमः । १२. फ्रें तारावत्यै हसखफ्रें नमः ।
१३. फ्रें भानुमत्यै हसखफ्रें नमः । १४. फ्रें ज्वालिन्यै हसखफ्रें नमः ।
१५. फ्रें एकानंशायै हसखफ्रें नमः । १६. फ्रें कबन्धकन्धरायै हसखफ्रें नमः।
१७. फ्रें जयायै हसखफ्रें नमः । १८. फ्रें विजयायै हसखफ्रें नमः ।
१९. फ्रें प्रभायै हसखफ्रें नमः । २०. फ्रें सुप्रभायै हसखफ्रें नमः ।
२१. फ्रें मायायै हसखफ्रें नमः । २२. फ्रें अजितायै हसखफ्रें नमः ।
२३. फ्रें अपराजितायै हसखफ्रें नमः । २४. फ्रें श्रद्धायै हसखफ्रें नमः ।
२५. फ्रें मेधायै हसखफ्रें नमः । २६. फ्रें दीप्तायै हसखफ्रें नमः ।
२७. फ्रें क्रियायै हसखफ्रें नमः । २८. फ्रें भद्रायै हसखफ्रें नमः ।
२९. फ्रें भगवत्यै हसखफ्रें नमः । ३०. फ्रें भगमालिन्यै हसखफ्रें नमः ।
३१. फ्रें भगप्रियायै हसखफ्रें नमः । ३२. फ्रें भगातुरायै हसखफ्रें नमः ।
३३. फ्रें भगाङ्कुशायै हसखफ्रें नमः । ३४. फ्रें भगकामायै हसखफ्रें नमः ।
३५. फ्रें भगाकुलायै हसखफ्रें नमः । ३६. फ्रें भगलिङ्गद्राविण्यै हसखफ्रें नमः।

(वृत्त के ऊपर—फ्रें महाचण्डतरवज्रकापालिन्यै हसखफ्रें नमः ।)

अष्टारस्थ देवी पूजा का मन्त्र—

१. फ्रें श्मशानवासिन्यै हसखफ्रें नमः । २. फ्रें हूं हूङ्कारविनादिन्यै हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें प्रचण्डायै हसखफ्रें नमः । ४. फ्रें प्रेतमालिन्यै हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें महाभीषणायै हसखफ्रें नमः । ६. फ्रें कृतान्तकाल्यै हसखफ्रें नमः ।
७. फ्रें चर्माम्बरायै हसखफ्रें नमः । ८. फ्रें फेरुमालिन्यै हसखफ्रें नमः ।

(वृत्त में फ्रें महाचण्डयोगेश्वर्यै हसखफ्रें नमः ।)

नवारस्थ देवी पूजा का मन्त्र—

१. फ्रें भुवनेश्वर्यै हसखफ्रें नमः । २. फ्रें राजराजेश्वर्यै हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें कात्यायन्यै हसखफ्रें नमः । ४. फ्रें शिवदूत्यै हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें महिषमर्दिन्यै हसखफ्रें नमः । ६. फ्रें उग्रतारायै हसखफ्रें नमः ।
७. फ्रें हरसिद्धायै हसखफ्रें नमः । ८. फ्रें (अनुपलब्ध) हसखफ्रें नमः ।
९. फ्रें (अनुपलब्ध) हसखफ्रें नमः ।

पञ्चारस्थ देवता पूजन मन्त्र—

१. फ्रें सृष्टिकाल्यै हसखफ्रें नमः । २. फ्रें स्थितिकाल्यै हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें संहारकाल्यै हसखफ्रें नमः । ४. फ्रें अनाख्याकाल्यै हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें भासाकाल्यै हसखफ्रें नमः ।

इस प्रकार देवीपूजन का वर्णन किया गया । इसके पश्चात् रात्रिपूजा जाननी चाहिये ॥ ४०८-४१४- ॥

[निशार्चायां तान्त्रिकान्तरकृत्यनिर्देशः]

कुर्वन्ति किञ्चिदधिकमन्यतन्त्राध्वचारिणः ॥ ४१५ ॥
षट्त्रिंशद्दलाम्भोजार्चा पूर्वे कमलानने ।
पूजयन्त्यधिकान् कांश्चित् देवान् देवीरथापि च ॥ ४१६ ॥
पूर्ववद्गणरूपास्तु न पृथग्रूपताजुषः ।
पूर्वोक्तेन क्रमेणैव तेषां मन्त्रा अपि प्रिये ॥ ४१७ ॥
गणेशान् क्षेत्रपालांश्च ग्रहान् रुद्रांस्ततोऽप्यनु ।
आदित्यानथ साध्यांश्च सिद्धौघांस्तदनन्तरम् ॥ ४१८ ॥
यथैवात्राधिकाचारान् भाण्डिकेराः प्रकुर्वते ।
तथा बिन्दावपि शिवे देवेशीः परमाः क्रमात् ॥ ४१९ ॥
तामेवात्रापि जानीहि रीतिं प्रथमकीर्तिताम् ।
आदौ तु राजमातङ्गी पद्मावत्यथ शूलिनी ॥ ४२० ॥
उग्रचण्डा च धनदा बाला त्रिपुरसुन्दरी ।
उग्रतारा च फेत्कारी त्वरिता चण्डवारुणी ॥ ४२१ ॥
अश्वारूढा भोगवती कुब्जिका मृत्युहारिणी ।
पिङ्गला हरसिद्धा च कालसङ्कर्षिणी तथा ॥ ४२२ ॥
सिद्धिलक्ष्मीछिन्नमस्ते वगला शबरेश्वरी ।
धूमावती महामारी कोरङ्गी बाभ्रवी तथा ॥ ४२३ ॥
भीमादेवी रक्तदन्ती कामाख्या विश्वरूपिणी ।
अभया तामसी शक्तिसौपर्णी चण्डखेचरी ॥ ४२४ ॥
भ्रामरी डामरी चेति षड्त्रिंशदिति कीर्तिताः ।
बिन्दौ प्रत्येकशः प्रोक्तरीत्या मन्त्रजुषार्चयेत् ॥ ४२५ ॥

रात्रि पूजा के अन्य तान्त्रिकों का कृत्य—अन्य तन्त्र मार्ग पर चलनेवाले (= भाण्डिकेर) कुछ अधिक करते हैं । हे कमलानने! छत्तीस दल कमल की पूजा के पूर्व वे कुछ अधिक देवी-देवों की पूजा करते हैं । ये देवी और देव पूर्व की भाँति गणरूप हैं पृथक्-पृथक् नहीं । हे प्रिये! उनके मन्त्र भी पूर्वोक्त क्रम से ही (उच्चारित होते) हैं । वे भाण्डिकेर लोग गणेश क्षेत्रपाल ग्रह रुद्र उनके बाद आदित्य साध्य उसके अनन्तर सिद्ध समूहों की पूजा करते हैं । जिस प्रकार वे लोग यहाँ अधिक आचार करते हैं उसी प्रकार हे शिवे! वे विन्दु में भी परम देवेशियों की क्रम से अर्चना करते हैं । पहले कही गयी उसी रीति को यहाँ भी जानो । पहले राजमातङ्गी पद्मावती फिर शूलिनी उग्रचण्डा धनदा बाला त्रिपुरसुन्दरी उग्रतारा फेत्कारी त्वरिता चण्डवारुणी अश्वारूढा भोगवती कुब्जिका मृत्युहारिणी पिङ्गला हरसिद्धा, कालसङ्कर्षिणी सिद्धिलक्ष्मी छिन्नमस्ता वगला शवरेश्वरी धूमावती महामारी कोटङ्गी वाभ्रवी भीमादेवी रक्तदन्ती कामाख्या विश्वरूपिणी अभया तामसी शक्ति सौकर्णी चण्डखेचरी भ्रामरी और डामरी ये छत्तीस देवियाँ कही गयी हैं । बिन्दु में उक्त रीति से एक-एक करके प्रत्येक की मन्त्र के साथ पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार भाण्डिकेर लोगों के द्वारा पूजनीय क्षेत्रपाल आदि के मन्त्र ये हैं—

१. फ्रें गणेशेभ्यो हसखफ्रें नमः ।
२. फ्रें क्षेत्रपालेभ्यो हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें ग्रहेभ्यो हसखफ्रें नमः ।
४. फ्रें रुद्रेभ्यो हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें आदित्येभ्यो हसखफ्रें नमः ।
६. फ्रें साध्येभ्यो हसखफ्रें नमः ।
७. फ्रें सिद्धौघेभ्यो हसखफ्रें नमः ।

यह गणदेवताओं को पूजा के मन्त्र का स्वरूप बतलाया गया । परम देवेशियों की पूजा के मन्त्रों का स्वरूप निम्नलिखित है—

१. फ्रें राजमातंग्यै हसखफ्रें नमः ।
२. फ्रें पद्मावत्यै हसखफ्रें नमः ।
३. फ्रें शूलिन्यै हसखफ्रें नमः ।
४. फ्रें उग्रचण्डायै हसखफ्रें नमः ।
५. फ्रें धनदायै हसखफ्रें नमः ।
६. फ्रें बालायै हसखफ्रें नमः ।
७. फ्रें त्रिपुरसुन्दर्यै हसखफ्रें नमः ।
८. फ्रें उग्रतारायै हसखफ्रें नमः ।
९. फ्रें फेत्कार्यै हसखफ्रें नमः ।
१०. फ्रें त्वरितायै हसखफ्रें नमः ।
११. फ्रें चण्डवारुण्यै हसखफ्रें नमः।
१२. फ्रें अश्वारूढायै हसखफ्रें नमः ।
१३. फ्रें भोगवत्यै हसखफ्रें नमः ।
१४. फ्रें कुब्जिकायै हसखफ्रें नमः ।
१५. फ्रें मृत्युहारिण्यै हसखफ्रें नमः।
१६. फ्रें पिङ्गलायै हसखफ्रें नमः ।
१७. फ्रें हरसिद्धायै हसखफ्रें नमः ।
१८. फ्रें कालसङ्कर्षिण्यै हसखफ्रें नमः।
१९. फ्रें सिद्धिलक्ष्म्यै हसखफ्रें नमः ।
२०. फ्रें छिन्नमस्तायै हसखफ्रें नमः ।
२१. फ्रें बगलायै हसखफ्रें नमः ।
२२. फ्रें शबरेश्वर्यै हसखफ्रें नमः ।
२३. फ्रें धूमावत्यै हसखफ्रें नमः ।
२४. फ्रें महामार्यै हसखफ्रें नमः ।

२५. फ्रें कोरङ्ग्यै हसखफ्रें नमः ।
२६. फ्रें बाभ्रव्यै हसखफ्रें नमः ।
२७. फ्रें भीमादेव्यै हसखफ्रें नमः ।
२८. फ्रें रक्तदन्त्यै हसखफ्रें नमः ।
२९. फ्रें कामाख्यायै हसखफ्रें नमः ।
३०. फ्रें विश्वरूपिण्यै हसखफ्रें नमः ।
३१. फ्रें अभयायै हसखफ्रें नमः ।
३२. फ्रें तामस्यै हसखफ्रें नमः ।
३३. फ्रें शक्तिसौपर्ण्यै हसखफ्रें नमः ।
३४. फ्रे चण्डखेचर्यै हसखफ्रें नमः ।
३५. फ्रें भ्रामर्यै हसखफ्रें नमः ।
३६. फ्रें डामर्यै हसखफ्रें नमः
॥ ४१५-४२५ ॥

धूपदीपादिनैवेद्यं यथाशक्त्युपपादितम् ।
देव्यै निवेदयेत् सर्वमस्मिन्नेव क्षणे प्रिये ॥ ४२६ ॥
बलिं दत्त्वा प्रयच्छेत कर्पूरारार्त्रिकं शुभम् ।
निवेदयेत् ततो हालां वासितां कुसुमादिभिः ॥ ४२७ ॥
अनन्तरं च ताम्बूलं मूलमन्त्रं ततो जपेत् ।
शतं पञ्चशतं वापि सहस्रं वापि शक्तितः ॥ ४२८ ॥
जपं समर्प्य च पठेत् कवचं स्तोत्रमेव च ।
संबीजयन् क्षणे तस्मिंश्चामरेण शनैः शनैः ॥ ४२९ ॥
दण्डवत् प्रणमेच्चापि कुर्याच्चापि प्रदक्षिणम् ।
काकूक्तिभिः प्रार्थयीत स्वस्याभीष्टानि साधकः ॥ ४३० ॥
यदि चेद् भवतो देवि प्रतिमा यन्त्रमेव च ।
कल्पयित्वा तदा तल्पं मृद्वास्तरणसंवृतम् ॥ ४३१ ॥
स्थापयित्वोपधानं च शाययेत्तत्र कालिकाम् ।
नैशार्चनोपक्लृप्तानि स्युर्नैवेद्यानि यानि हि ॥ ४३२ ॥
अवश्यं तानि भुञ्जीत शक्तिभिः साधकैः सह ।
गीतवाद्यादिनृत्यान्तं यथाशक्ति ततश्चरेत् ॥ ४३३ ॥
सायन्तनीनमशनं कुर्यात् पूर्वोक्तवत् ततः ।
स्वयं शयीत तदनु सह त्वभीष्टया स्त्रिया ॥ ४३४ ॥
प्राक्शिरा वा दक्षशिरा नोदङ्पश्चिममस्तकः ।
कृतशौचः करपदोराचान्तः सुसमाहितः ॥ ४३५ ॥
दीपे ज्वलति न ध्वान्ते नाकृतानववासनः ।
न च स्तिमितपत्पाणिर्न नग्नो न च कञ्चुकी ॥ ४३६ ॥
पठन् दुःस्वप्ननाशाय वक्ष्यमाणान् मनून् प्रिये ।

हे प्रिये! इसी अवसर पर यथाशक्ति एकत्रित किये गये धूप दीप नैवेद्य आदि सबको देवी के लिये निवेदित कर देना चाहिये । बलि प्रदान करने के बाद कपूर की शुभ आरती देवी को दिखानी चाहिये । इसके पश्चात् पुष्प आदि से सुगन्धित

की हुई मदिरा देवी के लिये अर्पित करने के बाद (लवङ्ग-कपूरयुक्त) ताम्बूल देना चाहिये। इसके पश्चात् मूलमन्त्र का यथाशक्ति एक-सौ, पाँच-सौ अथवा एक हजार जप करना चाहिये। जप का (देवी के दाँये हाथ में) समर्पणकर कवच और स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। कवच और स्तोत्र का पाठ करते समय देवी को धीरे-धीरे चामर झलना चाहिये। बाद में दण्डवत् प्रणामकर प्रदक्षिण करनी चाहिये। साधक काकु उक्ति के द्वारा देवी से अपनी इष्टसिद्धि के लिये प्रार्थना करे। (उदाहरण के लिये हे माँ! आप करुणामयी ममतामयी हैं, मेरी मनोकामना पूर्ण नहीं करेंगी? इत्यादि-इत्यादि) हे देवि! यदि देवी की प्रतिमा या मन्त्र हो तो कोमल आस्तरण से युक्त शय्या बनाकर उस पर तकिया रखकर कालिका देवी को सुला देना चाहिये। रात्रि पूजा में उपयोग में लाये गये जो नैवेद्य हैं, उनको शक्ति और साधकों के साथ खाना चाहिये। तत्पश्चात् यथाशक्ति गीतवाद्य नृत्य आदि करना चाहिये। इसके बाद सायङ्कालीन भोजन कर अभीष्ट स्त्री के साथ शयन करना चाहिये। सोते समय शिर पूर्व या दक्षिण दिशा में होना चाहिये उत्तर या पश्चिम में नहीं। सोने से पहले हाथ पैर धो लेना चाहिये। प्रसन्नचित्त होकर सोना चाहिये। सोते समय दीपक जलाकर सोना चाहिये अन्धकार में नहीं। पुराने आसन पर नहीं सोना चाहिये। हाथ पैर को स्तिमित (= गीला रखकर) नहीं सोना चाहिये। नग्न और कञ्चुक पहन कर नहीं सोना चाहिये। हे प्रिये! दुःस्वप्न-नाश के लिये वक्ष्यमाण मन्त्रों को पढ़ते हुए सोना चाहिये ॥ ४२६-४३६- ॥

[दुःस्वप्ननाशाय मन्त्रपाठः]

जगन्मातर्महामाये कालिके कालनाशिनि ॥ ४३७ ॥
दुःस्वप्नं हर रुद्राणि त्वद्भक्तं पाहि मां सदा।
भूतप्रेतपिशाचाद्या ये भीमा देवयोनयः ॥ ४३८ ॥
रक्षोदानवदैत्याश्च ये निद्राभङ्गकारिणः।
दुःखाप्तिकाश्च ये दोषाः मम हिंसाकराश्च ये ॥ ४३९ ॥
ते त्वत्स्मरणाद्दम्भोलिनिहता यान्तु संक्षयम्।
ये दंदशूका विलगा वृश्चिकाः शूकयोनयः ॥ ४४० ॥
येषां विषं बाधतेऽङ्गं ये च शृङ्गविषास्तथा।
विषपुच्छाश्च ये कीटाः ये चोद्वेगप्रदायिनः ॥ ४४१ ॥
श्रुत्वा ते कालिकानाम विद्रवन्तु दिशो दश।

दुःस्वप्ननाश का मन्त्र—(जगन्मातर्महा..................कुरु त्वं गुह्यकालिके।)

हे जगत् की माता महामाया कालनाशिनी रुद्राणी कालिके! दुःस्वप्न को दूर करो। अपने भक्त रूप मेरी रक्षा करो। जो भूतप्रेत पिशाच आदि, भयानक देवयोनियाँ, राक्षस दानव दैत्य आदि निद्रा को भग्न करनेवाले हैं, जो दुःख देनेवाले

दोष हैं, जो मेरे लिये हिंसा करनेवाले हैं, वे सब आपके स्मरण के कारण वज्राहत होकर नष्ट हो जायँ । जो डंस बिल में रहनेवाले (सर्प गोजर आदि) बिच्छू, शूकयोनि (= ऐसे विषैले कीड़े जिनके शरीर पर जहरीले रोंयें रहते हैं), जिनका विष अङ्ग में पीड़ा देता है, जिनकी सींग में विष होता है, जिनकी पूँछ में विष होता है और जो उद्वेग देनेवाले होते हैं, वे सब काली का नाम सुनकर दशों दिशाओं में भाग जायँ ॥ ४३७-४४१- ॥

काली कराली चामुण्डा छिन्नमस्ता च भैरवी ॥ ४४२ ॥
हरसिद्धा सिद्धिलक्ष्मीर्डामरी बाभ्रवी तथा ।
महामारी तामसी च मातङ्गी शबरेश्वरी ॥ ४४३ ॥
चर्चिका शिवदूती च तथा महिषमर्दिनी ।
उग्रचण्डा कुब्जिका च फेत्कारी गुह्यकाल्यपि ॥ ४४४ ॥
एतास्ते मूर्तयो घोरा याश्च सौम्याः सुरेश्वरि ।
तां मां शयानं रक्षन्तु दुःस्वप्नं नाशयन्तु च ॥ ४४५ ॥
चक्रचापासिशूलर्ष्टिगदापरिघतोमराः ।
वज्रमुद्गरकुन्तेषुभुशुण्डीप्राशपट्टिशाः ॥ ४४६ ॥
यान्यन्यानि च देवेशि करयोर्विधृतानि ते ।
अस्त्राणि तानि रक्षन्तु स्वपन्तं मां महेश्वरि ॥ ४४७ ॥

काली कराली चामुण्डा छिन्नमस्ता भैरवी हरसिद्धा सिद्धिलक्ष्मी डामरी बाभ्रवी महामारी तामसी मातङ्गी शबरेश्वरी चर्चिका शिवदूती महिषमर्दिनी उग्रचण्डा कुब्जिका फेत्कारी, गुह्यकाली ये घोर मूर्त्तियाँ तथा जो सौम्य मूर्त्तियाँ हैं, हे सुरेश्वरि! वे मुझ सोनेवाले की रक्षा करें और दुःस्वप्न का नाश करें । हे महेश्वरि! चक्र धनुष खड्ग शूल ऋष्टि गदा परिघ तोमर वज्र मुद्गर कुन्त बाण भुशुण्डी प्राश पट्टिश और अन्य जो अस्त्र तुम्हारे हाथों में धारण किये गये हैं, हे महेश्वरि! वे अस्त्र सोते हुए मेरी रक्षा करें ॥ ४४२-४४७ ॥

त्वदाज्ञया नारसिंही पूर्वस्यां दिशि पातु माम् ।
वाराही पश्चिमायां च दक्षिणस्यां च कालिका ॥ ४४८ ॥
उत्तरस्यां च चामुण्डा महाघोरतराऽवतु ।
ऊर्ध्वं तथाधो दिग्विदिशोस्त्वं सर्वत्रैव पाहि माम् ॥ ४४९ ॥
शक्तयो याश्च ते देवि परिवारगणाश्च ये ।
सर्वत्र सर्वदा पातु (न्तु) मां त्वच्चरणसेवकम् ॥ ४५० ॥
त्वदाज्ञयैव देवेशि नानारूपधरावुभौ ।
देवौ मामवतां विष्णुरुद्रौ सर्वसुरेश्वरौ ॥ ४५१ ॥
वाराहो नरसिंहश्च वामनोऽनन्त एव च ।

त्रिविक्रमो हयग्रीवः षडिमे पान्तु मां सदा ॥ ४५२ ॥
मृत्युञ्जयो नीलकण्ठो दक्षयज्ञविघातकः ।
त्रिपुरघ्नो हरिश्मश्रुः पिनाकी नीललोहितः ॥ ४५३ ॥
प्रमथेशः कृत्तिवासा विरूपाक्षो महेश्वरः ।
एकादशैते मां पान्तु रुद्रो रौद्रतनूधराः ॥ ४५४ ॥
सदा मामकुतोभीतिं कुरु त्वं गुह्यकालिके ।
एवमष्टादशश्लोकैः रक्षां कृत्वात्मनः प्रिये ॥ ४५५ ॥
शयीत चिन्तयन् कालीं निर्विशङ्केन चेतसा ।
सर्वां निशामयोगज्ञो गमयित्वैव निद्रया ॥ ४५६ ॥
उत्तिष्ठेतोषसि पुनः प्रातः कृत्यचिकीर्षया ।

आपकी आज्ञा से नारसिंही पूर्व दिशा में, वाराही पश्चिम में, कालिका दक्षिण में, चामुण्डा उत्तर में, ऊपर-नीचे महाघोरतरा, दिशाओं-विदिशाओं में सर्वत्र तुम मेरी रक्षा करो । हे देवि! जो तुम्हारी शक्तियाँ और परिवारगण हैं, वे सर्वत्र सर्वदा तुम्हारे चरणसेवक भूत मेरी रक्षा करें । हे देवेशि! आपकी आज्ञा से ही समस्त देवताओं के स्वामी विष्णु और रुद्रदेव अनेक रूपधारी होकर मेरी रक्षा करें । वराह नरसिंह वामन अनन्त त्रिविक्रम हयग्रीव ये छह सदा मेरी रक्षा करें । मृत्युञ्जय, नीलकण्ठ, दक्षयज्ञ-विध्वसंक, त्रिपुरारि, हरिश्मश्रु, पिनाकी, नीललोहित, प्रमथेश, कृतिवासा (= व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले), विरूपाक्ष और महेश्वर ये ग्यारह रुद्र जो कि भयङ्कर रूपधारी हैं, मेरी रक्षा करें । हे गुह्यकालिके! आप मुझे सर्वदा अकुतोभीति (= कहीं से भयभीत न होनेवाला) बना दीजिये । हे प्रिये! इस प्रकार अट्ठारह श्लोकों से अपनी रक्षाकर काली का ध्यान करते हुए निःशङ्क मन से शयन करना चाहिये । अयोगज्ञ साधक निद्रा के द्वारा पूरी रात बिताकर पुनः प्रातःकृत्य करने की इच्छा से उषःकाल में उठ जाय ॥ ४४८-४५६- ॥

[योगविधिप्रक्रमः]

देव्युवाच—

अयोगज्ञ इति प्रोक्तं यत्त्वया प्राणवल्लभ ॥ ४५७ ॥
अत्र मे संशयो जातस्तेन पृच्छाम्यजानती ।
योगज्ञानक्रिया काचित् प्रायशोऽन्यापि तिष्ठति ॥ ४५८ ॥
समुत्थाय निशीथे तां कुर्वते योगिनोऽन्वहम् ।
अर्द्धरात्रे प्रकर्तव्यं योगिभिर्यत् सुरेश्वर ॥ ४५९ ॥
तदिदानीं वद प्रभो श्रोतुं कौतूहलं मम ।

योगविधि—देवी ने कहा—हे प्राणवल्लभ! आपने जो 'अयोगज्ञ' शब्द का प्रयोग किया, इस विषय में मुझे सन्देह है । इसलिये अज्ञानपूर्ण मैं आपसे पूछ रही

हूँ। प्राय: दूसरी एक विचित्र योगक्रिया है, जिसको योगीजन अर्धरात्रि में उठकर करते हैं । हे सुरेश्वर! योगी लोगों को आधी रात को करना चाहिये हे प्रभो! उसको बतलाइये । मुझे सुनने की प्रबल उत्सुकता है ॥ ४५७-४५९- ॥

महाकाल उवाच—

साधु धन्यासि देवेशि विज्ञा चासि न संशय: ॥ ४६० ॥
या त्वं सुश्रूषसे योगविधिं मत्तो विशेषत: ।
अप्यन्यस्मै पृच्छतेऽहमवोचं गौतमर्षये ॥ ४६१ ॥
तुभ्यं कथं न वक्ष्यामि यतोऽसि प्राणवल्लभा ।
देवि कापालिका: कौला: भाण्डिकेरा:दिगम्बरा: ॥ ४६२ ॥
मौलेया भैरवाध्वन्या वामाचारकराश्च ये ।
तेषां नित्यार्चने बुद्धिरैहिकार्थधृतात्मनाम् ॥ ४६३ ॥
देव्यै दत्त्वा सुरां मांसं स्वयं समुपभुज्य च ।
रममाणा: सह स्त्रीभि: स्वच्छन्दाचारचारिण: ॥ ४६४ ॥
साधयन्त्यैहिकानर्थान् सिद्धीरपि च काश्चन ।
श्रुत्युक्तपथसञ्चारा गृहस्था अपि तादृशा: ॥ ४६५ ॥
आनुकल्पेन विधिना यजन्त: परमेश्वरीम् ।
कामयाना ऐहिकार्थान् कुर्वते नामृते रतिम् ॥ ४६६ ॥
एतौ सिद्धीरीहमानौ पूजां नैव (चैव) प्रशंसत: ।

महाकाल ने कहा—हे देवेशि! बहुत उत्तम! तुम धन्य हो और विज्ञ भी हो इसमें सन्देह नहीं । क्योंकि मुझसे विशेषरूप से योगविधि सुनना चाहती हो । मैंने जब अन्य पूछनेवाले गौतम ऋषि को (योगविधि के विषय में) बतलाया तो तुमको क्यों नहीं बतलाऊँगा । तुम तो मेरी प्राणप्यारी हो । हे देवि! कापालिक कौल भाण्डिकेर दिगम्बर मौलेय भैरवमार्ग पर चलनेवाले, वामाचारी ये सब ऐहिक अर्थात् सांसारिक फल धन पुत्र स्त्री आदि चाहनेवाले होते हैं । ये नित्यार्चन में लगे रहते हैं (और इसी को सर्वोत्तम मानते हैं) । देवी के लिये सुरा मांस आदि देकर, स्वयं उसका उपभोग करने के बाद स्वच्छन्द आचरण करनेवाले ये सांसारिक लक्ष्यों की तथा कुछ सिद्धियों की प्राप्ति मात्र कर लेते हैं । उस प्रकार के (अर्थात् नित्यार्चन करनेवाले) वेदमार्गी भी अनुकल्पविधि के द्वारा परमेश्वरी की पूजा करते हुए सांसारिक पदार्थों की कामना कर अमृतत्व में रति नहीं करते । सिद्धियों को चाहनेवाले ये दोनों (अर्थात् वेदमार्गी एवं वाममार्गी) पूजा की ही प्रशंसा करते हैं ॥ ४६०-४६६- ॥

[योगमाहात्म्यकथनम्]

ये कैवल्ये कृतात्मानो विरक्ता: शुद्धबुद्धय: ॥ ४६७ ॥
ये सिद्धीरैहिकफलं तृणवद् गणयन्ति च ।

येषां स्वर्गोऽपि देवेशि कटुतुम्बीफलाकृतिः ॥ ४६८ ॥
ते योगमेवाभ्यसन्ति नार्चाध्यानबलिस्तवान् ।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा ये तेषां च कुलोद्भवाः ॥ ४६९ ॥
ब्रह्मर्षयस्तपोनिष्ठाः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।
स्वध्यायवन्तो मौनस्था अदारा अपरिग्रहाः ॥ ४७० ॥
तेऽन्यान् प्रकारान् संत्यज्य योगाभ्यासं प्रचक्रिरे ।
योगेन भवबन्धोऽयं विनाशमुपगच्छति ॥ ४७१ ॥
कर्माणि क्षयमायान्ति पूर्वजन्मकृतान्यपि ।
ज्ञानं प्रकाशतेऽत्यर्थं शुद्धं यद्दोषवर्जितम् ॥ ४७२ ॥
ज्ञानयोगबलादेव भवेन्मुक्तिर्न चान्यथा ।
फलमुक्तं मुख्यमस्य वक्ष्ये गौणमतः परम् ॥ ४७३ ॥
जायते दूरदर्शित्वं दूरश्रोतृत्वमेव च ।
आरोग्यं देहसौगन्ध्यं चिरजीवित्वमेव च ॥ ४७४ ॥
सर्वज्ञत्वं खेचरत्वं कामरूपित्वमेव च ।
अणुत्वं च महत्त्वं च शरीरस्य निजेच्छया ॥ ४७५ ॥
गुटिकाधातुवादादियक्षिण्यञ्जनपादुकाः ।
स्वर्नागलोकगमनं स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥ ४७६ ॥
सिद्धयोगस्य जायन्ते तथा चाकल्पजीविता ।

योग की महिमा—जो शुद्ध चित्तवाले विरक्त लोक कैवल्य के प्रति समर्पित बुद्धिवाले होते हैं जो सिद्धियों और सांसारिक फलों को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं; हे देवेशि! जिनके लिये स्वर्ग भी तितलौकी के समान (त्याज्य) है, वे योग का ही अभ्यास करते हैं; अर्चन ध्यान बलिदान और स्तुति नहीं करते । ब्रह्मा के जो मानस पुत्र (= सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार आदि) हैं और उनके वंश में जो शान्त दान्त जितेन्द्रिय तपस्वी ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए, जो स्वाध्याय करनेवाले मौनी स्त्री सम्पत्ति का संग्रह न करनेवाले थे वे अन्य प्रकार के अनुष्ठानों को छोड़कर योगाभ्यास ही करते थे । योग के द्वारा यह संसारबन्धन नष्ट हो जाता है । पूर्वजन्म के सञ्चित कर्म भी क्षीण हो जाते हैं । दोषरहित शुद्धज्ञान का अत्यधिक प्रकाश होने लगता है । ज्ञानयोग के बल से ही मुक्ति उपलब्ध होती है, अन्य उपायों से नहीं । इस योग का मुख्य फल (= मुक्ति) बतला दिया गया । अब इसके गौण फल को बतला रहा हूँ । दूर दर्शन-दूर श्रवण की क्षमता, आरोग्य, देह में सुगन्ध, दीर्घायुष्ट्व, सर्वज्ञत्व, खेचरत्व, कामरूपता, शरीर को अपनी इच्छानुसार हलका और भारी बनाना, गुटिकासिद्धि, धातुवाद आदि, यक्षिणी सिद्धि, अञ्जन सिद्धि, पादुका सिद्धि, स्वर्ग-पाताल लोकों में गमन का सामर्थ्य, स्वेच्छाचारित्व तथा कल्पपर्यन्त जीवन ये सब सिद्धयोगी को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४६७-४७६- ॥

[योगप्रकाराणामभ्यासविधेश्च निर्देशः]

वक्ष्येऽधुना तत्प्रकारानभ्यासविधिमेव च ॥ ४७७ ॥
तत्रादौ वच्मि शारीरीं स्थितिं त्रिदशवन्दिते ।
अस्ति ब्रह्म चिदानन्दं स्वयंज्योतिर्निरञ्जनम् ॥ ४७८ ॥
ईश्वरं लिङ्गमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् ।
निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनीश्वरम् ॥ ४७९ ॥
निर्लेपं निर्मलं शुद्धं कूटस्थमविनाशि च ।
सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसञ्ज्ञकाः ॥ ४८० ॥
अनाद्यविद्योपहता यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गकाः ।
दार्वाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः ॥ ४८१ ॥
सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः ।
तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम् ॥ ४८२ ॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामस्त्यपरं पुनः ।
सूक्ष्मं लिङ्गं शरीरं तदामोक्षादक्षयं मतम् ॥ ४८३ ॥
सूक्ष्मभूतेन्द्रियप्राणावस्थान्यकमिदं वपुः ।
जीवानामुपभोगाय जगदेतत् सृजत्यजः ॥ ४८४ ॥
स आत्मा परमात्मा च कल्पान्ते संहरत्यदः ।
तदेतत् सृष्टिसंहारौ प्रवाहानादिसम्मतौ ॥ ४८५ ॥
ते जीवा नात्मनो भिन्ना भिन्नं नैवात्मनो जगत् ।
शक्त्यासृजन्न भिन्नोऽसौ सुवर्णं कुण्डलादिव ॥ ४८६ ॥
सृजत्यविद्ययेत्यन्ये यथा रज्जुर्भुजङ्गमम् ।

योग के प्रकार एवं उसके अभ्यास की विधि—अब उस योग के प्रकार और उनके अभ्यास की विधि बतलाऊँगा । हे त्रिदशवन्दिते! उनमें से पहले शरीर की स्थिति बतला रहा हूँ । ब्रह्म नामक एक तत्त्व है जो चित्स्वरूप, आनन्द-स्वरूप, स्वप्रकाश, निष्कलङ्क, सबका स्वामी, लिङ्ग अर्थात् सबका लयस्थान, अद्वितीय, अज, व्यापक, निर्विकार निराकार सबका ईश्वर है । उसका कोई अधिपति नहीं है । वह निर्लेप, निर्मल, शुद्ध, कूटस्थ, अविनाशी, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है । उसके अंश जीव कहे जाते हैं वे जीव अनादि अविद्या से आच्छन्न हैं । जिस प्रकार अग्नि की चिनगारियाँ काष्ठ आदि उपाधि से युक्त होती हैं उसी प्रकार वे पुण्य पाप रूपी एवं सुख दुःखप्रद अनादि कर्मों से नियन्त्रित होते हैं । वह देह जन्म लेनेवाला होता है । उसकी आयु और भोग कर्म से निश्चित होते हैं । वे जीव जन्म लेते रहते हैं । जाति और आयु उनको प्रत्येक जन्म में प्राप्त होता है ।[१] उनके कर्म एवं भोग के फलस्वरूप दूसरा जन्म होता है । उस जीव का एक सूक्ष्म

---

[१] तुलनीय—सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । पा.यो.सूत्र ।

लिङ्ग शरीर होता है जो उसकी मोक्षप्राप्ति तक अक्षय होता है अर्थात् नहीं मरता। यह शरीर सूक्ष्मभूत (अर्थात् पञ्चतन्मात्र एकादश इन्द्रिय और पञ्चप्राण) वाला होता है अर्थात् यह उन्नीस तत्त्वों से संघटित होता है। ब्रह्मा जीवों को उनके कर्म के भोग के लिये इस संसार की सृष्टि करते हैं वह आत्मा और परमात्मा कल्प के अन्त में इस संसार का संहार कर लेते हैं। संसार का यह सृष्टि-संहार अनादि प्रवाहवाला माना गया है। वह जीव आत्मा से भिन्न नहीं है और संसार भी आत्मा से पृथक् नहीं है। सोने से कुण्डल की भाँति परमात्मा अपनी शक्ति से इसकी रचना करते रहते हैं (ऐसा शैव सम्प्रदायवाले मानते हैं) अन्य (अर्थात् वेदान्ती लोग कहते हैं कि) जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होता है वैसे ही परमेश्वर अविद्या के द्वारा अपने ही ऊपर संसार का भ्रम उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ४७७-४८६- ॥

[सृष्टिप्रक्रियाभिधानम्]

भवेदात्मन आकाशस्ततो वायुस्ततोऽनलः ॥ ४८७ ॥
अनलाज्जलमेतस्मात् पृथिवी समजायत।
महाभूतान्यमून्येषां समाजो ब्रह्मणस्तनुः ॥ ४८८ ॥
ब्रह्म ब्रह्माणमसृजत् तस्मै वेदान् प्रदाय च।
भौतिकानेव भूतैस्तैः सर्ज्जयामास तेन सः ॥ ४८९ ॥
तदाज्ञयाऽसृजद् ब्रह्मा मनसैव प्रजापतीन्।
तेभ्यस्तु चेतसो सृष्टिः शरीराणां निरूप्यते ॥ ४९० ॥
जरायुजा अण्डजाश्च स्वेदजा उद्भिदास्तथा।
देवि स्युश्चेतनावन्तश्चतुर्धा न तु पञ्चधा ॥ ४९१ ॥
मनुष्याद्याश्च पश्वन्ताः सर्वे ज्ञेया जरायुजाः।
खगाद्या जलजान्ताश्च विज्ञेया अण्डजा इमे ॥ ४९२ ॥
स्वेदजाः परिविज्ञेया मक्षिकामशकादयः।
तरुगुल्मलतौषध्य उद्भिदाः परिकीर्तिताः ॥ ४९३ ॥
तत्र योगोपयोगित्वान् मानुषं देहमुच्यते।
क्षेत्रज्ञ आयादाकाशमाकाशाद् वायुमागतः ॥ ४९४ ॥
वायोर्धूमं ततश्चाभ्रमभ्रान्मेघेऽवतिष्ठते।
आहुत्याप्यायितो भानुस्तपे पिबति भूरसान् ॥ ४९५ ॥
पुनस्तानेव किरणरूपे धत्ते बलाहकः।
यदा वर्षति वर्षेण सह जीवस्तदा भुवः ॥ ४९६ ॥
वनस्पत्योषधीर्जाताः संक्रामत्यविलक्षितः।

सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन—आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ उससे वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। ये पाँच महाभूत हैं। इनका

संघट्ट ब्रह्म का शरीर है । ब्रह्म ने ब्रह्मा की सृष्टि की और उनको वेदों को देकर भूतों से ही भौतिक संसार की रचना करायी । उस ब्रह्म की आज्ञा से ब्रह्मा ने मन से प्रजापतियों की सृष्टि की । उन प्रजापतियों से शरीर के चित्त की सृष्टि बतलायी जाती है । हे देवि! जरायुज (= झिल्ली के साथ पैदा होनेवाले मनुष्य आदि) अण्डज (= अण्डा से उत्पन्न होनेवाले पक्षी आदि) स्वेदज (= पसीना से उत्पन्न होनेवाले यूका लिक्ष आदि) उद्भिज्ज (= भूमि को फोड़कर निकलनेवाले वृक्ष आदि) ये चार प्रकार के चेतन जीव होते हैं । पाँचवाँ प्रकार नहीं है । मनुष्य से लेकर पशु तक सबको जरायुज जानना चाहिये । पक्षी से लेकर जलचर तक सब अण्डज समझे जाने चाहिये। मक्खी मच्छर आदि स्वेदज और वृक्ष पौधा लता औषधि उद्भिद कही गयी है । इनमें मनुष्य देह योगोपयोगी कहा जाता है । (यह शरीर क्षेत्र है । इस क्षेत्र को जाननेवाला क्षेत्रज्ञ होता है वह) क्षेत्रज्ञ आकाश में आया । आकाश से वायु में, वायु से धूम में, धूम से अभ्र में और अभ्र से मेघ में आकर रुक जाता है । (यज्ञ के द्वारा दी जानेवाली) आहुति से तृप्त हुआ सूर्य तप अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वी से जल का शोषण करता है । पुनः उन्हीं जलों को बादल किरण रूप में धारण करता है । जब बादल बरसता है तो वर्षा के साथ जीव भी पृथिवी पर वनस्पति औषधियों में अदृश्य रूप से संक्रमण करता है ॥ ४८७-४९६- ॥

[गर्भप्रक्रियावर्णनम्]

ताभ्योऽन्नं तत्पुनर्जग्धं पुरुषो शुक्रतां गतम् ॥ ४९७ ॥
शुद्धार्तवायां योषायां निषिक्तं स्मरमन्दिरे ।
कदाचिद्दैववशतो गर्भाशयगतं भवेत् ॥ ४९८ ॥
जीवकर्मप्रेरितं तद्गर्भमारभते तथा ।
द्रवत्वं प्रथमे मासे कललाख्यं प्रजायते ॥ ४९९ ॥
द्वितीये सुघनः पिण्डः पेशी कललमर्बुदम् ।
पुंस्त्रीनपुंसकानां स्युः प्रागवस्थाक्रमादिमाः ॥ ५०० ॥
तृतीये त्वङ्कुराः पञ्च कराङ्घ्रिशिरसां मताः ।
अङ्गप्रत्यङ्गभावाश्च सूक्ष्माः स्युर्युगपत्तदा ॥ ५०१ ॥
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मानन्तरसम्भवान् ।
एषा प्रकृतिरस्यानु विकृतिर्बहुलाल्पता ॥ ५०२ ॥
चतुर्थी व्यक्तता तेषां भावानामपि जायते ।
पुंसां शौर्यादयो ज्ञेया भीरुत्वाद्याश्च योषिताम् ॥ ५०३ ॥
नपुंसकानां सङ्कीर्णा भवन्तीति विनिश्चयः ।
मातृजं चास्य हृदयं विषयानभिकांक्षति ॥ ५०४ ॥
अतो मातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद् गर्भसमृद्धये ।

तां च द्विहृदयां नारीमाहुर्दोहदिनीं बुधाः ॥ ५०५ ॥
अदानाद्दोहदादीनां गर्भस्य व्यङ्गतादयः ।
मातुर्यद्विषयालाभस्तदार्तो जायते सुतः ॥ ५०६ ॥
गर्भः स्यादर्थवान् भोगी दोहदाद्राजदर्शने ।
अलङ्कारे सुललितो धर्मिष्ठस्तापसाश्रमे ॥ ५०७ ॥
देवतादर्शने भक्तो भीतो भुजगदर्शने ।
गोदर्शने तु निद्रालुर्बली गोमांसभक्षणे ॥ ५०८ ॥
माहिषे तु सुरक्ताक्षो लोमशो जायते सुतः ।
काम्याजे चाटके चापि हारिणे वनपर्य्यटः ॥ ५०९ ॥
तत्तद्रोगयुतो भूयात् तत्तद्रोगयुतेक्षणे ।
तत्तद्गुणयुतश्चापि तत्तद्गुणिनि भाषणे ॥ ५१० ॥

गर्भ-प्रक्रिया का वर्णन—उन वनस्पतियों औषधियों से अन्न (= खाद्य पदार्थ) बनता है । खाये जाने पर वह अन्न (पुरुष देह में) शुक्र बनता है । निवृत्तरजस्वला स्त्री के स्मरमन्दिर (= योनि) में निषिक्त वह शुक्र किसी समय गर्भाशय में पहुँच कर जीव के कर्म से प्रेरित हुआ गर्भ बनता है । पहले मास में वह द्रव कलल बनता है। दूसरे मास में घनीभूत पिण्ड बनता है जिसमें माँसपेशी होती है । उसे अर्बुद कहते हैं । पुरुष स्त्री नपुंसकों की यह पिण्डपेशी अर्बुद नामक प्रथम अवस्था में होती हैं । तीसरे मास में उसमें हाथ पैर शिर के पाँच अङ्कुर उत्पन्न होते हैं । उसी समय, एक ही साथ सूक्ष्म अङ्ग-प्रत्यङ्ग सत्ता में आ जाते हैं । उस समय बाल दाँत आदि जो जन्म के बाद पैदा होनेवाले हैं, नहीं उत्पन्न होते । यह प्रकृति है । इसके बाद थोड़ी बहुत विकृति होती है । चौथे मास में वे भाव व्यक्त हो जाते हैं । वे भाव पुरुषों में शूरता वीरता आदि तथा स्त्रियों में भीरुता लज्जा आदि बनते हैं जो व्यक्त हो जाते हैं । नपुंसकों में ये दोनों प्रकार के भाव मिश्रित होते हैं । इस शरीर का हृदय मातृ अंश से उत्पन्न होता है और विषयों की कामना करता रहता है । इसीलिये गर्भ की समृद्धि के लिये (गर्भकाल में) माता की इच्छाओं को पूरी करनी चाहिये । विद्वान् लोग उस दोहदिनी (= गर्भकाल में नाना प्रकार की इच्छाओंवाली) स्त्री को द्विहृदया (= दो हृदयवाली) कहते हैं । दोहद आदि को पूरा न करने से गर्भ विकृत अङ्गवाला हो जाता है । माता को जो विषय (गर्भकाल में) नहीं मिलता पुत्र उस विषय के लिये लालायित रहता है । दोहद के कारण राजा का दर्शन होने पर गर्भ धनवान तथा भोगविलासवाला होता है । अलङ्कार का दोहद होने पर अलङ्कार दर्शन होने पर सुन्दर तथा तपस्वी के आश्रम के दर्शन का दोहद होने पर धर्मिष्ठ होता है। (दोहद के बाद) देवता का दर्शन होने पर (जातक) भक्त, सर्प का दर्शन होने पर भयभीत, बैल का दर्शन होने पर निद्रालू, गोमांस का भक्षक देखने पर बलवान् तथा भैंस का (मांस भक्षक देखने

पर) पुत्र लाल आखोंवाला तथा शरीर में रोमसमूहवाला होता है । काम्याज (= सुन्दर बकरा ?), गौरैया, हरिण का दर्शन होने पर जातक वन में घूमनेवाला होता है । भिन्न-भिन्न रोग से युक्त मनुष्य का दर्शन होने पर भिन्न-भिन्न रोग से युक्त पुत्र उत्पन्न होता है । तत्तद् गुणवाले भाषण को सुनने पर या ऐसे गुणवाले व्यक्ति को देखने पर वह उन-उन गुणोंवाला होता है ॥ ४९७-५१० ॥

प्रबुद्धः पञ्चमे चित्तं मांसशोणितपृष्ठता ।
षष्ठेऽस्थिस्नायुकट्यन्त्रकेशरोमविविक्तता ॥ ५११ ॥
बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वङ्गपूर्णता ।
अधोमुखः स्वहस्ताभ्यां श्रोत्ररन्ध्रे पिधाय सः ॥ ५१२ ॥
उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते तत्र रुजान्वितः ।
स्मरन् पूर्वानुभूतान् स नानाजातीश्च यातनाः ॥ ५१३ ॥
मोक्षोपायमभिध्यायन् वर्ततेऽभ्यासतत्परः ।
जायते जीवसंयुक्तश्चेष्टादृष्टिविकारवान् ॥ ५१४ ॥
अष्टमे तु श्रुती स्यातामोजश्चैतन्यहृद्भरम् ।
शुद्धमापीतरक्तं च निमित्तं जीविते मतम् ॥ ५१५ ॥
पुनरम्बा पुनर्गर्भः चञ्चलं तत्प्रधावति ।
अतो जातोऽष्टमे मासे न जीवत्योजसोज्झितः ॥ ५१६ ॥
कञ्चित् कालमवस्थानं संस्कारात् खण्डिताङ्गवत् ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णा(र्णो) मातुर्नाड्या रसं पिबन्॥ ५१७ ॥
वर्द्धते स हि तत्रैव पश्यन्
विच्युत्यनेहसम् (विच्युतिमनेहसीम् ?) ।
पितूरेतोऽतिरिक्तत्वात् पुरुषाः सम्भवन्ति हि ॥ ५१८ ॥
मातुस्तदाधिक्यवशात् स्त्रिय एव भवन्ति हि ।
उभयोस्तुल्यबीजत्वे जायन्ते हि नपुंसकाः ॥ ५१९ ॥
अन्धाः कुब्जाश्च खञ्जाश्च
वामनाः केकराः कृशाः ।
हीनाङ्गा अतिरिक्ताङ्गाः जायन्ते स्वस्वकर्मभिः ॥ ५२० ॥

पाँचवें महीने में गर्भस्थ शरीर चेतनायुक्त हो जाता है । उसमें मन का सञ्चार होता है और मांस रक्त तथ पृष्ठ प्रदेश रचित होते हैं । छठें मास में अस्थि स्नायु कटि आँतें केश तथा रोम (= भग एवं लिङ्ग) का भेद स्पष्ट हो जाता है । साथ ही उस शरीर में बल एवं रङ्ग बढ़ जाते हैं । सातवें मास में सारे अङ्ग पूर्ण एवं स्पष्ट हो जाते हैं । इस काल में वह शिशु अपने हाथों से कान के दोनों छिद्रों को बन्द कर गर्भ-संवास के कारण उद्विग्न हुआ पीडा युक्त होकर पड़ा रहता है । उस समय उसे पूर्व जन्मों के अनुभव का एवं नाना प्रकार की जाति (= जन्म एवं उन जन्मों

की) यातनाओं का स्मरण होता रहता है । तब वह जीव मोक्ष के उपाय का चिन्तन करता हुआ अभ्यास में लगा होकर चेष्टा दृष्टि एवं (काम क्रोध आदि) विकारोंवाला हो जाता है । अष्टम मास में दोनों कान स्पष्ट हो जाते हैं; चैतन्य और हृदय को आपूरित करनेवाला ओज प्रकट होता है । यह ओज शुद्ध कुछ-कुछ पीला और कुछ-कुछ लाल रङ्ग का होता है । यह जीवन का निमित्त माना गया है अर्थात् यह जीवन ओज के कारण ही चलता है । यह ओज चञ्चल होकर माता और गर्भ दोनों में बारी-बारी से दौड़ता रहता है । इसीलिये अष्टम मास के आने पर यदि वह गर्भस्थ शिशु ओज से रहित हो जाय तो जीवित नहीं रहता । संस्कारवश कुछ समय तक वह खण्डित अङ्गोंवाले जैसा रहता है । ऐसी स्थिति में माता की (स्तनपायिनी) नाडी से रस का पान करता हुआ वह उस गर्भ में बढ़ता है । उस समय वह अनेहसी (= कष्टरहित) विच्युति (= गर्भ से मुक्ति) की प्रतीक्षा करता रहता है । (कलम में) पिता के रेतस् की अधिकता होने पर पुरुष उत्पन्न होते है । माता के शोणित के आधिक्य से स्त्रियाँ उत्पन्न होती हैं । दोनों के तुल्यबीज होने पर नपुंसक पैदा होते हैं । ये जीव अपने-अपने कर्मों के कारण अन्धे, कुबड़े, लँगड़े, नाटे, भैंगें, दुबले, अङ्गहीन एवं अतिरिक्त अङ्गवाले होते हैं ॥५११-५२०॥

निरीक्ष्य यातनाः स्वस्य तच्च योनिप्रपीडनम् ।
गर्हयन्नात्मनात्मानं निर्विण्णश्चिन्तयत्यदः ॥ ५२१ ॥
अस्मिन् संसारगहने तत्तत्कर्मसमाकुले ।
पुण्यपापाङ्कुरेऽमाने निरयावटपूरिते ॥ ५२२ ॥
रोगशोकादिविविधहिंस्त्रजन्तुभिरावृते ।
कामक्रोधादिपतगध्वनिसम्पूरितान्तरे ॥ ५२३ ॥
हाहा पतितवानस्मि किं कुर्यामत्र वर्तयन् ।
नानायोनिसहस्राणि दृष्टान्येव ततो मया ॥ ५२४ ॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ।
जातस्यापि मृतस्यापि जन्म मृत्युः पुनः पुनः ॥ ५२५ ॥
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ।
यदि योनिं प्रमुञ्चामि योगाभ्यासं समाश्रये ॥ ५२६ ॥
ज्ञानं वासं (वाशः?) सूतिवनप्लोषमूलैककारणम् ।
अशुभक्षयकर्तारं कैवल्यामृतदायिनम् ॥ ५२७ ॥
यदि योनिं प्रमुञ्चामि प्रपत्स्ये तं महेश्वरम् ।
यथा न जायेत मम दुःखं वै गर्भवासजम् ॥ ५२८ ॥
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
एकाकी तेन मुह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥ ५२९ ॥

इन्द्रदेहादिविट्कीट(त)नवोऽनुभवं गता ।
पिता पितामहो ह्यासं भूयसां प्राणि(?ण)धारिणाम् ॥ ५३० ॥
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च तथा संसारकानने ।
गर्भस्थितस्य मे वारंवारमेतादृशी मतिः ॥ ५३१ ॥
निष्क्रान्तस्य तथापैति जायते ज्ञानमच्युत(तम् ?) ।
पर्यायेऽस्मिन् विनिष्क्रान्तो योनिवासात् कथञ्चन ॥ ५३२ ॥
तमुपायं करिष्यामि नायं येन पुनर्भवेत् ।

अपनी यातनाओं और उस योनिपीडा को देखकर अपने द्वारा अपनी निन्दा एवं तिरस्कार करता हुआ दुःखी होकर सोचता है—तत्तत् कर्म से भरे हुए, पुण्य और पापरूपी अङ्कुरवाले, असीम, नरकरूपी गड्ढे से पूरित, रोग शोक आदि रूपी अनेक प्रकार के जन्तुओं से आवृत, कामक्रोध आदि पक्षीगण की ध्वनियों से अन्दर-अन्दर आपूरित इस संसार में हाय मैं गिर गया हूँ । यहाँ रहते हुए मैं क्या करूँ ? इस संसार में रहने के बाद मैंने अनेक सहस्र योनियों को देखा अर्थात् उनमें जन्म लिया, अनेक प्रकार के आहार का भोजन किया; अनेक प्रकार के स्तनों का पान किया । जन्म लिये एवं मरे हुए का जन्म और मृत्यु बार-बार होते हैं । हाय ! दुःख के सागर में निमग्न मैं इससे बाहर आने का उपाय नहीं देख रहा हूँ । यदि इस योनि-यन्त्रणा से मुक्त हो जाऊँगा तो योगाभ्यास करूँगा । ज्ञान और वाश (= भगवत्कीर्त्तन) जन्मरूपी वन को जलाने का एकमात्र मूलकारण है । यह अशुभ का क्षय करनेवाला एवं कैवल्यरूपी अमृत को देनेवाला होता है । अथवा यदि योनि से मुक्त हो जाऊँगा तो अशुभ का क्षय करनेवाले, कैवल्यरूपी अमृत को देनेवाले उस महेश्वर की शरण में जाऊँगा । जिससे कि मुझे गर्भ में रहने का दुःख न भोगना पड़े । अपने परिवारीजनों के लिये मैंने जो शुभ-अशुभ कर्म किया उससे मैं अकेला मोह में पड़ा हूँ अर्थात् दुःख भोग रहा हूँ । उनका (सुखद) फल भोगनेवाले मुझसे अलग हो गये । इन्द्र की देह से लेकर विट् एवं कीड़े-मकोड़े की शरीर तक का मैने अनुभव किया । मैं अनेक जीवधारियों का पिता पितामह रहा तथा इस संसारकानन मे मेरे पुत्र पौत्र प्रपौत्र भी हुए । जब मैं गर्भ में रहता हूँ तो बार-बार मेरी समझ में यह आता है, किन्तु गर्भ से निकल जाने पर यह बुद्धि (= मैं कई जन्मों से दुःख भोग रहा हूँ इत्यादि) दूर हो जाती है तथा अच्युत (= यह संसार नित्य है मैं भी नित्य हूँ) ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । जन्म-मृत्यु के इस पर्याय से यदि किसी प्रकार गर्भवास से निकल गया तो मैं वह उपाय करूँगा जिससे यह (= गर्भवास) पुनः न हो ॥ ५२१-५३२- ॥

संसारगहनच्छेत्ता महायोगपरश्वधः ॥ ५३३ ॥
अथवा ज्ञानदहनः समूलोषकरः सदा ।
आयातोऽहं नरकतो तत्र यास्यामि वै पुनः ॥ ५३४ ॥

एवं भूतस्य निस्तारः कथं मम भविष्यति ।
एवं विचिन्तयन्नास्ते दिवारात्रिमतन्द्रितः ॥ ५३५ ॥
यावद्गर्भं परित्यज्य भूमौ पतति बालकः ।
समयः प्रसवस्याथ मासेषु नवमादिषु ॥ ५३६ ॥
मातूरसवहां नाडीमनुबद्धः पराभिधाम् ।
नाभिस्थनाडीं गर्भस्थमात्राहाररसावहाम् ॥ ५३७ ॥
कृताञ्जलिर्ललाटेऽसौ मातृपृष्ठमभिस्थितः ।
अध्यास्ते सङ्कुचद्गात्रो गर्भे दक्षिणपार्श्वतः ॥ ५३८ ॥
वामपार्श्वाश्रिता नारी क्लीबं मध्याश्रितं मतम् ।
क्रियतेऽधः शिराः सूतिमारुतैः प्रबलैस्ततः ॥ ५३९ ॥
निःसार्यति (ते ?) रुजद्गात्रो
यन्त्र(योनि ?)छिद्रेण बालकः ।
जातमात्रस्य तस्याथ सा बुद्धिरपनश्यति ॥ ५४० ॥
या पूर्वं गर्भसंस्थस्य मोक्षोपायं प्रति स्थिता ।
रोदनं कुर्वतोऽस्यैव प्रवृत्तिः स्तन्यगोचरा ॥ ५४१ ॥
प्राग्जन्मबोधसंस्कारादिति जीवस्य नित्यता ।

महायोगरूपी परशु संसाररूपी घने जङ्गल को काटनेवाला है । अथवा ज्ञानरूपी अग्नि (इस संसार को) समूल सुखानेवाली है । मैं नरक से निकला हूँ पुनः (मरने के बाद) उसमें जाऊँगा । इस (नरक भोगी) मेरा निस्तार (= नरक से छुटकारा) कैसे होगा इस प्रकार जीव सावधान होकर रात-दिन चिन्तन करता रहता है । (यह चिन्तन तब तक चलता है) जब तक बालक गर्भ से बाहर नहीं निकल जाता । इसके प्रसव का समय नवम आदि मास होते हैं (अर्थात् कोई नवें महीने कोई आठवें कोई-कोई सातवें ही महीने में धरती पर आ जाता है) उस समय वह बालक परा नामक नाडी से बँधा रहता है, यह नाडी माता के खाये-पीये अन्न-जल के रस को (अपरा अर्थात् जरायु के माध्यम से) शिशु तक पहुँचाती है । यह (= परा) नाडी शिशु की नाभि से जुड़ी रहती है और केवल गर्भस्थ शिशु के आहारभूत रस को शिशु तक पहुँचाती रहती है । (तात्पर्य यह है कि माता के द्वारा अशित पीत से निर्मित रस अपरा में और अपरा से परा में जाकर शिशु के नाभि से उसके शरीर में पहुँचता है) यह बालक मस्तक पर हाथ जोड़े, माता के पीठ की ओर मुड़ी हुई देहवाला होकर रहता है । यदि यह बालक है तो दक्षिण पार्श्व में और यदि बालिका है तो माता के वामपार्श्व में तथा नपुंसक होने की स्थिति में मध्य में रहता है—ऐसा शास्त्रों का मत है । जन्मकाल में प्रबल प्रसव-मारुत के द्वारा उसका शिर नीचे कर दिया जाता है। उस समय वह बालक प्रबल सूतिवायु के द्वारा पीड़ित शरीर होकर योनि के छिद्र से बाहर निकाल दिया जाता है । उत्पन्न होते ही इस शिशु की वह

बुद्धि जो गर्भ में रहने के समय मोक्ष के उपाय के विषय में चिन्तन करती थी, नष्ट हो जाती है। उस समय पूर्वजन्म के बोध के संस्कार के कारण वह दूध पीने के लिये रोना शुरू करता है। यही जीव की नित्यता है ॥ ५३३-५४१- ॥

[शरीरविज्ञानवर्णनम्]

भावाः षड्विधास्तस्य मातृजाः पितृजास्तथा ॥ ५४२ ॥
रसजा आत्मजाः सत्त्वसम्भवाः सात्म्यजास्तथा ।
मृदवः शोणितं मेदो मज्जा प्लीहा यकृद् गुदम् ॥ ५४३ ॥
हृन्नाभीत्येवमाद्यास्तु भावाः मातृभवा मताः ।
श्मश्रुलोमकचाः स्नायुशिरोधमनयो नखाः ॥ ५४४ ॥
दशनाः शुक्रमित्यादिस्थिराः पितृसमुद्भवाः ।
शरीरोपचयो वर्णो वृद्धिस्तृप्तिर्बलं स्थितिः ॥ ५४५ ॥
अलोलुपत्वमुत्साहः इत्यादीन् रसजान् विदुः ।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं धर्माधर्मौ च भावना ॥ ५४६ ॥
प्रयत्नो ज्ञानमायुश्चेन्द्रियाणीत्यात्मजा मताः ।
ज्ञानेन्द्रियाणि श्रवणं स्पर्शनं दर्शनं तथा ॥ ५४७ ॥
रसनं घ्राणमित्याहुः पञ्च तेषां तु गोचराः ।
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्ध इति क्रमात् ॥ ५४८ ॥
वाक्कराङ्घ्रिगुदोपस्थान्याहुः कर्मेन्द्रियाणि तु ।
वचनादानगमनविसर्गरतयः क्रमात् ॥ ५४९ ॥
क्रियास्तेषां मनोबुद्धी इत्यन्तःकरणद्वयम् ।
सुखं दुःखं च विषयो विज्ञेया मनसः क्रिया ॥ ५५० ॥
स्मृतिभीतिविकल्पाद्या बुद्धेर्व्यवसितिर्मता ।
ब्रह्मयोनीनीन्द्रियाणि भौतिकान्यपरे जगुः ॥ ५५१ ॥
सत्त्वाख्यमन्तःकरणं गुणभेदात्त्रिधा मतम् ।
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः सत्त्वात्तु सात्त्विकाः ॥ ५५२ ॥
आस्तिक्यशुक्लधर्मैकरुचिप्रभृतयो मताः ।
सत्त्वात्तु राजसाद्भावाः कामक्रोधमदादयः ॥ ५५३ ॥
निद्रालस्यप्रमादादिवञ्चनाद्याश्च तामसात् ।
प्रसन्नेन्द्रियतारोग्यानालस्याद्याश्च सात्म्यजाः ॥ ५५४ ॥

शरीर-विज्ञान—(उस शिशु के शरीर में) छह प्रकार के भाव (= तत्त्व) होते हैं—मातृज, पितृज, रसज, आत्मज, सत्त्वज और सात्म्यज। रक्त, मेदा, मज्जा, प्लीहा, यकृत, गुदा, हृदय, नाभि इत्यादि मृदु तत्त्व माता (के अंश) से उत्पन्न माने गये हैं। दाढ़ी, शरीर के रोयें, शिर के बाल, स्नायु, शिरायें, धमनियाँ, नाखून, दाँत शुक्र इत्यादि कठोर तत्त्व पिता (के अंश) से उत्पन्न माने गये हैं। शरीर का

पुष्ट होना, रङ्ग, वृद्धि, तृप्ति, बल, स्थिति (= अस्तित्व) सन्तुष्टि, उत्साह इत्यादि गुण रस से उत्पन्न होते हैं । इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख, धर्म, अधर्म, भावना, प्रयत्न, ज्ञान, आयु और इन्द्रियाँ ये आत्मा से उत्पन्न होते हैं । (इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ) श्रोत्र स्पर्श (= त्वच्) दर्शन (= नेत्र) रसना और घ्राण—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध उनके गोचर (= विषय) हैं । वाक् पाणि पैर गुदा और उपस्थ (= जननेन्द्रिय)—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। वचन, आदान, विहरण, मलत्याग और रति—ये उन कर्मेन्द्रियों की क्रियाएँ हैं । मन और बुद्धि ये दो अन्त:करण हैं । (किसी-किसी मत में अहङ्कार को तीसरा अन्त:करण माना जाता है)। सुख-दु:ख इन दोनों को मन और बुद्धि का विषय जानना चाहिये । स्मरण भय सङ्कल्प-विकल्प आदि मन की क्रियाएँ हैं । निश्चय को बुद्धि की क्रिया माना गया है। ये इन्द्रियाँ ब्रह्म से उत्पन्न होती हैं । कुछ लोग इसको महाभूतों से उत्पन्न मानते हैं । सत्त्व नामक अन्त:करण गुण के भेद से तीन प्रकार का माना गया है—सत्त्व रजस् और तमस् । सत्त्व अन्त:करण से सात्त्विक भाव जैसे आस्तिक्य शुक्लत्व धर्म में रुचि आदि होते हैं । राजस अंश से काम क्रोध मद आदि राजस भाव उत्पन्न होते हैं। निद्रा आलस्य प्रमाद आदि तथा ठगी बेईमानी आदि तामस अंश से उत्पन्न होते हैं । इन्द्रियों की प्रसन्नता आरोग्य अनालस्य उत्साह आदि सात्म्यज भाव हैं ॥ ५४२-५५४ ॥

पञ्चभूतात्मकास्तस्मादादातुं तद्गुणानिमान् ।
शब्दं श्रोतुं सुषिरतां वै रिक्तं सूक्ष्मतोद्भुता ॥ ५५५ ॥
विलं च गगनाद्वायोः स्पर्शश्च स्पर्शनेन्द्रिये ।
उत्क्षेपणं चापक्षेपाकुञ्चने गमनं तथा ॥ ५५६ ॥
प्रसारणमितीमानि पञ्च कर्माणि संजगुः ।
प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानसंज्ञकान् ॥ ५५७ ॥
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
दशेति वायुविकृतीस्तथा गृह्णाति लाघवम् ॥ ५५८ ॥
तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः ।
चरन्नास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे ॥ ५५९ ॥
शब्दोच्चारणनिश्वासोच्छ्वासकासादिकारणम् ।
अपानस्तु गुदे वायुः कटीजंघोदरेषु च ॥ ५६० ॥
नाभिकन्दे वंक्षणयोरूरुजानुषु तिष्ठति ।
अस्य मूत्रपुरीषादिसर्गः कर्म प्रकीर्तितम् ॥ ५६१ ॥
व्यानोऽक्षिश्रोत्रगुल्फेषु कट्यां घ्राणे च तिष्ठति ।
प्राणापानधृतित्यागग्रहणाद्यस्य कर्म हि ॥ ५६२ ॥
समानो व्याप्य निखिलं शरीरं वह्निना सह ।

द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीरन्ध्रेषु सञ्चरन् ॥ ५६३ ॥
भुक्तपीतरसान् सम्यगानयन् देहपुष्टिकृत् ।
उदानः पादयोरास्ते हस्तयोरङ्गसन्धिषु ॥ ५६४ ॥
कर्मस्थदेहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्तितम् ।

पञ्चभूतात्मक भाव—उससे उनके इन गुणों को प्राप्त करने के लिये (भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं । शब्द को सुनने के लिये (आकाश) सुषिर (= छिद्र) बन गया। रिक्तता ही सूक्ष्मता कही गयी है । इस प्रकार आकाश से बिल (= छिद्र) उत्पन्न हुआ। वायु से त्वगिन्द्रिय—स्पर्श पैदा हुआ । (इसी प्रकार चक्षुन्द्रिय में दर्शन की शक्ति, रसनेन्द्रिय में आस्वादन और घ्राणेन्द्रिय गें सूँघने की शक्ति उत्पन्न हुई। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, सिकोड़ना, गमन और फैलाना—ये (पञ्च कर्मेन्द्रियों के) पाँच कर्म कहे गये हैं । प्राण अपान समान उदान और व्यान तथा नाग कूर्म कृकर देवदत्त और धनञ्जय ये दश वायु विकारों तथा लघुता का ग्रहण करते हैं। उन दश वायुओं में प्राण मुख्यतम है । वह नाभिकन्द के नीचे स्थित रहता है । वहीं से वह मुख नासिका नाभि और हृदय में सञ्चरण करता हुआ शब्द का उच्चारण निःश्वास उच्छ्वास आदि का कारण बनता है । अपान वायु गुदा दोनों कटिप्रदेश जंघा उदर नाभिकन्द दोनों वंक्षण (= कोहनियों) दोनों उरु और जानु में रहता है । मूत्र मल आदि का त्याग इसका कर्म कहा गया है । व्यान वायु आँख कान गुल्फ (= टखना) कटि और घ्राण में रहता है । प्राण अपान का धारण, त्याग और ग्रहण इसका कर्म है । समान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर तेज के साथ बहत्तर हजार नाडीरन्ध्रों में सञ्चरण करता हुआ खाये-पीये गये रसों को सम्यक् प्रवाहित करता हुआ शरीर को पुष्ट करता है । उदान वायु पैरों-हाथों अङ्ग-सन्धियों में रहता है । कर्म करते समय देह को ऊपर उठाना, ऊपर कूदना आदि इसके कर्म कहे गये हैं ॥ ५५५-५६४- ॥

प्राणादिवायुमाश्रित्य पञ्च नागादयः स्थिताः ॥ ५६५ ॥
अङ्गारादिनिमेष्यान्तं क्षुधाप्रभृति च क्रमात् ।
तन्द्राप्रभृति दोषादि तेषां कर्म प्रकीर्तितम् ॥ ५६६ ॥
कर्मस्थदेहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्तितम् ।
अग्नेस्तु लोचनं रूपं पित्तं पाकप्रकाशताम् ॥ ५६७ ॥
अमर्षे तैक्ष्ण्यमूष्माणं तेज ओजश्च शूरताम् ।
मेधावित्त्वं तथादत्ते जलात्तु रसनं रसम् ॥ ५६८ ॥
शैत्ये स्नेहं द्रवं स्वेदं मूत्रादिमृदुतामपि ।
भूमेर्घ्राणेन्द्रियं गन्धः स्थैर्यधैर्ये च गौरवम् ॥ ५६९ ॥
श्मश्रुकेशनखदन्तानस्थ्याद्यन्यच्च कर्कशम् ।
वातादिधातुप्रकृति (र्) व्योमादिप्रकृतिस्तथा ॥ ५७० ॥

सप्तधा सन्धिकायञ्च ब्रह्मेन्द्रि(न्द्र)यमविग्रहः ।
वारुणञ्चा(श्चा)थ कौबेर आर्षो गान्धर्वविग्रहः ॥ ५७१ ॥
राजसः षड्विधो यश्च पैशाचो राक्षसस्तथा ।
आसुरः शाकुनः शार्य्यः प्रेतदेहस्तथा परः ॥ ५७२ ॥
तामसस्त्रिविधो यश्च पशुमत्स्यांघ्रिपाकृतिः ।
तेषां लक्ष्माणि न ब्रूमो ग्रन्थविस्तरकारणात् ॥ ५७३ ॥
पित्तस्याहुः षडङ्गानि शिरः पादौ करौ तथा ।
मध्यं चेत्यथ वक्ष्यन्ते प्रत्यङ्गान्यखिलान्यपि ॥ ५७४ ॥

नाग आदि पाँच वायु प्राण आदि पाँच वायु को आधार बनाकर रहते हैं । अङ्गार (= जठराग्नि का प्रज्वालन ?) से लेकर पलक गिरने तक तथा भूख आदि एवं तन्द्रा आदि दोष उन नाग आदि के कर्म हैं । कर्म में लगे हुए देह को ऊपर उठाना, नीचे ले जाना, उछालना आदि कर्म कहा गया है । नेत्र रूप पित्त पाकक्रिया प्रकाश करना अमर्ष में तीक्ष्णता गर्मी तेज और शूरता और मेधा यह सब जीव अग्नि से ग्रहण करता है । जल से जीव रसना रस शीतलता स्नेह द्रवत्व स्वेद मूत्र आदि, मृदुल का ग्रहण करता है । भूमि से घ्राणेन्द्रिय गन्ध स्थिरता धीरता गुरुता श्मश्रु केश नख दाँत हड्डी आदि अन्य कठोर वस्तु का ग्रहण करता है । इसके अतिरिक्त जो वात आदि धातु की प्रकृति तथा व्योम आदि की प्रकृति हैं उनको तथा सात प्रकार के सन्धिकाय का सत्त्व से ग्रहण करता है (?) (वे सन्धिकाय हैं—) ब्रह्मकाय इन्द्रकाय यमकाय वरुणकाय कुबेरकाय, ऋषिकाय और गान्धर्वकाय । (ये सब सात्त्विक शरीर हैं) । राजस शरीर छह प्रकार का होता है—पैशाच, राक्षस, आसुर, शाकुन, शार्य (= जंगली) और प्रेतदेह । तामस शरीर तीन प्रकार का होता है—पशु शरीर, मत्स्य शरीर एवं वृक्ष गुल्म आदि के शरीर । ग्रन्थ विस्तार के भय से उनका लक्षण नहीं बतला रहा हूँ । पित्तप्रधान छह अङ्ग बतलाये गये हैं शिर, दोनों पैर, दोनों हाथ तथा मध्य प्रदेश । ये अङ्ग तथा सम्पूर्ण प्रत्यङ्ग बतलाये जायेंगे ॥ ५६५-५७४- ॥

त्वचः सप्तफलाः सप्त स्नायुश्लेष्मजरायुजाः ।
छन्नाः कोषाग्निभिः पक्वास्ते धातूनन्तरान्तरा ॥ ५७५ ॥
सीमभूताश्च धातूनां काष्ठसारोपमागताः ।
आद्यानां सप्तधा तेषां शिराद्यनलयस्तथा ॥ ५७६ ॥
स्नायुस्त्रोतांसि रोहन्ति पङ्के पङ्कजकन्दवत् ।
असृङ्मेदःश्लेष्मशकृत्पित्तशुक्रधराः पराः ॥ ५७७ ॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
सप्त स्युस्तत्र चोक्ता त्वग्रक्तं जाठरवह्निना ॥ ५७८ ॥
पक्वाद् भवेदन्नरसादेवं रक्तादिभिस्तथा ।

स्वस्वकोषाग्निना पक्वैर्जन्यन्ते धातवः क्रमात् ॥ ५७९ ॥
रक्तश्लेष्मामपित्तानां पक्वस्य मरुतस्तथा ।
मूत्रस्य चाशयाः सप्तक्रमादाशयसंज्ञकाः ॥ ५८० ॥
गर्भाशयाष्टमं स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे ।
प्रसन्नाभ्यां कफासृग्भ्यां हृदयं पङ्कजाकृतिः ॥ ५८१ ॥
शुषिरं स्यादधो वक्त्रं यकृत्प्लीहान्तरं स्थितम् ।
एतच्च चेतनास्थानं तदानीं तमसावृतम् ॥ ५८२ ॥
निमीलति स्वपित्यात्मा जागर्ति विकसत्यपि ।
द्वेधा स्वप्नसुषुप्तिभ्यां स्वयं बाह्येन्द्रियाणि चेत् ॥ ५८३ ॥
लीयन्ते यदि जागर्ति चित्तं स्वप्नं तदोच्यते ।
मनश्चेल्लीयते प्राणे सुषुप्तिः स्यात्तदात्मनः ॥ ५८४ ॥
स्वमपीतः परात्मानं स्वपित्यात्मन्यतो मतः ।

त्वचा से सात पदार्थ निकलते हैं और सात स्नायु श्लेष्मा एवं जरायु से उत्पन्न होते हैं । वे कोषाग्नियों के द्वारा आच्छन्न होकर पकाये जाते हैं और बीच-बीच में धातु के रूप में बदलते हैं । वे धातुओं की सीमा अर्थात् अन्तिम परिणति होते हैं और काष्ठ के समान कठोर हो जाते हैं । उनमें से प्रथम (अर्थात् त्वचाओं) के शिरायें आदि तथा अग्नियाँ होती हैं । कीचड़ में कमलकन्द के समान वहाँ स्नायु के स्रोत उत्पन्न होते हैं । रक्त, मेदा, श्लेष्मा, विष्ठा, पित्त और शुक्र इनको धारण करनेवाली परा नामक स्नायुएँ होती हैं । त्वक् रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा और शुक्र—ये सात धातुयें वहाँ कही गयी हैं । उनमें से जठराग्नि के द्वारा पकाये गये अन्न रस से त्वचा एवं रक्त बनता है । अपनी-अपनी कोषाग्नि के द्वारा रक्त आदि से क्रमशः धातुएँ उत्पन्न होती हैं । रक्ताशय श्लेष्माशय आमाशय पित्ताशय पक्वाशय मरुताशय और मूत्राशय—ये सात आशय होते हैं । स्त्रियों का गर्भाशय पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में होता है । प्रसन्न कफ और असृक् से कमल की आकृतिवाला हृदय बनता है । नीचे एक छिद्र होता है वह मुख होता है । वह यकृत् और प्लीहा के बीच में स्थित होता है । चेतना का यह स्थान अज्ञान या तमोगुण से आवृत रहता है। इसी छिद्र में आत्मा निमीलन करता है, सोता है, जागता है और विकास करता है । जब बाह्य इन्द्रियाँ निष्क्रिय होकर लीन हो जाती हैं और मन जागता रहता है तब स्वप्न और जब मन भी प्राण में लीन हो जाता है तब वह सुषुप्तावस्था होती है उस समय वह स्व = अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, अतः उसको 'स्वपिति'—ऐसा कहा जाता है ॥ ५७५-५८४- ॥

श्रवणे नयने नासे वदनं गुदशेफसी ॥ ५८५ ॥
एतान्युक्तानि विद्वद्भिः नव श्रोतांसि देहिनाम् ।
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्द्वे भगे तथा ॥ ५८६ ॥

अस्थिस्नायुशिरामस्तस्थानजानानि षोडश ।
षट् पुर्यः करयोर्बाह्वोः कन्धरायाश्च मेहने ॥ ५८७ ॥
पार्श्वयोरंसयोश्चापि चतस्रो मांसरज्जवः ।
सीवन्यः पञ्च शिरसि द्वे जिह्वलिङ्गयोर्मते ॥ ५८८ ॥
चतुर्दशाष्टादश वा सीमन्ता अस्थिराशयः ।
अस्थ्नां शरीरे संख्या स्यात् षष्टियुक्तं शतत्रयम् ॥ ५८९ ॥
वलयानि कपालानि रुचकास्तरुणानि च ।
मूलकानीति तान्याहुः पञ्चधास्थीनि सूरयः ॥ ५९० ॥
त्रीण्येवास्थिशतान्यत्र पतञ्जलिरभाषत ।
द्वे शते अस्थिसन्धीनां स्यातामत्र दशोत्तरे ॥ ५९१ ॥
कोरकाः प्रतरास्तत्र सीवन्यः स्युरुलूखलाः ।
सामुद्रा मण्डलाः शङ्खावर्त्तावायसतुण्डकाः ॥ ५९२ ॥
इत्यष्टधा समुद्दिष्टा योगेन्द्रैरस्थिसन्धयः ।
येषां स्नायुशिरासन्धिसहस्रद्वितयं मतम् ॥ ५९३ ॥
नव स्नायुशतानि स्युश्चतुर्धा तस्य जातयः ।
ज्ञेया नवत्यः शुषिराः सूक्ष्माश्च पृथु(?ला)स्तथा ॥ ५९४ ॥

दो कान, दो आँख, दो नासाछिद्र, मुख गुदा और शेफस् (= मूत्र त्याग का स्थान) विद्वान लोग इनको शरीरधारियों का नव छिद्र कहते हैं, स्त्रियों में तीन छिद्र अधिक होते हैं । वे हैं—दो स्तन और भग । मस्तक स्थान में उत्पन्न होनेवाली अस्थि स्नायु एवं शिरायें सोलह की संख्या में होती हैं । दोनों हाथ दोनों भुजाओं कन्धरा और मेहन में छह पुरियाँ होती हैं । दोनों पार्श्वों और दोनों अंशों में चार मांस रज्जु होती है । शिर में पाँच सीवनी (= ग्रन्थि) और जिह्वा तथा लिङ्ग में दो सीवनियाँ मानी गयी हैं । सीमन्त (= माँग) में चौदह या अट्ठारह हड्डियों का समूह रहता है । सम्पूर्ण शरीर में हड्डियों की संख्या तीन-सौ साठ होती है । विद्वान् लोग अस्थियों के वलय कपाल रुचक तरुण और मूलक नामक पाँच प्रकार मानते हैं। पतञ्जलि ने कहा है कि शरीर में तीन-सौ ही अस्थियाँ होती हैं । इस शरीर में दो सौ दश अस्थिसन्धियाँ होती हैं । योगीन्द्र लोग आठ अस्थि-सन्धियों को मानते हैं । वे हैं—कोरका प्रतरा सीवनी उलूखला सामुद्रा मण्डला शङ्खावर्त्ती और वायस-तुण्डा । स्नायुओं की संख्या नौ सौ है । उसकी चार प्रकार की जातियाँ हैं । इस शरीर में सूक्ष्म और स्थूल नब्बे छिद्र हैं ॥ ५८५-५९४ ॥

बन्धनैर्बहुभिर्बद्धा भूरिभारक्षमा भवेत् ।
नौरम्भसि तथा स्नायुशतबद्धा तनुस्तथा ॥ ५९५ ॥
पञ्चपेशीशतान्याहुः शरीरस्थानि सूरयः ।
अधिका विंशतिः स्त्रीणां तत्र स्युः स्तनयोर्दश ॥ ५९६ ॥

यौवने ताः प्रवर्तन्ते दश योनौ तथैव च ।
द्वे अन्तःप्रसृते बाह्ये तिस्रो वै गर्भमार्गणाः ॥ ५९७ ॥
शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्ता शुषिरान्विता ।
आवर्त्ते गर्भशय्यास्ति पित्तपक्वाशयान्तरे ॥ ५९८ ॥
रोहिताभिधमत्स्यस्य सदृशी तस्य पेशिका ।
शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्रो गौर्यादिनामभिः ॥ ५९९ ॥
शिरोधमनिकाभिस्तु लक्षाणि नवविंशतिः ।
सार्द्धानि स्युर्नवशती षट्पञ्चाशत्तथैव च ॥ ६०० ॥
दशमूलशिरा ओजोवाहिन्या हृदयाश्रयाः ।
अङ्गुलं चाङ्गुलदलं यवं यवदलं तथा ॥ ६०१ ॥
गत्या द्रुमदलस्येव सीमन्यः प्रणता इव ।
भिद्यन्ते तास्तदा सप्तशतानि परिसंख्यया ॥ ६०२ ॥
तासु जिह्वास्थिते द्वे द्वे वाग्रसंज्ञानकारणे ।
घ्राणे गन्धवहे द्वे द्वे मेषोन्मेषकृतौ दृशोः ॥ ६०३ ॥
श्रोत्रयोः शब्दग्राहिण्यौ तासु द्वे शम्भुनोदिते ।
धमन्यो रसवाहिन्यश्चतुर्विंशतिरीरिता ॥ ६०४ ॥

बहुत सारे बन्धनों से बँधे होने के कारण यह शरीर अधिक भार ढोने में सक्षम होता है । जिस प्रकार नाव जल में, उसी प्रकार यह शरीर सैकड़ों स्नायुओं से बँधा है । विद्वान् लोग शरीर में पाँच-सौ मांसपेशियाँ मानते हैं । स्त्रियों के शरीर में बीस अधिक होती हैं । उनमें से दश उनके स्तनों में होती हैं । ये शरीर में यौवन के पदार्पण के समय प्रवृत्त होती हैं । शेष दश पेशियाँ उनकी योनि में रहती हैं । उन दश में से दो अन्दर की ओर फैली होती है और तीन गर्भमार्ग में रहती हैं । योनि शङ्ख की नाभि के आकार की होती है । उसमें तीन आवर्त्त (= घुमाव) होते हैं । साथ ही छिद्र भी होता है । आवर्त्त में पित्ताशय और पक्वाशय के बीच गर्भशय्या होती है । उसकी मांसपेशी रोहू नामक मछली के समान होती है । शुक्रशोणित के प्रवेश के लिये तीन नाड़ियाँ होती हैं । उनके नाम गौरी आदि हैं । शिरायें और धमनियाँ उनतीस लाख हैं । इसके अतिरिक्त साढ़े नौ सौ तथा छप्पन शिरायें और धमनियाँ हैं । दश शिरायें प्रधान हैं जो हृदय में रहती हैं और ओज का वहन करती हैं । वृक्ष के पत्ते की भाँति ये सीमन्तियाँ एक अँगुल, आधा अँगुल, एक यव, आधा यव मानों झुकी रहती हैं । वे सीमन्तियाँ सात सौ की संख्या में अलग-अलग रहती हैं । उनमें से दो-दो जो अग्रज्ञान के कारण हैं जिह्वा में स्थित हैं । गन्ध का वहन करनेवाली घ्राणेन्द्रिय में दो-दो रहती हैं । आँखों में उन्मेष निमेष करनेवाली दो शिराएँ रहती हैं । उनमें से दो कानों में रहती हैं जो शब्द का ग्रहण कराती हैं—ऐसा शिव ने कहा है । रस का वहन करनेवाली धमनियाँ चौबीस कही गयी हैं ॥ ५९५-६०४ ॥

कुल्यादिभिरिव केदारस्ताभिर्देहोऽभिवर्द्धते ।
एताः प्रतिष्ठिता नाभ्यां चक्रनाभावरा इव ॥ ६०५ ॥
ऊर्ध्वं या हृदयं प्राप्ताः प्रतीयन्ते पृथग्विधाः ।
वातं पित्तं कफं रक्तं रसं द्वे द्वे विमुञ्चतः ॥ ६०६ ॥
शब्दं रूपं रसं गन्धं द्वे द्वे तत्रावगच्छतः ।
द्वे द्वे च भाषणं घोषं स्वापं बोधं च रोदनम् ॥ ६०७ ॥
कुर्वाते द्वे नरे शुक्रं स्तन्यं च स्रवतः स्त्रियाः ।
अधोगता अपि त्रेधा पृथक् पक्वाशयस्थिताः ॥ ६०८ ॥
प्रवर्तयन्ति तत्राद्या दशवातादिपूर्ववत् ।
अन्नं भुंक्तो धमन्यौ द्वे वहतोऽम्बुसमाश्रयात् ॥ ६०९ ॥
तोयं मूत्रं मलं द्वे द्वे नारीणामार्तवं त्विमे ।
विमुञ्चतो द्वे स्रोतांसि द्वे मूत्रं द्वे शकृत्तथा ॥ ६१० ॥
स्वेदं समर्पयन्त्योऽन्यास्तिरश्च्यो बहुधा मताः ।
रोमकूपेषु सन्त्यासां मुखानि स्वेदमुक्तये ॥ ६११ ॥
प्रवेशयन्ति चाभ्यङ्गलेपादिप्रभवान् रसान् ।
जीवस्थानानि मर्माणि शतं सप्तोत्तरं विदुः ॥ ६१२ ॥
सार्द्धकोटित्रयं रोम्णां श्मश्रुकेशास्त्रिलक्षकाः ।
श्रोतः शिराश्मश्रुकेशैः सह रोम्णां तु कोटयः ॥ ६१३ ॥
चतुःपञ्चाशदाख्याताः सप्तषष्ट्या च सार्द्धया ।
लक्षाणां सहिता मानं जलादेरधुनोच्यते ॥ ६१४ ॥

नालियों के द्वारा क्यारी की भाँति उन नाडियों से देह का पोषण होता है । चक्र की नाभि में तीलियों की भाँति ये सब शिरायें नाभि में प्रतिष्ठित हैं । जो अलग प्रकार की नाडियाँ ऊपर की ओर हृदय में गयी हुई प्रतीत होती हैं, उनमें से दो-दो नाड़ियाँ वात पित्त कफ रक्त और रस का परिवहन करती रहती हैं । दो-दो उस शरीर में रूप रस गन्ध का ज्ञान करती हैं एवं दो-दो भाषण घोष शयन, जागरण और रोदन करती हैं । दो शिरायें मनुष्य में शुक्र का निर्माण करती हैं और दो द्रुत होती हुई स्त्री के अन्दर दूध बनाती हैं । तीन नाडियाँ नीचे गयी होती हैं और वे पक्वाशय में पृथक्-पृथक् स्थित रहती हैं । उसमें दश नाड़ियाँ पूर्व की भाँति दश वायु आदि को प्रवृत्त कराती हैं । दो धमनियाँ जल के सहारे अन्न का भोजन करती हैं । दो-दो जल मूत्र मल और स्त्रियों के रजस् का प्रवाहन करती हैं । दो नाडियाँ स्रोत (= आँसू इत्यादि) दो मूत्र तथा दो मल का नि:स्सारण करती हैं । अन्य बहुत सी शिरायें आड़े तिरछे चलकर पसीना निकालती हैं । पसीने को निकालने के लिये इनके मुख रोमकूपों में रहते हैं । पसीना निकालने के अतिरिक्त वे तेल-उबटन इत्यादि के रसों का शरीर में प्रवेश भी कराती हैं ।

जीव के मर्मस्थान एक सौ सात हैं । रोम संख्या साढ़े तीन करोड़ है । दाढ़ी और बाल तीन लाख होते हैं । शिरायें श्मश्रु केश के साथ रोमों की संख्या चौवन करोड़ साढे छिहत्तर लाख कही गयी हैं । अब शरीर में जल आदि का मान कहा जा रहा है ॥ ६०५-६१४ ॥

दशैवाञ्जलयो वारां रसस्याञ्जलयो नव ।
रक्तस्याष्टौ पुरीषस्य सप्त स्युः श्लेष्मणश्च षट् ॥ ६१५ ॥
पित्तस्य पञ्च चत्वारो मूत्रस्याञ्जलयस्तत्रयः ।
वसाया मेदसो द्वौ तु मज्जा त्वञ्जलिसम्मितः ॥ ६१६ ॥
अर्द्धाञ्जलिः शिरोमज्जा हृदयाष्टद(पल ?)लं दलम् ।
जिह्वा च द्वादशपला लिङ्गं योनिः पलत्रयम् ॥ ६१७ ॥
स्तनावजातापत्यानां प्रमदानां पलानि षट् ।
दशैव जातापत्यानां तत्र दुग्धं पलद्वयम् ॥ ६१८ ॥
शुक्रस्य कुडवः पुंसां तावदेव रजः स्त्रियाः ।
दशानामपि वायूनां ज्ञाताज्ञाता अहर्निशम् ॥ ६१९ ॥
स्पन्दप्रश्वासनिश्वासास्तेषां सञ्चरणं तनौ ।
त्रिंशत्कोटिमिता ज्ञेयाः स्वस्थस्य तनुधारिणः ॥ ६२० ॥
ग्रासाधिक्या(त्)समुत्थस्य विज्ञेयं रोगकारणम् ।
इति प्रत्यङ्गसंस्थानं संक्षेपात् कथितं मया ॥ ६२१ ॥
मत्प्रोक्ते विस्तरोऽध्यात्मसागरे ज्ञायतां बुधैः ।
अतः परं तु योगानां हेतुभूतानि पार्वति ॥ ६२२ ॥
समाकलय चक्राणि देहस्थानि यथाक्रमम् ।

जल की दश अञ्जलियाँ, रस की नव अञ्जलियाँ, रक्त की आठ, पुरीष की सात और श्लेष्मा की छह अञ्जलियाँ होती हैं । पित्त की पाँच, मूत्र की चार, वसा की तीन, मेदा की दो, मज्जा की एक शिरोमज्जा की आधा अञ्जलि शरीर में रहती है । हृदय में आठ दल एक-एक पल (= कर्ष) के होते हैं । जिह्वा बारह पल (= चवन्नी भर), लिङ्ग और योनि तीन-तीन पल के होते हैं । बिना बच्चेवाली स्त्री के स्तन छह पल के होते हैं । बच्चेवाली स्त्री के स्तन दश पल के होते हैं । उनमें से दो पल दूध होता है । पुरुषों में शुक्र की मात्रा एक कुडव (= बारह मुट्ठी अनाज की तौल) होती है । स्त्री शरीर में रजस् की मात्रा भी उतनी ही रहती है । दशों वायुओं के ज्ञात-अज्ञात स्पन्द प्रश्वास-निःश्वास रात-दिन चलते रहते हैं । उनका सञ्चार शरीर में होता रहता है । स्वस्थ शरीर में इनका सञ्चरण तीस करोड़ होता है। अधिक भोजन करने के कारण होनेवाले प्रश्वास-निःश्वास को रोग का कारण समझना चाहिये। इस प्रकार मैनें प्रत्येक अङ्ग का संस्थान संक्षेप में बतलाया । हे पार्वति! इसके बाद योगों के हेतुभूत देहस्थ चक्रों को क्रम से जानो ॥६१५-६२२-॥

[देहस्थचक्रवर्णनम्]

पद्माकृतीति तत्पत्रफलयोर्नामनी तथा ॥ ६२३ ॥
एतेषां ज्ञानतो योगाभ्यासः सम्पद्यते नृणाम् ।
गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधाराख्यं चतुर्दलम् ॥ ६२४ ॥
प्रकृतिर्महदहङ्कारतन्मात्राणि दलानि हि ।
परमः सहजस्तावदानन्दो धीरपूर्वकः ॥ ६२५ ॥
योगानन्दश्च तस्य स्यादैशानादिदले फलम् ।
तत्र कुण्डलिनी ब्रह्मशक्तिराधारपङ्कजे ॥ ६२६ ॥
आब्रह्मरन्ध्रमृजुतां नीते या साऽमृतप्रदा ।
स्वाधिष्ठानं लिङ्गमूले षड्पत्रं चक्रमस्य तु ॥ ६२७ ॥
पत्राणि विषयाभासौ वृत्तिः कान्तिः स्थितिर्लयः ।
पूर्वादिषु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनु क्रमात् ॥ ६२८ ॥
प्रश्रयः क्रूरता गर्वनाशो मूर्च्छा ततः परम् ।
अवज्ञा चाप्यविश्वासः कामशक्तेरिदं गृहम् ॥ ६२९ ॥
नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम् ।
विकृतिप्रत्ययौ बिम्बचैतन्यं(न्ये) सूक्ष्मदर्शनम् ॥ ६३० ॥
उत्कण्ठोपाधिनिर्बन्धशिक्षाव्याजा दलानि च ।
सुषुप्तिरथ तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा ॥ ६३१ ॥
लज्जा भयं घृणा मोहः कषायोऽथ विषादिता ।
क्रमात् पूर्वादिपत्रेषु स्याद् भानुभवनं च तत् ॥ ६३२ ॥

देहस्थ चक्रवर्णन—(ये चक्र) कमल की आकृतिवाले हैं, इस तथ्य को तथा उनके पत्रों और फलों के नामों के ज्ञान से मनुष्य का योगाभ्यास सम्पन्न होता है। गुदा और लिङ्ग के बीच में मूल आधार नामक चार दलोंवाला चक्र है। प्रकृति महत् अहङ्कार और तन्मात्रायें इसके चार दल हैं। ईशान आदि दलों में क्रमशः परमानन्द सहजानन्द धीरानन्द और योगानन्द फल होते हैं। वहाँ मूलाधार कमल में कुण्डलिनी नामक ब्रह्मशक्ति रहती है। अमृतदायिनी यह आधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक अपने को ऋजु बनाती है[१]। दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है जो लिङ्ग के मूल में स्थित है। इसका चक्र अर्थात् कमल छह पत्रोंवाला है। उन पत्रों के नाम हैं—विषय आभास वृत्ति कान्ति स्थिति और लय। इन दलों में पूर्व से लेकर क्रमशः दक्षिण आदि दलों में प्रश्रय क्रूरता गर्व का नाश मूर्च्छा अवज्ञा और अविश्वास ये

---

[१] पीठ में स्थित मेरुदण्ड में कई छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं। कुण्डलिनी का आधार यह सुषुम्ना कुण्डलिनी के प्रबुद्ध होने पर अपने मूलवक्र रूप में रहती हुई भी उस कुण्डलिनी के लिये ऋजुमार्ग प्रशस्त करती है। सुषुम्ना नाडी इन्हीं हड्डियों के बीच से होकर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से ऊपर जाती है।

फल होते हैं । यह (= स्वाधिष्ठान चक्र) कामशक्ति का घर है (अर्थात् काम भावना का उद्दीपन यहीं से होता है) । नाभि में दश दलोंवाला चक्र है । उसका नाम मणिपूर है । इसके दश पत्रों के नाम हैं—विकृति प्रलय बिम्ब चैतन्य सूक्ष्मदर्शन उत्कण्ठा उपाधि निर्बन्ध शिक्षा और व्याज । सुषुप्ति तृष्णा ईर्ष्या पिशुनता लज्जा भय घृणा मोह कषाय और विषाद—ये क्रमशः पूर्व आदि दलों में रहते है । यह भानु (= अग्नि या तेज) का गृह है ॥ ६२३-६३२ ॥

हृदयेऽनाहतं चक्रं शिवस्य प्रणवाकृतिः ।
पूतास्थानं तदिच्छन्ति दलैर्द्वादशभिर्युतम् ॥ ६३३ ॥
अवहेलाविसंवादो व्याहारोऽप्यवलम्बनम् ।
शरीरस्याद उत्सेधः प्रकर्षः संविभागिता ॥ ६३४ ॥
कैतवं दानवैक्लव्ये सर्वशेषे विचारणा ।
फलानि साम्प्रतं वच्मि तत्र तत्र समुद्भवम् ॥ ६३५ ॥
लौल्यप्रणाशः कपटं वितर्कोऽथानुतापिता ।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा समता तथा ॥ ६३६ ॥
क्रमेण दम्भो वैकल्यं विवेकोऽहं मदस्ततः ।
फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः ॥ ६३७ ॥
कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम् ।
क्रमेण वक्ष्यमाणानि छदनानि निशामय ॥ ६३८ ॥
क्षयः प्रभावो विच्छेदजीवनग्लानियुक्तयः ।
भावनारचनास्वादविभ्रमौदास्यबुद्धयः ॥ ६३९ ॥
विक्रमः स्वैरता चित्तविह्वलत्वं विरोधिता ।
वक्ष्येऽधुना फलान्येषां तत्तद्दलकलाजुषाम् ॥ ६४० ॥
बोधः प्रणव उग्दीथो नैर्मल्यं शान्तता तथा ।
स्वाहा नमोऽमृतं षड्ज ऋषभस्तदनन्तरम् ॥ ६४१ ॥
गान्धारो मध्यमश्चापि पञ्चमो धैवतस्तथा ।
निषादः सर्वशेषे स्यात् क्रमेण सुरवन्दिते ॥ ६४२ ॥
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश ।

हृदय में अनाहत चक्र है । यह शिव का (गृह) है । इसका आकार प्रणव के आकार-जैसा है । यह अनाहत चक्र बारह दलों से युक्त है । विद्वान् लोग इसको पूतास्थान (?) मानते हैं । (इन दलों के नाम हैं—) अवहेला, अतिसंवाद, व्याहार, अवलम्बन, शरीर का स्याद (= गति, वेग) उच्छूनता, प्रकर्ष, संविभागिता, कैतव, दान, विफलता और सबके अन्त में विचारणा । उस-उस दल में उत्पन्न होनेवाले फलों को बतला रहा हूँ—लौल्यप्रणाश, कपट, वितर्क, अनुताप, आशा, प्रकाश, चिन्ता, समीहा, समता, दम्भ, वैकल्य, विवेक, अहङ्कार, ये पूर्व आदि दलों में

स्थित फल बतलाये गये हैं । कण्ठ में सरस्वती का स्थान है । विशुद्धि नामक यह चक्र सोलह दलोंवाला है । अब क्रम से वक्ष्यमाण दलों के नाम को सुनो । क्षय प्रभाव विच्छेद जीवन ग्लानि मुक्ति भावना रचना स्वाद विभ्रम औदास्य बुद्धि विक्रम स्वैरता चित्तविह्वलता तथा विरोधिता । अब तत्तद् दल की कला से सम्बन्ध रखनेवालों के फल को कहूँगा । बोध प्रणव उद्‌गीथ नैर्मल्य शान्ति स्वधा स्वाहा नमः अमृत षड्ज ऋषभ गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और सबके अन्त में हे सुरवन्दिते! निषाद होता है । इस प्रकार पूर्व आदि दलों में क्रम से सोलह फल होते हैं ॥ ६३३-६४२- ॥

ललनाख्यघण्टिकायां चक्रं द्वादशपत्रकम् ॥ ६४३ ॥
पर्णान्यमुष्य वक्ष्येऽहं क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
विरागोन्मादनिर्वेदावहेलामर्षभीतयः ॥ ६४४ ॥
तितिक्षास्फीतितानर्थलालसौदारतास्तथा ।
स्वभावः साम्प्रतं वक्ष्ये फलानि क्रमतः प्रिये ॥ ६४५ ॥
मदो मानस्तथा स्नेहः शोकः खेदश्च लुब्धता ।
अरतिः संभ्रमश्चोर्मिः श्रद्धा तोषोऽपराधिता ॥ ६४६ ॥
फलानि ललनाचक्रे स्युः पूर्वादिदलेष्विति ।
भ्रूमध्ये त्रिदलं चक्रमाज्ञासंज्ञं दलानि तु ॥ ६४७ ॥
आविर्भावतिरोभावौ तत्परं च विकारिता ।
सत्त्वं रजस्तम इति फलानि कथितानि ते ॥ ६४८ ॥
ततोऽप्यस्ति मनश्चक्रं षड्दलं तद्दलानि तु ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहो द्वेषोऽप्यसूयता ॥ ६४९ ॥
स्वप्नं रसोपयोगश्च घ्राणं रूपोपलम्भनम् ।
स्पर्शनं शाब्दबोधश्च पूर्वादिषु दलेष्विति ॥ ६५० ॥
ततोऽपि षोडशदलं सोमचक्रमितीरितम् ।
एतद्दलानां नामानि क्रमेण विनिबोध मे ॥ ६५१ ॥
आशयोपशमप्रज्ञास्मृतयः सदसत्तथा ।
लयो निमित्तः सत्ता च प्रमाणाक्षयवासनाः ॥ ६५२ ॥
अद्वैतं योगभूमिश्च पिण्डाविद्यानिवृत्तयः ।
दलेषु षोडशस्वस्य कलाः षोडशसंस्थिताः ॥ ६५३ ॥
कृपा क्षमार्जवे धैर्यं वैराग्यधृतिसम्मदाः ।
हास्यरोमाञ्चनिचयो(या) ध्यानञ्च स्थिरता तथा ॥ ६५४ ॥
गाम्भीर्यमुद्यमो छन्नै औदार्यैकाग्रते ततः ।
फलान्येतानि जीवस्य पूर्वादिदलगामिनः ॥ ६५५ ॥

ललना नामक घण्टिका में द्वादशदल चक्र होता है । हे सुरेश्वरि! इसके पर्णों को क्रम से बतलाऊँगा । विराग उन्माद निर्वेद अवहेला अमर्ष भीति तितिक्षा स्फीतिता अनर्थ लालसा औदार्य एवं स्वभाव । हे प्रिये! अब मैं उनके फल क्रमशः बतलाऊँगा । मद मान स्नेह शोक खेद लोभ अरति सम्भ्रम ऊर्मि श्रद्धा सन्तोष और अपराध—ये ललना चक्र में पूर्व आदि दलों में रहनेवाले फल हैं । भ्रूमध्य में आज्ञा नामक चक्र है । उसमें तीन दल हैं । उनके नाम हैं—आविर्भाव तिरोभाव और विकारिता । सत्त्व रजस् और तमस् उसके फल तुमको बतलाये गये । उसके बाद मनश्चक्र है । वह छह दलोंवाला है । उसके दलों का नाम काम क्रोध लोभ मोह द्वेष और असूयता है । स्वप्न रसोपयोग (= रस का अनुभव), घ्राण, रूप का अवलोकन, स्पर्श, शब्द श्रवण पूर्व आदि दलों में स्थित फल हैं । उसके बाद षोडश दलोंवाला सोमचक्र है । इसके दलों के नाम क्रमशः मुझसे जानो । आशय उपशम प्रज्ञा स्मृति सदसत्लय निमित्त सत्ता प्रमाण अक्षय वासना अद्वैत योग भूमि पिण्ड अविद्या और निवृत्ति । इस चक्र के षोडश दलों में सोलह कलायें स्थित रहती हैं । वे हैं—कृपा क्षमा आर्जव धैर्य वैराग्य धृति सम्मद हास्य रोमाञ्च निचय ध्यान स्थिरता गाम्भीर्य उद्यम औदार्य और एकाग्रता । ये पूर्व आदि दलों में रहनेवाले जीव के फल हैं ॥ ६४३-६५५ ॥

चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम् ।
तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम् ॥ ६५६ ॥
सहस्रदलपद्मस्य दलानामस्य नाम हि ।
फलानां चैव नामानि नाब्रुवं विस्तृतेर्भयात् ॥ ६५७ ॥
गुदाच्च द्व्यङ्गुलादूर्ध्वमाधाराद्द्व्यङ्गुलादधः ।
एकाङ्गुलं देहमध्यं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥ ६५८ ॥
तत्रास्तेऽग्निशिखा तन्वी चक्रात्तस्मान्नवाङ्गुलैः ।
देहस्य कन्दोत्थसेधायामाभ्यां चतुरङ्गुलम् ॥ ६५९ ॥
ब्रह्मग्रन्थिरितिप्रोक्तं तस्य नाम पुरारिणा ।
तन्मध्ये नाभिचक्रं तु द्वादशारमवस्थितम् ॥ ६६० ॥
लूतेव तन्तुजालस्था तत्र जीवो भ्रमत्ययम् ।
सुषुम्णया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति ॥ ६६१ ॥
जीवः प्राणसमारूढ़ो रज्ज्वाङ्क्तोऽजाविको तथा ।
सुषुम्णां परितो नाड्यः कन्दादौ ब्रह्मरन्ध्रतः ॥ ६६२ ॥
क्रोडीकृत्य स्थिताः कन्द(?कन्दं)
शाखा इव महीरुहम् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण तस्मात् सूक्ष्मतरेण च ॥ ६६३ ॥
चतुर्विंशतिसाहस्रा नाड्यस्तस्याः समीपगाः ।

तासां भूरितराणां तु मुख्या: प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ ६६४ ॥
सुषुम्णेडा पिङ्गला च कूहूरथ सरस्वती ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च वारणा च यशस्विनी ॥ ६६५ ॥
विश्वोदरा शङ्खिनी च तत: पूषा पयस्विनी ।
अलम्बुषेति तत्राद्यास्तिस्रो मुख्यतमा मता: ॥ ६६६ ॥

ब्रह्मरन्ध्र में सुधाधर नामक सहस्रदल चक्र है । उसके अमृत की धारा से शरीर बढ़ता है । सहस्रदल कमल के दलों के तथा उसके फलों के नामों को ग्रन्थविस्तार के भय से मैंने नहीं बतलाया । गुदा से दो अँगुल ऊपर और मूलाधार से दो अँगुल नीचे देह के मध्य में एक अँगुल परिमाणवाला, तपाये गये सोने के समान चक्र है । उसमें एक क्षीण अग्निशिखा है । उससे नव अँगुल ऊपर देह का कन्द ऊपर उठा है । इन दोनों के बीच में चार अँगुल का कन्द है । त्रिपुरारि ने उसको ब्रह्मग्रन्थि कहा है । उसके मध्य में द्वादशार (= बारह दलोंवाला) नाभिचक्र है । जिस प्रकार तन्तुजाल में मकड़ी उसी प्रकार इस नाभिचक्र में यह जीव घूमता रहता है । जिस प्रकार रस्सी से बकरी एवं भेंड़ (खींची जाती है) उस प्रकार प्राण पर आरूढ़ यह जीव सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्मरन्ध्र तक चढ़ता-उतरता रहता है । सुषुम्ना के चारो ओर कन्द से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक नाड़ियाँ कन्द को घेरकर स्थित रहती हैं, जैसे कि शाखायें वृक्ष को । सूक्ष्मातिसूक्ष्म उससे भी सूक्ष्मतर चौबीस हजार नाड़ियाँ उस सुषुम्ना के समीप रहती हैं । इतनी अधिक नाडियों में से चौदह मुख्य कही गयी हैं । (उनके नाम हैं—) सुषुम्ना इडा पिङ्गला कुहू सरस्वती गान्धारी हस्तिजिह्वा वारणा यशस्विनी विश्वोदरा शङ्खिनी पूषा पयस्विनी और अलम्बुसा । इनमें से प्रथम तीन मुख्यतम मानी गयी हैं ॥ ६५६-६६६ ॥

सुषुम्णा तिसृषु श्रेष्ठा शाङ्करी मुक्तिमार्गगा ।
कन्दमध्ये स्थिता तस्या इडा सव्येऽथ दक्षिणे ॥ ६६७ ॥
पिङ्गलेडापिङ्गलयोश्चरतश्चन्द्रभास्करौ ।
क्रमात् कालगतेर्हेतु: सुषुम्णा कालशोषिणी ॥ ६६८ ॥
सरस्वती कुहूश्चास्ते सुषुम्णायास्तु पार्श्वयो: ।
इडाया: पृष्ठपूर्वस्थे गान्धारिहस्तिजिह्वके ॥ ६६९ ॥
क्रमात् पूषायशस्विन्यौ पिङ्गलापूर्वपृष्ठयो: ।
विश्वोदरा मध्यदेशे स्यात् कूहूहस्तिजिह्वयो: ॥ ६७० ॥
मध्ये कूहूयशस्विन्योर्वारणा संस्थिता मता ।
पूषासरस्वतीमध्यमधिशेते पयस्विनी ॥ ६७१ ॥
अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाङ्घ्रिस्था देहे विश्वोदराखिले ।
शङ्खिनी सव्यकर्णान्ते पूषा त्वावामनेत्रत: ॥ ६७२ ॥
यशस्विनी तु वितता दक्षिणश्रवणावधि ।

अलम्बुषायाध(पाद)मूले नवलक्षव्यवस्थिता ॥ ६७३ ॥
पुनरन्या शतं चैका नाडी विग्रहगामिनी ।
जगाद भगवान् रुद्रस्ता अपि व्याहरामि ते ॥ ६७४ ॥

उन तीनों में सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है । यह शिव नाड़ी है, जो मुक्तिमार्ग को जाती है । यह कन्द के मध्य में स्थित है । इसकी बायीं ओर इडा और दायीं ओर पिङ्गला स्थित है । इडा और पिङ्गला में चन्द्र और सूर्य सञ्चरण करते रहते हैं । ये चन्द्र और सूर्य कालगति के कारण हैं । सुषुम्ना काल को नष्ट कर देनेवाली नाडी है । सरस्वती और कूहू सुषुम्ना के अगल-बगल रहती हैं । इडा के पूर्व पृष्ठ में गान्धारी और हस्तिजिह्वा स्थित हैं, पिंगला के पूर्व पृष्ठ में क्रमश: पूषा और पयस्विनी स्थित हैं । कुहू और हस्तजिह्वा के मध्य में विश्वोदरा रहती है । कुहू और यशस्विनी के मध्य में वारणा स्थित मानी गयी है । पूषा और सरस्वती के मध्य में पयस्विनी विराजमान है । (बायें पैर के) अँगूठे से लेकर दायें पैर तक सम्पूर्ण शरीर में विश्वोदरा स्थित है । शङ्खिनी बायें कान तक तथा पूषा बायें नेत्र तक स्थित हैं । यशस्विनी दायें कान तक फैली है । अलम्बुसा पैर के मूल में नव लक्ष शाखा में स्थित है (?) । पुन: एक सौ एक अन्य नाडियाँ पूरे शरीर में स्थित हैं, ऐसा भगवान् रुद्र ने कहा है । उनको भी तुमको बतला रहा हूँ ॥ ६६७-६७४ ॥

सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी बन्धिनी हिता ।
निम्नाऽथ भासुरा सङ्कोचिनी दृप्ता प्रकाशिनी ॥ ६७५ ॥
प्रबुद्धा क्षेपणी च स्यादालस्याथ विलम्बिता ।
घर्घरावेशिनी पूर्णा क्षिप्ता रूक्षा च भोगिनी ॥ ६७६ ॥
क्लिन्ना स्निग्धा तथा चण्डाचण्डा भानुमती ध्रुवा।
केकरा कुटिला शुद्धा धरित्री दर्दुराकुला ॥ ६७७ ॥
काकतुण्डी मनोमाला चित्रा तेजस्विनी सती ।
अव्यक्ता गालनी मन्दा द्राविणी मधुमत्यपि ॥ ६७८ ॥
चेतना मुदिता भ्रामिण्यतो रसवहापि च ।
सौवीरी कपिलाकर्षीण्युत्तरा रञ्जिनी तथा ॥ ६७९ ॥
सुमुखी रेवती विश्वदूता चाप्यायनी ततः ।
चन्द्रा हेमा च मैत्री च नन्दा चापि कपर्दिनी ॥ ६८० ॥
तन्द्रावती विशाला च विचित्रा माण्डवी तथा ।
कल्पा सुकल्पा तदनु लोहिनी पूतनापि च ॥ ६८१ ॥
धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी वेगवत्यपि ।
विवर्णा कृन्तनी चैव विकल्पा कोटराऽचला ॥ ६८२ ॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।

अग्निज्वाला च सम्मोहा मूला स्वप्नावहापि च ॥ ६८३ ॥
तन्द्रावती लम्बिका च घण्टिकाऽविग्रहापि च ।
कैवल्या च तुरीया च विभ्रान्तिश्च प्रशान्तया ॥ ६८४ ॥
योगनिःश्रेण्यपि ततो निर्वाणा चापुनर्भवा ।
अमृता सर्वशेषे च क्रमेणैताः प्रकीर्तिताः ॥ ६८५ ॥

सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी वन्धिनी हिता निम्ना भासुरा सङ्कोचिनी दृप्ता प्रकाशिनी प्रबुद्धा क्षेपणी अनालस्या विलम्बिता घर्घरा आवेशिनी पूर्णा क्षिप्ता रुक्षा भोगिनी क्लिन्ना स्निग्धा चण्डा अचण्डा भानुमती ध्रुवा केकरा कुटिला शुद्धा धरित्री दर्दुरा आकुला काकतुण्डी मनोमाला चित्रा तेजस्विनी सती अव्यक्ता गालिनी मन्दा द्राविणी मधुमती चेतना मुदिता भ्रामिणी रसवहा सौवीरी कपिला आकर्षिणी उत्तरा रञ्जिनी सुमुखी रेवती विश्वदूता आप्यायनी चन्द्रा हेमा मैत्री नन्दा कपर्दिनी तन्द्रावती विशाला विचित्रा माण्डवी कल्पा सुकल्पा लोहिनी पूतना धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी वेगवती विवर्णा कृन्तनी विकल्पा कोटरा अचला तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचि ज्वालिनी रुचि अग्निज्वाला सम्मोहा अमूला स्वप्नावहा तन्द्रावती (?) लम्बिका घण्टिका अविग्रहा कैवल्या तुरीया विभ्रान्ति प्रशान्ता योगनिःश्रेणी निर्वाणा अपुनर्भवा और सबके अन्त में अमृता ये कही गयी हैं ॥ ६७५-६८५ ॥

योगैरेतासु सम्प्रेष्य प्राणादिदशमारुतान् ।
यच्चिकीर्षति तत्सर्वं संसाधयति योगवित् ॥ ६८६ ॥
एतत्सर्वं यदुक्तं ते शरीरस्थानकं प्रिये ।
मनुष्यजातिमात्रे तु तिष्ठतीश्वरशिष्टितः ॥ ६८७ ॥
एवंविधे तु देहेऽस्मिन् मलमूत्रसमन्विते ।
प्रसाधयन्ति धीमन्तो भुक्तिमुक्ती उपायतः ॥ ६८८ ॥
तत्र स्यात् सगुणाध्यानात्
भुक्तिर्मुक्तिस्तु निर्गुणात् ।
ध्यानमेकाग्रवृ(चि)त्तैकसाध्यं रहसि जायते ॥ ६८९ ॥
सशब्दे जनसङ्कीर्णे ध्यानं योगः कथं भवेत् ।
अत एव मया प्रोक्तं पूर्वं तव सुरेश्वरि ॥ ६९० ॥
शयीतायोगविद्रात्रौ योगवित् प्रतिबुध्यतु ।
कुर्वीत सगुणाध्यानं किं वा योगं सुदुष्करम् ॥ ६९१ ॥
विदधीतोभयभ्रष्टः शयनं पशुवन्निशि ।
जपपूजाबलिस्तोत्रपाठानेवैतयोर्द्वयोः ॥ ६९२ ॥
सत्यं सत्यं प्राप्नुवन्ति देवि(वी) कोटिकलामपि।
तस्मान्निशीथ उत्थाय ध्यानयोगौ समाश्रयेत् ॥ ६९३ ॥
यदीच्छेदात्मनः श्रेयो भवबन्धविमोक्षकृत् ।

यौगिक उपायों के द्वारा प्राण आदि दश वायुओं को इनमें भेजकर साधक जो कुछ करना चाहता है वह सब सिद्ध कर लेता है । हे प्रिये! यह सब शरीर में रहनेवाले चक्र नाडी आदि जो तुमको बतलाये गये, ईश्वर के आदेशानुसार अथवा शिल्प के कारण सारे मनुष्यों में रहते हैं । मल-मूत्रयुक्त इस प्रकार के इस देह में बुद्धिमान् लोग भोग और मोक्ष दोनों को उपाय के द्वारा सिद्ध कर लेते हैं । ईश्वर के सगुण ध्यान से भोग एवं निर्गुण ध्यान से मोक्ष मिलता है । एकान्त में एकाग्रचित्त से ध्यान की सिद्धि की जाती है । कोलाहलपूर्ण भीड़भाड़वाले स्थान में योग और ध्यान कैसे सम्भव है । हे सुरेश्वरि! इसीलिये मैंने पहले ही तुमसे कह दिया कि योग को न जाननेवाले को रात में शयन करना चाहिये किन्तु योगवेत्ता को चाहिये कि वह रात्रि में जागरण करे । वह चाहे तो सगुण का ध्यान करे या सुदुष्कर निर्गुण का । जो दोनों से भ्रष्ट है वह पशु की भाँति रात्रि में आनन्द के साथ सोये । इन दोनों में जप पूजा बलि स्तोत्र पाठ करनेवाले (साधक या योगी) देवी की करोड़ों कलाओं को भी प्राप्त कर लेते हैं । इसलिये यदि मनुष्य आत्मा के संसारबन्धन को छिन्न-भिन्न करनेवाला एवं मोक्ष को देनेवाला श्रेयस् चाहता है तो वह मध्यरात्रि में उठकर ध्यान और योग करे ॥ ६८६-६९३- ॥

देव्युवाच—

प्रभो गर्भस्थिते(:) पूर्वविधिस्त्वत्तः श्रुतं मया ॥ ६९४ ॥
सकलं देहसंस्थानं चक्राणामभिधा तथा ।
नामानि यत्र फलयोस्तेषां गतिरथ स्थितिः ॥ ६९५ ॥
नाडीनामपि सर्वासां धातूनामपि तत्त्वतः ।
तत्त्वैतया नस्वरया चपलाचलया कथम् ॥ ६९६ ॥
साधयन्त्यमृतं धीरा जन्ममृत्युजरापहम् ।
कथं वा कल्पपर्यन्तं स्थापयन्ति तनूमिमाम् ॥ ६९७ ॥
एतद्विस्तरशो ब्रूहि शरीरस्थानवद् विभो ।

देवी ने कहा—हे प्रभो! मैंने आप से गर्भस्थिति के पूर्व की विधि, सम्पूर्ण देह-संस्थान, चक्रों के स्वरूप तथा नाम, उनके फल, नाडियों की गति तथा स्थिति, समस्त धातुओं की गति तथा स्थिति तत्त्वतः सुनी । धीर पुरुष इस नश्वर चञ्चल एवं चल शरीर के द्वारा जन्म मृत्यु जरा को दूर करनेवाले अमृतत्व को कैसे सिद्ध करते हैं । वे लोग इस शरीर को कल्पपर्यन्त कैसे स्थिर रखते हैं । हे विभो! शरीर-संस्थान की भाँति इसको भी विस्तार के साथ बतलाइये ॥ ६९४-६९७- ॥

महाकाल उवाच—

कथयामि वरारोहे प्रीतो योगविधिं तव ॥ ६९८ ॥
धन्यासि या त्वं ब्रुवतः सर्वदा श्रोतुमिच्छसि ।
गुरूपदिष्टमार्गेण शक्यो योग उपासितुम् ॥ ६९९ ॥

तथा साधयितुं देवि नान्यथा वर्षकोटिभि: ।
योगस्तु द्विविध: प्रोक्तो हठ: क्रामिक एव च ॥ ७०० ॥
बलेन क्रियमाणस्तु हठ इत्यभिधीयते ।
युक्त्या गुरूपदेशैश्च कृत: क्रामिक उच्यते ॥ ७०१ ॥
भूयांसो हठयोगेन मृता ब्रह्मर्षय: पुरा ।
तस्मान्नैवेह कुर्वीत हठयोगं कदाचन ॥ ७०२ ॥
वायुरोधप्रवेशाभ्यां रोगा: स्युर्बहव: प्रिये ।
तैर्म्रियन्ते झटित्येव हठयोगं त्यजेदत: ॥ ७०३ ॥
क्रमेण क्रियमाणस्तु क्रामिक: परिकीर्त्यते ।
गुरूपदेशैश्चाभ्यास औषधं मितभोजनम् ॥ ७०४ ॥
शिक्षा च व्यवहाराणां योगकार्योपयोगिनाम् ।
एते क्रमा: परिज्ञेयास्तद्भव: क्रामिको मत: ॥ ७०५ ॥
गुरूपदेश: सर्वत्रावश्यकत्वेन कीर्तित: ।
तस्मादेवोद्भवोऽन्येषां तस्मात्तत्राग्रहं चरेत् ॥ ७०६ ॥
क्रमेण सर्वान् वक्ष्येऽहं सावधाना निशामय ।
जातस्य द्विविधौ ज्ञेयौ पन्थानौ देवचोदितौ ॥ ७०७ ॥
कर्मात्मकावुभावेतौ प्रवर्तकनिवर्तकौ ।
वर्णाश्रमोक्तं कर्मैव कामसङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ७०८ ॥
प्रवर्तकं भवेदेतत् संसारे वै प्रवर्तनात् ।
तदेव ज्ञानसंयुक्तं सर्वकामविवर्जितम् ॥ ७०९ ॥
निवर्तकं भवेदेतज्जन्मनस्तन्निवर्तनात् ।

महाकाल ने कहा—हे वरारोहे! प्रसन्न हुआ मैं तुमको योगविधि बतलाऊँगा । तुम धन्य हो जो सर्वदा (शास्त्रतत्त्व का) निर्वचन करनेवाले को सदा सुनना चाहती हो । हे देवि! गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से ही योग की उपासना और साधना की जा सकती है । अन्य प्रकार से करोड़ों वर्ष में भी (यह सम्भव) नहीं है । योग दो प्रकार का कहा गया है—(१) हठयोग और (२) क्रामिकयोग । बल के द्वारा क्रियमाण योग हठयोग कहलाता है । युक्ति एवं गुरूपदेश से किया गया योग क्रामिक कहलाता है । हठयोग का अभ्यास करने से बहुत से ब्रह्मर्षि प्राचीनकाल में मर गये। इसलिये इस (संसार या शरीर) में हठयोग नहीं करना चाहिये । हे प्रिये! वायु के प्रवेश और अवरोध से बहुत से रोग हो जाते हैं । उन रोगों के कारण साधक शीघ्र मर जाते हैं। इसलिये हठयोग को छोड़ देना चाहिये । क्रमश: क्रियमाण योग क्रामिक कहा जाता है । गुरु के उपदेश के अनुसार अभ्यास, औषधि का सेवन, सीमित आहार, योगकार्य के लिये उपयोगी व्यवहारों की शिक्षा— इनको क्रम जानना चाहिये । इनसे उत्पन्न होनेवाला योग क्रामिक माना गया है ।

गुरु का उपदेश सर्वत्र आवश्यक कहा गया है; क्योंकि इसी से अन्य योगों की उत्पत्ति होती है । इस कारण उसमें आग्रह करना चाहिये । अब मैं क्रमश: समस्त योगों को बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो । जन्म लेनेवाले मनुष्य को देवप्रेरित दो मार्ग जानने चाहिये । कर्मात्मक ये दोनों मार्ग प्रवृत्तिमार्ग एवं निवृत्तिमार्ग (कहे जाते हैं) । इच्छा के सङ्कल्प के बाद किया जानेवाला वर्णाश्रमोक्त कर्म ही प्रवर्त्तक होता है; क्योंकि वह संसार के प्रति प्रवृत्ति कराता है । वही वर्णाश्रमोक्त कर्म यदि सारी कामनाओं से रहित होता हुआ ज्ञान से संयुक्त होता है तो उसे निवर्त्तक कहा जाता है; क्योंकि वह जन्म से निवृत्ति करा देता है ॥ ६९७-७०९- ॥

निवर्तकश्च देहेषु द्विविधं मुनयो जगुः ॥ ७१० ॥
बाह्यमाभ्यन्तरं वेति प्रत्येकं मुक्तिसाधनम् ।
बाह्यं बहिः क्रिया चेयं यत्तद् विहितसाधनम् ॥ ७११ ॥
आभ्यन्तरं तु बुद्ध्यैव विध्यनुष्ठानमात्मनि ।
तयोरन्यतमं कुर्यात् नित्यं कर्म यथाविधि ॥ ७१२ ॥
ज्ञानभक्तिसमायुक्तः सदानन्दमवाप्नुयात् ।
ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वापि यावद्देहस्य धारणम् ॥ ७१३ ॥
तावद्वर्णाश्रमप्रोक्तं कर्तव्यं कर्म मुक्तये ।
इत्येतत् कर्मसर्वस्वं
कर्मकाण्डं स (?च) तत्त्वतः ॥ ७१४ ॥
उपदिश्य पुरा रुद्रो योगनिष्ठोऽभवत् स्वयम् ।
यतः कर्मैव कुर्वन्ति ज्ञानिनोऽपि मुमुक्षवः ॥ ७१५ ॥
अतस्त्वमपि देवेशि ज्ञानेनाचर कर्म तत् ।
ज्ञानं योगात्मकं विद्धि योगश्चात्मनि संस्थितिः ॥ ७१६ ॥
स योगोऽष्टाङ्गसंयुक्तः सर्वधर्मः स उच्यते ।
यथोपदिष्टं रुद्रेण तथाङ्गानि ब्रुवे तव ॥ ७१७ ॥
समाहितमना भूत्वा शृणु त्रिदशवन्दिते ।

मुनिगण शरीर में स्थित निवर्त्तक कर्म को दो प्रकार का बतलाये हैं । वे हैं—बाह्य एवं आभ्यन्तर । (दोनों में से) प्रत्येक मोक्ष का साधन है । बाह्य कर्म बाहरी होता है । यह क्रियारूप है । यह क्रिया विहित (अर्थात् शास्त्रसम्मत) साधन है । आभ्यन्तर कर्म (शरीर के द्वारा नहीं वरन्) केवल बुद्धि से किया जाता है । यह अपने अन्दर शास्त्रसम्मत कृत्यों का अनुष्ठान है । उपर्युक्त दोनों में से किसी एक का प्रतिदिन विधिवत् अनुष्ठान करना चाहिये । यदि ज्ञान और भक्ति से युक्त होकर यह कर्म किया जाय तो करनेवाला सदा आनन्द को प्राप्त करता है । ज्ञानी अथवा अज्ञानी कोई भी जब तक शरीर धारण करता है अर्थात् जीवित रहता है तब तक उसे मोक्ष के लिये वर्णाश्रमोक्त कर्म करना चाहिये । यही कर्म सर्वस्व (ज्ञानसर्वस्व)

है और यथार्थतः कर्मकाण्ड है । प्राचीन काल में रुद्र (स्वयं) इसका उपदेश कर स्वयं योगनिष्ठ हो गये । हे देवेशि! चूँकि मोक्षार्थी ज्ञानीजन भी कर्म ही करते हैं, इसलिये तुम भी ज्ञान के साथ कर्म करो । ज्ञान को योगस्वरूप जानो और योग आत्मसंस्थिति (= स्वस्थ होने का दूसरा नाम) है । वह योग आठ अङ्गोंवाला होता है और वही सर्वधर्म कहा जाता है । रुद्र ने जैसा उपदेश दिया वैसा अङ्गों को मैं तुमको बतला रहा हूँ । हे त्रिदशवन्दिते! समाहित चित्त होकर सुनो ॥७१०-७१७-॥

[योगाङ्गवर्णनम्]

यमश्च नियमश्चैव तथासनमपीष्यते ॥ ७१८ ॥
प्राणायामस्तथा देवि प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि प्रचक्षते ॥ ७१९ ॥
आदौ चत्वारि बाह्यानि तदन्याश्चतुराणि च ।
यमश्च दशधा प्रोक्तो नियमश्च तथा दश ॥ ७२० ॥
आसनानां च सर्वेषामुत्तमानि तथा दश ।
तेषूत्तमानि चत्वारि मुख्यरूपाणि पार्वति ॥ ७२१ ॥
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तः प्रत्याहारश्चतुर्विधः ।
धारणा पञ्चधा प्रोक्ता ध्यानं षोढा प्रकीर्तितम् ॥ ७२२ ॥
समाधिः समता प्रोक्ता तावद्ध्यानं पृथक् पृथक् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ॥ ७२३ ॥
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ ७२४ ॥
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ।
विध्युक्तं चेत्त्वहिंसा स्यात्
क्लेशजा(नैव ?)लैव जन्तुषु (?) ॥ ७२५ ॥
विधिनोक्तं च हिंसा स्यादभिचारो हि कर्म यत् ।

योग के अङ्गों का वर्णन—हे देवि! यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि इनको योगी लोग योगाङ्ग कहते हैं । इसमें से प्रथम चार अङ्ग बाह्य हैं, शेष चार उससे (अर्थात् बाह्य से) भिन्न अर्थात् आभ्यन्तर हैं । यम दश प्रकार का कहा गया है । उसी प्रकार नियम भी दश हैं । समस्त आसनों में उत्तम आसन भी दश ही हैं । हे पार्वति! उन दश में से चार आसन मुख्य हैं । प्राणायाम तीन प्रकार का और प्रत्याहार चार प्रकार का कहा गया है । धारणा पाँच प्रकार की और ध्यान छह प्रकार का कहा गया है । समता को समाधि कहते हैं । (जितने प्रकार के ध्येय होते हैं) उतने प्रकार के पृथक्-पृथक् ध्यान होते हैं । अहिंसा सत्य चोरी न करना ब्रह्मचर्य क्षमा धैर्य दया सरलस्वभावता, मिताहार और पवित्रता—ये दश यम हैं । मन वाणी और कर्म से समस्त प्राणियों के विषय

में सर्वदा कष्ट पहुँचाने की भावना का न होना योगियों के द्वारा अहिंसा कही गयी है । यदि यह कहिये कि 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत भूतिकामः' इत्यादि विधिवाक्य तो हिंसा को बतलाते हैं? तो ऐसा नहीं है; क्योंकि वह अहिंसा ही है । कारण वह प्राणियों में क्लेश उत्पन्न नहीं करती । (पूजन के बाद वध्य पशु बलि देने योग्य देवता के प्रभाव से क्लेश का अनुभव नहीं करता अथवा उस अल्प क्लेशानुभव को वह सहर्ष सहन कर लेता है) । जो विधिवाक्यों के द्वारा नहीं कही गयी अर्थात् विधिसम्मत नहीं है वह हिंसा होती है; क्योंकि वह अभिचार कर्म है ॥ ७१८-७२५-॥

सर्वभूतात्मकं प्रोक्तं यद्यथार्थाभिभाषणम् ॥ ७२६ ॥
प्रियं तत्सत्यमित्युक्तं हितमेतत् ब्रवीमि ते ।
कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निःस्पृहा ॥ ७२७ ॥
अस्तेयमिति तत्प्रोक्तं योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ७२८ ॥
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ।
ऋतावृतौ स्वदारेषु सङ्गतिर्हि विधानतः ॥ ७२९ ॥
ब्रह्मचर्यं तु तत्प्रोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ।
शुश्रूषा च गुरोर्नित्यं ब्रह्मचर्यमितीरितम् ॥ ७३० ॥
प्रियाप्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।
क्षमा सैवेति कथिता विद्वद्भिर्योगवेदिभिः ॥ ७३१ ॥
आत्महानौ च बन्धूनां वियोगेष्वपि सम्पदाम् ।
तेषां प्राप्तौ च सर्वत्र चित्तस्य स्थापनं धृतिः ॥ ७३२ ॥
परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ।
आर्तेष्वपि दयाबुद्धिर्दयेति परिकीर्तिता ॥ ७३३ ॥
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा मनोवाक्कायकर्मणाम् ।
विहितेषु तदन्येषु एकरूपत्वमार्जवम् ॥ ७३४ ॥
अष्टौ ग्रासा मुनेरुक्ता(?र्भक्ष्याः)
षोडशारण्यवासिनाम् ।
द्वात्रिंशच्च गृहस्थानां यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ७३५ ॥
उक्त एष मिताहारो ह्यन्येषामल्पभोजनम् ।
शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥ ७३६ ॥
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिस्तथान्तरम् ।
मनःशुद्धिश्च विज्ञेया धर्मेणाध्यात्मविद्यया ॥ ७३७ ॥
उक्ताः संक्षेपतो देवि अहिंसाद्या यमा दश ।

समस्त प्राणियों के विषय में जो यथार्थ (= प्रत्यक्षीकृत वस्तु का यथादृष्ट) वर्णन वह प्रिय अर्थात् मधुर तथा हितकारी होने से सत्य कहा गया है । मन वाणी

एवं कर्म से दूसरे के द्रव्य के प्रति अनिच्छा को तत्त्वदर्शी योगी लोगों ने अस्तेय कहा है । कर्म मन वाणी से सदा सभी अवस्थाओं में सर्वत्र मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है । गृहस्थाश्रमी लोगों का रजोनिवृत्ति के पश्चात् अपनी पत्नी के साथ विधिपूर्वक रति करना भी उनका ब्रह्मचर्य है । गुरु की नित्य सेवा को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है । प्रिय अर्थात् सुखद और अप्रिय अर्थात् दुःखद समस्त स्थितियों में जीवमात्र के प्रति समभाव को विद्वान् योगीजन क्षमा बतलाये हैं । अपनी हानि, सगे सम्बन्धियों तथा धन का वियोग होने पर अथवा उनकी प्राप्ति होने पर चित्त का उद्विग्न या प्रसन्न न होना धैर्य है । अन्य लोग भाई बन्धु मित्र शत्रु किसी भी आर्त्त के प्रति दयाबुद्धि दया कही गयी है । विधि तथा निषेध में मन वाणी और कर्म की प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति में एकरूपता ऋजुता है । संन्यासी को आठ, वानप्रस्थ को सोलह, गृहस्थ को बत्तीस ग्रास और ब्रह्मचारी को यथेष्ट भोजन करना चाहिये तथा अन्य (= रोगी वृद्ध आदि) को अल्प भोजन करना चाहिये यह नियम मिताहार कहा गया है । शौच दो प्रकार का कहा गया है—आभ्यन्तर तथा बाह्य । मिट्टी तथा जल से बाह्य शुद्धि होती है । मन की शुद्ध आन्तर शौच है । मन की शुद्धि धर्म और अध्यात्म विद्या से होती है । हे देवि! इस प्रकार संक्षेप में दश यम बतलाये गये ॥ ७२६-७३७- ॥

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ॥ ७३८ ॥
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्री मतिश्च जपो व्रतम् ।
नियमा दशधा प्रोक्तास्तांश्च सर्वान् पृथक् शृणु ॥ ७३९ ॥
विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिना ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥ ७४० ॥
यदृच्छालाभतो नित्यं मनस्तोषो भवेदिति ।
या धीस्तामृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणाम् ॥ ७४१ ॥
धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते ।
न्यायार्जितं धनं चान्नमन्यद्वा यत्प्रदीयते ॥ ७४२ ॥
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतत्प्रकीर्तितम् ।
यत्प्रसन्नस्वभावेन शम्भोर्देव्या हरेरपि ॥ ७४३ ॥
यथाशक्त्यर्चनं भक्त्या एतदीश्वरपूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं प्रोक्तं वेदान्तश्रवणं बुधैः ॥ ७४४ ॥
वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत् ।
तस्मिन् भवति या लज्जा ह्रीःसैवेति कीर्तिता ॥ ७४५ ॥
विहितेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ।
गुरुणा चोपदिष्टेऽर्थे वेदवाक्यविवर्जिते ॥ ७४६ ॥
विधिनोक्तेन मार्गेण सदाभ्यासो जपः स्मृतः ।
जपश्च द्विविधः प्रोक्त उपांशुश्चैव मानसः ॥ ७४७ ॥

उच्चैर्जपादुपांशुः स्यात् सहस्रगुण उच्यते ।
सहस्रगुण उद्दिष्टस्तस्मादपि च मानसः ॥ ७४८ ॥
स्वकीयशाखाध्ययनमितिहासपुराणयोः ।
अधीतस्याप्यथान्यस्य सदाभ्यासो जपः स्मृतः ॥ ७४९ ॥
तुष्टेन गुरुणा पूर्वमुपदिष्टमनुज्ञया ।
धर्मार्थमोक्षसिद्ध्यर्थमुपायग्रहणं मतम् (व्रतम्) ॥ ७५० ॥

तप सन्तोष आस्तिकबुद्धि दान ईश्वर की पूजा धार्मिक सिद्धान्तों का श्रवण लज्जा मति जप व्रत ये दश प्रकार के नियम बतलाये गये हैं । उन सबको पृथक्-पृथक् (स्पष्ट रूप से) सुनो । शास्त्रोक्त मार्ग से कृच्छ्र चान्द्रायण आदि के द्वारा शरीर को सुखाने को तपस्वियों ने उत्तम तप कहा है । यदृच्छा लाभ (= अपने उचित ढङ्ग या साधन से अर्थोपार्जन) से नित्य मन में सन्तोष होता है । ऐसी जो सुखलक्षणा बुद्धि है, उसको ऋषि लोग सन्तोष कहते हैं । जो धर्म तथा अधर्म में विश्वास है—वह आस्तिक्य कहा जाता है । न्यायोचित ढङ्ग से अर्जित धन या अन्य वस्तु को याचकों को श्रद्धा के साथ दिया जाना दान कहा गया है । प्रसन्न स्वभाव अर्थात् प्रसन्न मन से शिव का, शक्ति का भक्ति के साथ यथाशक्ति अर्चन ईश्वर-पूजन कहा गया है । वेदान्त-श्रवण को विद्वान् लोग सिद्धान्त-श्रवण बतलाये हैं । वैदिक या लौकिक मान्यता के अनुसार जो निन्दनीय कर्म है उसके विषय में जो लज्जा होती हैं वही ह्री कही गयी है । गुरु के द्वारा उपदिष्ट, वेदवाक्य से भिन्न शब्द या वाक्य का विधिपूर्वक सदा अभ्यास जप माना गया है । वह जप दो प्रकार का होता है—उपांशु और मानस । उच्चारणपूर्वक जप से उपांशु जप सहस्र गुना श्रेष्ठ होता है । मानस जप उसकी अपेक्षा सहस्र गुणा श्रेष्ठ कहा गया है । अपनी शाखा का इतिहास-पुराण का अथवा अन्य अधीत का सदा अभ्यास जप माना गया है । गुरु सन्तुष्ट होकर पूर्वोपदिष्ट उपाय को करने की आज्ञा दे और शिष्य उसका ग्रहण करे—यह व्रत है ॥ ७३८-७५० ॥

आसनान्यथ वक्ष्येऽहं शृणु देवि समाहिता ।
स्वस्तिकं गोमुखं पद्मं वीरं सिंहासनं तथा ॥ ७५१ ॥
मयूरं कुक्कुटं चैव भद्रं कूर्मासनं तथा ।
मुक्तासनं तथा तेषां पृथग् वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ७५२ ॥
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ७५३ ॥
सीवन्यामात्मनः पार्श्वे गुल्फौ निक्षिप्य पादयोः ।
सव्ये दक्षिणगुल्फं तु दक्षिणे दक्षिणेतरम् ॥ ७५४ ॥
एतद्वा स्वस्तिकं प्रोक्तं सव्ये सव्येतरं करम् ।
सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ॥ ७५५ ॥

दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं परिकीर्तितम् ।
अङ्गुष्ठौ तु निबन्धीयात् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥ ७५६ ॥
ऊर्वोरुपरि देवेशि कृत्वा पादतले उभे ।
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामपि पूजितम् ॥ ७५७ ॥
एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योपरि संस्थितः ।
इतरस्मिंस्तथा चोरौ वीरासनमुदाहृतम् ॥ ७५८ ॥
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलिः सम्प्रसार्य च ।
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासिकाग्रं समाहितः ॥ ७५९ ॥
सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिभिः सदा ।
अवष्टभ्य धरां सम्यक् तलाभ्यां हि करद्वयोः ॥ ७६० ॥
हस्तयोः कूर्परौ चापि स्थापयेन्नाभिपार्श्वयोः ।
समुन्नतशिरः पादौ दण्डवद्व्योम्नि संस्थितः ॥ ७६१ ॥
मयूरासनमेतद्धि सर्वपापप्रमोचनम् ।
पद्मासनं समास्थाय जानूर्वोरन्तरे करौ ॥ ७६२ ॥
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम् ।
गुल्फौ तु वृषणस्याधः सीवन्यः पार्श्वयोः क्षिपेत् ॥ ७६३ ॥
पार्श्वे पादौ तु पाणिभ्यां दृढं बद्धं सुनिश्चलः ।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविषापहम् ॥ ७६४ ॥
गुदं निरुद्ध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः ।
कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः ॥ ७६५ ॥
सम्पीड्य सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु मध्यमः(मम्?) ।
सव्यं दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमितीरितम् ॥ ७६६ ॥
मेढ्रादुपरि निःक्षिप्य सव्यं गुल्फं तथोपरि ।
गुल्फान्तरं विनिःक्षिप्य मुक्तासनमिदं तु वा ॥ ७६७ ॥
यमैश्च नियमैश्चैव आसने च सुसंयतः ।
कृत्वा तु नाडिकाशुद्धिं प्राणायामं ततश्चरेत् ॥ ७६८ ॥
वृथा क्लेशो भवेत्तस्य नाडीशुद्धिमकुर्वतः ।
प्राणायामादिसर्वाणि योगाङ्गानि च सर्वतः ॥ ७६९ ॥

अब मैं आसनों को बतलाऊँगा । हे देवि! उनको ध्यान देकर सुनो । स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंहासन, मयूर, कुक्कुट, भद्र, कूर्मासन एवं मुक्तासन होते हैं । (इनके अतिरिक्त शीर्ष हल आदि अन्य आसन भी होते हैं । उनके लक्षणों का पृथक्-पृथक् वर्णन करूँगा) ।

स्वस्तिकासन (१)—दोनों पादतलों को जानु और उरु के भीतर करके शरीर को सीधा कर बैठने को (योगी लोग) स्वस्तिक आसन कहते हैं ।

स्वस्तिकासन (२)—सीवनी (लिङ्गमणि के सन्धिशोथ) को अपनी ओर पास में खींचकर गुल्फों (= टखनों) को पैरों के ऊपर रखकर दायें गुल्फ को बायें घुठने पर और बायें गुल्फ को दायें घुठने पर रखना तथा बायें हाथ पर दायें हाथ को रखना स्वस्तिक आसन कहलाता है ।

गोमुखासन—दक्षिण गुल्फ को बायें पीठ के बगल में और बायें गुल्फ को दायें पीठ के बगल में रखना गोमुख आसन कहा गया है ।

पद्मासन—दोनों हाथों से दोनों अँगूठों को व्युत्क्रम से पकड़कर दोनों पादतलों को जाँघों पर रखना—ये पद्मासन होता है जो कि समस्त आसनों में उत्तम तथा सारे सिद्धजनों के द्वारा पूजित है ।

वीरासन—एक पैर को घुठने से मोड़कर दूसरे पर रखकर तथा दूसरे पैर को दूसरी जाँघ पर रखना वीरासन कहा गया है ।

सिंहासन—दोनों हाथों को घुठनों पर रखकर अपनी अँगुलियों को फैलाना तथा मुँह को खोलकर समाहित होकर नासिका के अग्रभाग को देखना सिंहासन होता है । यह योगियों के द्वारा आदर का आसन है ।

मयूरासन—दोनों करतलों से पृथ्वी को पकड़कर दोनों हाथों की कुहनियों को नाभि के दोनों पार्श्वों में रखना, शिर उठाकर रखना और दोनों पैरों को डण्डे की भाँति आकाश में फैलाना यह मयूरासन है, जो कि समस्त पापों अर्थात् दुःखों का नाशक है ।

कुक्कुटासन—पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को घुटनों एवं जाँघों के बीच में रखकर भूमि पर रखना (शरीर को) आकाश में रखना कुक्कुटासन है ।

भद्रासन—गुल्फों को अण्डकोष के नीचे तथा सीवनी के पार्श्व में रखना बगल में पैरों को हाथों से दृढता से बाँधना तथा सुनिश्चल रहना—यह भद्रासन होता है । यह सर्वव्याधिरूपी विष को दूर करनेवाला है ।

कूर्मासन—दोनों गुल्फों से गुदा को निरुद्धकर समाहित चित्त होना, योगवेत्ता इसे कूर्मासन कहते हैं ।

मुक्तासन (१)—सूक्ष्म सीवनी को गुल्फ के द्वारा दबाकर मध्यम सव्य को दक्षिण गुल्फ से पीडित करना—मुक्तासन कहा गया है ।

मुक्तासन (२)—सव्य गुल्फ को मेढ़ के ऊपर रखकर तथा उस गुल्फ पर दूसरे गुल्फ को रखना भी मुक्तासन है ।

यमों-नियमों के द्वारा शरीर को पवित्र करते हुए आसन पर संयम रखकर नाडीशुद्धि करने के बाद प्राणायाम करना चाहिये । जो नाडीशुद्धि नहीं

करते उनके लिये प्राणायाम आदि समस्त योगाङ्ग और अन्य आसन आदि क्लेश व्यर्थ है ॥ ७५१-७६९ ॥

[नाडीशुद्धिवर्णनम्]

देव्युवाच—

नाथ हे भगवन् ब्रूहि नाडीशुद्धिं विधानतः ।
केनोपायेन शुद्धाः स्युः धमन्यः सर्वदेहिनाम् ॥ ७७० ॥
उत्पत्तिं चैव नाडीनां धारणं च यथाविधि ।
पुनरेव समीहेऽहं श्रोतुं श्रुतमपि प्रभो ॥ ७७१ ॥
कन्दं च कीदृशं प्रोक्तं कति तिष्ठन्ति वायवः ।
स्थानानि चैव वायूनां कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ ७७२ ॥
विज्ञातव्यानि यान्यस्मिन् देहे देहभृता सदा ।

नाडीशुद्धि का वर्णन—देवी ने कहा—हे नाथ! हे भगवन्! आप नाडीशुद्धि को विधिपूर्वक बतलाइये । समस्त देहधारियों की धमनियाँ किस उपाय से शुद्ध होती हैं । इसके साथ नाड़ियों की उत्पत्ति उनका विधिवत् धारण यह सब यद्यपि पूर्व श्रुत है तथापि हे प्रभो! पुनः सुनना चाहती हूँ । कन्द किस प्रकार का अर्थात् किस आकार और स्वरूप का कहा गया है । (शरीर में) कितने वायु रहते हैं । जो कि इस देह में हैं उन वायुओं के स्थान और कर्म पृथक्-पृथक् देहधारियों को सदा ज्ञात होने चाहिये ॥ ७७०-७७२- ॥

महाकाल उवाच—

एकवारं प्रोक्तमपि पुनः शुश्रूषसे कथम् ॥ ७७३ ॥
इदमत्यद्भुतं भाति न जाने हेतुरत्र कः ।
सन्तोषणीया भवती मया सर्वात्मना यतः ॥ ७७४ ॥
अतः प्रवक्ष्याम्यखिलं विस्तरेण तवेश्वरि ।
शरीरं सर्वमर्त्यानां षण्णवत्यङ्गुलात्मकम् ॥ ७७५ ॥
स्वाङ्गुलीभिरिति ज्ञेयं न न्यूनं नाधिकं तथा ।
देहे द्वात्रिंशदस्थीनि वदन्ति पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ७७६ ॥
द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीणामपि सन्ति वै ।
शरीरादधिकः प्राणो द्वादशाङ्गुलमानतः ॥ ७७७ ॥
प्रयाणं कुरुते वायुस्तस्मात् प्राण इतीरितः ।
देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥ ७७८ ॥
चतुरस्रं त्रिकोणं तु इतरेषां तु मण्डलम् ।
तन्मध्ये तु शिखा तन्वी सदा तिष्ठति पावकी ॥ ७७९ ॥
देहमध्ये तु कुत्रेति श्रोतुमिच्छसि चेच्छृणु ।

महाकाल ने कहा—(हे देवि!) एक बार कहे गये को पुनः क्यों सुनना चाहती हो? यह तो मुझे बहुत अद्भुत लग रहा है। पता नहीं इसके पीछे क्या कारण है। फिर भी चूँकि मुझे आपको सब प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिये इसलिये हे ईश्वरि! मैं तुमको सम्पूर्ण नाडीशुद्धि विस्तार के साथ बतलाऊँगा। सारे मनुष्यों का शरीर छानबे अँगुल का होता है। (यह मान) उनकी अपनी अँगुलियों से जानना चाहिये (दूसरे की अँगुली से नहीं)। यह शरीर छानवे अँगुल से न कम होता है न अधिक। विद्वान् लोग शरीर के दोनों पार्श्वों में बत्तीस हड्डियाँ बतलाते हैं। नाडियों की संख्या बहत्तर हजार है।[1] प्राण का मान शरीर के मान से बारह अँगुल अधिक है। (इस प्रकार प्राण का सञ्चार सम्पूर्ण शरीर में होने के अतिरिक्त नासारन्ध्र से बाहर बारह अँगुल दूर तक होता है। इसीलिये इसका मान १०८ अँगुल माना गया है)। वायु चूँकि प्रयाण करता है इसलिये उसे प्राण कहते हैं।[2] देह के मध्य में अग्नि का स्थान है। वह तपाये गये सोने के रङ्ग का होता है। (मनुष्य के शरीर में) यह चौकोर अथवा त्रिकोण होता है। मनुष्येतर शरीर में वह गोलाकार होता है। उस स्थान के मध्य में क्षीण अग्निशिखा सदा विराजमान रहती है। देह के मध्य में कहाँ वह अग्निस्थान है? यदि यह सुनना चाहती हो तो सुनो ॥ ७७३-७७९- ॥

गुदाच्च द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रो मेढ्रात्तु द्व्यङ्गुलात् ॥ ७८० ॥
एकाङ्गुलं तु तन्मध्ये देहमध्यमितीरितम् ।
कन्दमस्ति शरीरेऽस्मिन् देहमध्यान्नवाङ्गुलम् ॥ ७८१ ॥
चतुरङ्गुलमुच्छ्रायमायामं च तथाविधम् ।
अण्डाकृतिवदाधारं त्वगस्थिपरिभूषितम् ॥ ७८२ ॥
तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं नाभीचक्रसमुद्भवः ।
द्वादशारयुतं चक्रं देहं तेन प्रतिष्ठितम् ॥ ७८३ ॥
चक्रेऽस्मिन् भ्रमते जीवः पुण्यापुण्यप्रचोदितः ।
तत्तु पञ्जरमध्यस्थो यथा भ्रमति मर्कटः ॥ ७८४ ॥
जीवमूले तु चक्रेऽस्मिन् अधः प्राणश्चरत्यसौ ।
तस्योर्ध्वं कुण्डलिस्थानं नाभेस्तिर्यगधोमुखम् ॥ ७८५ ॥
अष्टकप्रतिरूपा सा अष्टधा कुण्डलीकृता ।
अकारादिहकारान्ता कुण्डलिन्यभिधीयते ॥ ७८६ ॥

---

[1] नाडी एवं चक्र संस्थान आदि का वर्णन योगशिखोपनिषत् अथर्वशिर उपनिषत् आदि योगसम्बन्धी उपनिषदों में विस्तार के साथ मिलता है।

[2] प्र + या + अन की सन्धि से प्रयाण बनता है। यकार का लोप होने से प्राण शेष बचता है। 'प्राण' शब्द की एक और व्युत्पत्ति है—प्रकर्षेण अनति इति प्राणः। यहाँ 'प्राण' शब्द प्र + अन + घञ् से बना है।

यावद्वायुप्रचारश्च निरुध्य सकलां तनुम् ।
स्वमुखेन समावेश्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा ॥ ७८७ ॥
योगकाले त्वपानेन प्रबुद्धाश्वासवायुना ।
स्फुरन्ती हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला ॥ ७८८ ॥
वायुर्वायुसखेनैव ततो याति सुषुम्णया ।
कन्दमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्णेत्युच्यते हि या ॥ ७८९ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं यियासास्तु कुण्डलिन्या हि वर्त्मना ।
तस्याः पार्श्वगता नाड्यश्चतुर्दश पुरेरिता ॥ ७९० ॥
नामतः स्थानतश्चापि तदुक्त्या किं प्रयोजनम् ।

गुदा से दो अँगुल ऊपर मेढ्र है । मेढ्र से दो अँगुल ऊपर एक अँगुल का क्षेत्र देहमध्य कहा गया है । देह मध्य से नव अँगुल ऊपर इस शरीर में कन्द है । यह चार अँगुल ऊँचा उतना ही लम्बा-चौड़ा है । यह आधार अण्डे के आकार-सदृश है तथा त्वग् एवं अस्थि से युक्त है । उसके मध्य में नाभिचक्र से उत्पन्न नाभि है । यह नाभिचक्र बारह कोणों या अरोंवाला है । उसी से देह स्थिर रहता है । इस चक्र में पुण्य और पाप से प्रेरित जीव उसी प्रकार घूमता रहता है, जैसे पिंजड़े के मध्यस्थ बन्दर उसमें चारो ओर चक्कर लगाता रहता है । जीव के मूलभूत इस चक्र में यह प्राण सञ्चरण करता है । उसके ऊपर कुण्डली का स्थान है जो नाभि के बगल में नीचे मुखवाला है । वह कुण्डली अष्टक प्रतिरूपा (= आठ अवयवोंवाली) है । आठ प्रकार से स्थित है । अकार से लेकर हकार तक (अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग. पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तक आठ वर्ग हैं यही) कुण्डलिनी कही जाती है । वायु का सञ्चार सम्पूर्ण शरीर को निरुद्ध कर वह अपने मुख से वायु को प्रविष्ट कर ब्रह्मरन्ध्र के मुख तक जाती है । योगक्रिया के समय अपान वायु से प्रबुद्ध होकर हृदयाकाश में स्फुरण करती हुई नाग के समान वक्र तथा अत्यन्त चमकीली वह कुण्डलिनी वायु के साथ सुषुम्ना मार्ग से ऊपर जाती है । कन्द के मध्य में स्थित नाडी जो कि सुषुम्ना कही जाती है उस नाडी के रास्ते कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र तक जाना चाहती है । उसके अगल-बगल चौदह नाड़ियाँ हैं जिनका वर्णन पहले हो चुका है । उनके नाम और स्थान का वर्णन करने से क्या फायदा? ॥ ७८०-७९०- ॥

मुक्तिमार्गे सुषुम्णा सा ज्वलन्ती विश्वरूपिणी ॥ ७९१ ॥
तथा कुण्डलिनीशक्तिरन्यादास्य इव स्थिताः ।
पृष्ठमध्यस्थितेनास्या ब्रह्मरन्ध्रं गतेश्वरी ॥ ७९२ ॥
मोक्षपन्था सुषुम्णा च ब्रह्मरन्ध्रं तथामृतम् ।
अव्यक्ता शाङ्करी सूक्ष्मेत्येतैर्नामभिरीर्यते ॥ ७९३ ॥
इडा च पिङ्गला चैव तस्याः सव्ये च दक्षिणे ।

इडायां पिङ्गलायां च चरतश्चन्द्रभास्करौ ॥ ७९४ ॥
चन्द्रस्तामस इत्युक्तः सूर्यो राजस उच्यते ।
तावेव धत्तः सकलं कालं रात्रिन्दिवात्मकम् ॥ ७९५ ॥
यथाश्वत्थदले शुष्के तद्वद्ज्ञेयास्तु नाडयः ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ ७९६ ॥
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
एतेषु वायवः पञ्च मुख्या ज्ञेया वरानने ॥ ७९७ ॥
तेषु मुख्यतमः प्राणः कन्दस्याधः प्रतिष्ठितः ।
आस्यनासिकयोर्मध्ये हृदये नाभिमण्डले ॥ ७९८ ॥
पादाङ्गुष्ठेऽपि च प्राणः स्वयमेवावतिष्ठते ।
अपानो मेढ्रपाय्वोश्च ऊरुवंक्षणजानुषु ॥ ७९९ ॥
जंघोदरे च कट्यां च नाभिमूले च तिष्ठति ।[1]
व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च हृत्कट्यांगुल्फयोरपि ॥ ८०० ॥
समानः(उदानः) सर्वदेहेषु सर्वव्यापी प्रतिष्ठितः ।
भुक्तं सर्वरसं गात्रे व्यापयन् वह्निना सह ॥ ८०१ ॥
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीमध्येषु सञ्चरन् ।
समानो वायुरेवैकः स्थितो व्याप्य कलेवरम् ॥ ८०२ ॥
नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ।

चमकती हुई वह सुषुम्ना मुक्तिमार्ग में स्थित रहती है । उसके अन्दर विश्वरूपिणी कुण्डलिनी शक्ति रहती है । (इस कारण वह प्रधान है) अन्य नाडियाँ उसके आस-पास दासियों की भाँति स्थित हैं । पीठ के मध्य में स्थित इसके (मार्ग से) वह ईश्वरी कुण्डलिनीशक्ति ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है । यह नाडी मोक्षपन्था सुषुम्ना ब्रह्मरन्ध्र अमृतनाडी अव्यक्ता शाङ्करी सूक्ष्मा नामों से कही जाती है । इडा और पिङ्गला उस (= सुषुम्ना) के बायें और दायें स्थित हैं । इडा और पिङ्गला में क्रमशः चन्द्रमा और सूर्य सञ्चरण करते रहते हैं । चन्द्र तमोगुणप्रधान और सूर्य रजोगुण-प्रधान कहा जाता है । वे ही दोनों रात्रि-दिन स्वरूप सम्पूर्ण काल को धारण करते हैं । जिस प्रकार पीपल के सूखे पत्ते में उसी प्रकार (शरीर में) नाडियों को समझना चाहिये । हे वरानने! प्राण अपान समान उदान और व्यान तथा नाग कूर्म कृकर देवदत्त और धनञ्जय—ये दश वायु हैं । इनमें प्राण आदि पाँच मुख्य वायु जानने चाहिये । उन पाचों में से प्राण मुख्य है । यह कन्द के नीचे स्थित रहता है । मुख नासिका के मध्य, हृदय, नाभिमण्डल और पैरों के अङ्गूठों में प्राणवायु स्वयं स्थित रहता है । अपान वायु मेढ्र गुदा, उरु, वंक्षण, जानु, जंघा, उदर, कटि तथा नाभिमूल में रहता है । व्यान कान आँख के मध्य, हृदय, कटि, दोनों गुल्फों में

---

[1] उदान वायु का वर्णन नहीं है । प्रतीत होता है कि एक श्लोक की छूट है ।

रहता है । उदान वायु कण्ठ देश में रहता है; समान वायु सर्वव्यापी होकर सम्पूर्ण शरीर में प्रतिष्ठित रहता है । यह खाये-पीये गये अन्न के रस को अग्नि के साथ सारे शरीर में फैलाता रहता है । समान वायु अकेले सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर बहत्तर हजार नाडियों के मध्य सञ्चरण करता हुआ विराजमान है । नाग आदि पाँच वायु त्वग् अस्थि आदि में रहते हैं ॥ ७९१-८०२- ॥

निःश्वासोच्छ्वासकासादि प्राणकर्म इतीष्यते ॥ ८०३ ॥
अपानवायोः कर्मैतद् विण्मूत्रादिविसर्जनम् ।
घ्राणोपादानचेष्टादिव्यानकर्मेति कथ्यते ॥ ८०४ ॥
उदानकर्म तत्प्रोक्तं देहस्योन्नमनादि यत् ।
शोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्यते ॥ ८०५ ॥
उदानादिगुणो यश्च नागकर्मेति कीर्तितम् ।
निमीलनादि कूर्मस्य क्षुत्तृष्णा कृकरस्य च ॥ ८०६ ॥
देवदत्तस्य देवेशि तन्द्रा कर्म प्रकीर्त्यते ।
धनञ्जयस्य शोथादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ८०७ ॥
ज्ञात्वैवं नाडिकास्थानं वायुयानांश्च यत्नतः ।
नाडीनां शोधनं कार्यं यथाविधिपुरस्सरम् ॥ ८०८ ॥

निःश्वास उच्छ्वास खाँसी आदि प्राण के कर्म माने जाते है । मल-मूत्र आदि का विसर्जन अपान वायु का कार्य है । जो देह को ऊपर उठाना आदि है वह उदान वायु का कर्म कहा गया है। शरीर में शोषण आदि समान वायु का कर्म कहा जाता है । जो उदान आदि गुण हैं वह नागवायु का कर्म कहा गया है । आँख बन्द करना खोलना आदि कूर्म का, भूख-प्यास कृकर का, और हे देवेशि! तन्द्रा देवदत्त का कर्म कहा जाता है । शोथ आदि सारे कर्म धनञ्जय नामक वायु के कहे जाते हैं । इस प्रकार नाडी का स्थान एवं वायुमार्ग (= कर्म) को प्रयत्नपूर्वक जानकर विधिविधान के साथ नाडी-शोधन कार्य करना चाहिये ॥ ८०३-८०८ ॥

[नाडीशुद्धिप्रक्रियावर्णनम्]

विध्युक्तगुणसम्पन्नः सर्वकामविवर्जितः ।
यमादिगुणसंयुक्तः सर्वसङ्गविवर्जितः ॥ ८०९ ॥
तपोवनं ततो गत्वा फलमूलोदकान्वितम् ।
तत्र वन्ये शुचौ देशे नद्यां देवालयेऽपि वा ॥ ८१० ॥
सुशोभनं मठं कृत्वा कुशाजिनकमण्डलुम् ।
त्रिकालस्नानसंयुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ ८११ ॥
मन्त्रैर्न्यस्ततनुः श्रीमान् रुद्राक्षपूर्णविग्रहः ।
विभूतिभूषिततनुः सदा जपपरायणः ॥ ८१२ ॥

तृणासनोपरि कुशान् समास्तीर्याथ वाजिनम् ।
विनायकं सुसम्पूज्य फलपुष्पोदकादिभिः ॥ ८१३ ॥
इष्टदेवीं गुरुं नत्वा तत आबध्य चासनम् ।
उदङ्मुखो वा प्राच्यास्योऽजिनासनगतोऽपि वा ॥ ८१४ ॥
समग्रीवशिरःकायः संवृतास्यः सुनिश्चलः ।
नासाग्रदृक् सदा सम्यक् सव्ये तस्येतरं करम् ॥ ८१५ ॥
नासाग्रे शशभृद्बिम्बज्योत्स्नाजालवितानितम् ।
सप्तमस्य च वर्गस्य चतुर्थं बिन्दुसंयुतम् ॥ ८१६ ॥
बिम्बमध्यस्थमालोक्य नेत्राभ्यां मनसा सह ।
इडया पूरयेद् वायुं बाह्ये द्वादशमात्रकैः ॥ ८१७ ॥
ततोऽग्निं पूर्ववद्ध्यायेत्स्फुरज्ज्वालावलीयुतम् ।
रेफं च विन्दुसंयुक्तं वह्निमण्डलसंस्थितम् ॥ ८१८ ॥
ध्यायेद् विरेचयेद् पश्चात् मन्दपिङ्गलया पुनः ।

नाडीशुद्धि का वर्णन—विधिशास्त्र में उक्त गुणों से सम्पन्न, समस्त कामनाओं से रहित, यम-नियम आदि गुणों से युक्त, समस्त सम्बन्धों तथा आसक्तियों से रहित साधक फल कन्दमूल जलाशय आदि से युक्त तपोवन में जाकर वहाँ पवित्र वनभूमि नदी अथवा देवालय में सुन्दर मठ का निर्माण करे । कुश चर्म कमण्डलु का संग्रह करने के बाद त्रिकाल स्नान कर पवित्र होकर समाहित हुआ शरीर में मन्त्रों से न्यास करे । वह श्रीमान् साधक शरीर में रुद्राक्ष धारणकर विभूति अर्थात् भस्म लगाकर सदा जप में लगा रहे । तृण के आसन के ऊपर कुशों को बिछाकर फल पुष्प जल आदि से वाजी (= अग्नि) एवं विनायक की पूजाकर इष्टदेव तथा गुरु को प्रणामकर आसन बाँधकर उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख हो चर्मासन पर बैठकर ग्रीवा शिर तथा शरीर को सीधा रखे । मुख बन्द कर एवं निश्चल होकर नाक के अग्रभाग पर दृष्टि रखे। बायें हाथ पर दायाँ हाथ रखे । नासिका के अग्रभाग में सप्तम वर्ग के चतुर्थ वर्ण (= व) को चन्द्रबिम्ब की ज्योत्स्ना के जाल से व्याप्त बिन्दुयुक्त अर्थात् वं रूप में बिम्ब के मध्य में दोनों नेत्रों तथा मन से देखे । नासिका के बाहर बारह मात्रा से अर्थात् बारह बार गिनती करते हुए इडा नाडी को वायु से पूरित करे । इसके बाद पूर्व की भाँति स्फुरत ज्वाला से व्याप्त अग्नि का तथा अग्निमण्डल में स्थित बिन्दु संयुक्त रेफ (= रं) का ध्यान करे । तत्पश्चात् धीरे-धीरे पिङ्गला के द्वारा दक्षिण नासारन्ध्र से उस वायु को बाहर निकाले ॥ ८०९-८१८- ॥

पुनः पिङ्गलयापूर्य प्राणं दक्षिणतः सुधीः ॥ ८१९ ॥
तद्वत् विरेचयेत् पश्चात् इडया च शनैः शनैः ।
त्रिचतुर्वत्सरं यावत् त्रिचतुर्मासमेव वा ॥ ८२० ॥

षट्कृत्वश्चारभेदेवं (न) त्रिषु कालेषु यत्नतः ।
नाडीशुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिह्नोपलक्षितम् ॥ ८२१ ॥
शरीरलघुतादीप्तिर्जठराग्नेश्च वर्द्धनम् ।
नादाभिव्यक्तिरित्येतत् चिह्नं तत्सिद्धिसूचकम् ॥ ८२२ ॥
यावदेतानि संपश्येत्तावदेव समभ्यसेत् ।
अथवापानमार्गेण नद्यां सरसि वा जलम् ॥ ८२३ ॥
उत्तोलयेच्छनैः स्वल्पं स्वच्छं पिङ्गलया मुहुः ।
इडया वाथवा देवि पूर्णं स्याद् यावतोदरम् ॥ ८२४ ॥
आलोडयेज्जाठरीयदण्डाभ्यां वारसप्तकम् ।
घटिकार्द्धं स्थापयित्वा तत्तोयं पुनरुत्सृजेत् ॥ ८२५ ॥
एवं त्रिवारं कुर्वीत भोजनात् पूर्वमेव हि ।
षण्मासाच्छुद्धिमायान्ति तिस्रो नाड्यो वरानने ॥ ८२६ ॥

पुनः विद्वान् दक्षिण नासापुट से पिङ्गला नाडी के द्वारा प्राणवायु को पूरित कर पूर्व की भाँति इडा के द्वारा धीरे-धीरे वायु को बाहर निकाले । इस प्रकार तीन-चार वर्ष अथवा तीन-चार मास तक तीनों समय प्रयत्नपूर्वक छह-छह बार वायु सञ्चार के भेद से साधक पृथक्-पृथक् चिह्न से जानने योग्य नाडी शुद्धि को प्राप्त करता है । शरीर में हलकापन, कान्ति, जठराग्नि का बढ़ना एवं नाद की अभिव्यक्ति यह उस (= नाडीशुद्धि) की सिद्धि का सूचक है । जब तक इन लक्षणों को न देखे तब तक इसका अभ्यास करते जाना चाहिये । (जब ये लक्षण प्रकट हो जायँ तब इसके बादवाला अभ्यास करणीय होता है । नाडीशोधन का एक दूसरा उपाय है और वह क्लिष्ट है—) नदी अथवा तालाब में जाकर अपान मार्ग (अर्थात् गुदा या लिङ्ग) के द्वारा स्वल्प स्वच्छ जल को इडा या पिङ्गला के द्वारा अपने पेट में पूरी तरह भरे । फिर जाठरीय दण्डों के द्वारा उस जल को पेट में ही सात बार मथ डाले । आधा घटी अर्थात् १०-१५ मिनट तक पेट में ही उस जल को रोककर पुनः बाहर निकाल दे । भोजन करने से पहले इस क्रिया को तीन बार करे । हे वरानने! ऐसा करने से तीनों नाड़ियाँ छह महीने के बाद शुद्ध हो जाती हैं ॥ ८२०-८२६ ॥

[प्राणायामवर्णनम्]

प्राणायाममथेदानीं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ।
समाहितमना भूत्वा शृणु यत्नेन पार्वति ॥ ८२७ ॥
प्राणापानसमायोगः प्राणायामः प्रकीर्तितः ।
प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः ॥ ८२८ ॥
वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचकपूरककुम्भकाः ।
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः ॥ ८२९ ॥
यो वेदादौ स्वतः प्रोक्तो वेदान्तेषु प्रतिष्ठितः ।

तस्य प्रकृतिलीनस्य या परा सा महेश्वरी ॥ ८३० ॥
सृष्टिस्थित्यात्मकावेतौ मकारो ह्यन्तकः स्मृतः ।
अकारो मूर्तिरित्येषा रक्ताङ्गी हंसवाहिनी ॥ ८३१ ॥
अक्षहस्ता सती बाला गायत्रीत्यवधार्यते ।
अ(?उ)कारमूर्तिमध्यस्था युवतिः शुक्लविग्रहा ॥ ८३२ ॥
गरुत्मद्वाहिनी चापि वैष्णवी चक्रधारिणी ।
मकारमूर्तिशुक्लाङ्गी सावित्री वृषभस्थिता ॥ ८३३ ॥
त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गी सितभस्मविभूषिता ।
माहेश्वरीति सा प्रोक्ता पश्चिमान्तककारिणी ॥ ८३४ ॥
अक्षरत्रयमेतद्धि कारणत्रयमिष्यते ।
त्रयाणां कारणं ब्रह्म भासुरं सर्व्वकारणम् ॥ ८३५ ॥
ओंकारः प्रथमो ज्योतिः तमाहुः प्रणवं बुधाः ।
एवं ज्ञात्वा विधानेन प्रणवेन समन्वितम् ॥ ८३६ ॥
प्राणायामं त्रिधा कुर्यात् रेचकपूरककुम्भकैः ।

प्राणायाम का वर्णन—अब मैं प्राणायाम का वर्णन करूँगा । हे पार्वति! समाहितचित्त होकर प्रयत्न के साथ उसे सुनो । प्राण और अपान वायुओं का योग प्राणायाम कहा गया है । रेचक पूरक और कुम्भक भेद से (अर्थात् पहले कुम्भक फिर पूरक और अन्त में रेचक) प्राणायाम तीन प्रकार का कहा गया है । ये रेचक पूरक और कुम्भक तीन वर्ण (= अ उ म्) रूप हैं । इसी वर्णत्रय को प्रणव कहा गया है और प्राणायाम भी प्रणववाला अर्थात् उन्हीं वर्णोंवाला है । जो वेद के आदि में स्वयं उच्चरित हुआ और वेदान्तों अर्थात् उपनिषदों में प्रतिष्ठित हुआ; प्रकृति में लीन उस प्रणव की जो पराशक्ति है वह महेश्वरी है । ('अ' एवं 'उ') ये दोनों वर्ण सृष्टि और स्थिति के सूचक है । मकार संहारक माना गया है । अकारात्मक जो मूर्त्ति है वह रक्तवर्णवाली, हंस पर आरूढ, हाथ में अक्षमाला ली हुई बाला गायत्री मानी जाती है । उकार मूर्त्ति के मध्य में स्थित युवती शुक्लवर्ण वाली, गरुड़ पर आरूढ़, चक्रधारिणी वैष्णवी शक्ति है । मकार की मूर्त्ति शुक्ल अङ्गोंवाली सावित्री है जो महावृषभ पर आरूढ, हाथ में त्रिशूल खड्ग और खट्वाङ्ग ली हुई है । वह श्वेत भस्म से भूषित है । उसे महेश्वरी कहा गया है । वह संहार करनेवाली है । ये तीनों अक्षर (= अ उ म्) तीन कारणों का समूह कहा जाता है । इन तीनों का कारण ब्रह्म है । वह स्वयंज्योतिः और सबका कारण है । ओंकार प्रथम ज्योति है। विद्वान् लोग उसको प्रणव कहते हैं । इस प्रकार विधिपूर्वक जानकर प्रणव से युक्त रेचक पूरक एवं कुम्भक के द्वारा तीन प्रकार से प्राणायाम करना चाहिये ॥ ८२७-८३६- ॥

आकृष्य श्वसनं बाह्यात् पूरयेदिडयोदरम् ॥ ८३७ ॥

शनैः षोडशभिर्मात्रैरुकारं तत्र संस्मरन् ।
धारयेत् पूरितं पश्चात् चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ ८३८ ॥
उकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् प्रणवं जपेत् ।
यावद्वा शक्यते तावद् धारणं जपसंयुतम् ॥ ८३९ ॥
पूरितं रेचयेत् पश्चात् प्राणं बाह्यानिलान्वितम् ।
शनैः पिङ्गलया देवि द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः ॥ ८४० ॥
ध्यायन्नाद्याक्षरं नाभौ प्रणवस्य समाहितः ।
तदाकारं हृदि ध्यायन् मकारञ्च ललाटके ॥ ८४१ ॥
प्राणायामं भवेदेवं पुनश्चैनं समभ्यसेत् ।
पुनः पिङ्गलयापूर्य मात्राषोडशभिस्तदा ॥ ८४२ ॥
अकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् सुसमाहितः ।
पूरितं धारयेत् प्राणं पुनर्द्वात्रिंशतोर्द्वयोः ॥ ८४३ ॥
जपेत्तत्र स्मरन् मूर्तिं मकाराख्यं महेश्वरम् ।
यावद्वा शक्यते पश्चाद्रेचयेदिडयानिलम् ॥ ८४४ ॥
मकारमूर्तिमत्रापि संस्मरन् पूर्ववत् तथा ।
एवमेवं पुनः कुर्याद् द्वित्रयापूर्य पूर्ववत् ॥ ८४५ ॥
नित्यमेवं प्रकुर्वीत प्राणायामांश्च षोडश ।
अपि भ्रूणहननं मासात् पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ८४६ ॥
प्राणायामपराः सर्वे प्राणायामपरायणाः ।
प्राणायामैर्विशुद्धा ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ८४७ ॥
प्राणायामादृते नान्यत् तारकं नरकादपि ।
संसारार्णवमग्नानां तारकः प्राणसंयमः ॥ ८४८ ॥

(बायीं नाक से) इडा नाडी के द्वारा बाहर से वायु को खींचकर पेट में भरना चाहिये । श्वासाकर्षण के समय सोलह मात्रा तक धीरे-धीरे श्वास लेते हुए उकार का स्मरण करना चाहिये । फिर यहाँ भी उकार का स्मरण करते हुए चौंसठ मात्रा तक उस पूरित वायु को अन्दर ही रोकना चाहिये । यहाँ पर उकार मूर्त्ति का ध्यान करते हुए प्रणव का जप करना चाहिये । अथवा (यदि चौंसठ मात्रा तक श्वास को न रोक सके तो) जितनी देर तक रोक सके उतनी देर तक जप करते हुए श्वास का धारण करना चाहिये । हे देवि! उसके बाद अन्दर स्थित वायु स्वरूप प्राण को पिङ्गला के द्वारा धीरे-धीरे बत्तीस मात्रा तक के समय तक छोड़ना चाहिये । समाहित होकर प्रणव के आद्य अक्षर (= अ) का नाभि में ध्यान करने के बाद यहाँ भी उकार का हृदय में और मकार का ललाट में ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार एक प्राणायाम होता है । इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिये । (दूसरे क्रम में) पिङ्गला नाडी के द्वारा सोलह मात्रा से वायु का आपूरण करते हुये अकार मूर्त्ति का ध्यान करना

चाहिये । पूरित वायु को बत्तीस × दो = चौंसठ मात्रा तक धारण करना चाहिये और इस अन्तराल में मकार मूर्त्ति महेश्वर का स्मरण करना चाहिये । जितनी देर तक धारण कर सकें धारण करे । उसके पश्चात् इडा नाडी के द्वारा प्राणवायु को बाहर निकाले । इस समय भी पूर्व की भाँति मकार मूर्त्ति (महेश्वर) का स्मरण करना चाहिये । इस प्रकार दो-तीन बार वायु को उदर में आपूरित कर दो-तीन बार करना चाहिये । सोलह प्राणायाम नित्य करना चाहिये । जो लोग प्रतिदिन यह प्राणायाम करते हैं वे एक महीने के अभ्यास से भ्रूणहत्या (सदृश घोर पाप से मुक्त होकर) पवित्र हो जाते हैं । जो लोग प्राणायाम करते रहते हैं तथा प्राणायाम परायण हैं वे प्राणायामों से विशुद्ध होकर परम गति को प्राप्त होते हैं । प्राणायाम के विना दूसरा कोई (भी उपक्रम) नरक से मुक्ति दिलानेवाला नहीं है । प्राण का संयम अर्थात् प्राणायाम संसार-सागर में डूबे हुए लोगों को पार ले जानेवाला है ॥ ८३७-८४८ ॥

बाह्योदाहरणं वायोरुदरे पूरकं स्मृतम् ।
सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भकं भवेत् ॥ ८४९ ॥
बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचकोऽहि सः ।
प्रस्वेदं जनयेद् यस्तु प्राणायामेषु सोऽधमः ॥ ८५० ॥
मध्यमः कम्पनात् प्रोक्तं उत्थाने चोत्तमो भवेत् ।
पूर्वं पूर्वं प्रकुर्वीत यावदुत्थानसम्भवः ॥ ८५१ ॥
सम्भवत्युत्तमे देवि प्राणायामे सुखी भवेत् ।
प्राणो न याति तेनैव देहस्यान्ते ततोऽधिकः ॥ ८५२ ॥
देहश्चोत्तिष्ठते तेन कृतासनपरिग्रहः ।
निश्वासोच्छ्वासकौ तस्य न विद्येते कथञ्चन ॥ ८५३ ॥
देहे यद्यपि तौ स्यातां स्वाभाविकगुणावुभौ ।
तथापि नश्यतस्तेन प्राणायामोत्तमेन हि ॥ ८५४ ॥
तयोर्नाशे समर्थः स्यात् कर्तुं केवलकुम्भकम् ।
रेचनपूरके त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ॥ ८५५ ॥
प्राणायामोऽयमित्युक्तः सर्वैः केवलकुम्भकः ।
सहितं केवलं चाथ कुम्भकं नित्यमभ्यसेत् ॥ ८५६ ॥
यावत् केवलसिद्धिः स्यात्तावत् सहितमभ्यसेत् ।
केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ॥ ८५७ ॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

बाहर से वायु को उदर में ले आना पूरक माना गया है । पूर्ण रूप से भरे हुए घट की भाँति वायु को उदर में रोकना कुम्भक होता है । पेट में से वायु को बाहर निकालना रेचक होता है । जिस प्राणायाम को करने पर पसीना छूटने लगे वह अधम कोटि का प्राणायाम कहलाता है । जिससे शरीर में कम्पन्न होने लगे वह

मध्यम प्राणायाम है । शरीर का भूमि को छोड़कर ऊपर उठ जाना उत्तम प्राणायाम का लक्षण है । पूर्व-पूर्व अर्थात् अधम और मध्यम प्राणायाम को तब तक करते जाना चाहिये जब तक उत्थान न होने लगे । हे देवि! उत्तम प्राणायाम के होने पर साधक सुखी होता है । इस उत्तम प्राणायाम से प्राण देह के अन्त में उससे अधिक (अर्थात् बाहर) नहीं जाता वरन् देह में ही रहता है । इसके परिणामस्वरूप पद्म आदि आसन लगाया हुआ देह (भूमि को छोड़कर) ऊपर उठ जाता है । उस साधक के निःश्वास और उच्छ्वास किसी भी प्रकार नहीं होते (अर्थात् श्वास-प्रश्वास रुक जाते हैं) । यद्यपि देह में उन दोनों का होना (देह का) स्वाभाविक गुण है तथापि उत्तम प्राणायाम से वे दोनों (श्वास-प्रश्वास) नष्ट हो जाते हैं । उन दोनों के रुक जाने पर साधक केवल कुम्भक करने में समर्थ हो जाता है । रेचक और पूरक को छोड़कर सुखपूर्वक वायु का जो अन्दर धारण है, उसे सब लोग केवलकुम्भक कहते हैं । साधक को चाहिये कि वह (रेचक-पूरक के) सहित तथा केवलकुम्भक का प्रतिदिन अभ्यास करे । जब तक केवलकुम्भक की सिद्धि न हो तब तक सहितकुम्भक का अभ्यास करना चाहिये । रेचक-पूरक से रहित केवलकुम्भक के सिद्ध होने पर उसको तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥ ८४९-८५७- ॥

मनोजवत्वं लभते पलितादि विनश्यति ॥ ८५८ ॥
मुक्तेरयं महामार्गो साराख्योऽनन्तकारकः ।
नादश्चोत्पादयत्येष कुम्भकः प्राणसंयमः ॥ ८५९ ॥
प्राणसंयमनं नाम देहप्राणादिधारणम् ।
एष प्राणजयोपायः सर्वमृत्युनिवारणः ॥ ८६० ॥
किञ्चित् प्राणजयोपायं तव वक्ष्यामि पार्वति ।
बाह्यात् प्राणं समाकृष्य पूरयित्वोदरं स्थितः ॥ ८६१ ॥
अङ्गुष्ठं नाभिनासाग्रे धारणाद् विजयिष्यते ।
एवं वायुजयोपाय(:)शक्य आसनसंस्थितः ॥ ८६२ ॥
इन्द्रियाणि वशीकृत्य विषयेभ्यो बलात्सुधीः ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य बाह्यमायुर्विघातकम् ॥ ८६३ ॥
बह्निस्थानं निरुद्ध्यैतत् वायुं तत्रैव धारयेत् ।
हस्ताभ्यां बन्धयेत् सम्यक् कर्णादिकरणानि वा ॥ ८६४ ॥
अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां च चक्षुषी ।
नासाद्वयमथान्याभ्यां सम्यग्वै विनिबो(रो)धयेत् ॥ ८६५ ॥
सुखमुत्पद्यते नादः शुद्धस्फटिकसन्निभः ।
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां मृणालान्तरसूत्रवत् ॥ ८६६ ॥
आमूर्द्धं वर्तते नादो वीणादण्डवदुत्थितः ।
शङ्खध्वनिनिभस्यादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥ ८६७ ॥
व्योमरन्ध्रं गते नादे गिरिप्रस्रवणं तथा ।

साधक मन के समान वेगवाला हो जाता है । उसके शिर के सफेद बाल काले हो जाते हैं । यह प्राणायाम मुक्ति का महामार्ग है । सार नामक यह अमृतत्व देनेवाला है । यह कुम्भक प्राणायाम अनाहत नाद को स्फुट कर देता है । प्राण का संयमन देह एवं प्राण आदि का धारण अर्थात् उसका स्थिरीकरण है । यह प्राण को जीतने अर्थात् नियन्त्रित करने का उपाय तथा समस्त मृत्यु को दूर करनेवाला है । हे पार्वति! अब तुमको प्राणजय का कुछ उपाय बतलाऊँगा । बाहर से प्राणवायु को (शरीर के अन्दर) खींचकर पेट में भर लेना चाहिये । फिर अँगूठों को नाभि के नासाग्र (= नोक) पर धारण करने से अर्थात् अँगूठों से नाभि की नोक को दबाने से साधक प्राणजयी हो जाता है । इस प्रकार आसन को बाँधकर प्राणवायु पर विजय की जा सकती है । विद्वान् साधक विषयों (= रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द) से इन्द्रियों को विरक्तकर बलात् अपने वश में करने के बाद अपानवायु को ऊपर की ओर खींचे । यह अपानवायु जब बाहर जाता है तो आयु का क्षय करता है । अग्निस्थान को निरुद्ध कर वायु को वहीं पर रोकना चाहिये । दोनों हाथों से कान आदि इन्द्रियों को अच्छी तरह बन्द करना चाहिये । दोनों अँगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से दोनों आँखों को, अन्य अनामिका आदि से दोनों नासाछिद्रों को सम्यक्तया अवरुद्ध करना चाहिये । ऐसा करने पर शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ नाद आराम से ब्रह्मरन्ध्र एवं सुषुम्ना में उत्पन्न होता है । इसका स्वरूप कमलनाल के भीतर वर्त्तमान सूत्र के समान होता है । यह नाद (मूलाधार से) शिर तक वीणादण्ड के समान (सीधा) उठता है । प्रारम्भ में यह शङ्ख की ध्वनि के समान, मध्य में बादल के गर्जन के सदृश और अन्त में ब्रह्मरन्ध्र में जाने पर पहाड़ी झरने के समान शब्दवाला होता है ॥ ८५८-८६७- ॥

व्योमरन्ध्रं गते वायौ मनसा च सहेन्द्रियैः ॥ ८६८ ॥
तदा नादो भवेद्देहे वायुस्तेन जितो भवेत् ।
योगिनस्त्वपरे ये तु वदन्ति तमशब्दजम् ॥ ८६९ ॥
प्राणायामपराः पूताः रेचकपूरकवर्जिताः ।
दक्षिणेन च गुल्फेन सीवनीं पीडयेच्छिराम् ॥ ८७० ॥
अधस्तादण्डयोः सूक्ष्मां सव्योपरि च दक्षिणाम् ।
जंघोर्वोरन्तरे सम्यङ् निश्छिद्रं
बन्धये(द् दृढम्)दृतम् ॥ ८७१ ॥
समग्रीवशिरश्चक्षुः समपृष्ठः समोदरः ।
नेत्राभ्यां दक्षिणं गुल्फं संपश्यन्नुपरि स्थितम् ॥ ८७२ ॥
भावयन् मनसा सार्द्धं व्याहरन् प्रणवाक्षरम् ।
आसने नान्यधीरास्ते रहस्ये विजितेन्द्रियः ॥ ८७३ ॥
आयुर्विघातकः प्राणस्त्वनेनाग्निस्थलं गतः ।

वायुस्तिष्ठति तत्रैव वह्निना सह निश्चितम् ॥ ८७४ ॥
धूमध्वजजयं यावन्नान्यधीरेवमभ्यसेत् ।
स्वाहाप्रियेण तत्प्राणं शनैरावाहयेत्ततः ॥ ८७५ ॥
नेत्राभ्यां लोकयन्नाभिं मनसा प्रणवं जपन् ।
तिष्ठत्यस्मिन् गतप्राणो मन्दं नाभेरध:स्थितम् ॥ ८७६ ॥
एतेन नाभिमध्यस्थधारणेनैव यावतः ।
कुण्डलीं याति वह्निश्च दहत्यत्र न संशयः ॥ ८७७ ॥

यह नाद जब मन तथा इन्द्रियों के साथ ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तब वहाँ से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है और तब इस प्रसरण से वायु अपने वश में हो जाता है । अन्य योगी लोग इस प्राणजय को शब्द से उत्पन्न नहीं मानते । ये योगी रेचक एवं पूरक से रहित, प्राणायाम में लगे रहते हैं । (इस प्रक्रिया में साधक को चाहिये कि वह) दायें गुल्फ से सीवनी के शिर को दबाये । दोनों अण्डों के नीचे (बायें गुल्फ से सीवनी को दबाकर) उसके ऊपर दक्षिण गुल्फ को रखे । दोनों जाँघों और उरुओं के बीच के स्थान को छिद्ररहित तथा दृढ़ रखे । ग्रीवा शिर और नेत्र को सीधा रखे । पीठ एवं पेट को बराबर रखे । दोनों नेत्रों से सीवनी के ऊपर रखे गये दक्षिण गुल्फ को देखता हुआ साधक (प्राणजय की) भावना करते हुए मन से प्रणवाक्षर का उच्चारण करते हुए एकचित्त होकर इन्द्रियों को वश में रखते हुए एकान्त में बैठा रहे । आयु का विघातक प्राण इस अभ्यास से अग्निस्थल को चला जाता है एवं वायु वहाँ पर अग्नि के साथ निश्चित रूप से ठहरता है । जब तक अग्नि पर विजय न हो जाय तब एकचित्त होकर इसी प्रकार अभ्यास करता जाय । इसके बाद प्राणवायु का स्वाहाप्रिय अर्थात् अग्नि के साथ आवाहन करे । नेत्रों से नाभि को देखता हुआ मन से प्रणव का जप करता हुआ साधक प्राणरहित अर्थात् मन्द श्वासयुक्त होकर धीरे-धीरे नाभि के नीचे प्राण को ले जाता है । प्राण के (अग्नि के साथ) नाभि मध्य में धारण करने से वह कुण्डलिनी के पास पहुँच जाता है और अग्नि वहाँ ताप उत्पन्न करता है ॥ ८६८-८७७ ॥

ततः स वह्निना नागप्रबोधो(नागः प्रबोधं)
याति वायुना ।
प्रबुद्धे संसरत्यस्मिन् वायुमारोहयेत्ततः ॥ ८७८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां ध्यायन्नोंकारमक्षरम् ।
शनैरारोहयेन्मूर्ध्नि साग्निं वायुमनन्यधीः ॥ ८७९ ॥
धारयेद् व्योम्नि देवेशि साग्निं प्राणं समाहितः ।
तेनैव पूरिते व्योम्नि साङ्गोपाङ्गे कलेवरे ॥ ८८० ॥
तदात्मा राजते तत्र यथा व्योम्नि दिवाकरः ।
शरीरं च सुसूक्ष्मं स्यादेवं ध्यानं समाधिवत् ॥ ८८१ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म ध्यायन् परममीश्वरम् ।
संयोज्य मनसा मूर्ध्नि ब्रह्मरन्ध्रं स वायुना ॥ ८८२ ॥
प्राणमुल्लोचयेत् पश्चात् महाप्राणेऽथ मध्यमे ।
देहादतीते जगति शून्ये नित्ये ध्रुवे पदे ॥ ८८३ ॥
आकाशे परमानन्द आत्मानं योजयेद् द्विषा ।
ब्रह्मैवासौ भवेद्देवि न पुनर्जन्मभागभवेत् ॥ ८८४ ॥
उक्तान्येतानि चत्वारि योगाङ्गानि सुरेश्वरि ।
प्रत्याहाराणि चत्वारि शृणुष्वाभ्यन्तराणि च ॥ ८८५ ॥

इसके पश्चात् वह सर्प के समान कुण्डलिनी वह्नि एवं वायु के द्वारा उद्‌बुद्ध हो जाती है । जब यह कुण्डलिनी प्रबुद्ध हो जाय तब वायु को ऊपर उठाना चाहिये । इसके बाद सुषुम्ना तथा ब्रह्मरन्ध्र में अक्षर ओंकार का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे अग्नि के सहित उस वायु को एकचित्त होकर शिर पर आरूढ कराना चाहिये । हे देवेशि! इस प्रकार साधक समाहित होकर अग्नि के साथ प्राण को व्योम अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर रोक दे । उस वायु के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र एवं पूरे शरीर के आपूरित होने पर आत्मा उस ब्रह्मरन्ध्र में उसी प्रकार शोभायमान होता है जैसे आकाश में सूर्य। शरीर सूक्ष्म अर्थात् हलका और ध्यान समाधियुक्त हो जाता है । परम ईश्वर रूप एकाक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हुए शिर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र को मन से संयुक्तकर प्राण को वायु के द्वारा ऊपर की ओर ले जाना चाहिये । उसके पश्चात् आत्मा को महाप्राण में फिर मध्यम अर्थात् (हृदय में ?) पुन: द्विषा अर्थात् दूसरी बार देहातीत संसार में शून्य नित्य ध्रुवपद परमानन्द स्वरूप आकाश में जोड़ना चाहिये । हे देवि! ऐसा करने पर यह साधक ब्रह्म ही हो जाता है और पुनर्जन्म का भागी नहीं होता । हे सुरेश्वरि! ये चार योगाङ्ग (= यम नियम आसन और प्राणायाम) कहे गये । अब आभ्यन्तर चार प्रत्याहारों को सुनो ॥ ८७८-८८५ ॥

[प्रत्याहारविधिवर्णनम्]

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावत: ।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहार: स उच्यते ॥ ८८६ ॥
यद्वत् पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि ।
प्रत्याहार: स च प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभि: ॥ ८८७ ॥
कर्माणि यानि नित्यानि विहितानि शरीरिणाम्।
तेषामात्मन्यनुष्ठानं मनसा यद् बहिर्विना ॥ ८८८ ॥
प्रत्याहारो भवेत्सोऽपि योगसाधन उत्तम: ।
प्रत्याहारे प्रशस्तं तत् सेवितं योगिभि: सदा ॥ ८८९ ॥
अष्टादशस्वथो वायोर्मध्यस्थानेषु धारणम् ।
स्थानात् स्थानात् समाकृष्य प्रत्याहार: स चोत्तम: ॥ ८९० ॥

पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च जंघामध्ये तथैव च ।
जिह्वामूले च जानौ च मध्ये चोरुद्वयस्य च ॥ ८९१ ॥
पायुमूलं च तत्पश्चात् मध्यदेशश्च मेढ्रयोः ।
नाभिश्च हृदयश्चैव कण्ठकूर्परस्तथैव च ॥ ८९२ ॥
तालुमूलं च नासाग्रं मूलं चाक्ष्णोश्च मध्यमौ ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च मूर्द्धा च त्रिदशेश्वरि ॥ ८९३ ॥
मर्मस्थानानि चैतानि मानश्चैषां पृथक् पृथक् ।
पादाङ्गुष्ठात्तु नालस्य पृथङ्नालं न विद्यते ॥ ८९४ ॥
पादाङ्गुष्ठात्तु गुल्फस्य सार्द्धाङ्गुलचतुष्टयम् ।
गुल्फाज्जंघाप्रमाणं तु विज्ञेयं तु दशाङ्गुलम् ॥ ८९५ ॥
जंघामूलार्चिते(च्चिते)र्मूलं यत्तदेकादशाङ्गुलम् ।
चितिमूलान्महाभागे जानुः स्यादङ्गुलद्वयम् ॥ ८९६ ॥
जानोर्द्विरङ्गुलं प्राहुरुरुमूलं तनूविदः ।
ऊरुमध्यात्तथा देवि पादमूलं तथाङ्गुलम् ॥ ८९७ ॥

प्रत्याहारविधि का वर्णन—अपने-अपने विषयों में स्वभावत: विचरण करनेवाली इन्द्रियों का बलपूर्वक आहरण (= विषयों से विमुख करना) प्रत्याहार कहा जाता है । जिस प्रकार (समस्त संसार को योगी बाह्य स्थित देखता है उसी प्रकार) उस समस्त संसार को अपने में आत्मा की भाँति देखने को योगवेत्ता महात्माओं ने प्रत्याहार कहा है । (शास्त्रों में) शरीरधारियों के लिये जो नित्यकर्म विहित हैं, बाह्य उपकरणों के विना उनका मन के द्वारा अपने अन्दर अनुष्ठान करना भी प्रत्याहार है जो कि योग का उत्तम साधन है । यह प्रत्याहार के क्रम में प्रशस्त है और सदा योगियों के द्वारा अभ्यास में लाया गया है । एक-एक स्थान से खींचकर प्राणवायु का (शरीर के) अट्ठारह मध्य स्थानों में धारण भी प्रत्याहार कहा गया है । (अट्ठारह स्थानों के नाम निम्नलिखित हैं—) (१) दोनों पैर के अँगुष्ठ, (२) दोनों गुल्फ, (३) जंघाओं के मध्य, (४) जिह्वामूल, (५) जानु, (६) दोनों उरु का मध्य, (७) पायुमूल, (८) मेढ्रों का मध्य-देश, (९) नाभि, (१०) हृदय, (११) कण्ठकूर्पर, (१२) तालुमूल, (१३) नासाग्र, (१४) नासामूल, (१५) आँखों का मध्य, (१६) भौंहों का मध्य, (१७) ललाट और (१८) मूर्धा । हे त्रिदशेश्वरि! ये (प्राणवायु के धारण के) मर्मस्थान हैं । इनका मान पृथक्-पृथक् है । पादाङ्गुष्ठ के नाल से पृथक् नाल नहीं है । पैर के अँगूठे से गुल्फ तक साढ़े चार अँगुल, गुल्फ से जंघा तक का प्रमाण दश अँगुल है । जंघा मूल से जो चिति का मूल है वहाँ तक का मान ग्यारह अँगुल का है । हे महाभागे! चिति के मूल से जानु तक दो अँगुल, शरीरविज्ञानी जानु से उरु मूल तक दो अँगुल मान मानते हैं । हे देवि! उरुमध्य से पादमूल तक का मान एक अँगुल है ॥ ८८६-८९७ ॥

देहमध्यात्तथा पायुमूलं सार्द्धाङ्गुलद्वयम् ।
मेढ्रान्नाभिश्च विज्ञेयं तथा सार्द्धं दशाङ्गुलम् ॥ ८९८ ॥
नेत्रस्थानं तु तन्मूलादूर्ध्वाङ्गुलमपीष्यते ।
तस्माद्‌र्धाङ्गुलं विद्धि भ्रुवोरन्तरमात्मनः ॥ ८९९ ॥
ललाटाक्षं भ्रुवोर्मध्यादूर्ध्वं स्यादङ्गुलत्रयम् ।
ललाटाद् व्योमसंज्ञं तु अङ्गुलद्वयमेव हि ॥ ९०० ॥
स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् ।
स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारविधिर्मतः ॥ ९०१ ॥
य एवं कुरुते विद्वान् यथायोगं यथाविधि ।
स याति ब्रह्मसदनं पुनर्नावर्तते यतः ॥ ९०२ ॥

देह के मध्य से पायुमूल तक ढाई अँगुल मान है । मेढ्र से नाभि तक साढ़े दश अँगुल का मान समझना चाहिये । उस (= नाभि) के मूल से नेत्रस्थान एक अँगुल ऊपर अर्थात् साढ़े दश + एक = साढे ग्यारह अँगुल माना जाता है । दोनों भौंहों का मध्य उससे आधा अँगुल मानवाला होता है । ललाटाक्ष भौंहों के मध्य से तीन अँगुल ऊपर है । ललाट से व्योम अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र दो अँगुल ऊपर है । इन स्थानों में मन के द्वारा वायु का एक स्थान से दूसरे स्थान में आकर्षण कर उसे धारण करना चाहिये । यह प्रत्याहार-विधि मानी गयी है । जो विद्वान् इस योग को यथायोग और यथाविधि करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है जहाँ से फिर नहीं लौटता ॥ ८९८-९०२ ॥

[पञ्चधारणावर्णनम्]

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि धारणापञ्चकं शिवे ।
समाहितमना भूत्वा शृणु यत्नेन सादरा ॥ ९०३ ॥
यमादिगुणसंयुक्ता मनसः स्थितिरात्मनि ।
धारणा प्रोच्यते विज्ञैर्योगशास्त्रार्थवेदिभिः ॥ ९०४ ॥
हृदये उदराकाशे यद्बाह्याकाशधारणम् ।
एषा हि धारणा प्रोक्ता तथैवाकाशगो भवेत् ॥ ९०५ ॥
भूमिरापोऽथानु तेजो वायुराकाशमेव च ।
एतेषु पशुवर्णानां धारणं धारणा मता ॥ ९०६ ॥
तेष्वेव पशुवर्णानां धारणाश्चापि धारणा ।
पादादि जानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते ॥ ९०७ ॥
आजानु वा(पा)युपर्यन्तं मया(पां)
स्थानं प्रकीर्त्तितम् ।
आपायोर्हृदयं यावत् वह्निस्थानं सुरेश्वरि ॥ ९०८ ॥

आहृन्मध्याद् भ्रुवोर्मध्ये यावद् वायुस्थलं भवेत् ।
आभ्रूमध्यात्तु मूर्द्धान्तं यावदाकाशमुच्यते ॥ १०९ ॥
एतेषां प्रथमे स्थाने लकारं धारयेद् बुधः ।
वकारं धारयेदप्सु रेफं वह्नौ च धारयेत् ॥ ११० ॥
यकारं धारयेद् वायौ हकारं व्योम्नि धारयेत् ।
पृथिव्यां धारयेद्देवि ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ १११ ॥
विष्णुमप्स्वनले रुद्रं महत्तत्त्वं तु मारुते ।
आकाशे धारयेच्चैवमव्यक्तं परमेश्वरम् ॥ ११२ ॥

पाँच धारणाओं का वर्णन—हे शिवे! इसके बाद अब मैं पाँच धारणाओं का वर्णन करूँगा । समाहित चित्तवाली होकर तुम आदर के साथ यत्नपूर्वक सुनो । (१) योगशास्त्र को जाननेवाले विद्वान् मन की यम आदि गुणों से युक्त स्थिति को धारणा कहते हैं । (२) हृदयाकाश तथा उदराकाश में जो बाह्य आकाश का धारण वह भी धारणा कही गयी है । (इससे साधक) आकाशचारी हो जाता है । (३) भूमि जल तेज वायु और आकाश इनमें पशुवर्णों (आदिक्षान्त जड़ वर्णों?) का धारण धारणा कही गयी है । (४) उन्हीं में (= पशुवर्णों में ही चेतन) पशुवर्णों की धारणायें भी धारणा मानी गयी हैं । पैर से लेकर घुटने तक पृथ्वी-स्थान कहा जाता है । घुटने से लेकर पायु तक जल का स्थान कहा गया है । हे सुरेश्वरि! पायु से हृदय तक अग्नि का स्थान होता है । हृदय के मध्य से भौंहों के मध्य तक वायुस्थल माना जाता है । भ्रूमध्य से मूर्धा तक आकाश कहा जाता है । इनमें से प्रथम स्थान अर्थात् पृथ्वी स्थान में विद्वान् लकार की धारणा करे । जल में वकार, अग्नि में रेफ, वायु में यकार और आकाश में हकार की धारणा करनी चाहिये । हे देवि! पृथिवी में परमेष्ठी ब्रह्मा की धारणा करनी चाहिये । जल में विष्णु, तेज में रुद्र, वायु में महत्तत्त्व और आकाश में अव्यक्त परमेश्वर तत्त्व को धारण करना चाहिये ॥ १०३-११२ ॥

नीत्वा वायुं पृथिव्यां तु वर्णदेवसमन्वितम् ।
धारयेत् पञ्च घटिकाः पृथिव्या जयमाप्नुयात् ॥ ११३ ॥
यथोक्तवर्णदेवेशं संयोज्य वायुमप्सु च ।
धारयेत् पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥ ११४ ॥
पूर्ववद्व(?धा)रणे वह्नेर्वह्निनासौ न दह्यते ।
मारुतं मारुतस्थाने वर्णदेवसमन्वितम् ॥ ११५ ॥
धारयेत् पञ्च घटिकाः वायुवद्व्योमगो भवेत् ।
आकाशे वायुमारोप्य वर्णदेवसमन्वितम् ॥ ११६ ॥
धारयेत् पञ्चघटिका जीवन्मुक्तो भवेत् प्रिये ।
अल्पमूत्रपुरीषः स्यादर्वागेव तु वत्सरात् ॥ ११७ ॥

आसनाच्छयनाद्वापि न योगो लय एव सः(?)।
धारणं यदिदं वायोः स्थानेष्वेतेषु पञ्चसु ॥ ९१८ ॥
पञ्चमी धारणेयं स्याज्जन्ममृत्युविनाशिनी ।

यदि कोई साधक वर्ण के देवता से युक्त वायु को पृथिवी में ले जाकर पाँच घड़ी (= २ घण्टा) रोके तो वह पृथिवी के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है । पूर्व की भाँति (अर्थात् वायु वर्ण के देवता से युक्त) वायु को जल में पाँच घड़ी तक धारण करने से (साधक) समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है । पूर्व की भाँति वह्नि को धारण करने से वह अग्नि के द्वारा जलाया नहीं जा सकता । वायु को वायु के स्थान (वायु) वर्ण के देवता से युक्त कर धारण करने से साधक वायु की भाँति आकाशगामी हो जाता है । उसी प्रकार आकाश में वर्णदेवसमन्वित वायु को आरोपित कर पाँच घड़ी धारण करने से हे प्रिये! साधक जीवन्मुक्त हो जाता है । ऐसा करने से एक वर्ष के पहले वह अल्पमूत्र और अल्पमलवाला हो जाता है । बैठकर या सोकर (प्राणरोध करने) से यह योग नहीं होता बल्कि लय होता है (?) वायु का इन स्थानों में जो धारण है इनमें से पाँचवीं धारणा जन्म-मृत्यु का नाश करनेवाली है ॥ ९१३-९१८- ॥

[ध्यानवर्णनम्]

ध्यानं सम्प्रति वक्ष्यामि शृणु देवि समाहिता ॥ ९१९ ॥
ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
मर्मस्थानानि नाडीनां संस्थानं तु पृथक् पृथक्॥ ९२० ॥
वायूनां स्थानकर्माणि विदित्त्वा ध्यानमाचरेत् ।
ध्यान(नं)वायुस्वरूपाणां वेदनं मनसा भवेत् ॥ ९२१ ॥
तदेवं निखिलं वक्ष्ये भुवि त्रिदशवन्दिते ।
तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा ॥ ९२२ ॥
सगुणं पञ्चधा प्रोक्तं निर्गुणं चैकमेव हि ।
एकं ज्योतिर्मयं शुद्धं सर्वगं व्योमवद् दृढम् ॥ ९२३ ॥
अत्यन्तनिर्मलं स्वच्छमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
अस्थूलसूक्ष्मानाकाशास्पृश्यादृश्यमचाक्षुषम् ॥ ९२४ ॥
अरसं न च गन्धाढ्यमप्रमेयमजं विभुम् ।
आनन्दमजरं नित्यं सदसत् सर्वकारणम् ॥ ९२५ ॥
सर्वाधारं जगद्रूपममृत्युमजमव्ययम् ।
अदृश्यं दृश्यमानस्थं वह्निस्थं सर्वतोमुखम् ॥ ९२६ ॥
सर्वदृक् सर्वतः पादं सर्वस्पृक् सर्वतोमुखम् ।
ब्रह्म ब्रह्ममयोऽहं स्यामिति यद्वेदनं भवेत् ॥ ९२७ ॥
तदैव निर्गुणध्यानं सामान्यं परिकीर्तितम् ।

ध्यान का वर्णन—अब मैं ध्यान का वर्णन करूँगा । हे देवि! समाहित होकर सुनो । ध्यान ही जीवों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है । नाड़ियों के मर्मस्थानों—उनके पृथक्-पृथक् संस्थानों और वायुओं के स्थानों एवं कर्मों को जानकर ध्यान करना चाहिये । वायु के स्वरूपों का ध्यान और उनका वेदन अर्थात् अनुभव मन से होता है । हे पृथिवी पर त्रिदशवन्दिते! मैं उसको सम्पूर्णतया बतलाऊँगा । वह ध्यान दो प्रकार का कहा गया है—सगुण और निर्गुण । पुन: सगुण पाँच प्रकार का कहा गया है और निर्गुण एक प्रकार का ही है । एक, ज्योतिर्मय, शुद्ध, व्योम के समान सर्वव्यापी, दृढ, अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ, आदि मध्य और अन्त से रहित, अस्थूल, असूक्ष्म, अनाकाश (= अशब्द), अस्पृश्य, अदृश्य, अचाक्षुष, अरस, निर्गन्ध, अप्रमेय, अज, विभु, आनन्द, अजर, नित्य, सत्-असत् स्वरूप, सर्वकारण, सर्वाधार, जगद्रूप, मृत्युरहित, अज, अनश्वर, अदृश्य, दृश्यमान में स्थित, वह्नि में वर्त्तमान, सर्वत्र फैला हुआ, सर्वद्रष्टा, सबका पादरूप, सबका स्पर्श करनेवाला, सब ओर मुखवाला, ब्रह्म मैं ही ब्रह्ममय हूँ ऐसा जो वेदन होता है वही सामान्य निर्गुण ध्यान कहा गया है ॥ ११९-१२७- ॥

विशेषमधुना वच्मि निर्गुणस्यापि पार्वति ॥ १२८ ॥
एकां ज्योतिर्मयीं नित्यां सर्वगां व्योमरूपिणीम् ।
अत्यन्तनिर्मलां शुद्धामादिमध्यान्तवर्जिताम् ॥ १२९ ॥
अतिसूक्ष्मामनाकाशामस्पृश्यां तामचाक्षुषीम् ।
कूटस्थामप्यदृश्यां च सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥ १३० ॥
अगन्धामरसां स्वच्छामप्रमेयामनूपमाम् ।
आनन्दामजरां शुक्लां सदसत्सर्वकारिणीम् ॥ १३१ ॥
सर्वाधारां जगद्रूपाममृत्युं चाव्ययामजाम् ।
अनवस्थामप्रतर्क्यां वह्निस्थां सर्गधारिणीम् ॥ १३२ ॥
सर्वदृक् सर्वत: पादां सर्वस्पृक् सर्वत: शिराम् ।
निरञ्जनां निर्विकारां शुद्धचैतन्यरूपिणीम् ॥ १३३ ॥
कुलाकुलसमुद्भूताममृतानन्दसञ्चयाम् ।
सूर्यकोटिसमं शुभ्रां नादबीजतया स्थिताम् ॥ १३४ ॥
सर्वावभासनकरीं सर्वतेजोऽभिभाविकाम् ।
ईदृग्विधां गुह्यकालीं निराकारां विभावयेत् ॥ १३५ ॥

हे पार्वति! अब मैं निर्गुण का विशेष भी बतला रहा हूँ । एक ज्योतिर्मयी, नित्या, सर्वगामिनी, व्योमरूपिणी, अत्यन्त निर्मल, शुद्ध, आदिमध्यान्तरहित, अतिसूक्ष्म, अनवकाश, अस्पृश्य, अचाक्षुषी, कूटस्थ, अदृश्य, सच्चिदानन्दरूपवाली, अगन्धा, अरसा, स्वच्छ, अप्रमेय, अनूपम, आनन्दरूपिणी, अजर, शुक्ल, सत्-असत् सबकी निर्मात्री, सबका आधार, जगद्रूपा, मृत्युरहित, अव्यया, अजा,

अनवस्था, अप्रतर्क्या, वह्निस्थ, सर्गधारिणी, सर्वद्रष्ट्री, सर्वपादा, सबका स्पर्श करनेवाली, सर्वत्र शिरवाली, निरञ्जन, निर्विकार, शुद्ध चैतन्यरूपिणी, कुल और अकुल की जनयित्री अमर्त्त्य, आनन्दसमूहरूपा, करोड़ों सूर्य के समान, शुभ्र, अनाहत नाद के बीज के रूप में स्थित, सबका अवभासन करनेवाली, समस्त तेजों को अभिभूत करनेवाली—इस प्रकार की निराकारा गुह्यकाली का ध्यान करना चाहिये ॥ ९२८-९३५ ॥

सगुणध्यानमधुना ब्रवीमि तव पार्वति ।
हृत्पद्मेऽष्टदलोपेतकन्दमूलसमुत्थिते ॥ ९३६ ॥
द्वादशाङ्गुलनालेऽस्मिंश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते ।
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ॥ ९३७ ॥
हृत्सरोरुहमध्येऽत्र प्रकृत्यात्मिककर्णिके ।
अष्टैश्वर्यदलोपेते विद्याकेशरमण्डिते ॥ ९३८ ॥
ज्ञाननाले महाकन्दे प्राणायामप्रबोधिते ।
दशवक्त्रां गुह्यकालीं त्रिगुणात्मकविग्रहाम् ॥ ९३९ ॥
भयङ्करां जगद्योनिं ललज्जिह्वां करालिनीम् ।
भासयन्तीं स्वकं देहमापादतलमस्तकम् ॥ ९४० ॥
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयोगिनीगणैः ।
भैरवीभिः परिवृतां ज्वलत्पितृवनस्थिताम् ॥ ९४१ ॥
ज्वालाकरालवहलचितामध्यकरस्थिताम् ।
शवाकारशिवारूढां विमुक्तचिकुरोच्चयाम् ॥ ९४२ ॥
निष्क्रान्तरसनाविद्युत्प्रकम्पितजगत्त्रयाम् ।
दन्तमण्डलनिर्गच्छच्चारुचन्द्रिकया तया ॥ ९४३ ॥
द्योतयन्ती जगत्सर्वं चन्द्रमण्डलवत्सदा ।
तुङ्गपीवरवक्षोजभरनम्रकलेवराम् ॥ ९४४ ॥
प्रत्यालीढ़पदां देवीमट्टहासभयानकाम् ।
परिवारैः समीपस्थैरतीव विकरालिनाम् ॥ ९४५ ॥
नृमुण्डमालासन्दोहकृतमालावगुण्ठिताम् ।
सद्यः कृत्तनृमुण्डाभ्यां कुण्डलद्वयशोभिनीम् ॥ ९४६ ॥
कठोरपीवरां नीलचतुःपञ्चाशदोर्युताम् ।
नरान्त्रविहिताबद्धयोगपट्टपरिच्छदाम् ॥ ९४७ ॥
दिगम्बरां खर्वतनुं हसन्तीं कामलालसाम् ।
संवर्तकालज्वलनदुर्निरीक्ष्यतनुप्रभाम् ॥ ९४८ ॥
रत्नमालादिगोमायुपोतान्तान् दोःषु बिभ्रतीम् ।

कल्पान्तघोरमार्तण्डकोटिस्तम्भनकारिणीम् ॥ १४९ ॥
निर्वातदीपवत्तस्मिन् दीपितां
देव्यवाहने (?हव्यवाहने) ।
ततस्तस्य शिखामध्ये तिष्ठन्तीं जगदम्बिकाम् ॥ १५० ॥
विश्वार्चिषं ज्वलद्वह्निं वमन्तीं विश्वतो मुखम् ।
वैश्वानरीं जगद्योनिं शिखानीलां महेश्वरीम् ॥ १५१ ॥
नीलतोयदलोकाभ्यां विद्युल्लेखेव भासुराम् ।
नीवारशूकवत्तन्वीं ज्ञानमात्रैकगोचराम् ॥ १५२ ॥
ध्यात्वेत्थं कालिकां देवीं
सोऽहम(?साऽहम)स्मीति या मतिः ।
सगुणं चोत्तमं ह्येतद्ध्यानं योगविदो विदुः ॥ १५३ ॥

हे पार्वति! अब तुमको मैं सगुण ध्यान बतला रहा हूँ । कन्द के मूल से निकले हुए, बारह अँगुल नालवाले, चार अँगुल ऊँचे, प्राणायाम के द्वारा विकसित, केशर से युक्त कर्णिकावाले, आठ दलोंवाले तथा विद्याकेशर से मण्डित, ज्ञान नालवाले, महाकन्दयुक्त, प्राणायाम से प्रबोधित अष्टैश्वर्य दलोंवाले कमलों पर दशमुखोंवाली गुह्यकाली का ध्यान करना चाहिये । यह काली त्रिगुणयुक्त शरीरवाली, भयङ्कर, संसार की कारणभूता, लपलपाती जिह्वावाली, विकराल, पैर से शिर तक अपने देह को भासित करनेवाली, भूतप्रेत पिशाच आदि तथा डाकिनी योगिनी समूहों एवं भैरवियों से परिवृत, जलते हुए श्मशान में स्थित, शवाकार शिव पर आरूढ, खुले बालोंवाली, मुँह के बाहर निकली हुई जिह्वारूप विद्युत् के द्वारा तीनों लोकों को कँपानेवाली, दाँतों से निकल रही चारुचन्द्रिका से सर्वदा चन्द्रमण्डल की भाँति सम्पूर्ण संसार को चमत्कृत करती हुई, ऊँचे तथा चौड़े स्तनों के भार से झुकी हुई शरीरवाली, एक पैर को आगे बढ़ाई हुई, अट्टहास के कारण भयानक, समीपस्थ परिवारों से अत्यन्त विकराल, नरमुण्ड की माला के समूह से बनी हुई माला से अवगुण्ठित, तत्काल काटे गये दो नरमुण्डों के दो कुण्डल से सुशोभित, कठोर और मोटी पूर्ण नील वर्ण की चौवन भुजाओं से युक्त, मनुष्यों की आँतों से बने योगपट्ट से परिच्छद को बाँधी हुई, नग्न, बौने शरीरवाली, हँसती हुई, कामक्रीडा की लालसावाली, संवर्त्तकालाग्नि के समान दुर्निरीक्ष्य शरीरवाली, भुजाओं में (नीलमणि स्फटिक आदि) रत्नों से निर्मित माला आदि, शृगाल के बच्चों को हाथों से पकड़ी हुई, कल्पान्त में भयानक करोड़ों सूर्य को स्तम्भित करनेवाली, उन कोटि सूर्यसमूह में, निर्वात अर्थात् बन्द हवा के समय जलनेवाले दीप के समान दीपित अग्नि की शिखा के मध्य स्थित, संसार की माता चारो ओर सम्पूर्ण ज्वाला से जलती हुई अग्नि का वमन करती हुई, वैश्वानरी, जगत् का कारणभूत, नील शिखावाली, महेश्वरी, नीले बादलों के समान दो लोकों से विद्युत्

लेखा के समान दीपित, नीवार के शूक (= बाली के टूंड़े) के समान पतली शरीरवाली, केवल ज्ञान से ज्ञेय है । इस प्रकार की काली देवी का ध्यान करने के बाद 'मैं वही हूँ' ऐसी जो बुद्धि उत्पन्न होती है योगवेत्ता लोग इसको उत्तम सगुण ध्यान कहते हैं ॥ ९३६-९५३ ॥

[ध्यानस्य फलश्रुतिः]

तन्मयं स्वं समासाद्य मुक्तिं तेनैव गच्छति ।
भ्रुवोर्मध्ये तथात्मानं ज्वलद्रूपिणमीश्वरम् ॥ ९५४ ॥
ध्यायन्नात्मानमत्रैव समाधिं समवाप्नुयात् ।
आदित्यमण्डले देवीं हिरणमयतनुं शिवाम् ॥ ९५५ ॥
ध्यायन् कैवल्यमाप्नोति जन्ममृत्यू परित्यजेत् ।
अष्टाङ्गात्मकमेतद्धि पवित्रं पापनाशनम् ॥ ९५६ ॥
ध्यानं गुह्यतमं पुण्यं कीर्तितं ते सुरेश्वरि ।
ज्ञानेनैव सहैतेन नित्यकर्माणि कुर्वतः ॥ ९५७ ॥
निवृत्तिफलसङ्कल्पान्मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
इदं यश्च पठेन्नित्यं योगाख्यानमनन्यधीः ॥ ९५८ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः कैवल्यमधिगच्छति ।
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ ९५९ ॥
एकजन्मकृतं पापं दिनेनैकेन नश्यति ।
शृणुयाद् यः सकृद् वापि पुण्याख्यानमिदं परम् ॥ ९६० ॥
अज्ञानजनितं पापं सद्यस्तस्य विनश्यति ।
योगाख्यानमिदं पुण्यं ज्ञानाख्यानमिदं परम् ॥ ९६१ ॥
सम्यग् विचारयेद् यस्तु स हि सर्वज्ञतामियात् ।
अनुतिष्ठन्ति ये नित्यमेतज्ज्ञानसमन्विताः ॥ ९६२ ॥
नित्यकर्माणि तान् दृष्ट्वा देवा अपि नमन्ति हि ।
तस्माद् योगेन सहितं नित्यकर्म यथाविधि ॥ ९६३ ॥
कर्तव्यं देहिना देवि मुक्तये भवभीरुणा ।
न केवलेन ज्ञानेन नापि योगेन लभ्यते ॥ ९६४ ॥
कैवल्यं किन्तु युक्तेन सद्यो वै नित्यकर्मणा ।
विज्ञायेत्थं परं तत्त्वं कर्म योगान्वितं चरेत् ॥ ९६५ ॥

ध्यान का फल—अपने को तन्मय बनाकर उस तन्मयत्व से साधक मुक्ति को प्राप्त हो जाता है । दोनों भौंहों के मध्य अपने को उस प्रकार (= ऊपर वर्णित काली स्वरूप) ध्यान कर तथा यहीं पर अपने को जलते हुए रूपवाले ईश्वर के रूप में ध्यान कर यहीं (= भौंहों के मध्य में) साधक समाधि को प्राप्त करता है । सूर्यमण्डल में हिरण्यमय शरीरवाली शिवा का ध्यान करनेवाला कैवल्य को प्राप्त

करता है तथा जन्ममृत्यु के बन्धन से छुटकारा मिल जाता है । हे सुरेश्वरि! यह तुमको पवित्र पापनाशक गुह्यतम पुण्यदायी अष्टाङ्ग ध्यान बतलाया गया । इस ज्ञान (अर्थात् ध्यान) के साथ नित्यकर्म करनेवाला यदि निवृत्ति फल रूप सङ्कल्प करे तो मुक्ति उसके हाथ में आ जाती है और जो इस योगाख्यान को एकाग्रचित्त होकर नित्य पढ़ता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर कैवल्य को प्राप्त होता है । श्रद्धाभक्ति से युक्त होकर जो इसको नित्य सुनता है एक दिन में श्रवण मात्र से उसका एक जन्म का पाप नष्ट हो जाता है । जो इस पुण्याख्यान को एक बार सुनता है उसका अज्ञान से उत्पन्न पाप तत्काल नष्ट हो जाता है । यह पवित्र योगाख्यान ध्यानाख्यान है—ऐसा जो सम्यक्तया विचार करता है वह सर्वज्ञ हो जाता है । जो लोग इस ज्ञान से समन्वित होकर नित्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं उनको देखकर देवता लोग भी उनके सामने नतमस्तक हो जाते हैं । इसलिये हे देवि! संसार एवं जन्म से भयभीत मनुष्य को मुक्ति के लिये इस ध्यानयोग के साथ नित्य कर्म को यथाविधि करना चाहिये । केवल ज्ञान अथवा केवल योग से कैवल्य नहीं प्राप्त होता किन्तु नित्य कर्म से युक्त (योग से) प्राप्त होता है । इस प्रकार परम तत्त्व को जानकर योगयुक्त कर्म करना चाहिये ॥ ९५४-९६५ ॥

[हठयोगप्रकारवर्णनम्]

हठयोगस्यापि किञ्चित् प्रकारं वच्मि ते प्रिये ।
इडा च पिङ्गला चैव नाड्यौ द्वे देहसंस्थिते ॥ ९६६ ॥
कण्ठं भित्वा गते ऊर्ध्वं ब्रह्मरन्ध्रं तलावधि ।
ततः पतन्ती पीयूषधारा सर्वकलेवरम् ॥ ९६७ ॥
आप्लावयितुमीशानि नामाकृतिधरे उभे ।
धयतोऽनुक्षणे ते तां जन्ममृत्युकृते नृणाम् ॥ ९६८ ॥
प्रवेशयित्वा रसनां तदग्रेण हि ते उभे ।
व्यावर्तितानने कुर्यात् तस्मिन् पातयेत् सुधीः(?) ॥ ९६९ ॥
सहस्रदलराजीवगलत्पीयूषधारया ।
तनीयस्यातिसितया प्लावयत् (?न्) सकलां तनुम् ॥ ९७० ॥
तेनाजरत्वमाप्नोति सिद्धीरपि निजेच्छया ।

हठयोग के प्रकार—हे प्रिये! तुमको हठयोग के कुछ प्रकार बतला रहा हूँ । इडा और पिङ्गला नामक दो नाड़ियाँ जो कि देह में स्थित हैं कण्ठ का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र के तल तक जाती हैं । हे ईशानि! वहाँ से गिरनेवाली अमृतधारा को सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित करने के लिये (इडा और पिङ्गला) नामों और आकारों को धारण करनेवाली उन दोनों का, मनुष्यों के जन्म-मृत्यु के लिये क्षण-क्षण पान करने के लिये उस रसना को अन्दर की ओर प्रवेश कराकर उसके अग्रभाग से उन दोनों नाडियों को अमृत पिलाना चाहिये । सहस्रार कमल से गिरनेवाली सूक्ष्मतम

अत्यन्त शुक्ल अमृतधारा के द्वारा सम्पूर्ण शरीर को आप्लावित करनेवाला उस कर्म से अजरत्व तथा इच्छानुकूल सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ९६६-९७०- ॥

उक्तानि यानि देहेऽस्मिन् शुक्राणि सुरवन्दिते ॥ ९७१ ॥
गलादूर्ध्वं रसनया भेदयेत्तानि वै क्रमात् ।
तदधो दशभिः प्राणैः कुण्डलिन्यां तथैव च ॥ ९७२ ॥
नानासिद्धीरवाप्नोति तत्तन्मण्डलभेदतः ।
तत्प्रकारानथो वच्मि शृणुष्वावहिता शिवे ॥ ९७३ ॥
सीवनी रसनामूले या तिष्ठति वरानने ।
तया नान्तः प्रविशति जिह्वा बद्धेव रज्जुभिः ॥ ९७४ ॥
छिन्द्यादतीव शितया तिलमात्रमभीः सुधीः ।
समाहितः सीवनीं तामसिपत्र्युग्रधारया ॥ ९७५ ॥
पथ्यासैन्धवचूर्णाभ्यां मिश्रिताभ्यां प्रधर्षयेत् ।
सप्तमे सप्तमे रात्रे तावदेव विकृन्तयेत् ॥ ९७६ ॥
एवं दीर्घा भवेज्जिह्वा षट्पञ्चाशद्दिनैः प्रिये ।
रसनादोहनं कुर्यात् प्रातरेव दिने दिने ॥ ९७७ ॥
ऊर्ध्वाधः पार्श्वयोश्चापि घट्टनीयं सदैव हि ।
षण्मासाद् रसना लध्वी भवेदपि तनीयसी ॥ ९७८ ॥
आसनं पूर्ववत् कृत्वा नाडीरपि विशोध्य च ।
स्थित्वा निःशब्द एकान्ते जिह्वामूर्ध्वं नयेत् सुधीः ॥ ९७९ ॥
तत्रादौ ललनाचक्रे षोडशच्छदभूषिते ।
प्रवेश्य रसनां तिष्ठेद् यामद्वयमनन्यधीः ॥ ९८० ॥

हे सुरवन्दिते! मनुष्य के इस शरीर में गले के ऊपर जितने शुक्राणु हैं जिह्वा के द्वारा उनका क्रमिक भेदन करना चाहिये । इसके नीचे दश प्राणवायुओं के द्वारा कुण्डलिनी में उसी प्रकार (शुक्राणुओं का) भेदन करना चाहिये । तत्तत् मण्डल के भेदन से साधक नाना प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है । इसके बाद उस (मण्डल-भेद) के प्रकारों को बतला रहा हूँ । हे शिवे! ध्यानस्थ होकर सुनो । हे वरानने! जिह्वा के मूल में जो सीवनी ग्रन्थि है उसके कारण रस्सी से बँधी हुई के समान जिह्वा अन्दर की ओर नहीं जाती । साधक निर्भय तथा समाहित होकर तीक्ष्ण क्षुरिका से उसको एक तिल के बराबर काट दे । उसके बाद पथ्या (= हर्रे, हरड) और सेंधा नमक के चूर्ण के मिश्रण से उसको मल दे । सात-सात दिन के अन्तराल पर उतना ही काटता रहे । हे प्रिये! इस प्रकार छप्पन दिनों (अर्थात् ८ सप्ताह) में जिह्वा लम्बी हो जाती है । उसके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल रसना का दोहन करना चाहिये तथा ऊपर-नीचे और अगल-बगल सदा जिह्वा को रगड़ना चाहिये । छह महीने के बाद जिह्वा छोटी और पतली हो जाती है । ऐसा होने के

अनन्तर पूर्व वर्णित की भाँति आसन बाँधकर नाड़ियों का शोधन कर शब्दरहित एकान्त स्थान में बैठकर विद्वान् जिह्वा को ऊपर की ओर ले जाय । इस क्रम में पहले साधक षोडश दल कमल से भूषित ललनाचक्र में रसना को प्रविष्ट कराकर एकाग्रचित्त हो दो प्रहर तक उस अवस्था में रहे ॥ ९७१-९८० ॥

एवं वर्षत्रयं तत्र कुर्यादभ्यासमीश्वरि ।
एवमभ्यस्यतस्तस्य दिवारात्रिमपि प्रिये ॥ ९८१ ॥
गलन्ति तस्य चक्रस्य व्युष्टयः पक्वतां गताः ।
तत्तत्फलोपजनितेर्दोषेणासौ विलिप्यते ॥ ९८२ ॥
सिद्धयो याश्च जायन्ते ता निबोध सुरेश्वरि ।
न क्षुत् पिपासा न स्वेदो न जृम्भा नापि च क्षुतम् ॥ ९८३ ॥
पुरीषमूत्रौ न स्यातां न शिरः पलिताद्यपि ।
निद्रातन्द्राशोकमोहकामक्रोधमदास्तथा ॥ ९८४ ॥
ललनाभेदिनं देवि न स्पृशन्ति कदाचन ।
यावन्तः स्युस्तनौ दोषास्तेषु कोऽपि न जायते ॥ ९८५ ॥
सरस्वती तस्य मुखे स्वयमेव वसेत्सदा ।
त्रिहायनानन्तरं हि भ्रुवोर्मध्ये परिस्थिताम् ॥ ९८६ ॥
आज्ञां भिन्द्याच्छनैर्देवि दलत्रयविराजिताम् ।
तत्रैव रसनायोगमभ्यसेद् वत्सरत्रयम् ॥ ९८७ ॥
त्रिगुणाविर्भावरूपफलान्यस्मिंस्तु तानि हि ।
लब्ध्वा परिणतिं तानि पतन्ति विषयैः सह ॥ ९८८ ॥
नवभावोपयातस्य देवत्वमवतिष्ठते ।
जायते दूरदर्शित्वं दूरश्रोतृत्वमेव च ॥ ९८९ ॥
कलेवरस्य सौगन्ध्यं हृषीकवशता तथा ।
आहारस्य परित्यागादपि प्राणस्य धारणा ॥ ९९० ॥
अन्तर्ज्योतिःप्रकाशश्च विद्यानां स्फूर्तिरिव च ।
बाह्यसंवित्तिराहित्यं पुण्यपापप्ररोहणम् ॥ ९९१ ॥
आज्ञायां रसनायोगादेताः स्युः सिद्धयोऽस्य हि ।

हे ईश्वरि! इस प्रकार तीन वर्ष तक अभ्यास करना चाहिये । हे प्रिये! इस रीति से दिन-रात अभ्यास करनेवाले के चक्र की सारी व्युष्टियाँ (फलसमूह) पक कर गल जाती है । तत्तत् फलों के उत्पन्न होने के कारण दोष से यह साधक विलिप्त (= लेप रहित अर्थात् निर्दुष्ट) हो जाता है । हे सुरेश्वरि! इससे जो सिद्धियाँ होती हैं उनको जानो । न भूख-प्यास लगती है न पसीना, न जम्भाई न छींक होती है । पुरीष और मूत्र भी नहीं होता । बाल भी नहीं पकते । निद्रा तन्द्रा शोक मोह काम

क्रोध मद जिह्वाभेदी का स्पर्श तक नहीं करते । शरीर में जितने भी दोष सम्भव हैं उनमें से कोई भी उसमें नहीं होता । उस जिह्वाभेदी के मुख में सरस्वती सदा निवास करती है । हे देवि! दोनों भौंहों के बीच स्थित तीन दलों पर विराजमान आज्ञाचक्र का वह तीन दिनों के अन्दर भेदन कर लेता है । उसी आज्ञाचक्र में साधक को तीन वर्षों तक रसनायोग का अभ्यास करना चाहिये । इसमें त्रिगुणों के आविर्भावरूप फल होते हैं और वे परिपक्व होकर अपने विषयों के साथ नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार नवभाव को प्राप्त साधक देवता बन जाता है । उसके अन्दर दूरदर्शित्व और दूरश्रोतृत्व उत्पन्न हो जाता है । उसके शरीर में सुगन्ध उत्पन्न हो जाती है और इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं । आहार का त्याग करने पर भी वह जीवित रहता है । उसके अन्दर ज्योति और प्रकाश तथा विद्याओं की स्फूर्त्ति होती है । बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाने हैं तथा पुण्य और पाप समाप्त हो जाते हैं । आज्ञाचक्र में जिह्वा को संयुक्त करने से इस साधक को ये उपर्युक्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ९८१-९९१-॥

तस्योर्ध्वं तु मनश्चक्रं ललाटो(टे) परितिष्ठति ॥ ९९२ ॥
निवेशयेत्तत्र जिह्वां दलषट्कविराजिते ।
तत्राप्यभ्यसतो वर्षत्रयेण जगदीश्वरि ॥ ९९३ ॥
फलानि विगलन्त्यस्य तरूणामिव पाकतः ।
तेनास्य स्वर्गतिर्भूयात् पतङ्गानामिवाम्बरे ॥ ९९४ ॥
पाषाणवदभेद्यत्वं तनोरप्यस्य जायते ।
आपो नैनं मज्जयन्ति पावको न दहत्यपि ॥ ९९५ ॥
नैनं छिन्दति शस्त्राणि विषं नाक्रमते तनौ ।
जायते कामरूपित्वं सर्वाभिभवता तथा ॥ ९९६ ॥
शापानुग्रहसामर्थ्यं सर्वज्ञत्वं तथैव च ।
एवं त्रिवर्षमभ्यस्य तदूर्ध्वं सोमनामनि ॥ ९९७ ॥
महाचक्रे सिद्धिहेतौ षोडशच्छदभूषिते ।
रसनाग्रं सन्निवेश्य निराकारं विचिन्तयेत् ॥ ९९८ ॥
अभ्यसन्नीदृशं पञ्चवर्षसोमविभेदनम् ।
अनेनैव शरीरेण देव एव प्रजायते ॥ ९९९ ॥
अच्छायोऽनिमिषो भूत्वा महाबलपराक्रमः ।
भूत्वा गच्छति पातालं देवानामपि मन्दिरे ॥ १००० ॥
तैः सहास्ते कथां वक्ति भुंक्ते शेते व्रजत्यपि ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीः स झटित्येव प्रसाधयेत् ॥ १००१ ॥
जायते चास्य वाक्सिद्धिस्त्रिलोकी वशगा भवेत् ।
चन्द्रार्कवद्दिशः सर्वाः प्रकाशयति तेजसा ॥ १००२ ॥

उस (आज्ञा) के ऊपर ललाट में मनश्चक्र रहता है । छह दलों से सुशोभित उस चक्र में जिह्वा का प्रवेश कराना चाहिये । हे जगदीश्वरि! वहाँ भी तीन वर्षों तक अभ्यास करनेवाले साधक के (पाप-पुण्य कृत्यों के) फल नष्ट हो जाते हैं जैसे कि पकने से वृक्षों के फल । इस (फलनाश) से स्वर्ग में उसकी गति उसी तरह हो जाती है जैसे पक्षी की आकाश में । इसका शरीर पत्थर की भाँति अभेद्य हो जाता है । जल इसको डुबा नहीं पाते और अग्नि उसको जला नहीं सकता । शस्त्र इसको नहीं काटते और इसके शरीर में विष का प्रसरण नहीं होता । यह कामरूपी हो जाता है और सबको अभिभूत कर लेता है । इसके अन्दर शाप देने और अनुग्रह करने का सामर्थ्य तथा सर्वज्ञता उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार तीन वर्ष तक अभ्यास करने के बाद (साधक) सिद्धि के हेतुभूत, षोडशदलवाले सोम नामक महाचक्र में रसना का प्रवेश कराकर निराकार का ध्यान करे । इस प्रकार पाँच वर्षों तक अभ्यास करनेवाले (साधक) का सोमचक्र-भेदन हो जाता है और साधक इसी शरीर से देवता बन जाता है । उसके शरीर की छाया नहीं बनती तथा उसकी पलकें नहीं गिरतीं । महाबली और महापराक्रमी होकर वह पाताललोक और देवलोक में जाने के सामर्थ्यवाला हो जाता है । वह उन देवताओं के साथ उठता बैठता, बातचीत करता, भोजन करता सोता और चलता है । अणिमा आदि अष्टसिद्धियों[1] को अत्यन्त शीघ्र प्राप्त कर लेता है । इसको वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है तथा तीनों लोक इसके वश में हो जाते हैं । चन्द्र एवं सूर्य के समान वह अपने तेज से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥ ९९२-१००२ ॥

यं यं कामयते कामं मनसा यद्वदत्यपि ।
वाचा तत्तस्य पुरतः स्वयमेवावतिष्ठते ॥ १००३ ॥
द्वीपान्तरादिष्वप्यस्य गतिरव्याहता भवेत् ।
आपो वह्निं च विशति वायुमाकाशमेव च ॥ १००४ ॥
एवमभ्यस्य तत्रैव स्थित्वा सप्तैव हायनान् ।
सहस्रदलसम्भेदे मनः सम्यङ् निवेशयेत् ॥ १००५ ॥
इडायाः पिङ्गलायाश्च धारां सौधीं पिबन्मुखम् ।
देहमध्ये तु गात्रेऽस्मिन् श्रोतुमिच्छसि चेच्छृणु ।
तनीयेभ्योऽपि जिह्वाग्रैस्तनीयः परिवर्तयेत् ॥ १००६ ॥
पराङ्मुखीकृत्य तद् वै वदने जगदीश्वरि ।
धारां तां पातयेदङ्गे रसनाग्रेण संलिहन् ॥ १००७ ॥
तेनामरत्वमाप्नोति शिव एव भवेदपि ।

---

[1] अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्येशित्वं च वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥

परार्द्धजीवी भवति प्रजापतिरिवापर: ॥ १००८ ॥
देवानाकर्षयेच्चापि सयक्षासुरपन्नगान् ।
वर्णितुं शक्यते नास्य महिमा वर्षकोटिभि: ॥ १००९ ॥
रुद्र एव भवेत् साक्षात् पाञ्चभौतिकदेहभृत् ।
अप्यर्णवं शोषयितुं समर्थो निमिषेण स: ॥ १०१० ॥
वमन् मुखेन कालाग्निं जगद्रोद्धुमपि क्षम: ।
द्वादशाव्दं समभ्यस्य कैवल्यमपि साधयेत् ॥ १०११ ॥
मोक्षैकसाधकस्यास्य विधेरन्यास्तु सिद्धय: ।
केवलं विघ्नकारिण्य: इत्येतद् विद्धि पार्वति ॥ १०१२ ॥

वह मन से जो-जो इच्छा करता है तथा वाणी से जो-जो कहता है वह सब उसके सामने स्वयं उपस्थित हो जाता है । अन्य द्वीपों में भी उसकी अव्याहत गति हो जाती है । वह जल अग्नि वायु और आकाश में प्रवेश कर सकता है । इस प्रकार अभ्यास करता हुआ वहाँ सोमचक्र में सात वर्षों तक रुककर इडा और पिङ्गला से निकलनेवाली अमृतधारा को बार-बार पीता हुआ साधक सहस्र दल के भेदन में मन को पूर्णरूपेण निविष्ट कराये । यदि इस शरीर के मध्य में (क्या होता है) इसको सुनना चाहती हो तो सुनो । जिह्वा के अग्रभाग को पतले से पतला कर घुमाना चाहिये । हे जगदीश्वरि! उसको मुख में उलट कर ऊपर से गिरनेवाली उस अमृतधारा को अङ्गों में गिराये तथा जिह्वा के अग्रभाग से उसको चाटे । इस क्रिया से वह अमरत्व को प्राप्त करता है और शिव हो जाता है । वह दूसरे प्रजापति के समान परार्द्ध काल तक जीवित रहता है । यक्ष असुर सर्पों के सहित वह देवताओं का भी आकर्षण करता है । इस साधक की महिमा का वर्णन करोड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता । पञ्चभूतात्मक शरीर को धारण करता हुआ भी वह साक्षात् रुद्र हो जाता है । वह एक निमिष में समुद्र को भी सुखा सकता है । मुख से कालाग्नि का वमन करता हुआ वह संसार को अवरुद्ध कर सकता है । इस प्रकार बारह वर्षों तक अभ्यास करता हुआ वह कैवल्य प्राप्त कर लेता है । हे पार्वति! मोक्ष की साधना में लगे हुए इस साधक के लिये अन्य सिद्धियाँ तो केवल विघ्नकारिणी ही समझो ॥ १००३-१०१२ ॥

मूढास्तु केवलं सिद्धीरभिकांक्षन्ति सर्वदा ।
मोक्षार्थमेव यतते धीर: संसारसागरे ॥ १०१३ ॥
दैनन्दिने सुरेशानि प्रलये समुपस्थिते ।
दह्यमाने त्रिजगति वह्निरेव भवत्यसौ ॥ १०१४ ॥
नष्टेऽग्नौ ध्रुवपर्यन्तं जल उच्छलिते सति ।
स तोयविग्रहो भूत्वा तेष्वेव प्रविलीयते ॥ १०१५ ॥
वायुना शोषिते सर्वं जगति प्राणवल्लभे ।

स समीरतनुर्भूत्वा तत्रैव विशति ध्रुवम् ॥ १०१६ ॥
महाभूतेषु नष्टेषु चतुर्ष्वपि समं ततः ।
सम्भूयाकाशरूपोऽयं ख एव प्रविलीयते ॥ १०१७ ॥
कल्पादौ पुनरस्यैव समारम्भे समुद्यति ।
यदीच्छति पुनर्देहं पूर्वरूपोऽभिजायते ॥ १०१८ ॥
नो चेन्निर्वाणमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ।

मूर्ख लोग केवल सिद्धि की कामना करते हैं किन्तु धीर पुरुष संसार-सागर में रहकर मोक्ष के लिये प्रयास करते हैं । हे सुरेशानि! प्रलय के प्रतिदिन उपस्थित होने पर तथा संसार के दह्यमान होने पर यह साधक अग्नि ही हो जाता है (अर्थात् साधक का दाह नहीं होता) अग्नि के नष्ट होने पर जब जल ध्रुवपर्यन्त उछलने लगता है तब वह जलमय शरीरवाला होकर जल में ही विलीन हो जाता है (अर्थात् तब भी नहीं मरता) हे प्राणवल्लभे! वायु के द्वारा समस्त जगत् के सुखाये जाने पर वह वायुमय शरीरवाला होकर उसी में प्रवेश कर जाता है । जब चारो महाभूत नष्ट होकर आकाश में विलीन हो जाते हैं तब वह भी आकाशरूप बनकर उसी में लीन हो जाता है । पुन: कल्प के प्रारम्भ में जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तब योगी यदि चाहता है तो पुन: पूर्वदेह का धारण कर लेता है नहीं तो पुनर्जन्मरहित निर्वाण को प्राप्त कर लेता है ॥ १०१३-१०१८- ॥

[स्वेच्छाजन्मानन्तरङ्करणीययोगीकृत्यवर्णनम्]

रसनाग्रं भवेत्तत्र यच्चरेत् तद्वदामि ते ॥ १०१९ ॥
निर्गुणं सगुणाकारं शून्यं ध्यानं समाचरेत् ।
इदमग्रे स देवा(सदेवा)सीद्
देवि जन्मैककारणम् ॥ १०२० ॥
कारणादभवद् बीजं चतुर्वर्णात्मकं स्फुरत् ।
तदेतदोमिति ब्रह्म ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ॥ १०२१ ॥
येन पश्यन्ति विद्वांसः सर्वतः परमामृतम् ।
तदेतद् ब्रह्म भवने प्रणवे यत्र सूरयः ॥ १०२२ ॥
स(सं) पश्यन्ति धिया नित्यं
तत्ते वक्ष्यामि संशृणु ।
संहारसंज्ञकस्यास्य व्यञ्जनं त्वर्द्धमात्रकम् ॥ १०२३ ॥
बालसूर्यप्रतीकाशमस्ति बिन्दुमदक्षरम् ।
यदस्योंकारनिष्ठस्य मात्रांशो व्याप्तचेतनः ॥ १०२४ ॥
ह्लादिनीं च मकारान्ते बिन्दुरूपं प्रदृश्यते ।
बिन्दोरुपरि नादश्च शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥ १०२५ ॥

विशुद्धचेतसः शक्तिः प्रकाशयति चेतसि ।
तस्मिन्नित्यधिको रुद्रो महर्षिः कृष्णपिङ्गलः ॥ १०२६ ॥
ऊर्ध्वरेता विरूपाक्षस्तिष्ठतीत्याहुरागमाः ।
आगमैकान्तसंवेद्यो रुद्र एको न चापरः ॥ १०२७ ॥
तमागमज्ञानमात्रममृतं कृष्णपिङ्गलम् ।
तत्रत्यमिच्छतो देवि दृष्टिरोंकार एव च ॥ १०२८ ॥
ओंकारो वाचकस्तस्य वाच्यो रुद्रो न चापरः ।
इति वेदावसानज्ञः स्वयम्भूः प्राह सर्ववित् ॥ १०२९ ॥

स्वेच्छा जन्म के पश्चात् योगी के करणीय कृत्य का वर्णन—रसना के अग्र भाग में योगी को क्या करना चाहिये वह अब मैं तुमको बतला रहा हूँ । निर्गुण सगुण आकारवाले शून्य का ध्यान करना चाहिये । हे देवि! सबसे पहले यह सत् ही था जो कि जन्म (अर्थात् सृष्टि) का एकमात्र कारण था । उस कारण से चार वर्णोंवाला देदीप्यमान बीज प्रादुर्भूत हुआ । वह ओम् नामक ब्रह्म था जो कि ब्रह्मज्ञान का एकमात्र साधन है । जिसके द्वारा विद्वान् लोग सब ओर सब प्रकार से परम अमृत को देखते हैं वही यह ब्रह्म है जिस प्रणवरूपी ब्रह्मभवन में विद्वज्जन अपनी बुद्धि के द्वारा नित्य ब्रह्म का साक्षात्कार करते रहते हैं, उसको मैं तुम्हें बतला रहा हूँ सुनो—संहारसंज्ञक इस (प्रणव) का व्यञ्जन आधा मात्रा का है । वह बालसूर्य के समान (रक्त वर्णवाला) बिन्दुयुक्त और अक्षर है । ओंकार में स्थित इसकी मात्रा का अंश जो कि चैतन्य से व्याप्त है तथा ह्लादिनी[1] है वह मकार के अन्त में बिन्दुरूप में दिखलायी देती है । बिन्दु के ऊपर नाद रहता है जो शुद्धस्फटिक के समान है । यह नाद विशुद्धचित् की शक्ति है जो चित्त में प्रकाश उत्पन्न करती है । उसमें नित्याओं के साथ कृष्ण पिङ्गलवर्णवाले ऊध्वरेता त्रिनेत्र महर्षि रुद्र विराजमान रहते हैं—ऐसा आगमों का कथन है । आगमों के द्वारा एकान्तसंवेद्य (= केवल एकमात्र जानने योग्य) रुद्र एक ही हैं । दूसरा कोई नहीं । केवल आगम से जानने योग्य (अथवा आगमों के ज्ञाता), अमृत, कृष्णपिङ्गल एवं वहाँ (= नाद में) विराजमान को (जानने की) इच्छावाले की दृष्टि, हे देवि! ओंकार में ही रहती है । ओंकार उस (= रुद्र) का वाचक है। उस (= ओंकार) का वाच्य रुद्र है दूसरा कोई नहीं—ऐसा सर्ववेत्ता एवं वेदान्त को जाननेवाले स्वयम्भू भगवान् ने कहा है ॥ १०१९-१०२९ ॥

सांख्यादिष्वपि विद्वांसः सदा प्रणवसंस्थिताः ।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥ १०३० ॥

---

[1] परमेश्वर की तीन शक्तियाँ हैं—ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित् । ह्लादिनी आह्लादकारिणी है ।

तथा महर्षयः सर्वे विशुद्धाः प्रणवाक्षरैः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ १०३१ ॥
भृगुर्वसिष्ठः सम्वर्तो जैगीषव्योऽथ गौतमः ।
कात्यायनो नाचिकेता विश्वामित्रपराशरौ ॥ १०३२ ॥
उपमन्युर्भरद्वाजः कपिलो देवलोऽसितः ।
मार्कण्डेयकचात्रेयहारीतशुकशौनकाः ॥ १०३३ ॥
एते चान्ये च मुनयो ब्रह्मनिष्ठास्तपोधनाः ।
विध्युक्तयोगनिरतास्त्यक्तसंसारवासनाः ॥ १०३४ ॥
मौनिनो जटिलः(लाः) शान्ता रागद्वेषविवर्जिताः।
जितकामक्रोधलोभा निगमाम्भोधिपारगाः ॥ १०३५ ॥
निःशङ्काः निरहङ्काराः दान्ता वीतषडूर्मयः ।
चेतसा सम्प्रपश्यन्ति नादान्ते वृषभध्वजम् ॥ १०३६ ॥
संसारपाशबद्धानां योगिनामप्ययोगिनाम् ।
नैवान्यदस्ति भैषज्यमन्तरेण वृषध्वजम् ॥ १०३७ ॥
तमागमेष्वसन्दिग्धममृतं कृष्णपिङ्गलम् ।
ओंकाररूपिणं रुद्रं चिन्तयन् प्रणवं जपेत् ॥ १०३८ ॥
तस्यात्मनि महादेवः प्रकाशयति सन्नतिम् ।
नैष्कलः परमात्माख्यो योगिनां हृदि संस्थितः ॥ १०३९ ॥
ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुक् ।
निर्मलो भगवान् रुद्रकोटिभी रुद्र आवृतः ॥ १०४० ॥
ओंकारं गृहमाश्रित्य सन्निधौ तिष्ठतीति च ।

सांख्य आदि में भी विद्वज्जन सदा प्रणव में स्थित होकर ज्ञान चक्षु के द्वारा नाद के ऊपर महादेव को सदा देखते रहते हैं । इसी प्रकार प्रणवाक्षरों के द्वारा विशुद्ध हुए मरीचि अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु वसिष्ठ सम्पर्त जैगीषव्य गौतम कात्यायन नचिकेता विश्वामित्र पराशर उपमन्यु भरद्वाज कपिल देवल असित मार्कण्डेय कच आत्रेय हारीत शुकदेव शौनक एवं अन्य मुनिवर्ग जो कि ब्रह्मनिष्ठ एवं तपोधन थे विधिशास्त्र में वर्णित योग में निरत हैं, सांसारिकी वासनाओं का त्याग कर चुके हैं, मौनी, जटाधारी, शान्त, राग-द्वेष से रहित हैं, काम क्रोध लोभ को जीतनेवाले तथा वेदरूपी समुद्र के पारङ्गत हैं, शङ्कारहित, निरहङ्कार, दान्त, षडूर्मि[1] से रहित हैं, मन के द्वारा नादान्त में वृषभध्वज का साक्षात्कार करते रहते हैं । संसारपाश में बद्ध योगियों अथवा अयोगियों के लिये भी शिव के

---

[1] बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः स्मृतौ ।
शोकमोहौ शरीरस्य जरामृत्यू षडूर्मयः ॥ (पारमेश्वरागम २१।२३।टि.)

अतिरिक्त कोई भी भेषज नहीं है । आगमों में असन्दिग्ध, अमृत कृष्णपिङ्गल ओंकाररूपी रुद्र का ध्यान करते हुए प्रणव का जप करना चाहिये । उस (जापक) के हृदय में महादेव सन्नति प्रकाशित करते हैं। योगियों के हृदय में वही निष्कल परमात्मा नाम से स्थित रहते हैं । समस्त संसार के स्वामी ईश्वर एवं विश्वभोक्ता भगवान् रुद्र (उस जापक के ऊपर) प्रसन्न हो जाते हैं । वे निर्मल भगवान् रुद्र करोड़ों रुद्रो से आवृत होकर ओंकार-गृह में स्थित होकर (उस जापक के) पास में रहते हैं ॥ १०३०-१०४०- ॥

कृतमन्त्रन्यासतनुः सितभस्मावगुण्ठतः ॥ १०४१ ॥
जिज्ञासुरपि कार्याणि स्वे स्वे सङ्कृष्य कारणे ।
शम्भोः पदे च परमे चतुर्भिश्च समन्विते ॥ १०४२ ॥
चित्तं निधाय योगे च देहेऽस्मिन् ब्रह्मणः पुरे ।
गुहायां निचितं रुद्रं परमानन्दविग्रहम् ॥ १०४३ ॥
कोटिचन्द्रसमं स्वच्छं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
गुहाप्रविष्टममृतमोंकारेण जपेत् सदा ॥ १०४४ ॥
स कल्पान्तमतिक्रम्य दीर्घायुर्ब्रह्मविद् भवेत् ।
प्रणवं व्याहरन् वाचा यस्त्यजेत् कायमात्मनः ॥ १०४५ ॥
ब्रह्मैवाभूत् स्वतस्तस्य कालो मृत्युर्विभेति च ।
एवमेव जयोपायः कालस्य सुरवन्दिते ॥ १०४६ ॥
हृत्पद्मेऽष्टदलोपेते कन्दमध्यात् समुत्थिते ।
द्वादशाङ्गुलनालेऽस्मिँश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते ॥ १०४७ ॥
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ।
सुधारसं विमुञ्चद्भिः शशिरश्मिभिरावृते ॥ १०४८ ॥
त्रातं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपं सदाशिवम् ॥ १०४९ ॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥ १०५० ॥
षोडषच्छदसंयुक्ताच्छिरः पद्मादधोमुखात् ।
निर्गतामृतधाराणां सहस्रैश्च समावृतम् ॥ १०५१ ॥
प्लावितं पुरुषं तत्र चिन्तयन् सुसमाहितः ।
मृत्युञ्जयिन्याः गुह्यायास्त्र्यम्बकस्य तथैव च ॥ १०५२ ॥
मृत्युं गृणन्न विरतं ध्यायन्निश्चलमानसः ।

जिज्ञासु साधक मन्त्र के द्वारा शरीर पर न्यासकर, श्वेत भस्म से उपलिप्त हो कर कार्यों को उनके अपने-अपने कारणों में खींचकर शङ्कर के परम पद जो कि (धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य) इन चार से समन्वित हैं, में चित्त को लगाकर इस

देह में स्थित ब्रह्मपुर गुहा (= चिदाकाश) में स्थित परमानन्द शरीरवाले, कोटि चन्द्रमा के समान स्वच्छ, कोटि सूर्य के समान देदीप्यमान, हृदय गुहा में स्थित अमृत रुद्र का ओंकार के द्वारा जप करे । ऐसा करनेवाला साधक कल्पान्त का अतिक्रमण कर दीर्घायु एवं ब्रह्मज्ञानी हो जाता है । वाणी से प्रणव का उच्चारण करता हुआ जो अपने देह का त्याग करता है वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है । काल और मृत्यु उससे स्वयं डरते हैं । हे सुरवन्दिते! इसी प्रकार काल के जय का उपाय है । कन्द के मध्य से निकले हुए, बारह अँगुल नालवाले, चार अँगुल ऊँचे, प्राणायामों के द्वारा विकास को प्राप्त, केशरयुक्त कर्णिकावाले अमृत रस का स्राव करनेवाली चन्द्रकिरणों से आवृत अष्टदल हृदयकमल में कृष्णपिङ्गल ऊर्ध्वरेता विरूपाक्ष विश्वरूप सदाशिव को पञ्चवक्त्र दशभुजावाले नीलकण्ठ त्रिलोचन को, शुद्ध स्फटिक के समान, समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित, षोडश दलवाले अधोमुख शिरःकमल से निकलती हुई सहस्रों अमृतधाराओं से आवृत एवं आप्लावित पुरुष का ध्यान करते हुए सुसमाहित चित्तवाला तथा मृत्युञ्जयिनी गुह्यकाली एवं त्र्यम्बक शिव का भी ध्यान करता हुआ स्थिर चित्तवाला साधक मृत्यु को निगल जाता है अर्थात् अमर हो जाता है ॥ १०४१-१०५२- ॥

यजेद्वा नित्यकर्माणि कुर्वन्नैमित्तिकानि च ॥ १०५३ ॥
मृतसञ्जीवनं देवि रुद्रमेवात्मनि स्मरेत् ।
यस्तु सर्वात्मकं रुद्रं परमानन्दविग्रहम् ॥ १०५४ ॥
त्रैयम्बकेत्यृचा रुद्राध्यायैरर्चयतेऽन्वहम् ।
तस्य विश्वाधिको(पो) रुद्रो
महर्षिः कृष्णपिङ्गलः ॥ १०५५ ॥
ऊर्ध्वरेता विरूपाक्षो विकासं याति चेतसि ।
मृत्युभीतो रुजा ग्रस्तः सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ १०५६ ॥
सर्वापत्सु च सर्वत्र मृतसञ्जीवनीं जपेत् ।
संसारपाशबद्धानां योगिनां मोक्षकामिनाम् ॥ १०५७ ॥
नान्यत पश्यामि भैषज्यं मृत्योस्त्रैयम्बकादृते ।
एवं ते मृत्युविजयोपाय उक्तः सुरेश्वरि ॥ १०५८ ॥

अथवा हे देवि! नित्य नैमित्तिक कर्मों को करता हुआ साधक मृतसञ्जीवन रुद्र का अपने हृदय में स्मरण करे । जो भक्त परमानन्दविग्रहवाले सर्वात्मक रुद्र का रुद्राष्टाध्यायी तथा 'त्र्यम्बक' ऋचा[1] के द्वारा प्रतिदिन पूजन करता है । विश्व के रक्षक कृष्णपिङ्गल ऊर्ध्वरेता विरूपाक्ष महर्षि रुद्र उसके चित्त में प्रकाशित होते हैं । मृत्यु से भीत, रोगग्रस्त मनुष्य को सभी (= शुद्धाशुद्ध) अवस्थाओं और सभी

---

[1] १. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनमुर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।

आपत्तियों में सर्वत्र मृतसञ्जीवनी मन्त्र का जप करना चाहिये । मैं संसाररूपी पाश में आबद्ध योगियों एवं मोक्षार्थी जनों के लिये त्र्यम्बक ऋचा के अतिरिक्त मृत्यु की दूसरी औषधि नहीं समझता । हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुमको मृत्यु की विजय का उपाय बतलाया गया ॥ १०५३-१०५८ ॥

उपायं मृत्युविजये पुनरन्यं ब्रवीमि ते ।
सामरस्यसमापन्ने शिवशक्ती विचिन्तयेत् ॥ १०५९ ॥
सहस्रदलराजीवकृतासनपरिग्रहे ।
अभेदत्वं समापन्ने द्वित्वभावविवर्जिते ॥ १०६० ॥
शून्यावस्थाकृतिधरे नादबिन्दू ज्वलत्तनू ।
वाच्यवाचकतारूपे प्रतीत्यन्तरवर्जिते ॥ १०६१ ॥
तुरीयरूपसंभिन्नतुरीयातीतविग्रहे ।
निष्प्रपञ्चे निराकारे एकीभावमुपागते ॥ १०६२ ॥
सत्तामात्रपरिस्पन्दे चैतन्याभासभाविते ।
निरञ्जननिराकारे निरीहे च निरिन्धने ॥ १०६३ ॥
ध्यायन्नेवं शिवं शक्तिं ब्रह्मरन्ध्राम्बुजान्तरे ।
वञ्चयित्वा स्वकं कालं जीवेदैशं सवत्सरम् ॥ १०६४ ॥
तेषु तेषु च भावेषु तत्तद्रूपेण संविशेत् ।
मृत्युं तरति देवेशि जन्म तत्तरणादपि ॥ १०६५ ॥

पुनः मृत्यु के विजय के विषय में अन्य उपाय तुमको बतला रहा हूँ । सामरस्य को प्राप्त शिवशक्ति का ध्यान करना चाहिये । वे दोनों शिवशक्ति सहस्रदल कमल के ऊपर आसन ग्रहण किये हुए हैं । वे दोनों अभेद अवस्था को प्राप्त हैं । द्वित्व की भावना से रहित हैं । शून्य-अवस्था के आकार को धारण किये हुए हैं । नादबिन्दुरूपी वे देदीप्यमान शरीरवाले हैं । वाच्य-वाचक रूप वे अन्य प्रतीति से रहित हैं । तुरीय रूप से सम्भिन्न तुरीयातीत अवस्थावाले हैं । निष्प्रपञ्च निराकार तथा ऐक्यभाव को प्राप्त हैं । वे केवल सन्मात्र हैं, चैतन्याभासरूपी भावना से युक्त वे निरञ्जन निराकार हैं । इच्छारहित एवं निरिन्धन (अर्थात् प्रसरणरहित) हैं । ब्रह्मरन्ध्र के कमल के अन्दर इस प्रकार शिवशक्ति का ध्यान करनेवाला अपने काल को छोड़कर ईश्वर के वर्ष तक जीवित रहता है । साधक तत्तद् भावों में तत्तद्रूप से प्रविष्ट हो जाता है । हे देवेशि! जन्म और उसके सन्तरण से मृत्यु को भी पार कर जाता है ॥ १०५९-१०६५ ॥

[कालविवरणम्]

देव्युवाच—

कियता कालचक्रेण शैवः संवत्सरो भवेत् ।
तन्मे कथय भूतेश विस्तरेण दयानिधे ॥ १०६६ ॥

काल-विवरण—देवी ने कहा—हे भूतेश! कितने कालचक्र से एक शैव संवत्सर होता है? हे दयानिधे! उसको मुझे विस्तार से बतलाइये ॥ १०६६ ॥

महाकाल उवाच—

सूक्ष्मं कालं समारभ्य
यावदेशौ(दैशो) हि वत्सरः ।
पूर्णो भवति कल्याणि विस्तरात्तावदीरये ॥ १०६७ ॥
परमाणुं समभ्येति यावताऽनेहसा रविः ।
तं कालं कर्परीनाम्ना प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १०६८ ॥
तावता काललेशेन ग्रहाणामन्यराशिषु ।
संक्रमो जायते देवि सर्वेषां स्थितिराशितः ॥ १०६९ ॥
दशभिः कर्परीभिस्तु विप्रुरेकोऽभिजायते ।
एका त्रुटिस्तु विप्रूणां शतेन परिजायते ॥ १०७० ॥
तथा त्रुटिशतेनैकस्तत्परोऽप्यभिधीयते ।
निमेषः कथितस्त्रिंशत्तत्परैर्जगदीश्वरि ॥ १०७१ ॥
काष्ठा तथाष्टादशभिर्निमेषैः परिकीर्त्यते ।
त्रिंशद्भिरथ काष्ठाभिः कलैका प्रोच्यते बुधैः ॥ १०७२ ॥
तथा कलाभिस्त्रिंशद्भिः क्षण एकोऽभिजायते ।
षड्भिः क्षणैर्भवेन्नाडी मुहूर्तस्तद्द्वयेन च ॥ १०७३ ॥
त्रिंशन्मुहूर्तैर्दिवस रजन्येकाभिजायते ।
मास एको भवेद् देवि त्रिंशद्भिर्दिनरात्रिभिः ॥ १०७४ ॥
तस्यार्द्धेन भवेच्छुक्लः पक्षः कृष्णस्तथेतरः ।
शुक्लः पक्षः स विज्ञेयः यत्रासौ वर्द्धते शशी ॥ १०७५ ॥
यत्र संक्रमते नित्यं स कृष्णः पक्ष उच्यते ।
मासेनैकेन मर्त्यानां पितृणामेकवासरम् ॥ १०७६ ॥
शुक्लपक्षो निशा तेषां कृष्णो दिवसमुच्यते ।
कुर्याच्छ्राद्धमतो दर्शे पितृणां तृप्तिहेतवे ॥ १०७७ ॥

महाकाल ने कहा—हे कल्याणि! सूक्ष्मकाल से लेकर जहाँ तक ईश्वर का वर्ष पूर्ण होता है उसके मैं तुमको विस्तार से बतला रहा हूँ । सूर्य जितने अनेहस् (= काल) में परमाणु की अवस्था को प्राप्त होता है उस काल को विद्वान् लोग कर्परी नाम से पुकारते हैं । हे देवि! उतने ही सूक्ष्म काल से समस्त ग्रहों का अपनी स्थिति राशि से अन्य राशियों में संक्रमण होता है । दश कर्परी का एक विप्रु होता है। सौ विप्रुओं की एक त्रुटि (तुटि) होती है । उसी प्रकार सौ तुटियों से एक तत्पर और हे जगदीश्वरि! तीस तत्परों से एक निमेष माना जाता है । अट्ठारह

निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है । विद्वान् लोग तीस काष्ठाओं की एक कला मानते हैं तथा तीस कलाओं का एक क्षण होता है । छह क्षणों की एक नाडी और दो नाडी का एक मुहूर्त होता है । तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है । हे देवि! तीस दिन-रात्रि का एक मास होता है । उस एक मास का आधा शुक्ल पक्ष और दूसरा आधा कृष्ण पक्ष होता है । शुक्ल पक्ष उसे जानना चाहिये जिसमें चन्द्रमा बढ़ता जाता है । जिसमें नित्य घटता है वह कृष्ण पक्ष होता है । मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन होता है । शुक्ल पक्ष उनकी रात्रि और कृष्ण पक्ष उनका दिन होता है। इसलिये पितरों की तृप्ति हेतु दर्श अर्थात् कृष्ण पक्ष में श्राद्ध करना चाहिये ॥ १०६७-१०७७ ॥

मासाभ्यां स्याद् ऋतुर्द्वाभ्यां ते षडेव भवन्ति हि ।
मार्गादिमैर्द्वादशभिर्मासै षड्ऋतवः क्रमात् ॥ १०७८ ॥
हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तो ग्रीष्म एव च ।
वर्षा शरच्चायनं स्यादेतैरपि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०७९ ॥
शिशिराद्यैस्त्रिभिरुदग् वर्षाद्यैर्दक्षिणायनम् ।
अयनाभ्यां तथा द्वाभ्यां मानुषोऽप्यभि-
जायते (मानुषाभ्यां च जायते ?) ॥ १०८० ॥
एकं दिनं स देवानां क्षपया सहितं प्रिये ।
उत्तरस्यां दिशि रविर्गच्छतीत्युत्तरायणम् ॥ १०८१ ॥
दक्षिणस्यान्तथैवेति भवेत्तद्दक्षिणायनम् ।
वासरं कथितं देवि देवानामुत्तरायणम् ॥ १०८२ ॥
शयनाय तथा तेषां रजनी दक्षिणायनम् ।
जाग्रत्सु सर्वदेवेषु धर्मकार्याण्यतः प्रिये ॥ १०८३ ॥
कर्तव्यानि द्विजैरन्यान्यपि वेदोदितानि च ।
एवं त्रिंशद्दिनं सौरैरेको मासोऽभिजायते ॥ १०८४ ॥
तादृग्द्वादशभिर्मासैर्देवानामेकहायनम् ।
एतादृशानामब्दानां त्रैदशानां वरानने ॥ १०८५ ॥
चत्वार्येव सहस्राणि धीराः सत्ययुगं विदुः ।
यथा दिनस्य भवतः पूर्वा सन्ध्या च पश्चिमा ॥ १०८६ ॥
एवं युगस्यापि देवि द्वे सन्ध्ये भवतः सदा ।
चतुः शती पूर्वसन्ध्या पश्चिमा तु चतुःशती ॥ १०८७ ॥
वर्षाणां देवमानेन विज्ञेया जगदीश्वरि ।
लक्षाणि सप्तदश वै नववत्सरमानतः ॥ १०८८ ॥
अष्टाविंशतिसाहस्री तथान्या कृतमुच्यते ।
एतस्यैव चतुर्थांशहीना त्रेताभिधीयते ॥ १०८९ ॥

कृतोऽर्द्धं द्वापरं ज्ञेयं तत्तूर्यांशः कलिर्मतः ।
युगैश्चतुर्भिर्देवानामब्दसंख्यां निबोध मे ॥ १०९० ॥

दो महीनों की एक ऋतु होती है । वे छह होती हैं । मार्गशीर्ष से प्रारम्भ कर बारह महीनों में क्रमशः छह ऋतुयें होती हैं । वे हैं—हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म वर्षा और शरद् । इनमें से तीन-तीन ऋतुओं का एक-एक अयन होता है । शिशिर से लेकर तीन ऋतुओं का उत्तरायण और वर्षा आदि तीन से दक्षिणायन होता है । हे प्रिये! मनुष्य के दो अयनों से देवताओं का रात्रिसहित एक दिन होता है । जब सूर्य उत्तर दिशा में जाता है तो उत्तरायण और जब दक्षिण की ओर जाता है तब दक्षिणायन होता है । हे देवि! उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन देवताओं की रात्रि होती है । इसमें देवता लोग शयन करते हैं । इसलिये हे प्रिये! देवताओं की जाग्रत अवस्था में द्विजों के द्वारा वेदोक्त समस्त धर्मकार्य किये जाने चाहिये । इस प्रकार सूर्य के तीस दिनों का एक मास होता है । उस प्रकार के बारह महीनों से देवताओं का एक वर्ष होता है । हे वरानने! इस प्रकार विद्वान् लोग देवताओं के चार हजार वर्षों का सत्ययुग मानते हैं । जिस प्रकार दिन की प्रातः एवं सायं सन्ध्या (= सन्धिकाल) होती है, हे देवि! उसी प्रकार युग की भी सदा दो सन्ध्यायें होती हैं । हे जगदीश्वरि! चार सौ वर्ष की पूर्व सन्ध्या और चार सौ वर्ष की पर सन्ध्या को देवताओं के वर्ष मान के अनुसार जाननी चाहिये । इस प्रकार नव संवत्सर के मान से (१७२८००० सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष) सत्ययुग का काल होता है । इसके चतुर्थ अंश से कम (अर्थात् ४३२००० चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कम) त्रेतायुग होता है (अर्थात् त्रेता का काल १२९६००० वर्ष बारह लाख छानबे हजार वर्ष होता है) कृत् युग के काल का आधा (अर्थात् ८६४००० आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष) द्वापर होता है । उस कृत् युग का चतुर्थांश (अर्थात् ४३२००० चार लाख बत्तीस हजार वर्ष) कलियुग का मान होता है । अब चार युगों से देवताओं की वर्ष संख्या मुझसे जानो ॥ १०७८-१०९० ॥

भवेद् द्वादशसामग्री मर्त्यमानं निबोध मे ।
नियुतानीह चत्वारि लक्षाणि त्रीणि चैव हि ॥ १०९१ ॥
तथा विंशतिसाहस्री संख्येयं पिण्डिता मता ।
दिव्यं युगं देवि भवेदेकमीदृक् चतुर्युगैः ॥ १०९२ ॥
एकसप्ततिभिर्दिव्यैर्युगैर्मन्वन्तरं मतम् ।
मन्वन्तरीयदैवाब्दान् मत्तो देव्यवधारय ॥ १०९३ ॥
अष्टौ लक्षाणि पञ्चैवायुतानि तदनन्तरम् ।
द्वे सहस्रे तथान्ये च मर्त्यसंख्यामतः शृणु ॥ १०९४ ॥
त्रिंशत्कोट्यः सप्तषष्टिलक्षाणि परमेश्वरि ।
तथा द्वे अयुते चैव वर्षाणां परिकथ्यते ॥ १०९५ ॥

चतुर्दशैव मनवः स्युर्ब्रह्मदिवसे प्रिये ।
यथा युगानां सन्ध्ये द्वे भवतः पूर्वपश्चिमे ॥ १०९६ ॥
मन्वन्तराणां न तथा पश्चिमा देवि कथ्यते ।
पूर्वैव सन्ध्या विज्ञेया सा कृताब्दप्रमाणिका ॥ १०९७ ॥
सार्कमण्डलपर्यन्तं जलपूर्णाऽभिजायते ।
सर्वाद्यस्य मनोर्देवि प्रारम्भे सत्यसम्मितः ॥ १०९८ ॥
वर्षपूर्णो भवत्येव ते च पञ्चदश स्मृताः ।
सर्गादौ कुर्वतः सृष्टिं ब्रह्मणो दैवमानतः ॥ १०९९ ॥
अयुतान्येव चत्वारि सहस्राण्यथ सप्त च ।
शतानि चत्वारि तथा व्यति(?ती)यन्नेवमेत्र हि॥ ११०० ॥

द्वादश सामग्री (= चार युगों तथा आठ सन्ध्याओं इस प्रकार बारह युग एवं सन्धि का सम्पूर्ण काल चार नियुत (= चार करोड़) तीन लाख बीस हजार यह कुल संख्या है । हे देवि! इस प्रकार चार युगों का एक दिव्य युग होता है । इकहत्तर दिव्ययुगों का एक मन्वन्तर माना गया है । अब मुझसे मन्वन्तरवाले दिव्य वर्षों को जानो । आठ लाख पाँच अयुत (= ५ × १० =५० हजार) तथा अन्य दो हजार (इस प्रकार आठ लाख बावन हजार दिव्य वर्षों का हे प्रिये! एक ब्रह्म दिन होता है) इसमें चौदह मनु (शासक) होते हैं । जिस प्रकार युगों की पूर्व और पश्चिम दो सन्ध्यायें होती हैं । हे देवि! उस प्रकार मन्वन्तरों की पश्चिम सन्ध्या नहीं होती । कृतयुग के वर्षप्रमाणवाली केवल पूर्व सन्ध्या ही होती है । यह सन्ध्या सूर्यमण्डल पर्यन्त जल से पूर्ण हो जाती है । हे देवि! सर्वप्रथम मनु का सृष्टि के प्रारम्भ में सत्य सम्मत एक पूर्ण वर्ष होता है । इस प्रकार वे वर्ष पन्द्रह माने गये हैं । दिव्य वर्षों के मान से सृष्टि के आदि में सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा के चार लाख सात हजार चार सौ वर्ष व्यतीत हो गये ॥ १०९१-११०० ॥

नारं मानमथैतस्य गदतो मे निशामय ।
एका कोटिस्तथा सप्त नियुतानि महेश्वरि ॥ ११०१ ॥
चतुःषष्टिः सहस्राणि पिण्डिताङ्काः भवन्ति हि ।
शेषे संहरतो विश्वं रुद्रस्य सचराचरम् ॥ ११०२ ॥
दैनन्दिनीयकल्पान्ते तस्य संहाररूपिणः ।
एतावानेव कालो हि व्यतिक्रामति पार्वति ॥ ११०३ ॥
एतावद्दिवसं कस्य रात्रिरेतावती तथा ।
रीत्यानया तथैतस्य मासस्त्रिंशद्दिनैर्भवेत् ॥ ११०४ ॥
मासैर्द्वादशभिर्वर्षस्तत्तद्रीत्यैव जायते ।
समाः पञ्चशतस्तस्य परार्द्धाभिधयेरिताः ॥ ११०५ ॥
द्वितीया द्विपरार्द्धाख्या तस्यैवं ब्रह्मणः पुनः ।

परमायुर्वर्षशतं ततः सोऽपि विपद्यते ॥ ११०६ ॥
पुनरन्यो भवेद् ब्रह्मा सोऽपि तावदनेहसम् ।
स्थित्वा पुनर्विपन्नः स्यादेवं ब्रह्मपरम्परा ॥ ११०७ ॥
अनादाविह संसारे जायते परमेश्वरि ।
शिवस्य दिन एकस्मिन् पञ्च ब्रह्माण ईदृशाः ॥ ११०८ ॥
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
रुद्रस्य वासरं यावत् तावत्येव विभावरी ॥ ११०९ ॥
उत्पद्यन्तेऽहःक्षपयोर्दश ब्रह्माण ईश्वरि ।
एवं विंशोत्तरशतैरहोभिर्मास इष्यते ॥ १११० ॥
अष्टचत्वारिंशमासैरेको वर्षोऽभिजायते ।
साब्दद्वादशसाहस्त्री शिवस्य स्थितिरुच्यते ॥ ११११ ॥
ततः स लीयते स्वस्य शक्तावेव सुरेश्वरि ।
अन्तर्द्धाय तनुं श्वासात् सत्तामात्रेण तिष्ठति ॥ १११२ ॥

अब इसका मानवीय मान बतलानेवाले मुझसे सुनो । हे महेश्वरि! कुल अङ्क एक करोड़ सत्तर लाख चौंसठ हजार होते हैं । अन्त में चराचर विश्व का संहार करनेवाले रुद्र का (यह एक दिन होता है) इसे कल्प कहते हैं । इस प्रकार संहाररूपी उन रुद्र के दैनिक कल्प के अन्त में, हे पार्वति! इतना काल बीत जाता है । क अर्थात् रुद्र का इतना बड़ा दिन और इतनी ही लम्बी रात्रि होती है । इस रीति से इनके तीस दिन का एक मास होता है । उसी क्रम से बारह मास का उनका एक वर्ष होता है । उनके इस प्रकार के पचास वर्ष परार्द्ध नाम से कहे जाते हैं । दूसरा भी परार्ध लेने से (रुद्र की) दो परार्ध संख्या (अर्थात् रुद्र का एक दिन-रात) ब्रह्मा की सौ वर्ष की परमायु होती है । उस (सौ वर्ष जीने) के बाद वह (= ब्रह्मा) भी मर जाते हैं । उसके पश्चात् दूसरे ब्रह्मा होते हैं । वे भी उतने ही वर्ष जीवित रहकर पुनः मर जाते हैं । हे परमेश्वरि! अनादि संसार में इस प्रकार ब्रह्मा की परम्परा चलती रहती है । शिव के एक दिन में इस प्रकार के पाँच ब्रह्मा उत्पन्न होते और मरते हैं—यह मैं सत्य कह रहा हूँ । रुद्र का जितना बड़ा दिन होता है रात्रि भी उतनी ही लम्बी होती है । हे ईश्वरि! (इस क्रम से रुद्र के) एक दिन-रात में दश ब्रह्मा उत्पन्न होते (और मरते) हैं । इस प्रकार (रुद्र के) एक सौ बीस दिनों का एक मास होता है। रुद्र के ही अड़तालिस महीनों का उनका एक वर्ष होता है। (इस मान से) रुद्र का जीवन बारह हजार वर्षों तक रहता है । हे सुरेश्वरि! इसके बाद वे अपनी ही शक्ति में लीन हो जाते हैं। श्वास के द्वारा अपने शरीर को अन्तर्हित कर वे केवल सत्तारूप में स्थित रहते हैं ॥ ११०१-१११२ ॥

संहारकर्तृ रुद्रस्य पादपद्मावलम्बिनी ।
या करोटिमयी माला तां मे निगदतः शृणु ॥ १११३ ॥

एकं सहस्रं मुण्डानामशीत्या सहितं प्रिये ।
येषां केषामिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमिदं शृणु ॥ १११४ ॥
अशीतिश्च शतं विष्णोस्त्रिशतं षष्टियुग् विधेः ।
पुरन्दरस्य विंशत्या सहितं शतमेव हि ॥ १११५ ॥
अब्धिन्तुपत्ययोः (? अब्धीन्दुपत्योः)
प्रत्येकं शतं त्रिदशवन्दिते ।
प्रत्येकं च तथा त्रिंशत् कालमृत्योरपि स्फुटम् ॥ १११६ ॥
यमस्य विंशतिर्वह्नेर्दश वायोश्च सप्ततिः ।
कामस्य विंशतिः प्रोक्ता तथाष्टौ निर्ऋतेरपि ॥ १११७ ॥
पञ्च पञ्च कपालानि प्रत्येकं चन्द्रसूर्ययोः ।
वासुक्यनन्तयोर्द्वे द्वे हयग्रीवशिरस्त्रयम् ॥ १११८ ॥
कूर्मत्रिविक्रमक्रोडमीनकेशरिणां त्रयम् ।
प्रत्येकं वर्तते तस्यां मालायां जगदीश्वरि ॥ १११९ ॥
अन्येषां कैव गणना भूतानामिह संसृतौ ।
कालेन विध्यते वेधा अच्युतोऽपि च्युतो भवेत् ॥ ११२० ॥
रुद्रोऽपि द्रवतां याति का कथान्येषु जन्तुषु ।
इति ते कथितं शैवं प्रमाणं मासवर्षयोः ॥ ११२१ ॥
अनेनैव प्रमाणेन तादृग् ज्ञानपरो नरः ।
तत्तद्रूपेण संविश्य जीवेदब्दं सशाङ्करम् ॥ ११२२ ॥

संहारकर्त्ता रुद्र की पैर तक लटकनेवाली मुण्डमाला है, उसको बतलानेवाले मुझसे सुनो । हे प्रिये! जिन लोगों की एक हजार अस्सी मुण्डों की माला है, वे कौन लोग हैं (अर्थात् किन देवताओं के कितने मुण्डों की माला यह है?) इस प्रश्न का प्रत्युत्तर यह है—सुनो । विष्णु के एक-सौ अस्सी, ब्रह्मा के तीन सौ साठ, इन्द्र के एक सौ बीस, समुद्र और चन्द्रपति (अर्थात् समुद्रदेव और चन्द्रदेव की पत्नी रोहिणी) में प्रत्येक के सौ-सौ, काल और मृत्यु में से प्रत्येक के तीस-तीस, यम के बीस, अग्नि के दश, वायु के सत्तर, काम के बीस, निर्ऋति के आठ, चन्द्र और सूर्य में प्रत्येक के पाँच-पाँच, वासुकि और अनन्त के दो-दो, हयग्रीव के तीन, कूर्मावतार वामनावतार क्रोड (अर्थात् शूकरावतार) मत्स्यावतार एवं नृसिंहावतारवाले विष्णु के तीन-तीन मुण्ड, हे जगदीश्वरि! उस माला में हैं । (इस प्रकार १८० + ३६० + १२० + १०० + १०० + ३० + ३० + २० + १० + ७० + २० + ८ + ५ + ५ + २ + २ + ३ + ३ + ३ + ३ + ३ + ३ = १०८० मुण्ड हुये) । इस सृष्टि में अन्य प्राणियों (के शिरों) की क्या गणना । काल (अर्थात् मृत्यु) के द्वारा वेधा बिद्ध होते हैं; अच्युत च्युत हो जाते हैं और रुद्र द्रुत हो जाते हैं फिर अन्य प्राणियों की क्या बात ! इस प्रकार तुमको शैव वर्ष एवं

मास बतलाये गये । इसी प्रमाण से उस प्रकार का ज्ञानी पुरुष तत्तद् रूप से समाविष्ट होकर शिव के एक वर्ष तक जीवित रहता है ॥ १११३-११२२ ॥

दुष्करं योगसंवित्तिर्दुष्करं मृत्युनाशनम् ।
दुष्करा शिवशक्त्योश्च भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ ११२३ ॥
इति सर्वमशेषेण कथितं तव पार्वति ।
शरीरोत्पत्तिसंस्थानं नाडीनामपि भूरिशः ॥ ११२४ ॥
क्रमयोगो हठयोगः प्राणायामविधिस्तथा ।
आसनानां च सर्वेषां विधानमुपवर्णितम् ॥ ११२५ ॥
त्रैकालिकज्ञानशाली त्रिपुरघ्नो जगत्पतिः ।
चतुर्युगाचारधर्त्ता सर्वान्तर्याम्यधीश्वरः ॥ ११२६ ॥
ज्ञात्वा हार्दमभिप्रायं लोकानां विषयैषिणाम् ।
न्यासपूजाजपबलिप्रभृतीनुक्तवान् पुरः ॥ ११२७ ॥
कामकेलिः सह स्त्रीभिर्यत्र मांससुराशनम् ।
आचारस्य च सङ्कोचः स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥ ११२८ ॥
प्ररोचनतया सर्वं वर्तिष्यन्नीदृशेऽध्वनि ।
दुष्करत्वादसाध्यत्वाद् योगं तदनु वै जगौ ॥ ११२९ ॥
वर्त्मद्वयं भगवता दर्शितं करुणावशात् ।
यस्येच्छा वर्तते यत्र स तत्र रमतां सुखम् ॥ ११३० ॥
योगः स्थितः सत्ययुगे त्रेतायां ध्यानमेव च ।
द्वापरेऽर्चाजपन्यासः मद्यमांसाशनं कलौ ॥ ११३१ ॥
कदाचिद् भाग्ययोगेन लभ्यते तादृशो गुरुः ।
एतान् विहायापि तदा योगमेव समभ्यसेत् ॥ ११३२ ॥
अत एव मया प्रोक्तमयोगज्ञः स्वपन्निशि ।
योगज्ञस्तु समुत्थाय निशीथे योगमभ्यसेत् ॥ ११३३ ॥
पूजान्यासान्वितं योगं ये कर्तुं शक्नुवन्ति हि ।
मनुष्यचर्मणा नद्धास्ते रुद्रा नात्र संशयः ॥ ११३४ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशतसाहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां
शरीरयोगकथनं नाम एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

* * *

योग का ज्ञान दुर्लभ है मृत्यु का नाश दुष्कर है और शिवशक्ति की अव्यभिचारिणी भक्ति भी दुष्कर है । हे पार्वति! तुमको शरीर की उत्पत्ति, नाड़ियों का संस्थान, क्रमयोग, हठयोग, प्राणायामविधि और सारे आसनों का विधान बतलाया गया । (शिव) संसार के स्वामी, त्रिकालदर्शी, त्रिपुर का नाश करनेवाले,

चारो युगों के आचार का धारण करनेवाले, सर्वान्तर्यामी और सबके ईश्वर हैं। विषयेच्छु लोगों के हृदय के अभिप्राय को जानकर उन्होंने पहले न्यास पूजा जल बलि आदि का निर्वचन किया। वहाँ स्त्रियों के साथ कामक्रीडा, मांस और सुरा का भोजन, सदाचार का न होना, स्वेच्छाचार का विस्तार इत्यादि रुचि के अनुसार इस प्रकार के मार्ग में व्यवहार करने की दुष्करता के कारण इस योग को ईश्वर ने बतलाया। भगवान् ने करुणावश (भक्ति एवं योग) दो मार्ग बतलाया। जिसकी जहाँ इच्छा हो वह उसमें सुखपूर्वक रमण करे। सत्ययुग में योग था, त्रेता में ध्यान, द्वापर में पूजा जप और न्यास तथा कलियुग में मद्य एवं मांस का भोजन। मनुष्य कदाचित् भाग्य से वैसा गुरु प्राप्त करता है। इसलिये उपर्युक्त को छोड़कर भी मेरे द्वारा उक्त योग का अभ्यास करना चाहिये। जो योग को नहीं जानता, वह रात्रि में शयन करे किन्तु जो योगज्ञानी है वह मध्य रात्रि में उठकर योग का अभ्यास करे। जो लोग पूजा और न्यास से युक्त योग को कर सकते हैं वे मनुष्य के शरीर में स्थित शिव ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ११२३-११३४ ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली
महाकालसंहिता के 'शरीरयोगकथन' नामक एकादश
पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

* * *